कृषि विज्ञान

कक्षा 11

कक्षा
11

# कृषि विज्ञान

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर

# कृषि विज्ञान

कक्षा – 11

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर

# पाठ्य पुस्तक निर्माण समिति

## पुस्तक–कृषि विज्ञान – कक्षा – 11


संयोजक :– डॉ. राजेन्द्र सिंह, वरिष्ठ व्याख्याता, उद्यान विज्ञान
राजकीय महाविद्यालय, उनियारा, टोंक

लेखकगण :–

1. डॉ. नरेन्द्र कुमार पारीक, सहायक आचार्य, सस्य विज्ञान
   कृषि अनुसंधान केन्द्र, स्वामी केशवानंद, राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर

2. डॉ. बृजगोपाल छीपा, सहायक आचार्य, उद्यान विज्ञान
   कृषि विज्ञान केन्द्र, भीलवाड़ा महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, उदयपुर

3. गजेन्द्र सिंह राणावत, प्रधानाचार्य
   राजकीय उच्च मा. विद्यालय, कोरटा, पाली

4. अखिलेश कुमार, प्रधानाचार्य
   शहीद भैरोंसिंह राजकीय उच्च मा. विद्यालय, अलीपुर, (वैर) भरतपुर

# भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक कृषि विज्ञान कक्षा–11 कृषि वर्ग के विद्यार्थियों के लिये माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान की कृषि विज्ञान की पाठ्यक्रम समिति के द्वारा नवीन पाठ्यक्रमानुसार की गई है। इस पुस्तक में अध्ययन सामग्री को विभिन्न इकाइयों, अध्यायों, एवं शीर्षकों में विभाजित किया गया है। इकाई प्रथम में भारतीय कृषि का इतिहास, मौसम एवं जलवायु, मृदा, पोषक तत्व एवं उर्वरक, सिंचाई एवं जल निकास, कृषि यंत्रों की जानकारी, इकाई–2 में फल, सब्जियों का मानव आहार में महत्व, सब्जियों का वर्गीकरण, पौधशाला, सब्जियों की खेती, अलंकृत बागवानी, फूलों की खेती, औषधीय पौधों की जानकारी एवं इकाई–3 में भारतीय अर्थव्यवस्था में पशुधन का महत्व, पशुओं की आयु एवं भार ज्ञात करना, सामान्य प्रबंध, पशुपोषण, पशुस्वास्थ्य, पशुओं के लिये सामान्य औषधियाँ, मुर्गी पालन के संबन्ध में प्रचलित एवं नवीनतम जानकारी प्रस्तुत की गई है, जिससे विद्यार्थी लाभान्वित होंगे। इस पुस्तक में तकनीकी शब्दों को तकनीकी शब्दावली के अनुसार लिया गया है। इस पुस्तक के लेखन में कक्षा–11 के विद्यार्थियों के स्तर का ध्यान रखा गया है। चित्रों एवं तालिकाओं का समावेश करके विषय अध्ययन को सरल एवं सुग्राह्य बना दिया गया है। प्रत्येक अध्याय के अन्त में महत्वपूर्ण बिन्दु के रूप में विषय से सम्बन्धित महत्वपूर्ण सामग्री को दिया गया है, साथ ही पर्याप्त संख्या में बहुचयनात्मक, अतिलघूत्तरात्मक, लघूत्तरात्मक तथा निबंधात्मक प्रश्न दिये गये हैं।

पुस्तक के लेखन एवं मुद्रण में पूर्ण सावधानी रखी गई है फिर भी त्रुटियों का रहना सम्भव है अतः सभी विद्यार्थियों एवं शिक्षक बंधुओं के बहुमूल्य सुझाव इस पुस्तक में निरन्तर सुधार हेतु सहर्ष आमंत्रित हैं।

– संयोजक एवं लेखकगण

# अनुक्रमणिका

## खण्ड–अ (सैद्धांतिक)

## खण्ड–ब (प्रायोगिक)

# अध्याय–1

# शस्य विज्ञान

## भारतीय कृषि का इतिहास, शाखाएँ, महत्व एवं क्षेत्र

## (Indian Agriculture : History, Branches, Scope & their Importance)

हमारे देश की लगभग 70 प्रतिशत आबादी कृषि व कृषि उद्योगों पर निर्भर हैं। प्राचीन काल से ही भारत कृषि प्रधान देश रहा हैं। भारत के प्राचीन ग्रन्थों यथा वृक्षायुर्वेद, कृषि पाराशर, कृषि सूक्त, अथर्ववेद, ऋग्वेद आदि का अध्ययन करने से स्पष्ट होता हैं, कि प्राचीन समय से ही कृषि, भारत में अपना विशिष्ट स्थान रखती थी। खाद्य कृषि संगठन (FAO) के कृषि विशेषज्ञ रह चुके डॉ. के.एल.मेहरा ने बताया कि सरस्वती नदी के उद्भव का पता लगने के बाद शोध द्वारा यह प्रमाणित हो गया हैं कि भारत प्राचीन काल से ही एक साथ दो फसलें लेने वाला दुनिया का पहला देश हैं, इस तरह भारतीय कृषि सभ्यता विश्व की प्राचीनतम् सभ्यता मानी जाती हैं।

मनुष्यों की अधिकांश आवश्यकताओं की पूर्ति कृषि द्वारा ही होती हैं। आहार, वस्त्र, आवास सहित सभी आवश्यकताओं की पूर्ति कृषि अथवा कृषि आधारित उद्योगों से होती हैं।
प्राचीन समय से ही राज्य व्यवस्था चलाने में कृषि को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था।

महाभारत के सभापर्व में ऋषि नारद, युधिष्ठिर से कहते है- " हे राजन कृषि को सुधारने हेतु स्थान–स्थान पर कुएँ, बावड़ी, तालाब इत्यादि खुदवायें जायें, ताकि आपके राज्य में कृषि वर्षा पर ज्यादा निर्भर न रहें।"

प्राचीन ग्रन्थों में अक्षत (चावल), कनक (गेहूँ), जौ, तिल, श्रीफल (नारियल), हल्दी, चन्दन, ईख,राई, मेथी, सूत (कपास) इत्यादि का उल्लेख किया गया है। इससे सिद्ध होता है कि भारत में कृषि उपज का अस्तित्व हजारों वर्ष पूर्व भी था। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा सभ्यता काल के अवशेषों में कृषि उपज के अवशेष भी प्राप्त हुये हैं।

निम्न उदाहरणों से प्राचीन भारत में उन्नत कृषि ज्ञान की पुष्टि की जा सकती हैं –

(1) ऋग्वेद की ऋचाओं में पर्यावरण, वानिकी, कृषि उपकरण आदि का महत्व दर्शाया गया है।

(2) मोहन जोदड़ो व हड़प्पा सभ्यता से देशी हल, जुते हुए खेत, अनाज भण्डारण, पहिये वाली गाड़ी के अवशेष मिले हैं।

(3) अथर्ववेद में पादप सुरक्षा संबंधी जानकारी दी गई हैं।

(4) वाराहमिहिर के वृहत संहिता में मृदा वर्गीकरण,सिंचाई प्रणाली, कृषि उपकरण एवं मौसम पूर्वानुमान की जानकारी दी गई हैं।

अतः प्राचीन भारतीय कृषि में निहित परम्परागत ज्ञान को आधुनिक कृषि विज्ञान की उन्नत प्रौद्योगिकी के साथ समाहित करके कृषि का समुचित विकास किया जा सकता हैं।

**कृषि की परिभाषाः–** कृषि शब्द संस्कृत की 'कृष' धातु से बना है, जिसका अर्थ है– खींचना, आकर्षित करना, जोतना, प्राप्त करना होता है। कृषि (कृष+इन्, कित्) का अर्थ– जुताई, खेती, किसानी, अतः कृषि से तात्पर्य जुताई आदि करके फसल प्राप्त करना है। AGRICULTURE (कृषि) शब्द लैटिन भाषा के शब्द Ager or Agri तथा Cultura से लिया गया हैं, जिसका अर्थ क्रमशः मृदा एवं कृषि कर्म करना हैं। इस प्रकार कृषि विज्ञान एक विस्तृत शब्द हैं जिसमें फसल उत्पादन, पशुपालन, मछली पालन, वानिकी आदि के सभी तत्व समाहित होते हैं।
इस प्रकार कृषि को हम इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं – मनुष्य की वह क्रिया जिसका मुख्य उद्देश्य धरातलीय संसाधनों से खाना, रेशा, ईंधन आदि का उत्पादन हैं।
सामान्यतया जीवन निर्वाह व आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिये फसल उत्पादन, पशुपालन आदि की कला व विज्ञान को कृषि विज्ञान कहते हैं।
परम्परागत कृषि के लिये जहाँ केवल अनुभव व दक्षता ही आवश्यक हैं, वही आधुनिक कृषि के लिये अनुसंधान, सिद्धांत, तकनीक, क्रमबद्ध व सुव्यवस्थित ज्ञान, प्रायोगिक अभ्यास, सहित कृषि का यंत्रीकरण भी आवश्यक हैं।
आधुनिक भारत में भी कृषि विकास का एक लम्बा इतिहास रहा हैं। डॉ. एम. एस. रंधावा की पुस्तक "भारत में कृषि का इतिहास" में भारतीय कृषि का वर्णन प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया हैं।
सन् 1899–1900 के भीषण अकाल को देखते हुये, इस समस्या के स्थायी समाधान और कृषि के चहुँमुखी विकास के लिये सन् 1904 में भारतीय कृषि बोर्ड की स्थापना हुई। सन् 1905 में बिहार के दरभंगा जिले में गंडक नदी के किनारे कृषि शोध कार्यों के लिये फिप्स प्रयोगशाला की स्थापना की गई,
यह क्षेत्र पूसा (Phipps of USA)के नाम से प्रसिद्ध हुआ।
पूसा स्थित कृषि संस्थान का 1911 में इम्पीरियल इंस्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर रिसर्च नामकरण किया गया।

सन् 1919 में यह इम्पीरियल एग्रीकल्चर रिसर्च इंस्टीट्यूट (IARI) के नाम से प्रचलित हुआ। इस संस्थान में फसलों और पशुओं के प्रजनन, मृदा विज्ञान, कीट व कवक विज्ञान और वनस्पति विज्ञान आदि विषयो में अनुसंधान हेतु व्यापक रूपरेखा तैयार की गई।

7 नवम्बर 1936 को बिहार में विनाशकारी बाढ़ के कारण क्षतिग्रस्त हुए पूसा इंस्टीट्यूट को दिल्ली स्थानान्तरित किया गया। जिसे आज भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (IARI) के नाम से जाना जाता है।

1960 में खाद्यान्नों की उपलब्धता सुनिश्चित करना देश के लिये एक गहन चुनौती थी, तब भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् के तत्कालीन महानिदेशक डॉ. बी.पी.पाल व पूसा संस्थान के निदेशक डॉ. एम.एस.स्वामीनाथन ने योजनाबद्ध तरीके से कृषि विकास की रूपरेखा तैयार की। सन् 1963 में बौने गेहूँ के जनक नार्मन ई. बोरलॉग ने भारत का भ्रमण किया। अधिक उपज देने वाली गेहूँ की किस्में तैयार करने से देश को खाद्य सुरक्षा प्राप्त हुई और देश में हरित क्रांति का सूत्रपात हुआ। कालांतर में देश में 1929 में नई दिल्ली में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् (ICAR) की स्थापना हुई और उसके तहत स्थापित विभिन्न कृषि अनुसंधान केन्द्र, कृषि विश्वविद्यालय व अन्य कृषि संस्थानों के माध्यम से सतत् कृषि अनुसंधान एवं प्रसार के फलस्वरूप डॉ. स्वामीनाथन एवं डॉ. बोरलॉग के सफल प्रयासों के परिणामस्वरूप भारत में तेजी से कृषि उपज में आशातीत वृद्धि हुई, जिससे हमारा देश विभिन्न क्षेत्रों में आत्मनिर्भर बन गया।

### कृषि विज्ञान की विभिन्न शाखाएँ –

1. **शस्य विज्ञान (Agronomy)** – ग्रीक भाषा के शब्द 'एग्रोस' (Agros-Field) अर्थात् खेत तथा नोमोस (Nomos-Management) अर्थात् प्रबन्धन से बना हैं। यह कृषि की एक विशेष शाखा हैं जिसका सम्बन्ध फसल उत्पादन एवं मृदा प्रबन्धन से हैं।

2. **उद्यान विज्ञान (Horticulture)** – बागवानी (फल, सब्जी, पुष्प) से सम्बन्धित फसलों एवं कार्यों का अध्ययन किया जाता हैं।

3. **पशुपालन एवं पशुधन उत्पादन (Animal Husbandry)** – पशुओं को पालने का वैज्ञानिक अध्ययन इस शाखा के अन्तर्गत किया जाता हैं।

4. **मधुमक्खी पालन (Apiculture)** –इस शाखा के अन्तर्गत मधुमक्खी पालन एवं शहद उत्पादन से सम्बन्धित अध्ययन किया जाता है।

5. **मछली पालन (Fishery)**– कृषि विज्ञान की इस शाखा के अन्तर्गत मछली पालन एवं उत्पादन से सम्बन्धित वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता हैं।

6. **रेशम कीट पालन (Sericulture)** – इस शाखा के अन्तर्गत रेशम कीट पालन एवं रेशम उत्पादन का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता हैं।

7. **लाख उत्पादन (Lac Culture)** – इस शाखा के अन्तर्गत लाख उत्पादन से सम्बन्धित अध्ययन किया जाता हैं।

8. **वन विज्ञान (Forestry)** – इसके अन्तर्गत वनों में उगने वाले पौधों के उगाने एवं उनके उपयोग का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।

9. **मशरूम उत्पादन (Mushroom Production)**– इस शाखा के अन्तर्गत मशरूम उत्पादन का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता हैं।

10. **कुक्कुटपालन (Poultry)**–इस शाखा के अन्तर्गत कुक्कुट (मुर्गी) पालन का विस्तृत अध्ययन किया जाता हैं।

11. **कीट विज्ञान (Entomology)** – कृषि विज्ञान की इस शाखा में कीट सें फसलों पर पड़ने वाले प्रभाव से सम्बन्धित वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता हैं।

12. **पादप रोग विज्ञान (Plant Pathology)**– पौधे पर लगने वाले विभिन्न रोग, रोग कारक एवं उनके नियन्त्रण का विस्तृत अध्ययन इस शाखा में किया जाता हैं।

13. **कृषि प्रसार (Agricultural Extension)**– कृषि अनुसंधान से प्राप्त नवीन तकनीकी जानकारी को किसान के खेत तक पहुँचाने का अध्ययन अनौपचारिक शिक्षा के माध्यम से इस शाखा में किया जाता है।

14. **कृषि अर्थशास्त्र (Agricultural Economics)** – कृषि लागत एवं आय की गणना का विस्तृत अध्ययन इस शाखा में किया जाता है।

### भारतीय कृषि का महत्व :–

#### भारतीय कृषि का महत्व

भारत जलवायु की विविधता वाला देश है, यहाँ अलग–2 भौगोलिक खण्डों में वर्षा, तापमान, आद्रता, वायुदाब, वायुवेग का स्तर अलग–2 है।

चूंकि कृषि कार्य के लिये उपयुक्त जलवायु, भूमि, मीठा जल, उन्नत बीज, सस्ते मजदूर की उपलब्धता आवश्यक है। इसलिये भारत विश्व के अनेक देशों की अपेक्षा खेती व कृषि के अन्य कार्य की दृष्टि से उपयुक्त स्थान माना जाता है।

अतः भारतीय कृषि का निम्नलिखित महत्व है –

1. **मानसून पर आधारित खेती** – भारत में अधिकांश क्षेत्र में भूमिगत जल स्तर या तो कम है, या जल खारा है। जो सभी फसलों के लिये उपयुक्त नहीं है।

चूंकि भारत में वर्ष में 6 माह दक्षिणी पश्चिमी मानसून की हवाएँ चलती है, जिससे भारत के अधिकांश क्षेत्रों में जून माह से

अक्टूबर माह तक वर्षा होती है। कुछ क्षेत्रों में दिसम्बर–जनवरी माह में भी वर्षा होती है। अतः भारत के अधिकांश किसान वर्षा आधारित कृषि (Rainfed cultivation) कार्य करते हैं। अधिकांश क्षेत्रों में भूमिगत व सतही सिंचाई स्रोत भी मानसून के वर्षा जल से परिपूर्ण होते है। अतः वर्षा की अनियमितता या कमी से खेती पर विपरीत असर पड़ता है। फसल की बुवाई से लेकर उपज प्राप्ति तक सभी कार्य प्रभावित होते हैं। जबकि अच्छी वर्षा होने पर पैदावर अच्छी हो जाती है।

**2. अधिकांश जनसंख्या कृषि पर निर्भर** – भारत में 70% लोग खेती करते है। इससे जहाँ एक ओर रोजगार के पर्याप्त अवसर मिलते है। लेकिन अकाल पड़ने व फसल खराब होने पर खाद्यान्न संकट उत्पन्न हो जाता है।

**3. परम्परागत तकनीकी** – भारत में किसान परम्परागत खेती करते है, किसान को खेती का कार्य विरासत में मिलता है, जिससे अनुभव व कौशल से वह परिपूर्ण होता है, लेकिन नवीन तकनीक का उसे ज्यादा ज्ञान नहीं होता है। जिससे उत्पादन बढ़ाने का प्रयास वह नहीं कर पाता है। अब वह कुछ मात्रा में उन्नत तकनीक, बीज खाद, कृषि यंत्रो का प्रयोग करके खेती में सुधार कर रहा है।

**4. खाद्यान्न फसलों की अधिकता** – भारत के किसान अपनी आवश्यकता को देखकर खेती में फसलों का चयन करते है। उसे खाद्यान्न की प्राथमिक आवश्यकता रहती है। इसलिये अधिकांश किसान अनाज वाली फसलें ज्यादा मात्रा में बोता है। दलहन, तिलहन व अन्य रोकड़ फसलें कम बोता है। जिससे उसे रोकड़ आमदनी कम प्राप्त होती है।

**5. रोजगार का प्रमुख साधन** – भारत में कृषि आधारित उद्योग रोजगार के प्रमुख साधन है। अधिकांश जनसंख्या खेती पर निर्भर होने से अकाल, बाढ़ या फसल खराब होने पर लोगों का बड़े स्तर पर रोजगार प्रभावित होता है। जिससे किसान व मजदूर कर्जदार हो जाता है, ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा के प्रति जागरूकता कम है। अतः अन्य रोजगार के अवसर वह खोज नहीं पाता है।

**6. राष्ट्रीय आय का प्रमुख स्रोत** – भारत के 70% लोगों से प्राप्त कृषि उपज के कृषि व्यापार से प्राप्त विभिन्न प्रकार के कर के रूप से सरकार को आय प्राप्त होती है। यदि कभी फसलें खराब होती है, तो राष्ट्रीय आय भी प्रभावित हो जाती है।

**कृषि विज्ञान के क्षेत्र (Scope)**

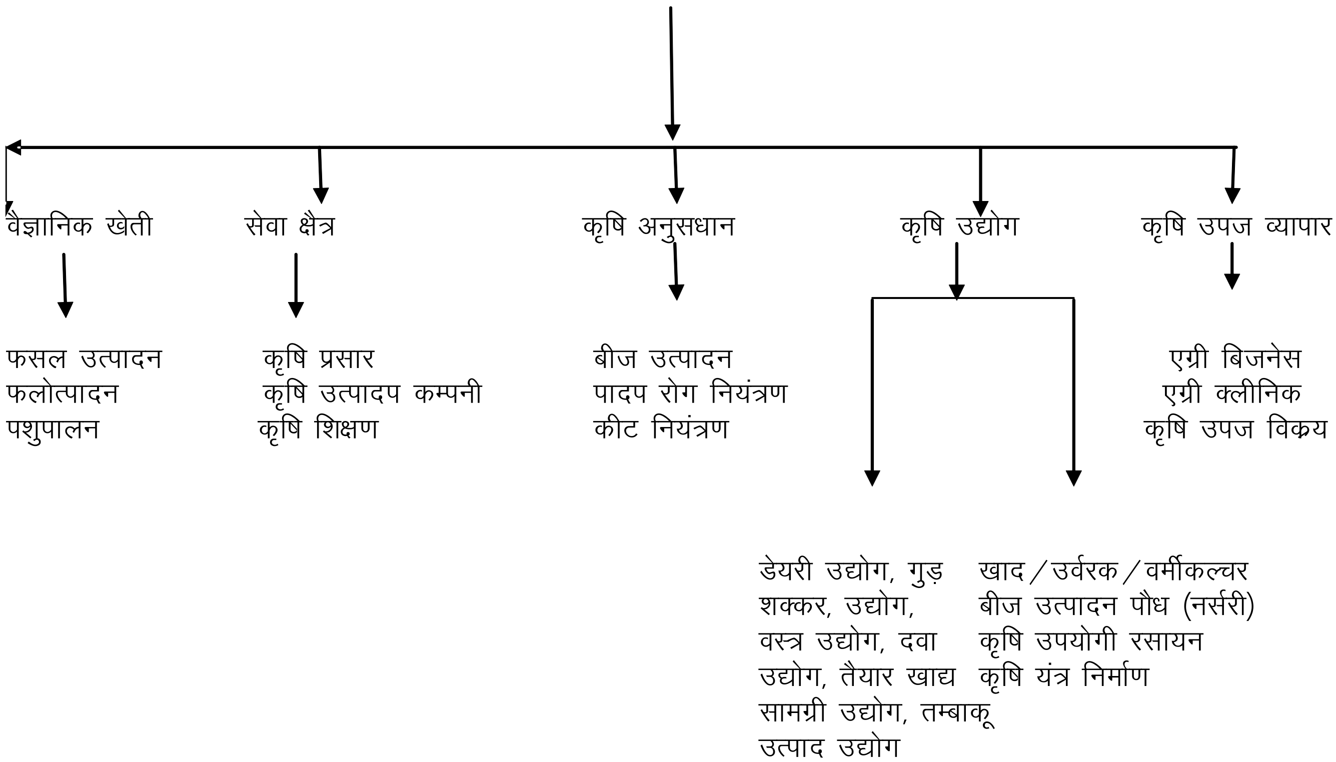

**7. डेयरी उत्पादन के लिये कच्चामाल** – भारत में अधिकांश किसान खेती के साथ–साथ पशुपालन करते है, जिससे प्राप्त दूध ही डेयरी उद्योग का आधार है। किसान अपने खेत पर पशुओं के लिये चारा तैयार करता है तथा फसल अवशेष को भी पशु चारे के रूप में प्रयोग करता है।

**8. खाद्यान्न उपलब्धता** – भारत की जनसंख्या वर्तमान में 125 करोड़ है। इतनी बड़ी जनसंख्या को भोजन प्रदान करने के लिये बहुत बड़ी मात्रा में खाद्यान्न की आवश्यकता होती है। हमारे यहाँ खेती की उपज द्वारा अधिकांश किसान गेहूँ, जौ, चावल, मक्का, बाजरा, ज्वार, इत्यादि अनाज की पूर्ति देश को कर देता है। हरित क्रांति के द्वारा हमारे देश में खाद्यान्न की उपलब्धता कई गुना बढ़ गई, जिससे खाद्यान्न की उपलब्धता के मामले में देश आत्मनिर्भर हो गया है तथा भारत खाद्यान्न का निर्यात भी करता है।

**9. वस्त्र उद्योग के लिए कच्चा माल**– भारत में कपास, जूट का उत्पादन बहुतायत से होता है। अतः वस्त्र उद्योग के लिये भी पर्याप्त कच्चा माल देश के किसान उत्पादित कर देते है।

**10. पशु चारा उपलब्धता** – किसान द्वारा उत्पादित फसलों के अवशेष को सूखे चारे के रूप में किसान संग्रहित करता है। साथ ही खेत में हरे चारे को उगाकर पशुओं को उपलब्ध कराता है। जिससे देश में पशुपालन व डेयरी उद्योग का विकास तेजी से हो रहा है।

**11. कृषि आधारित उद्योगों के लिये कच्चा माल**– भारत में दलहन, तिलहन, वस्त्र, डेयरी, जूट उद्योग, चीनी उद्योग, फल व सब्जी प्रसंस्करण उद्योग के लिये कच्चा माल खेती से ही प्राप्त होता है। मूँग, उड़द, अरहर,चना, मसूर इत्यादि का उत्पादन दाल उद्योग को कच्चा माल प्रदान करता है। इसी तरह तिल, मूँगफली, सरसों के उत्पादन से खाद्य तेल के उद्योग चलते है तथा कपास व जूट से वस्त्र उद्योग चलता है।

**12. बेरोजगारी की समस्या का समाधान** – भारत में अच्छे मानसून से पर्याप्त वर्षा होने पर कृषि उत्पादन अच्छा होता है जिससे अधिकांश बेरोजगारों को रोजगार के अवसर प्राप्त हो जाते हैं।

**13. विदेश व्यापार व निर्यात** – हमारे देश के फल, सब्जी, पुष्प, अनाज, दलहन, तिलहन के प्रसंस्करण के पश्चात उनका निर्यात किया जाता है। जिससे भारत को काफी विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है।

**14. देश की आर्थिक विकास में योगदान**– जब किसी देश का कृषि उत्पादन बढ़ता है तो घरेलू बाजार में तथा विदेशी व्यापार में उसका लेनदेन होता है जिससे सरकार को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष कर काफी मात्रा में प्राप्त होता है। भारत में कृषि व कृषि आधारित उद्योगों से आर्थिक विकास में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है।

## अभ्यास प्रश्न

### बहुचयनात्मक प्रश्नः

1. भारत में कितने प्रतिशत आबादी कृषि पर निर्भर है?

   (अ) 50 प्रतिशत (ब) 90 प्रतिशत
   (स) 70 प्रतिशत (द) 30 प्रतिशत

2. किस नदी पर शोध द्वारा प्रमाणित हुआ है कि प्राचीन काल से ही भारत में एक साथ दो फसलें उगाई जाती थी ?

   (अ) गंगा (ब) यमुना
   (स) कावेरी (द) सरस्वती

3. अथर्ववेद में जानकारी दी गई है–

   (अ) पादप अंकुरण (ब) पादप वृद्धि
   (स) सिंचाई (द) पादप सुरक्षा

4. कृषि उपकरण एवं मौसम पूर्वानुमान का उल्लेख किस प्राचीन ग्रन्थ में किया गया है?

   (अ) ऋग्वेद (ब) अथर्ववेद
   (स) वृक्षायुर्वेद (द) वाराहमिहिर

5. भारत में कृषि का इतिहास पुस्तक के लेखक कौन थे?

   (अ) डॉ. बी. पी. पाल
   (ब) डॉ. एम.एस. स्वामीनाथन
   (स) डॉ. एम. एस. रंधावा
   (द) डॉ. वर्गीस कुरियन

6. फिप्स प्रयोगशाला की स्थापना बिहार में कब की गई?

   (अ) 1904 (ब) 1911
   (स) 1936 (द) 1929

### अतिलघूत्तरात्मक प्रश्नः

7. कृषि द्वारा किन दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती है?

8. कृषि उपज के अवशेष किन प्राचीन सभ्याताओं के अवशेषों से प्राप्त हुये है?

9. बौने गेहूँ का जनक किसे कहा जाता है?

10. भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (ICAR) की स्थापना कब हुई।

11. हरित क्रांति का सूत्रपात कब हुआ ?

12. भारत में हरित क्रांति के जनक कौन थे ?

### लघूत्तरात्मक प्रश्नः

13. किस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि हजारों वर्षो पूर्व भारत में खेती की उपज का अस्तित्व था ?

14. कृषि विज्ञान की परिभाषा लिखिए ?

15. शस्य विज्ञान किसे कहते है ?

16. कीट विज्ञान से आप क्या समझते है ?

### निबन्धात्मक प्रश्न

17. भारतीय कृषि के महत्व का वर्णन विस्तारपूर्वक कीजिए।

18. प्राचीन भारतीय ग्रन्थों द्वारा कृषि विकास के ज्ञान की पुष्टि कैसे की जा सकती है? समझाइये।

19. आधुनिक भारत में कृषि विज्ञान के क्षेत्र क्या है? सविस्तार बताइए।

### उत्तरमाला

1. (स), 2. (द), 3. (द), 4. (द), 5. (स), 6. (अ)

# अध्याय–2
# मौसम एवं जलवायु
# (Weather & Climate)

पौधो और मानव जीवन पर भौतिक पर्यावरण के जिन तत्वों का सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है, उनमे जलवायु प्रमुख है। जलवायु और मौसम हमारे भौतिक पर्यावरण के गतिशील रूप है और मानव जीवन की लगभग प्रत्येक गतिविधि को प्रभावित करते है। मनुष्य की आर्थिक स्थिति, उद्योग, व्यापार, मानसिक स्वास्थ्य, सभ्यता भी जलवायु से प्रभावित होती है। विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले निवासियों की वेशभूषा, रहन – सहन, खान – पान आदि में जो अन्तर परिलक्षित होता है उसका मूल कारण जलवायु ही है।

प्रसिद्ध जलवायु विज्ञानवेता (Climatologist) और पाश्चात्य विचारक **केन्ड्रयू** (Candrew) ने जलवायु की महत्ता के विषय में कहा है कि, **"जीवन को नियंत्रित करने वाले सभी तत्वों में जलवायु आधारभूत एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है।"**

पौधे की प्रत्येक वृद्धि अवस्था प्रचलित मौसम परिस्थितियों द्वारा प्रभावित होती है। प्रत्येक फसल इष्टतम मौसम परिस्थितियों में अपनी सम्पूर्ण उपज क्षमता दर्शाती है। यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि फसलों पर लगने वाले रोग एवं कीटों का प्रकोप प्रचलित मौसम से सम्बन्धित होता है। अतः फसलों की वृद्धि एवं उपज पर मौसम के विभिन्न मापदण्डो के प्रभाव की जानकारी सफलतम फसल उत्पादन के लिए आवश्यक है।

सामान्य बोलचाल की भाषा में मौसम एवं जलवायु एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते है किन्तु वास्तव में दोनो के अर्थ भिन्न – भिन्न होते है।

### मौसम (Weather):-

सामान्यतः वायुमण्डल की तात्क्षणिक अवस्था मौसम कहलाती है। सौर ऊर्जा के वितरण में विभिन्नताओं में साम्य स्थापित करने वाली प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप मौसम का निर्माण होता है। अतः मौसम वायुमण्डल की दैनिक अवस्था है और ऊष्मा, नमी तथा वायु गति की अवस्थाओं में लघु अवधि परिवर्तनो से सम्बन्धित है।

किसी क्षेत्र विशेष में नियत समय पर वायुमण्डल की अवस्था जो तापमान, दाब, हवा, नमी, बादलों की स्थिति, वर्षण तथा दृश्यता में वायुमण्डल के लघु अवधि परिवर्तनों को सूचित करती है, मौसम कहलाती है। मौसम अत्यधिक परिवर्तनशील है। यह निरन्तर बदलता रहता है, कभी – कभी प्रत्येक घण्टे और कभी – कभी प्रत्येक दिन।

प्रसिद्ध जलवायुविज्ञानवेता **ट्रिवार्था** (Trewartha) के अनुसार **"किसी स्थान की अल्पकालिक वायुमण्डलीय दशाओ यथा तापक्रम, वायुदाब, आर्द्रता, वर्षा के योग को मौसम कहते है।"** सामान्यतः इसको अच्छा (Fine), साफ (Fair), धुंधला (Foggy), मेघयुक्त (Cloudy), बरसाती / वृष्टिमान (Rainy), उजला (Sunny) अथवा तूफानी (Windy) मौसम जैसे शब्दों से व्यक्त करते है।

### कृषि मौसम विज्ञान (Agrometeorology):-

यह मौसम विज्ञान की शाखा है जिसमे पौधों एवं पशुओं के भौतिक पर्यावरण से सम्बन्ध का अन्वेषण किया जाता है। फसलों, घासों, वृक्षों, पशुओं, कीटों एवं व्याधियों के वायुमण्डल के साथ परस्पर क्रिया से सम्बन्धित विज्ञान , कृषि मौसम विज्ञान कहलाती है।

### जलवायु (Climate):-

Climate शब्द की उत्पत्ति ग्रीक भाषा के शब्द **क्लाईमा** (Klima) से हुई। सामान्यतः यह दो शब्दों, जल एवं वायु के समावेश से बना है। जल से तात्पर्य व्रुयमण्डल की आर्द्रता, वर्षा से है और वायु की गति, दिशा, तापक्रम आदि व्यवस्थाओं का वायु से सम्बन्ध है। अतः किसी भी स्थान की जल एवं वायु की सामूहिक स्थिति जलवायु है। **ट्रिवार्था** (Trewartha) के शब्दों में "दिन – प्रतिदिन के मौसम की विविधता का समन्वय अथवा सामान्यीकरण जलवायु कहलाता है।" अन्य शब्दों में दीर्घ अवधि में वृहद क्षेत्र के मौसम की समग्रता को जलवायु कहते है। जलवायु शब्द किसी क्षेत्र के औसत मौसम को इंगित करता है तथा इसमे औसत से सामान्य विचलन और चरम परिस्थितियों का समावेश भी रहता है। इस तरह से हम कह सकते है कि किसी विशेष समयान्तराल (कई दशक) के दौरान किसी क्षेत्र विशेष की सांख्यकीय मौसम सूचनाओं के कुल योग को जलवायु कहते है।

उपरोक्त से स्पष्ट होता है कि जलवायु विज्ञान में वायुमण्डलीय दशाओं के प्रादेशिक वितरण का विश्लेषण किया जाता है। जलवायु का निर्माण कुछ दिनों या कुछ वर्षो का योग नहीं बल्कि जिनेवा (स्विट्जरलैण्ड) स्थित विश्व मौसम विज्ञान

संगठन (World Meteorology Organization) ने जलवायु के लिए 31 वर्षो की अवधि के मौसम के औसत को उपयुक्त समझा है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि जलवायु अनेक वर्षों के औसत मौसम को प्रकट करती है जिस प्रकार किसी वर्ष विशेष में बीकानेर या जैसलमेर में अधिक वर्षा होने पर वहाँ की जलवायु तो शुष्क ही कहलायेगी परन्तु अवधि विशेष के मौसम को जरूर आर्द्र कह सकते है।

**कृषि जलवायु विज्ञान (Agroclimatology):-**

वह विज्ञान जिसमें कृषि से प्रत्यक्ष प्रासंगिकता रखने वाले जलवायु विज्ञान के पहलुओं का अध्ययन किया जाता है, कृषि जलवायु विज्ञान कहलाती है। इसमें मृदा, वायुमण्डल व पादप वृद्धि के पारस्परिक सम्बन्ध का अध्ययन किया जाता है। इसमे जलवायुवीय व्यवस्थाओं का कृषि उत्पादन के साथ सम्बन्ध का परीक्षण किया जाता है।

अतः स्पष्ट है कि मौसम नियत स्थान पर निश्चित समय में वायुमण्डल की दशा एवं उसकी विशेषताओं को प्रदर्शित करता है जबकि जलवायु वृहत्तर क्षेत्र के लिए दीर्घ अवधि के मौसम की दशाओं की सम्पूर्णताओं को दर्शाती है। जलव्रायु में किसी स्थान विशेष के औसत मौसम के साथ–साथ मौसम तत्वों की परिवर्तनशीलता भी सम्मिलित है।

**मौसम एवं जलवायु के तत्व एवं फसलों पर प्रभाव :**

जैसा कि हम जानते है मौसम, किसी दिए हुए स्थान पर किसी समय विशेष के लिए वायुमण्डल की स्थिति को दर्शाता है। किसी निश्चित स्थान और समय पर जलवायु और मौसम में होने वाले परिवर्तनों को जानने के लिए वायुमण्डल की उन दशाओं का प्रेक्षण एवं मापन जरूरी है जिनके कारण ये परिवर्तन होते है। वायुमण्डल की वे दशाएँ और भौतिक विशेषतायें जिन्हे मौसम में होने वाले परिवर्तनों को जानने के लिए मापन हेतु काम में लिया जाता है, उन्हें मौसम एवं जलवायु के तत्व कहते है। ये निम्न प्रकार से है :–

(1) सौर विकिरण (Solar Radiation)
(2) तापमान (Temperature)
(3) वायुमण्डलीय आर्द्रता (Atmospheric Humidity)
(4) वायुमण्डलीय दाब (Atmospheric Pressure)
(5) वायु (Winds)
(6) वर्षण (Precipitation)
(7) बादल (Clouds)

मौसम एवं जलवायु में अन्तर होते हुए भी दोनो का निर्माण इन्हीं तत्वों द्वारा होता है। यें तत्व प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पौधों की वृद्धि को प्रभावित करते है।

**1. सौर विकिरण (Solar Radiation)**

पृथ्वी द्वारा प्राप्त होने वाली लगभग सम्पूर्ण ऊर्जा, सूर्य द्वारा प्रदान की जाती है। वायुमण्डल में होने वाली समस्त भौतिक क्रियाए भी सौर विकिरण द्वारा प्राप्त ऊर्जा से संचालित होती है। विकिरण की क्रिया द्वारा सूर्य से पृथ्वी पर जो ऊर्जा प्राप्त होती है उसे 'आतपन' या सूर्याताप (Insolation) कहते है। प्रकाश संश्लेषण, वाष्पन, मृदा एवं वायु का गर्म होना आदि प्रक्रियाएँ भी इस ऊर्जा द्वारा उत्पन्न होती है।

**(अ) प्रकाश की गुणवता (Quality of Light) :-**

प्रकाश में उपस्थित पराबैंगनी किरणें, जो पृथ्वी तक पहुँचती है, पौधों द्वारा सहन कर ली जाती है तथा इनके प्रभाव से पादप कोशिकाएँ छोटी रह जाती है इनकी वृद्धि रूक जाती है। ये किरणे बीज अंकुरण एवं इनके प्रभावी विकास को भी प्रभावित कर सकती है। अनाज वाले पौधों में फुटान (Tillers) के निर्माण, पत्तियों के आकार, जड़ विकास भी प्रकाश से प्रभावित होते है। प्रकाश की लाल रंग की किरणें प्रकाश संश्लेषण एवं अंकुरण क्रिया को सर्वाधिक प्रोन्नत करती है तथा दीर्घकरण को रोकती है। हरी, नीली विकिरण भी बीज अंकुरण क्रिया में अवरोध उत्पन्न करती है।

**(ब) प्रकाश की तीव्रता (Intensity of Light):-**

इससे अभिप्राय प्रकाश की मात्रा या चमक से है, जो प्रकाश संश्लेषण के माध्यम से पादप वृद्धि को प्रभावित करती है। अधिकतम प्रकाश तीव्रता जहाँ पर पौधे की श्वसन दर एवं प्रकाश

**तालिका– मौसम और जलवायु में अन्तर को स्पष्ट किया जा सकता है :–**

| मौसम (Weather) | जलवायु (Climate) |
|---|---|
| 1. यह किसी स्थान विशेष पर वायुमण्डल की दैनिक अवस्था से सम्बन्धित है। | 1. यह वृहद क्षेत्र की दीर्घ अवधि के मौसम की औसत स्थिति से सम्बन्धित है। |
| 2. यह हमेशा परिवर्तनशील है जो वायुमण्डलीय परिस्थिति के साथ बदलता रहता है। | 2. यह लगभग स्थायी है और क्षेत्र के साथ बदलता है। |
| 3. यह जलवायु की इकाई है। | 3. यह विभिन्न प्रकार के मौसमों का सम्मिलित रूप है। |
| 4. एक दिन में कई प्रकार का मौसम हो सकता है। | 4. जलवायु एक ही प्रकार की बनी रहती है। दीर्घ अवधि के साथ परिवर्तन आ सकता है। |
| 5. यह जलवायु का विभेदीकरण है। | 5. यह मौसम का एकीकरण है। |

संश्लेषण दर समान रहती है, प्रकाश क्षतिपूर्ति बिन्दु कहलाती है। अधिक तापमान पर यह बिन्दु भी अधिक होता है।

**(स) प्रकाश की अवधि (Duration of Light):-** फसल विकास की प्रक्रियाएँ जैसे पर्ण उत्पादन दर, पुष्पन, फलन आदि दिन की लम्बाई या प्रकाश अवधि से भी प्रभावित होती है। दिन में प्रकाश की अवधि (Photoperiodism) तथा रात में अंधकार की अवधि कई फसलों/पौधों में पुष्पन के समय को प्रभावित करती है। पौधों की दिन के प्रकाश की अवधि के प्रति इस अनुक्रिया को प्रदीप्तिकालिता (Photoperiodism) कहते है। इस आधार पर पौधों को चार वर्गों में विभक्त करते है।

**(i) लघु दिवस या अल्प प्रकाशापेक्षी पौधे (Short day plant):-**

पौधों में पुष्पन के लिए दिन के प्रकाश एवं रात्रि के अंधकार की एक विशेष लम्बाई आवश्यक होती है जिसे क्रांतिक दिवस अवधि (Critical day length) कहते है। लघु दिवस पौधे वे पौधे होते है जिनसे पुष्पन की प्रक्रिया शुरू होने के लिए दिन की अवधि तुलनात्मक रुप से कम (<10 घण्टे) की आवश्यकता होती है, अधिक प्रकाश की अवधि मिलने पर पौधों में कायिक वृद्धि (Vegetative growth) अधिक होने लगती है और पुष्पन का समय स्थगित हो जाता है। अधिकांश उष्ण कटिबन्धीय पौधे (Tropical plants) जैसे – धान, ज्वार, मक्का, बाजरा, सोयाबीन, मूंग आदि लघु दिवस पौधे कहलाते है।

**(ii) दीर्घ दिवस या दीर्घ प्रकाशापेक्षी पौधे (Long day plant):-**

इन पौधों को पुष्पन की प्रक्रिया प्रारम्भ होने के लिए तुलनात्मक रूप से दीर्घ अवधि (>14 घण्टे) की आवश्यकता होती है। इन पौधों को भी जब कम प्रकाश अवधि वाले दिन मिलते है तो पुष्पन को स्थगित करके कायिक वृद्धि अधिक कर लेते है। मुख्यतः शीतकटिबन्धीय पौधे (Temperate plants) जैसे – गेहूँ, जौ, जई, आलू, चुकन्दर आदि इस वर्ग में आते है।

**(iii) मध्यवर्ती प्रदीप्ति कालिक पौधे (Intermediate day plants):-**

इस श्रेणी के पौधों में पुष्पन की प्रक्रिया एक निश्चित प्रकाश की अवधि (12–14 घण्टे) प्राप्त होने पर ही होता है। इससे कम होने पर नहीं होता है। जैसे – गन्ने में 12 से कम या 14 ये अधिक घण्टे की प्रकाश अवधि प्राप्त होने पर पुष्पन की प्रक्रिया (Arrowing) प्रारम्भ नहीं होती है। इसी कारण से गन्ने में किस्म विकास के कार्य करने लिए गन्ना प्रजनन संस्थान (Sugarcane Breeding Institute) की स्थापना कोयम्बटूर (तमिलनाडु) में की गई जहाँ प्रकाश की अवधि 12 – 14 घण्टे के मध्य रहती है।

**(iv) दिवस निष्प्रभावी पौधे (Day Neutral Plant):-**

कुछ पौधों में पुष्पन की प्रक्रिया दिन के प्रकाश की अवधि से प्रभावित नहीं होती है अर्थात् पुष्पन पर प्रकाश की अवधि का प्रभाव नहीं पड़ता है, वे दिवस निष्प्रभावी पौधे कहलाते है। कपास, सूरजमुखी, Buckwheat, टमाटर, मटर, धान की कई किस्में आदि इस श्रेणी में आने वाले पौधे है।

**2. वायुमण्डलीय तापमान (Atmospheric Temperature)**

किसी पदार्थ की गर्मी और शीतलता जो इसकी आणविक गतिविधि के विस्तार द्वारा निर्धारित होती है और एक तापमापी द्वारा मापी जाती है, तापमान कहलाती है। वायुमण्डलीय तापमान का मुख्य स्रोत सूर्य विकिरण है। वायुमण्डल की बाहरी सीमा तक आने वाले सौर विकिरण लगभग समान होते है परन्तु पृथ्वी की सतह तक पहुँचने वाले विकिरण अत्यधिक परिवर्तनशील होते है और वायुमण्डल में बादलों की मात्रा पर निर्भर करते है।

इस प्रकार वायु गर्म होकर हल्की होने के कारण ऊपर उठती है, आस–पास एवं ऊँचाई की वुाय को गर्म करना शुरु करती है और वायुमण्डल का तापमान बढ़ने लगता है। इसी कारण से अधिकांशतः दिन का अधिकतम तापमान लगभग 2:00 बजे होता है जबकि सौर विकिरण दोपहर 12:00 बजे के आस–पास अधिकतम होती है। दिन में न्यूनतम तापमान सूर्य उदय के ठीक पहले होता है।

**विभिन्न फसलों के लिए प्रधान वृद्धि तापमान**

| क्र.स. | प्रधान वृद्धि तापमान | तापमान (°C) | |
|---|---|---|---|
| | | शीतकालीन फसलें | ग्रीष्मकालीन फसलें |
| 1 | न्यूनतम तापमान (Minimum Temperature) जिसके नीचे पौधों की जैविक क्रियाओं के लिए मिलने वाली आवश्यक ऊष्मा कम रहती है और उनकी वृद्धि रूक जाती है। | 0–5 | 15–18 |
| 2 | इष्टतम तापमान (Optimum Temperature) जैविक क्रियाओं की गति अधिकतम होती है। | 25–30 | 30–38 |
| 3 | अधिकतम तापमान (Maximum Temperature) जिसके ऊपर पौधों की वृद्धि रूक जाती है। | 30–38 | 45–50 |

## तापमान का कृषि पर प्रभाव

कृषि का प्रत्येक कार्य तापक्रम से प्रभावित होता है। कृषि में बीज अंकुरण से लेकर फसल कटाई, गहाई, औसाई एवं भण्डारण तक उचित तापक्रम की आवश्यकता होती है। प्रत्येक फसल/पौधे की वृद्धि एवं विकास के लिए एक निश्चित तापमान परास (Temperature range) होती है। न्यूनतम से कम और अधिकतम से अधिक तापमान होते ही फसलों की वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। न्यनतम और अधिकतम तापमान के मध्य तापमान जिस पर पौधों की वृद्धि अधिकतम होती है, इष्टतम तापमान (optimum temperature) कहते है। इन न्यूनतम, इष्टतम व अधिकतम तापमान बिन्दुओं को प्रधान/आधारभूत वृद्धि बिन्दू (cardinal growth point) कहते है।

वायुमण्डलीय तापमान निम्न प्रकार से पौधों की वृद्धि को प्रभावित करता है :–

1. **जैविक क्रियाएँ** : सामान्यतः एक निश्चित सीमा तक तापमान बढ़ने के साथ जैविक क्रियाओं की गति भी बढ़ती है और इन परास में तापमान में प्रति 10°C की बढ़ोत्तरी के साथ जैविक क्रियाओं की गति दोगुनी या अधिक हो जाती है, इसे तापमान गुणांक (Temperature Quotient/ Q10) कहते है। एक सीमा बाद (तापमान बढ़ने के साथ वृद्धि क्रियाओं की) गति कम होने लगती है।

2- **$CO_2$ उद्ग्रहण (Uptake of $CO_2$)** : एक निश्चित सीमा तक तापमान के साथ $CO_2$ उद्ग्रहण बढ़ता है तत्पश्चात् तापमान बढ़ने पर यह कम होने लगता है। पौधों द्वारा अधिक तापमान पर पर्ण रन्ध्रों और पर्ण मध्यक (Mesophyll) के प्रतिरोध के कारण $CO_2$ उद्ग्रहण कम होने लगता है।

3. **किण्वक क्रियाएँ (Enzyme activities)** : कार्बन यौगिकों के अपघटन में महत्वपूर्ण किण्वकों (enzymes) की सक्रियता तापमान बढ़ने के साथ बढ़ती है।

4. **प्रकाश संश्लेषण की दर (Rate of Photosynthesis) :-** एक निश्चित सीमा तक तापमान बढ़ने के साथ – साथ प्रकाश संश्लेषण की दर में वद्धि होती है। 30°C से अधिक तापमान पर अपर्याप्त $CO_2$ के कारण प्रकाश संश्लेषण की दर कम होने लगती है। जबकि अधिकतम तापमान के साथ पौधों द्वारा श्वसन की दर बढ़ती रहती है, इस प्रकार शुद्ध प्रकाश संश्लेषण (Net Photosynthesis) प्रभावित होती है और फसल का उत्पादन कम होता है।

5. **प्रकाश संश्लेषण संरचना का विकास :-** पर्णहरित (Chlorophyll) बनने एवं पर्ण क्षेत्र (Leaf area) के विकास में तापमान का महत्वपूर्ण योगदान है। उचित तापमान क्लोरोप्लास्ट के निर्माण को बढ़ाता है। कम तापमान में पर्णहरित के विघटन के कारण पत्तियां पीली पड़ जाती है।

6. **वृद्धि तत्वों (Growth Substances) पर प्रभाव :-** इष्टतम तापमान पर आक्सीन, जिब्बरेलिन्स, सायटोकायनिन की सक्रियता अधिक तथा एब्सिसिक अम्ल (Abscisic Acid) की सक्रियता कम रहती है परिणामस्वरूप पौधो की वृद्धि दर बढ़ती है। इष्टतम से अधिक और कम तापमान पर वृद्धि तत्वों का संतुलन बदलता है जो वृद्धि को प्रभावित करता है। जिब्बरेलिक अम्ल के प्रयोग से अधिक तापमान के बाधाकारी प्रभाव दूर होकर वृद्धि दर बढ़ती है।

7. **विकास पर प्रभाव :-** पौधों की विकास दर जैसे अंकुरण (germination),पर्ण शुरूआत (Leaf Initiation), फुटान (tillering), पुष्पन (Flowering), बाल निकलना (Ear Emergence) और दाना भरने (Grain Filling), पर तापमान का वृहत्तर प्रभाव रहता है। कम तापमान पर अंकुरण में इष्टतम तापमान की तुलना में अधिक समय लगता है। खरीफ फसलों में अंकुरण हेतु 28° C से 35°C तापमान अनुकूल रहता है। बहुत अधिक या बहुत कम तापमान पर कुछ पौधों में अंकुरण नहीं होता हैं। गेहूँ में कल्ले फूटने की अवस्था पर 16°C-20°C तापमान उपयुक्त रहता है। इससे अधिक तापमान फुटान की प्रक्रिया पर विपरीत प्रभाव डालता है।

8. **कीट एवं रोगो का प्रकोप :-** पौधों की सस्य वृद्धिकाल में अनुकूल तापमान रहने व तेज धूप के प्रभाव से फसलों पर रोग एवं कीटों का आक्रमण न्यूनतम रहता है।

### 3. वायुमण्डलीय आर्द्रता :–

सामान्यतः वायुमण्डल में उपस्थित जल वाष्प को वायुमण्डलीय आर्द्रता कहते हैं। वायुमण्डल में इसका मुख्य स्रोत मृदा सतहों और जल निकायों (महासागर, नदियों, झीलों आदि) से वाष्पन (Evoporation) द्वारा तथा वनस्पतियों से स्वेदन (Transpiration) द्वारा प्राप्त नमी होता है।

वायुमण्डल में उपस्थित आर्द्रता को निम्न प्रकार से प्रदर्शित किया जा सकता है :–

(i) निरपेक्ष आर्द्रता (Absolute Humidity)

वायुमण्डल के निश्चित आयतन में उपस्थित आर्द्रता की मात्रा को निरपेक्ष आर्द्रता कहते है। इसे ग्राम/घन सेमी., ग्राम/घन मी. या ग्राम/घन फीट में दर्शाया जाता है। इसके द्वारा वायु की वास्तविक आर्द्रता प्रदर्शित की जाती है। यह तापमान के साथ परिवर्तित होती है।

(ii) सापेक्ष/आपेक्षिक आर्द्रता (Relative Humidity, RH)

वायुमण्डल की आर्द्रता को दर्शाने की यह एक सामान्य और प्रचलित प्रायोगिक विधि है। किसी निश्चित तापमान पर वायु

में उपस्थित आर्द्रता (निरपेक्ष आर्द्रता) तथा उसी ताप पर वायु की आर्द्रता ग्रहण करने की क्षमता के साथ अनुपात को आपेक्षिक आर्द्रता कहते है। इसकी इकाई प्रतिशत है और इसे निम्नानुसार दर्शाया जाता है।

$$\text{आपेक्षिक आर्द्रता } (\%) = \frac{\text{वायु में उपस्थित जलवाष्प की मात्रा}}{\text{वायु की आर्द्रता ग्रहण करने की क्षमता}} \times 100$$

**अर्थात**

$$\text{आपेक्षिक आर्द्रता } (\%) = \frac{\text{वास्तविक वाष्प दाब}}{\text{संतृप्त दाब}} \times 100$$

सापेक्ष आर्द्रता का मौसम विज्ञान में महत्वपूर्ण स्थान है। मौसम भविष्यवाणी में काम आने वाला मौसम का यह एक महत्वपूर्ण मापदण्ड है। इसकी मात्रा के निर्धारण से वर्षा की संभावना व्यक्त की जा सकती है। किसी निश्चित तापक्रम पर वायु की आर्द्रता क्षमता का निरपेक्ष आर्द्रता के साथ विपरीत सम्बन्ध होता है। सामान्य से बहुत अधिक या बहुत कम सापेक्ष आर्द्रता मानव जीवन के लिए हानिकारक होती है।

**आपेक्षिक आर्द्रता का फसलों पर प्रभाव :–**

आपेक्षिक आर्द्रता प्रत्यक्ष रूप से पौधें के जल सम्बन्धों को और अप्रत्यक्ष तौर पर पर्ण वृद्धि प्रकाश संश्लेषण, परागण (Pollination) पोषक तत्वों के उद्ग्रहण (Uptake) व स्थानान्तरण (Translocation), कीट व रोगों के प्रकोप और अंतिम रूप से आर्थिक उपज को प्रभावित करती है।

**(i)** **जल सम्बन्ध (Water Relations) :–** आपेक्षिक आर्द्रता पौधों की वाष्पोत्सर्जन (Evapotranspiration) क्रिया को प्रभावित करती है। शुष्क क्षेत्रों में आपेक्षिक आर्द्रता की कमी के कारण पौधों से वाष्पोत्सर्जन अधिक होता है।

**(ii)** **पर्ण वृद्धि (Leaf growth):–** अधिक आपेक्षिक आर्द्रता के कारण कोशिकाओं का स्फीत दाब (Turgor pressure) अधिक रहता है, कोशिकाओं का आकार बढ़ता है और वाष्पोत्सर्जन द्वारा जल का ह्रास कम होता है। अतः आर्द्र (Humid) क्षेत्रों में शुष्क (Arid) क्षेत्रों की तुलना में पौधे की पत्तियों का आकार अधिक रहता है।

**(iii)** **प्रकाश संश्लेषण (Photosynthesis) :–** जब शुष्क क्षेत्रों में आपेक्षिक आर्द्रता कम होती है वाष्पोत्सर्जन की क्रिया द्वारा जल का ह्रास अधिक होता है और पौधों में जल की कमी हो जाती है।

**(iv)** **परागण (Pollination) :–** यदि मृदा नमी पर्याप्त हो तो औसत रूप से कम आपेक्षिक आर्द्रता परागण को बढ़ाकर बीज जमाव (Seed Setting) को बढ़ाती है। उदाहरणार्थ 80% की तुलना में 60% आपेक्षिक आर्द्रता पर गेहूँ में बीज जमाव अधिक होता है। जब वायुमण्डल में आपेक्षिक आर्द्रता अधिक होती है तो पराग कोष से पराग कण कम बिखरते (shattering of pollens) है।

**(v)** **पोषक तत्वो का उद्ग्रहण एवं स्थानान्तरण (Uptake & translocation of nutrients) :–** अधिक वायुमण्डलीय आपेक्षिक आर्द्रता वाष्पोत्सर्जन की क्रिया को कम करती है, जो पोषक तत्वों के उद्ग्रहण (Uptake) को प्रभावित करती है।

**(vi)** **कीट एवं रोगों का प्रकोप (Pest & disease incidence) :–** अधिक आपेक्षिक आर्द्रता इनके प्रकोप को बढ़ाती है। अधिक आपेक्षिक आर्द्रता के कारण पौधों का रसीलापन (Succulency) बढ़ता है साथ ही कवक के बीजाणुओ का अंकुरण भी बढ़ता है। उदाहरणार्थ आलू एवं चाय का झुलसा रोग (blight), मोयला (Aphid) व हरा तेला (Jassid) का पर्याक्रमण (Infestation) अधिक आर्द्रता की परिस्थितियों में बढ़ता है।

**(vii)** **उपज :–** बहुत अधिक या बहुत कम आपेक्षिक आर्द्रता पौधों की वृद्धि के लिए अनुकूल नहीं होती है। उपज के साथ आर्द्रता का ऋणात्मक सहसम्बन्ध होता है अधिक आर्द्रता से परागण कम होता है और कीट एवं रोगों के प्रकोप को बढ़ाता है।

**जल वाष्प का संघनन (Condensation of water vapour )**

वायुमण्डल में उपस्थित जल वाष्प (गैसीय अवस्था) का जल (तरल अवस्था) में परिवर्तन होना संघनन(condensation) कहलाता है। यह जल के अवस्था परिवर्तन की एक प्रक्रिया है जो वाष्पीकरण (Evaporation) प्रक्रिया के विपरीत होती है। संघनन की प्रक्रिया वायुमण्डल में निहित सापेक्ष आर्द्रता पर निर्भर करती है। जब वायु में सापेक्ष आर्द्रता 100% होती है उस वायु को संतृप्त वायु (Saturated air) कहते है।

**(अ) ओस (Dew) :–** ''धरातल के निकटवर्ती वायुमण्डल में उपस्थित जलवाष्प के प्रत्यक्ष संघनन द्वारा मुख्यतः रात्रिकाल के विकिरण द्वारा शीतल हुए धरातल पर संचित जल की बूंदों को ओस कहते है।'' ओस से पौधों एवं भूमि को नमी मिलती है। अक्टूबर माह में इस नमी द्वारा दिन में खेत में जुताई करके प्रातः सूर्योदय से पूर्व पाटा लगा देते है जिससे नमी संरक्षित होती है। अधिक ओस वाले क्षेत्रों में रबी में सरसों एंव चने की बारानी फसल सफलतापूर्वक ली जाती है।

**(ब) कोहरा (Fog) :–** धरातल के समीपवर्ती भागों में जलवाष्प युक्त वायु का तापमान जब ओसांक (Dew point) पर पहुँच जाता है तो वायु और अधिक शीतल हो जाती है जिससे जलवाष्प

वायुमण्डल में उपस्थित धूल कणों (Dust particles) के चारों ओर छोटे–छोटे जल कणों के रूप में एकत्र हो जाती है। ये जल कण हल्के होने के कारण वायु में ही निलम्बन की अवस्था में रहते है तथा उनका समूह धुएं के बादल के रूप में दिखलाई पड़ता है, संघनन के इस स्वरूप को कोहरा कहते है। प्राकृतिक वनस्पति और बारानी फसलों के लिए कोहरा नमी के स्रोत के रूप में लाभदायक भी हो सकता है, परंतु लम्बें समय तक इसकी उपस्थिति चाय एवं कॉफी की फसलों को छोड़कर हानिकारक होती है। कोहरे के कारण फसलों को सूर्य का पर्याप्त प्रकाश नहीं मिल पाता है। प्रकाश संश्लेषण की क्रिया न होने पर पौधें भोजन नहीं बना पाते है और पीले पड़ जाते है।

**(स) धुन्ध या कुहासा (Mist) :–** यह कोहरे से कम घना होता है। अन्तर्राष्ट्रीय मौसम वैज्ञानिक परिभाषा के अनुसार जब जलकणों युक्त वायुमण्डल (कोहरे) की दृश्यता एक किलोमीटर से अधिक होती है तो उसे कुहासा, धुन्ध (Mist) या गीला धुन्ध (Damp haze) कहते है। यह उगते सूर्य के साथ ही लुप्त हो जाता है।

**(द) धूम कोहरा (Smog) :–** यह धुएं एवं कोहरें (Smoke + Fog) का मिश्रण है, जो अधिकांशतः शहरी और औद्योगिक क्षेत्रों के नजदीक दिखाई पड़ता है। वास्तव में यह एक वायु प्रदूषण का प्रकार है जो दृश्यता को कम करता है।

**(य) पाला या तुषार (Frost) :–** कभी – कभी धरातल पर स्थित घास पौधों की पत्तियों का तापमान 0 °C से कम हो जाता है, ऐसी परिस्थिति में जलवाष्प संघनन क्रिया के स्थान पर उर्ध्वापातन (Sublimation) क्रिया द्वारा, ओस के रूप में न बदलकर बर्फ के छोटे – छोटे कणों (हिमकणों) में परिवर्तित हो जाती है इसे ही पाला या तुषार कहते है।

शीतकाल में जिस दिन दोपहर से पहले ठण्डी हवा चलती रहे और सायंकाल के बाद हवा चलना बंद हो जाये, आसमान साफ हो, शांत एवं दीर्घ अवधि की रात्रि तथा जब तापमान जमाव बिन्दु (Freezing point) से नीचे हो, ऐसी परिस्थितियों में पाला पड़ने की संभावना अधिक रहती है।

वनस्पतियों के लिए पाला हमेशा हानिकारक होता है। पाले के कारण कोशिकाओं के मध्य का तरल जम जाता है तथा कोशिकाएँ निर्जलीकृत हो जाती है। कोशिकाओं का जीवद्रव्य जमाव बिन्दु के कारण जम जाता है। बर्फ का आयतन पानी की अपेक्षा अधिक होने के कारण कोशिका भित्ती फट जाती है, कोशिकाएँ मृत हो जाती है और संवेदनशील फसले एक रात में तबाह हो जाती है। उत्तरी एवं उत्तरी पश्चिमी भारत में दिसम्बर से जनवरी अंत तक पाला पड़ने की संभावना अधिक रहती है। रबी की अधिकांश फसले इस समय पुष्पन या फलियाँ बनने की अवस्था में होती है जो पाले से सबसे अधिक प्रभावित होती है। अरण्डी, तम्बाकू, टमाटर, जीरा, कपास, सौंफ आदि फसले तुलनात्मक रूप से पाले से अधिक प्रभावित होती है। जायांग पौधे का पाले के प्रति सर्वाधिक संवेदनशील अंग होता है।

**पाले से बचने के उपाय :–**

(1) **पाला रोधी फसले एवं किस्में :–** पाला पड़ने की संभावना वाले क्षेत्रों में पाला रोधी फसले एवं किस्में अपनाकर जैसे – सरसों, चना एवं टमाटर आदि के स्थान पर गेहूँ जौ, जई आदि फसलो की बुआई कर पाले के प्रकोप को कम किया जा सकता है। इसी प्रकार चने की पूसा 212, तोरिया की भवानी, आलू की कुफरी शीतमान, कुफरी देवा आदि पाला रोधी किस्में अपनाई जा सकती हैं।

(2) **हल्की सिंचाई द्वारा :–** पाला पड़ने की संभावना वाले दिनों में खेतों में हल्की सिंचाई करने से तापक्रम 0.5 से 2°C सेल्सियस तक बढ़ जाता है। खेत में पर्याप्त नमी होने से भी पाले से हानि की सम्भावना कम हो जाती है।

(3) **धुआँ करके :–** खेत में मेड़ों के आस – पास व्यर्थ घास–फूस, कूड़ा–करकट इकट्ठा करके जलाकर धुआँ करने से वातावरण में गर्मी आ जाती है। अच्छा धुआँ करने के लिए अन्य वस्तुओं के साथ वाहनों के जले हुए तेल (Crude Oil) का प्रयोग करके पाले के प्रतिकूल प्रभाव से फसलों को बचा सकते है।

(4) **गन्धक के अम्ल का छिड़काव :–** पाला पड़ने की संभावना वाली परिस्थितियों में 0.1% (1000 लीटर पानी में 1 लीटर गन्धक का अम्ल) गन्धक के अम्ल का छिड़काव गेहूँ, सरसों, जीरा, मटर आदि फसलों को पाले से बचानें के साथ – साथ पौधों में गन्धक तथा लौह तत्व की उपलब्धता बढ़ाकर इन फसलों में रोग रोधित(Disease Resistance) भी बढ़ाता है।

(5) **छाया करके (Shading) :–** छोटे पौधे विशेषकर नर्सरी के पौधों तथा वर्षा के मौसम में लगाये गये नये व छोटे फलदार पौधों को टाट या पॉलीथीन से ढककर पाले से बचाया जा सकता है।

(6) **बुआई के समय का समायोजन करके :–** आलू, चना, मटर, सरसों आदि फसलों का बुआई के समय इस प्रकार समायोजित करे कि पाला पड़ने की अधिक संभावना वाले समय (मध्य दिसम्बर से जनवरी) तक फसलों में निषेचन होकर फलिया बन जाये। वातावरण/तापमान की अनुकूलता के अनुसार अक्टूबर के प्रारम्भ से बुआई करके इन फसलों को पाले से बचाया जा सकता है।

## 4. मेघ या बादल (Clouds) :–

मेघ या बादल जलवायु का महत्वपूर्ण घटक है क्योंकि वर्षा की मात्रा इन्हीं के द्वारा निर्धारित होती है। प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष

तौर पर आपेक्षिक आर्द्रता, तापमान के उतार–चढ़ाव, सूर्य के प्रकाश की अवधि भी बादलों की उपस्थिति से निर्धारित होती है। जैसा कि पूर्व में वर्णित है, संघनन की प्रक्रिया धरातल के पास और क्षोभमण्डल में होती है। अतः धरातल से विभिन्न ऊँचाइयों पर जलवाष्प के संघनन के परिणामस्वरूप निर्मित जल कणों या हिम कणों के समूह को मेघ कहते है।

**मेघों के मुख्यतः तीन आधारभूत स्वरूप होते है, जो निम्न प्रकार से है :–**

**(i) तीतर पंखी या पक्षाभ मेघ (Cirrus Clouds) :–** वायुमण्डल मे सर्वाधिक ऊँचाई पर पाये जाते है और बर्फ के कणों से निर्मित होने से श्वेत रंग के होते है। आकाश में पक्षियों के पंखों की भांति (Feathery or Fibrous) दिखाई देते है। ये स्वयं वर्षा नहीं करते है परन्तु कुछ निचाई पर आने के बाद दूसरें बादलों में परिवर्तित होकर वर्षा करते है।

**(ii) कपासी या पुंज मेघ (Cumulus Clouds) :–** इन मेघों का विकास लम्बवत् रूप में होता है और आकाश में धुनी हुई रूई के ढेर के समान दिखाई देते है। इनका ऊपरी भाग गुम्बदाकार तथा फूल गोभी जैसा होता है। इनका रंग काला तथा चमकीला होता है। इनसे स्वच्छ मौसम का आभास मिलता है। ये बादल गर्जन अधिक करते है। अगर ये सायं से रात तक बने रहते है तो इनसे वर्षा होने की संभावना भी रहती है।

**(iii) स्तरी मेघ (Stratus Clouds):–** ये मेघ निम्न ऊँचाई वाले मेघ होते है। ये कई परतों वाले होते है। इनका निर्माण विपरीत स्वभाव वाली दो वायु राशियों(Air masses) के टकराव से होता है। ये कोहरे की भांति दिखलाई पड़ते है और सम्पूर्ण आकाश पर छा जाते है। इनसे हल्की वर्षा या फुहारे पड़ने की संभावना रहती है।

**मेघ एवं कोहरे में अन्तर :–**

कोहरें एवं मेघों की निर्माण प्रक्रिया एक होने के कारण भौतिक दृष्टिकोण से इनमें कोई अन्तर नहीं है परन्तु निर्माण स्थल की भिन्नता के कारण इनमें निम्न विभेद पाये जाते है –

**बादल निरन्तर छाये रहे और इनसे वर्षा न हो तो फसलों पर इनका प्रतिकूल प्रभाव भी पड़ता है :–**

(i) यदि जनवरी माह में मावट के बाद बादल छाये रहे तो फसलों में कीट रोगों का प्रकोप बढ़ता है। गेहूँ में गेरूई, (Brown rust) सरसों में सफेद रोली(White rust) रोग का प्रकोप बढ़ जाता है।

(ii) पकाव के समय आकाश लम्बे समय तक मेघाच्छादित रहे तो फसले देर से पकती है, उत्पादन लागत बढ़ जाती है।

(iii) दानों में नमी बनी रहती है, मड़ाई, औसाई व भण्डारण में कठिनाई रहती हैं। भण्डारण में भी कीट एवं कवक संक्रमण की संभावना रहती है।

बुआई के बाद आकाश साफ रहने से अंकुरण शीघ्र होने के साथ – साथ शुरूआती बढ़वार भी अच्छी होती है। दाना बनते समय स्वच्छ आकाश रहने से दाने अच्छे पकते है, स्वच्छ, सुडौल व मोटे आकार के होते है और उपज भी अधिक होती है।

### 5. वर्षण (Precipitation) :–

वायुमण्डल में संघनन की प्रक्रिया के फलस्वरूप निर्मित जल की बूंदे या हिम कण जो अधिक बढ़े होने के कारण वायुमण्डल में निलम्बित नहीं रह पाते है और धरातल पर गिरने लगती है। इस प्रकार वायुमण्डल से जब तरल या ठोस जल धरातल पर गिरता है, इसे वृष्टि या वर्षण कहते है।

**वर्षा के अनुकूल प्रभाव :–**

1. जून के अंतिम सप्ताह अथवा जुलाई के प्रथम सप्ताह में वर्षा हो जाने पर खरीफ की फसलों की बुआई समय पर हो जाती है। फसल की वृद्धि भी अच्छी होती है।

| मेघ | कोहरा |
|---|---|
| (i) निर्माण अधिक ऊँचाई पर होता है। | (i) धरातल के सम्पर्क वाली वायु राशि में निर्माण होता है। |
| (ii) इनसे वर्षा होती है। | (ii) वर्षा नहीं होती है। |
| (iii) जलकणों की मोटाई अधिक होती है। | (iii) जलकणों की मोटाई कम होती है। |
| (iv) मेघों का निर्माण केवल संघनन प्रक्रिया द्वारा ही होता है। | (iv) विपरीत जल राशियों के सम्मिलन से भी कोहरे का निर्माण हो सकता है। |
| (v) मेघ उर्ध्वाधर दृश्यता (Vertical Visibility) को प्रभावित करते है। | (v) कोहरा क्षैतिज दृश्यता (Horizontal Visibility) को प्रभावित करता है |

2. बुआई के समय वर्षा होने के बाद कई दिन तक मौसम साफ रहने से बीजों का अंकुरण तेजी से होता है।
3. जब फसल का वृद्धि काल चल रहा हो 10 – 15 दिन के अंतर पर वर्षा फसलों के लिए अच्छी रहती है। धान की फसल के लिए एक कहावत है –

**साठी हौवे सठवे दिन।**
**जब पानी पावै अठवें दिन।।**

यदि साठी धान को हर आठ दिन में पानी मिलता रहे तो वह साठवें दिन तैयार हो जाता है।
4. सितम्बर माह में अच्छी वर्षा होने से बारानी क्षेत्रों में रबी की फसलों में चने एवं सरसों की बुआई की जा सकती है जो एक मावठ होने पर अच्छी उपज दे सकती है।
5. रबी की फसलों में दिसम्बर जनवरी में महावट या मावट की वर्षा हो जाने से फसल पर पाले का प्रभाव नहीं पड़ता पैदावार भी अधिक प्राप्त होती है।
6. खड़ी फसल में दाने की दूधिया अवस्था में (Milk stage) वर्षा से दाने सुडौल व मोटे बनते है, उपज अधिक मिलती है।

**वर्षा का फसलों पर प्रतिकूल प्रभाव :–**

वर्षा का असमान वितरण, मौसम की यह ऐसी प्रतिकूल दिशा है जो फसलों को सर्वाधिक प्रभावित करती है। कभी अतिवृष्टि, कभी अनावृष्टि व कभी असमय वृष्टि एवं ओला वृष्टि होती है, जिसका फसलों पर प्रतिकूल प्रभाव होता है।

**(अ) अतिवृष्टि का फसलों पर प्रभाव :–**

(i) खेत में अधिक समय पानी रहने से जड़ क्षेत्र में वायु संचरण प्रभावित होकर फसलों की पत्तियां पीली पड़ जाती है, पौधों को आवश्यक पोषक तत्वों की आपूर्ति कम हो कर पौधों की वृद्धि रूक जाती है। विशेष रूप से बाजरा, मक्का, मूंग, उड़द, लोबिया को भारी क्षति होती है।
(ii) खेत में पानी भरा रहने से मृदा ताप घट जाता है, मृदा में उपस्थित लाभप्रद जीवाणु की क्रिया में बाधा पड़ती है।

**बचाव के उपाय :–**

(i) अतिवृष्टि सहनशील फसलों जैसे धान, जूट, गन्ना उगानी चाहिए।
(ii) अतिवृष्टि प्रभावित क्षेत्रों में जल निकास की उचित व्यवस्था करनी चाहिए।
(iii) खेत में से जल निकास करने के बाद हल्की जुताई कर कार्बनिक खाद का प्रयोग करना चाहिए।

**(ब) अनावृष्टि :–** वर्षा का असमान वितरण होने से कुछ क्षेत्र में बिल्कुल भी वर्षा नहीं होती, फसल बोना ही संभव नहीं हो जाता है। यदि फसल बो दी गई है तो वर्षा के अभाव में खड़ी फसल सूख जाती है।

**बचाव के उपाय :–**

(i) कम अवधि वाली शीघ्र पकने वाली, कम वानस्पतिक वृद्धि करने वाली कम जल माँग वाली प्रतिरोधी किस्में बोनी चाहिए।

जैसे – (अ) बाजरा – एच.एच.बी. 67, आर.एच.बी. 177, आई. सी.एम.एच. 356
(ब) ज्वार – सी.एस.एच–1, सी.एस.एच–5
(स) मोठ – आर.एम.ओ 40, आर.एम.ओ 257
(द) तिल – आर टी 46, आर टी 127
(य) ग्वार – आर जी सी 936, आर जी सी 1003 आदि।

(ii) फसल की कटाई के तुरंत बाद जुताई करके पाटा लगा देना चाहिए।
(iii) फसलों की बुआई वर्षा शुरू होते ही कर देनी चाहिए।
(iv) शुष्क कृषि तकनीक अपनाई जानी चाहिए। इस तकनीक में प्रति हैक्टर पौधों की संख्या कम रखी जाती है व इन क्षेत्रों में बीज अंकुरण कम हो पाता है इसलिए बीज की मात्रा 10% बढ़ा देते है।
(v) मृदा में नमी संरक्षण बढ़ाने के लिए कार्बनिक खादों का प्रयोग अधिक करते है। वाष्पीकरण रोकने हेतु पलवार (mulching) की जानी चाहिए।
(vi) वर्षा प्रारम्भ होते ही ओट आने पर जुताई कर देते है।
(vii) मिश्रित फसल बोना लाभकारी रहता है। जैसे – ज्वार+मूंग, बाजरा+मोठ।

**(स) असमय वृष्टि :–** वर्षा की आवश्यकता न होने पर भी वर्षा आ जाये तो इसका फसलों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है:–

(i) बुआई के तुरंत बाद वर्षा आने से बीज अंकुरित नहीं हो पाते।
(ii) फसल बोने के बाद निरंतर वर्षा हाते रहने से खड़ी फसल में निराई–गुड़ाई का समय नहीं मिलता, फसल पीली पड़ जाती है। राजस्थान के बांसवाड़ा क्षेत्र में मक्का के खेतों में अक्सर यह समस्या आती है।
(iii) फसलों के वृद्धि काल में तेज हवाओं के साथ वर्षा होने से मक्का, ज्वार, बाजरा आदि फसलें गिर जाती है।
(iv) फसलों में पुष्पन (फूल आने के समय), बाली निकलते समय वर्षा होने से परागकरण धुल जाते है। जिससे परागण व निषेचन न होने से बीज नहीं बनते पैदावार में भारी कमी आती है।
(v) आकाश में बादल छाये रहने, बूंदा – बांदी रहने से फसलों में कीट व रोग का आक्रमण बढ़ जाता है।

**बचाव के उपाय :–**

1. फसल बुआई के तुरंत बाद वर्षा से बीज अंकुरित नहीं हो पाता । इसके लिए खेत में बनी पपड़ी को अंधी गुड़ाई (Blind hoeing) करके तोड़ देना चाहिए।

2. असमय वर्षा से फसलों को बचाने के लिए खेत में जल निकास की उचित विधि अपनाकर अनावश्यक पानी खेत से शीघ्र बाहर निकाल देते है।

**ओलावृष्टि – (Hail Storm) –** वृष्टि का यह भीषणतम रूप है। इसकी उत्पत्ति वायुमण्डल में जलवाष्प बूंदों का तापक्रम हिमांक (Freezing point) से कम होने पर बर्फ के रूप में जम जाने से होती है। ओले से तात्पर्य ऐसी हिम कन्दुकों (Ice balls) से है, जिनका व्यास 5 से 50 मिलीमीटर होता है। मटर के दाने से लेकर टेनिस बॉल के आकार के ओले गिरते देखे गये है।

**ओले गिरने से प्रतिकूल प्रभाव –**

ओले गिरने से फसलों की बालियाँ, फूल, पौधों की टहनियाँ टूट जाती है। अधिक ओले गिरने से रबी की पूरी फसल नष्ट हो जाती है। फल वृक्षों के फल व फूल गिर जाते है।

**बचाव –** ओले पड़ने का कोई निश्चित समय नहीं होता, तथा अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता कि किस क्षेत्र में ओलावृष्टि होगी इसलिए फसलों को इनसे बचाने का कोई प्रभावी तरीका नहीं ढूँढा जा सका है। कृषि अनुसंधान केन्द्रों पर कार्यरत ग्रामीण कृषि मौसम सेवा से जुड़कर किसान मौसम की भविष्यवाणी के बारे में जानकर कृषि मौसम सलाह के आधार पर बचाव के उपाय कर सकते है।

## 6. वायु (Winds) :–

अधिक दाब क्षेत्र से कम दाब क्षेत्र की ओर क्षैतिज गमन (Horizontal motion) करने वाली हवा (Air), वायु (Wind) कहलाती है। मौसम भविष्यवाणी (Weather forecasting) में वायु की दिशा महत्वपूर्ण मापदण्ड है। वायु का नामकरण उसके बहने की दिशा के आधार पर होता है, जिस दिशा की ओर से वायु बहती है वह वायु उस दिशा के आधार पर ही जानी जाती है, जैसे पश्चिम की तरफ से आने वाली वायु को पश्चिमी वायु कहते है।

**पवनों के अनुकूल प्रभाव :–**

1. मौसम का यह तत्व पौधों के वृद्धि विकास को अत्यधिक प्रभावित करता है। मार्च अप्रैल में गर्म पछुआ हवाएँ फसलों के लिए लाभकारी है। उन्हें पकने में सहायता के साथ – साथ ओसाई में भी लाभदायक रहती है।
2. जुलाई – अगस्त में मानसून की हवाएँ चलने से वर्षा होती है।
3. वायु द्वारा अधिकांश फसलों जैसे – मक्का, बाजरा, सरसों में परागण होता है।
4. वायु जब मंद गति से चलती है तो पौधों को कार्बन डाइ ऑक्साइड की उपलब्धता बढ़ जाती है, प्रकाश संश्लेषण की दर बढ़ती है। जिससे फसलों में वृद्धि शीघ्रता से होती है।
5. फसलों की मड़ाई व ओसाई के समय हवा चलने से आसानी रहती है।

**पवनों के प्रतिकूल प्रभाव :–**

पवन की प्रतिकूल दशा मुख्यतः लू, आँधी, तूफान, शीतलहर है। वायु की गति तेज होने पर आँधी, तूफान, लू आते है। तापमान भिन्नता के कारण दो तरह की हवायें चलती है –

(i) **'लू' –** मई–जून के महीने में गर्म हवायें जो पश्चिम दिशा से चलती है इन्हें 'लू' कहते है।

(ii) **'शीतलहर' –** दिसम्बर–जनवरी में जो ठण्डी हवाएँ उत्तर दिशा से आती हैं इन्हें शीत लहर कहते है। न्यून तापक्रम का प्रभाव कोमल पौधों विशेष रूप से नर्सरी के पौधों, फल, फूल वाले पौधों पर अधिक पड़ता है।

**फसलों पर प्रभाव**

1. आँधी तूफान आने पर गन्ना, ज्वार, बाजरा आदि फसलें गिर जाती है। यदि फसल पकाव के समय ऐसा होता है तो कटाई में कठिनाई आती है।
2. वृक्षों की टहनियाँ टूट जाती है, कई बार तो वृक्ष जड़ सहित उखड़ जाते है।
3. फरवरी–मार्च में तेज हवाएँ चलने से फसलें शीघ्र पकने लगती है। दाने सिकुड़े हुए प्राप्त होते है और प्रति इकाई क्षेत्र उपज कम प्राप्त होती है।
4. तेज हवायें चलने से उच्च तापक्रम के प्रभाव से फसलों की जलमाँग बढ़ जाती है, शीघ्र सिंचाई करनी पड़ती है।
5. फलवृक्षों के फल, फूल झड़ जाते है।

**बचाव के उपाय :–**

1. वायुरोधी वृक्ष लगाकर (Plantation of Wind breaks) – वायुरोधी वृक्ष जैसे – खेजड़ी, बबूल, शीशम, जंगल जलेबी आदि खेत या बाग के चारों ओर लगाने से तेज हवायें, आँधी, तूफान, लू आदि का प्रभाव कम हो जाता है।
2. खेत या बाग के चारों ओर झाड़ीदार बाड़ लगाकर(Hedge Plantation) – खेते के चारों ओर करोंदा, मेंहदी, अरहर की बाड़ लगाने से फसलों पर इनका प्रतिकूल प्रभाव कम किया जा सकता है।
3. स्तम्भन (Propping) – गन्ना, ज्वार, मक्का की फसलों के तनों को उन्हीं की पत्तियों द्वारा बाँध देते है इस क्रिया को स्तम्भन (Propping) कहते है। इससे फसलें गिरने से बच जाती है।
4. कूष्माण्ड कुल (Cucurbitaceae) की लू अवरोधी फसलें टिण्डा, मतीरा, ककड़ी आदि पश्चिमी राजस्थान के लू प्रभावित क्षेत्रों में बोना लाभदायक है।

## 7.वायुमण्डलीय दाब (Atmospheric Pressure) :–

किसी स्थान पर कार्य कर रहे बल को दाब कहते है।

किसी इकाई क्षेत्र पर लम्बवत् रूप से वायु का भार जो एक बिन्दु पर केन्द्रित हो वायुमण्डलीय दाब कहलाता है। पृथ्वी की गुरूत्वाकर्षण शक्ति के कारण वायु पृथ्वी पर दाब उत्पन्न करती है। इसे इंचों या मिमी में पारे की ऊँचाई के रूप में व्यक्त किया जाता है। एक वर्ग इंच वायु के स्तम्भ (वायुमण्डल के शीर्ष तक) का वजन लगभग 15 पोण्ड होता है।

वायुमण्डलीय दाब से चक्रवातों का निर्माण होता है। जब भी किसी जगह का वायुमण्डलीय दाब सामान्य परिस्थितियों से कम होता है तो वहाँ आस–पास उच्च वायुदाब क्षेत्र की वायु पहुँचने का प्रयास करती है और इस कारण से वहाँ चक्रवात बन सकता है। तूफान और चक्रवात के साथ – साथ बारिश आने की संभावना के बारे में बेरोमीटर के पठन से अनुमान लगाया जा सकता है। वायुमण्डलीय दाब फसल वृद्धि को किसी भी प्रकार से प्रत्यक्ष तौर पर प्रभावित नहीं करता है। चूंकि वायु संचार, वायु दिशा, बादलों का संचार आदि वायुमण्डलीय दाब से प्रभावित होते है अतः यह मौसम भविष्यवाणी के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण मापदण्ड है।

## मौसम सम्बन्धी उपकरणों की सामान्य जानकारी

**तापमापी** :– किसी वस्तु की गर्मी एवं शीतलता का माप तापमान है। वायु के तापमान को तापमापी (Thermometer) द्वारा ज्ञात किया जाता है। किसी भी मौसम वेधशाला (Meteorological Observatory) में निम्न चार प्रकार के तापमापी होते है :–

(i) अधिकतम तापमापी (Maximum Thermometer)

(ii) न्यूनतम तापमापी (Minimum Thermometer)

(iii) शुष्क एवं आर्द्र बल्ब तापमापी (Dry & Wet bulb Thermometer)

उपरोक्त तापमापियों में से प्रथम दो वायु का क्रमशः अधिकतम एवं न्यूनतम तापमान ज्ञात करने के लिए एवं शेष दो वायु का ओसांक (Dew Point), आर्द्रता (Humidity), एवं जलवाष्प दाब (Vapour Pressure) ज्ञात करने में प्रयुक्त होते है।

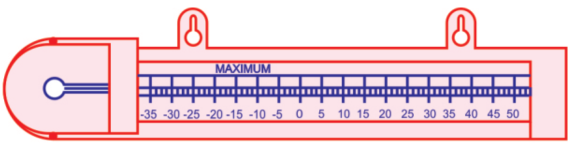

अधिकतम तापमापी

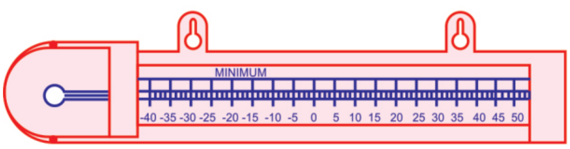

न्यूनतम तापमापी

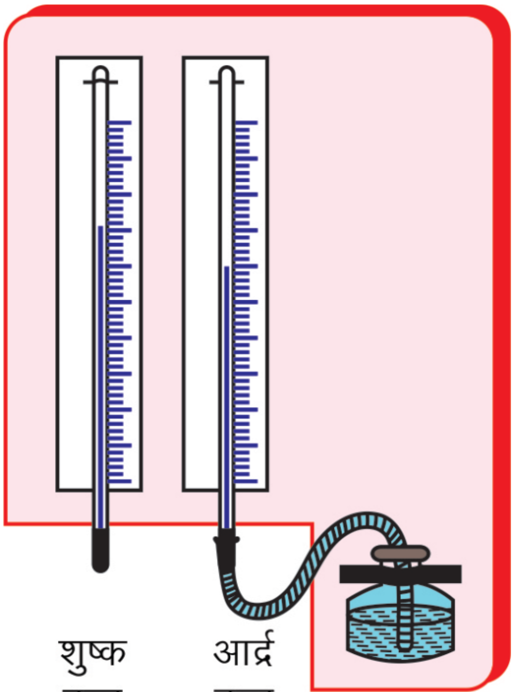


**(i) अधिकतम तापमापी (Maximum Thermometer) :–** काँच की नली में पारा रहता है और वायु का अधिकतम तापमान ज्ञात करने में प्रयुक्त होता है। काँच की पतली नली होती है जिसका एक सिरा बल्ब के रूप में तथा दूसरा सिरा बन्द होता है। नली के निचले सिरे में पारा (Mercury) भरा होता है। बल्ब के पास काँच की नली में एक संकुचन (constriction) होता है, जो पारे को अपने आप गिरने नहीं देता है। तापमापी पर -$35^0$C से +$55^0$C तक सेल्सियस पैमाने पर मात्रक अंकित रहते है। तापमान बढ़ने के अनुसार काँच की नली में पारा ऊपर चढ़ने लगता है। परन्तु तापमान कम होने पर संकुचन के कारण पारा वापस नीचे नहीं आ पाता है। इसी कारण दिन का अधिकतम तापमान इस तापमापी से कभी भी ले सकते है। इसे प्रतिदिन सुबह के समय व्यवस्थित (set) करते है और इस समय इसका पाठ्यांक शुष्क बल्ब तापमापी से $\pm 0.3\ ^0C$ होना चाहिए।

**(ii) न्यूनतम तापमापी (Minimum Thermometer) :–** काँच की नली में एल्कोहॉल रहता है और इसकी सहायता से दिन

का न्यूनतम तापमान ज्ञात किया जाता है। नली के निचले सिरे में बल्ब की तरफ एल्कोहॉल भरा रहता है और उसके अग्र सिरे की तरफ केश नलिका में एक डम्बल के आकार का नीले रंग का संकेतक (Index) लगा रहता है जिसका ऊपर की तरफ का सिरा, जो पृष्ठ तनाव के कारण रूका रहता है, न्यूनतम तापमान प्रदर्शित करता है। तापमान कम होने पर एल्कोहॉल का आयतन घटता है। एल्कोहॉल की इस सिकुड़न की साथ संकेतक भी तापमापी के बल्ब की तरफ नीचे आता है। तापमान बढ़ने पर एल्कोहॉल का आयतन बढ़ता है परन्तु संकेतक एल्कोहॉल के साथ ऊपर की तरफ नहीं बढ़ता है। अतः संकेतक के ऊपरी सिरे से कभी भी न्यूनतम तापमान ज्ञात किया जा सकता है। इसे प्रतिदिन दोपहर के समय व्यवस्थित किया जाता है और इस समय इसका तापमान शुष्क बल्ब तापमापी $\pm 0.6\ ^0C$ तक होना चाहिए। इस तापमापी पर $-40\ ^0C$ से $+50\ ^0C$ तक सेल्सियस पैमाने में मात्रक अंकित होते है।

**(iii) शुष्क एवं आर्द्र बल्ब तापमापी (Dry & Wet Bulb Thermometer) :–** यह भी अधिकतम तापमापी की तरह पारे वाला तापमापी होता है जो कि वायु के तापमान को ज्ञात करने में प्रयुक्त होता है। चूंकि इसमें अधिकतम तापमापी की तरह बल्ब के पास संकुचन (Constriction) नही होता है, अतः काँच की नली में स्थित पारा वायुमण्डल के तापमान के उतार – चढ़ाव के साथ ऊपर नीचे होता रहता है।

आर्द्र बल्ब तापमापी शुष्क बल्ब तापमापी के समान होता है। चूंकि यह संतृप्त वायु का तापमान प्रदर्शित करता है अतः इसके बल्ब को मलमल के कपड़े से ढके हुए रखते है जो एक सूती धागे से बँधा रहता है और यह धागा एक आसुत जल से भरे डिब्बे में डूबे रहकर केशिकत्व के सिद्धान्त पर पानी सोखकर तापमापी के बल्ब के पास की वायु को संतृप्त रखता है। इस प्रकार इस तापमापी से दिन में कभी भी संतृप्त वायु का तापमान ज्ञात किया जा सकता है। जब वायु में शुष्कता बढ़ती है तो दोनों तापमापियों के पाठ्यांक में अन्तर बढ़ता है और शुष्कता कम होने पर अन्तर भी कम हो जाता है। वायु की पूर्ण संतृप्तता (Saturation) की अवस्था में दोनों का पाठ्यांक (Reading) समान रहता है। इन दोनो तापमापियों की सहायता से शुष्क एवं संतृप्त वायु का तापमान ज्ञात करके रेग्नाल्ट सारणी (Regnault's Table) द्वारा वायु की आर्द्रता, वाष्प दबाव और ओसांक ज्ञात किया जाता है।

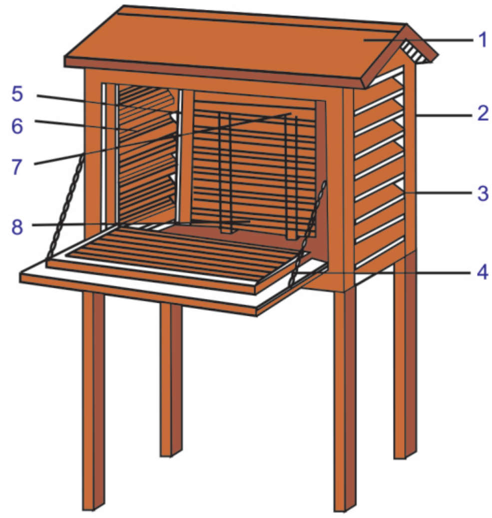


1. छत
2. लकड़ी का बक्सा
3. लकड़ी के फट्टे
4. दरवाजा
5. अधिकतम तापमापी का स्थान
6. शुष्क बल्ब तापमापी का स्थान
7. आर्द्र बल्ब तापमापी का स्थान
8. न्यूनतम तापमापी का स्थान

**स्टीवेन्सन स्क्रीन :–** ये चारों तपापमापी मौसम वेधशाला में लकड़ी के एक विशेष प्रकार के बक्से में रखे जाते है, जिसे स्टीवेन्सन स्क्रीन कहते है। यह बक्सा पृथ्वी की सतह से 1.22 मीटर की ऊँचाई पर चार लोहे या लकड़ी के स्तम्भों पर स्थापित किया जाता है और इसको सफेद रंग से रंगा जाता है ताकि धूप, विकिरण से इसके अन्दर रखे तापमापियों को बचाया जा सके। इसको इस प्रकार स्थापित किया जाता है कि इसका दरवाजा उत्तर दिशा में नीचे की तरफ लटकते हुए खुलता है जिससे सूर्य की रोशनी कम से कम प्रवेश करे। इस प्रकार इस बक्से में रखकर तापमापियों को धरातल एवं अन्य वस्तुओं के सीधे सम्पर्क से दूर रखकर गर्म होने से बचाते है, साथ ही वर्षा से भी सुरक्षित रखते है।

चित्र में बताये अनुसार अधिकतम एवं न्यूनतम तापमापी स्टीवेन्सन स्क्रीन में क्षैतिज/अनुप्रस्थ (Horizontal) अवस्था में क्रमशः ऊपर एवं नीचे की तरफ रखते है। शुष्क बल्ब तापमापी एवं आर्द्र बल्ब तापमापियों को इनके साथ उर्ध्वाधर (Vertical) अवस्था में क्रमशः बायीं एवं दायीं तरफ स्थापित करते है।

**तापमान सम्बन्धी अन्य महत्वपूर्ण तथ्य –**

**दैनिक औसत तापमान –** दिन का उच्चतम व न्यूनतम तापमान ज्ञात होने पर दिन का औसत तापमान निम्न सूत्र से ज्ञात करते है –

$$\text{औसत तापमान} = \frac{\text{उच्चतम तापमान} + \text{न्यूनतम तापमान}}{2}$$

दैनिक तापान्तर – 24 घण्टे की अवधि में प्राप्त उच्चतम तापक्रम में से न्यूनतम तापक्रम को घटाने पर प्राप्त तापमान को दैनिक तापान्तर कहते है –

दैनिक तापान्तर = उच्चतम तापमान – न्यूनतम तापमान

**मासिक औसत तापमान –** एक माह के दैनिक औसत तापमान को जोड़कर उसमें महीने के दिनों की संख्या का भाग देने पर जो तापमान प्राप्त होता है उसे मासिक औसत तापमान कहते है।

मासिक औसत तापमान = महीने के प्रतिदिन के औसत तापमानों का योग / महीने के दिनों की संख्या

तापमान की मापनियों का रूपान्तरण –

वर्तमान में तापक्रम मापन हेतु प्रमुख दो इकाईयाँ काम में ली जाती है। सेन्टीग्रेड का अविष्कार एण्डर्स सेल्सियस व फॉरेनहाइट इकाई का आविष्कार डेनियल फॉरेनहाइट ने किया।

$$\frac{F-32}{9} = \frac{C}{5}$$

यहां F = डिग्री फॉरेनहाइट, C = डिग्री सेल्सियस

**वर्षामापी (Rain gauge)** :– पृथ्वी की सतह पर एक निश्चित समय में वर्षा द्वारा बरसने वाले पानी की कुल मात्रा को पानी की गहराई के रूप में मिमी. या सेमी. में व्यक्त करते है। जल वृष्टि की मात्रा को मापने के लिए प्रयुक्त होने वाला उपकरण वर्षामापी कहलाता है। यह दो प्रकार के होते है :–

**(i) साधारण वर्षामापी (Ordinary rain gauge)** :– यह धातु का बना एक खोखला सिलिण्डर होता है। इसमें ऊपर की ओर एक संग्राहक या कीप (Funnel) लगी रहती है जिसका व्यास सिलिण्डर के व्यास के बराबर होता है। सिलिण्डर के अन्दर जल गृहीता बोतल (Receiver Bottle) रखी रहती है। वर्षा की बूंदे कीप द्वारा जल गृहीता बोतल में इकट्ठी होती रहती है। इस प्रकार जल को अंशांकित सिलिण्डर (Graduated cylinder) की सहायता से नाप लिया जाता है। 24 घण्टे में हुई वर्षा को मिमी. या सेमी. मे लिखा जाता है। 20 मिमी. वर्षा का मतलब है कि यदि यह वर्षा समतल भूमि पर पड़े तथा इसके बाद न उसकी वाष्प बने, न भूमि सोखे एवं न ही जल बहे तो 20 मिमी. तक जल की तह पृथ्वी सतह पर होनी चाहिए। इस यंत्र के मुख्य भाग निम्न प्रकार है –

(अ) धातु का सिलिण्डर

(ब) कीप या संग्राहक यंत्र

(स) जल गृहीता बोतल

(द) अंशांकित सिलिण्डर (नपना गिलास)

यह उपकरण वर्षा को न माप कर वर्षा के जल को एकत्र करता है तथा एकत्रित वर्षा जल को निम्न सूत्र की सहायता से मापा जाता है।

$$\text{वर्षा की मात्रा (सेमी)} = \frac{\text{पात्र में एकत्रित जल की मात्रा (मि.ली.)}}{\text{कीप का क्षेत्रफल (वर्ग सेमी.)}}$$

चूंकि कीप के मुख के क्षेत्रफल एवं अंशांकित सिलिण्डर के मध्य एक विशेष सम्बन्ध रखा जाता है। अतः उपरोक्त सूत्र को उपयोग किए बिना वर्षा की मात्रा अंशाकित सिलिण्डर की सहायता से ज्ञात की जा सकती है।

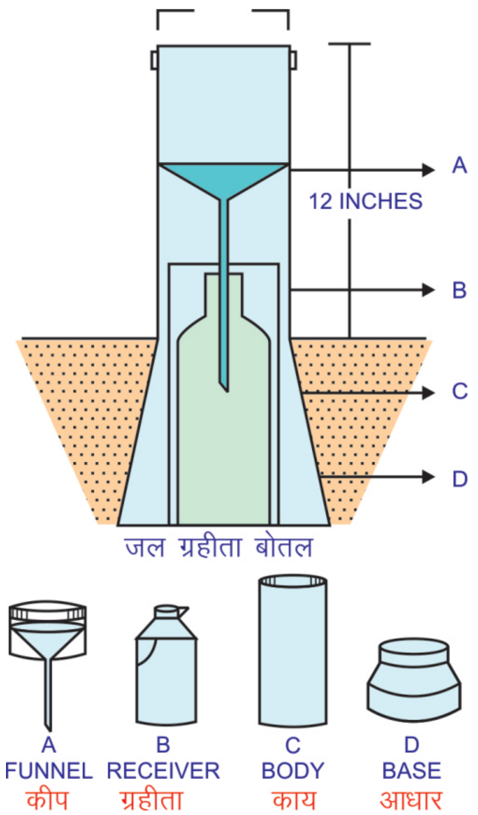


(ii) स्वतः अभिलेखी वर्षामापी (Self recording rain gauge) :– इसकी सहायता से ग्राफ कागज पर वर्षा का स्वतः एवं सतत् अंकन हो जाता है। इससे प्रतिदिन वर्षा की कुल मात्रा, वर्षा की तीव्रता एवं वर्षा होने के वास्तविक समय का पता लगाया जा सकता है।

**हाइग्रोमीटर** :– वायुमण्डल की आर्द्रता मापने के लिए प्रयुक्त होने वाले उपकरण को हाइग्रोमीटर कहते है। इससे आर्द्रता अप्रत्यक्ष (Indirect) तौर पर ज्ञात की जाती है जिसमें हाइग्रोमीटर सारणी और संतृप्त वाष्पदाब सारणियों की सहायता से आपेक्षिक आर्द्रता की गणना की जाती है। बाल आर्द्रतामापी (Hair Hygrometer) अधिकांशतः प्रयुक्त होने वाली हाइग्रोमीटर है जिनमे मानव का बाल (Human Hair) संवेदनशील तत्व के रूप में प्रयुक्त होता है।

आर्द्रता के स्वतः और सतत अंकन हेतु बाल आर्द्रता लेखी (hair hygrograph) उपकरण का उपयोग किया जाता है।

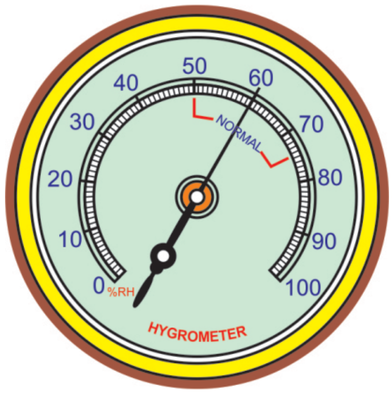


**वायुदिक्सूचक यंत्र (Wind vane)** :– वायु के बहने की दिशा

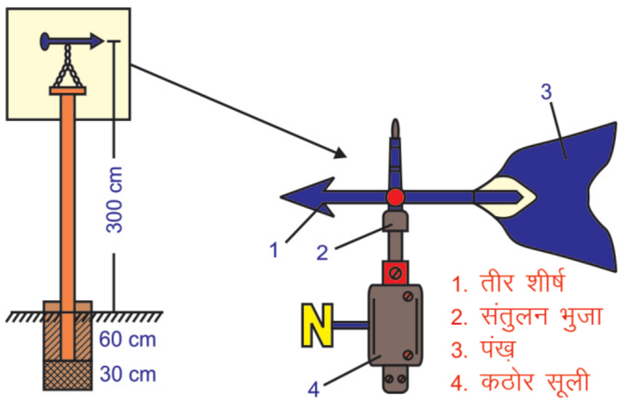


ज्ञात करने वाले उपकरण को वायुदिक्सूचक यंत्र कहते है। जिस ओर से वायु बहती है (Windward side) वायु का या उसकी दिशा का नामकरण उसके अनुसार किया जाता है उदाहरणार्थ यदि वायु दक्षिण दिशा से आ रही है तो वायु दक्षिणी वायु (southern wind) कहलाती है। इस यंत्र में 75 सेमी. लोहे के तीर को काष्ठ फलक की सीधी धुरी पर इस प्रकार लगाते है कि तीर धुरी पर लगे बाल बियरिंग की सहायता से सुगमतापूर्वक घूम सके। तीर का पिछला भाग पूँछ कहलाता है जो लोहे की पतली चद्दर का बना होता है। तीर के नीचे मुख्य दण्ड पर दिशा सूचक चार छड़े जिन पर उत्तर, दक्षिण, पूर्व व पश्चिम (N, S, E, W) अंकित रहता है।

तीर भारी होने के कारण हमेशा पवनाभिमुख (Windward side) अर्थात जिधर से वायु प्रवाहित होती है, हो जाता है। दूसरा हिस्सा हल्का होने के कारण विपरीत दिशा (Leeward side) मे होता है। यह तीर और दिशासूचक छड़ों सहित काष्ठफलक एक 3.05 मीटर ऊँचाई के लकड़ी या धातु के खम्भे पर स्थापित किए जाते है। वायु दिशा को दिशा के नाम के आधार पर या उत्तर से घड़ी की सुई के अनुसार (Clockwise) डिग्री मे प्रदर्शित करते है।

**वायुवेग मापी (Anemometer)** :– वायु की गति ज्ञात करने के लिए इस यंत्र का उपयोग किया जाता है। इसका अविष्कार राबिन्सन नामक वैज्ञानिक ने किया था अतः इसको रॉबिन्संस कप वायु वेग मापी (Robinson's cup Aneomometer) भी कहते है। वाुय दाब में अंतर होने के कारण अधिक वायु दाब से कम वायुदाब की तरफ हवाएँ चलती है। अंतर के कम या अधिक होने पर हवाएँ भी कम या अधिक गति से चलती है।

इस यंत्र में धातु की छड़ के ऊपरी सिरे पर चार अर्द्धगोलाकार प्याले (कटोरियाँ) लगे रहते है। इन प्यालों के नीचे एक वायु वेग सूचक मीटर लगा रहता है। जिसमें से दो पाठ्यांकों के अंतर की सहायता से पाठ्यांकों के समय अन्तराल के आधार पर गणना करके वायु की गति किलोमीटर/घंटा में प्रदर्शित करते है। यह वायु वेगमापी धातु के पाइप पर स्थापित किया जाता है। जिसकी पृथ्वी सतह से ऊँचाई 3 मी. होती है।

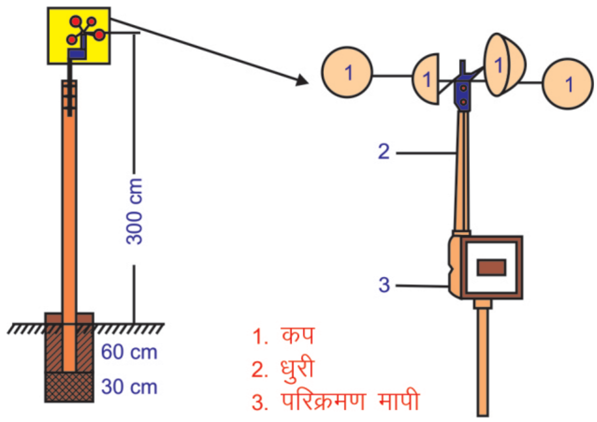


उपरोक्त उपकरणों को स्थापित करने के लिए स्थान (वेधशाला) के चयन के समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि आस पास कोई ऊँचा मकान, वृक्ष आदि न हो। उस स्थान पर पानी न भरता हो। जंगली व आवारा जानवरों, आदि से स्थान पर्याप्त रूप से सुरक्षित हो। वेधशाला की स्थापाना सदैव फार्म या खेत के मध्य समतल स्थान पर की जानी चाहिए।

## अभ्यास प्रश्न

### बहुचयनात्मक प्रश्न–

1. जलवायु शब्द की उत्पत्ति किस भाषा शब्द से हुई है?

(अ) ग्रीक (ब) लैटिन

(स) अरेबिक (द) इनमें से कोई नहीं

2. विश्व मौसम विज्ञान संगठन (WMO) का कार्यालय कहाँ पर स्थित है?

(अ) जिनेवा (ब) नीदरलैण्ड

(स) भारत (द) अमेरिका

3. मध्यवर्ती प्रदीप्ति कालिक पौधे में पुष्प के लिए प्रकाश अवधि आवश्यक होती है ।

(अ) 8–10 घंटे (ब) 12–14 घंटे

(स) 8 घंटे से कम(द) 14 घंटे से ज्यादा

4. मध्यवर्ती प्रदीप्ति कालिक पौधे का उदाहरण है ।

(अ) गन्ना (ब) मक्का

(स) गेहूँ (द) चावल

5. बाजरे की कम अवधि तथा शीघ्र पकने वाली किस्म कौन सी है?

(अ) आर.एच. बी. 171

(ब) जी.एच. बी. 538

(स) एच.एच.बी. 67

(द) आर.एच. बी. 173

6. अधिकतम तापमापी पर कितने सैल्सियस पैमाने पर मात्रक अंकित रहते हैं ।

(अ) $-35^{o}$ C से $+55^{o}$ C

(ब) $35^{o}$ C से $-55^{o}$ C

(स) $+35^{o}$ C से + $55^{o}$ C

(द) उपयुक्त सभी

7. वायुमण्डलीय दाब की प्रचलित इकाई क्या है?

(अ) मिलीबार (ब) मिली लीटर

(स) क्यूबिक मीटर (द) सेन्टीमीटर

### अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

8. कोई दो लघु दिवस या अल्प प्रकाशक्षेपी पौधों के नाम बताइये?

9. शीलकालीन फसलों के लिए इष्टतम तापमान कितना होता है ?

10. सापेक्ष/आपेक्षित आर्द्रता की इकाई लिखिए ।

11. बौछार क्या होती है ।

12. स्तम्भन (Propping) क्या है ।

13. किन्हीं चार वायु रोधी वृक्षों के नाम बताइये ।

14. वर्षा मापी कितने प्रकार के होते हैं ?

15. किन्हीं दो वर्णरन्ध्र बंद करने वाले रसायनों का नाम बताइये ।

16. ग्रीष्मकालीन फसलों के लिए आवश्यक न्यूनतम तापमान कितना होता है ?

17. आधार तापमान क्या होता है ?

18. गुप्त ऊष्मा को परिभाषित कीजिए ।

19. कोहरा कितने प्रकार का होता है ?

### लघूत्तरात्मक प्रश्न–

20. मौसम एवं जलवायु को परिभाषित कीजिए ।

21. बादल कितने प्रकार के होते हैं ? नाम लिखे ।

22. वर्षण से आप क्या समझते हैं ?

23. पवनों का फसलों पर क्या–क्या अनुकूल प्रभाव पड़ता है?

24. ओला वृष्टि क्या होती है ? लिखिए ।

25. अधिकतम तापमापी के बारे में आप क्या जानते हैं ?

26. पाला फसल को कैसे नुकसान पहुँचाता है ।

27. पाले से फसल को बचाने के लिए क्या करना चाहिए ?

28. संचालन (Conduction) क्या होता है ?

29. दिवस निष्प्रभावी पौधे क्या होते हैं? उदाहरण सहित समझाइए ।

30. एल्बिडो क्या है ?

31. सौर विकिरण से आप क्या समझते हैं?

32. मोठ की कम अवधि वाली तथा शीघ्र पकने वाली किस्मों के नाम लिखो ।

33. पाँच मौसम संबंधी उपकरणों के नाम लिखो।

34. तापमान का वाष्पोत्सर्जन क्रिया पर क्या प्रभाव पड़ता है?

### निबंधात्मक प्रश्न–

35. वायुमण्डलीय तापमान से क्या अभिप्राय है ? विस्तार से लिखिए ।

36. मेघ क्या है? इनका महत्व लिखिए ।

37. वर्षा का फसलों पर क्या प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है? बचाव के उपाय लिखिए ।

38. तापमापी कितने प्रकार के होते हैं? चित्र सहित समझाइये।

39. फसलोत्पादन को प्रकाश किस प्रकार प्रभावित करता है? वर्णन कीजिए ।

40. मौसम एवं जलवायु में क्या अन्तर होता है? स्पष्ट कीजिए।

### उत्तरमाला–

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| 1. | अ | 2. | अ | 3. | ब |
| 4. | अ | 5. | स | 6. | अ |
| 7. | अ | | | | |

# अध्याय–3
# मृदा (Soil)

**मृदा की परिभाषा –** वैज्ञानिकों ने मृदा की अलग–अलग परिभाषाएँ दी है कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित है–

''मृदा पृथ्वी की सबसे ऊपर वाली अपक्षयित ठोस पपड़ी की परत है। जो चट्टानों के टूटने व रासायनिक परिवर्तन से बने छोटे–छोटे कणों और उस पर रहने और उपयोग करने वाले पादप व जन्तु अवशेषों से बनी है''– रमन (1971)

''मृदा वह प्राकृतिक पिण्ड है जो विच्छेदित एवं अपक्षयित खनिज पदार्थों तथा कार्बनिक पदार्थों के सड़ने से बने विभिन्न पदार्थों के परिवर्तनशील मिश्रण से प्रोफाइल के रूप में संश्लेषित होती हैं। यह पृथ्वी को एक पतले आवरण के रूप में ढकती है तथा जल एवं वायु की उपयुक्त मात्रा के मिलने पर पौधों को यान्त्रिक आधार तथा आंशिक जीविका प्रदान करती है।''–बकमैन और ब्रैडी (1984)

''मृदा एक प्राकृतिक पिण्ड है जो प्राकृतिक पदार्थो पर प्राकृतिक बलों के प्रभाव से विकसित हुई है। प्रायः भिन्न गहराइयों के खनिज एवं कार्बनिक अवयवों के संस्तरों के अनुसार इसके भेद किये जाते हैं। ये संस्तर अपने से नीचे वाले मूल पदार्थों से आकृति, भौतिक गुणों और बनावट, रासायनिक गुणों और संगठन तथा जैविक लक्षणों में भिन्नता रखते हैं।'' – जोफे एवं मॉरवट

## मृदा संगठन (Soil Composition)

द्रव्य की तीन अवस्थाओं के समान मृदा में भी ठोस, द्रव और गैस तीन अवस्थाएं होती हैं। पौधों को पोषण प्रदान करने दृष्टि से ठोस एवं द्रव अवस्थाएँ ही महत्वपूर्ण है। मृदा के मुख्य अवयव–1. खनिज पदार्थ, 2. कार्बनिक पदार्थ, 3. जल एवं 4. वायु होते हैं।

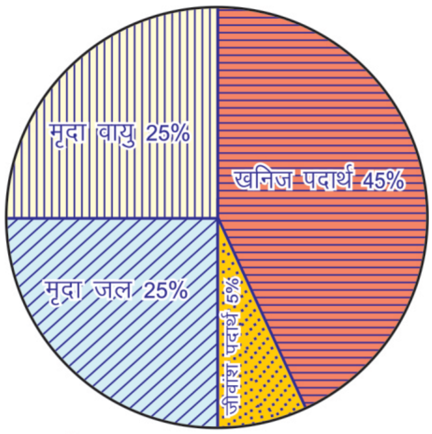


खनिज मृदा का आयतनात्मक संगठन

चित्र सं. 3.1– खनिज मृदा का आयतनात्मक संगठन

## मृदा का आयतनात्मक संगठन (Volumetric Composition of Soil)

मृदा में मुख्य चार अवयव महीन दशा में पाये जाते हैं तथा मृदा के अन्य अवयवों से भली प्रकार मिश्रित रहते है। मृदा आयतन का लगभग 50 प्रतिशत भाग ठोस पदार्थ से घिरा रहता है। शेष आयतन को रन्ध्रावकाश कहते हैं। जिसमें 25 प्रतिशत में जल तथा 25 प्रतिशत में वायु भरी रहती है। जल और वायु के अनुपात में मौसम तथा अन्य कारकों के कारण परिवर्तन होता रहता है। सिल्ट दोमट मृदा का आयतनात्मक संगठन चित्र स. 3.1 के द्वारा दर्शाया गया है।

मृदा अवयवों का वर्णन –

1. **खनिज पदार्थ (Mineral Matter)** – मृदा का यह

अकार्बनिक अवयव है। जो चट्टानों के अपक्षय से प्राप्त होता है। इसमें आंशिक रूप से पूर्ण अपक्षयित पदार्थ जैसे स्वतंत्र सिलिका, एल्यूमिनोसिलिकेट्स और विभिन्न लवण और आंशिक बिना अपक्षयित पदार्थ जैसे मूल चट्टान के कण, अभ्रक, क्वार्टज इत्यादि होते हैं। खनिज विभिन्न आकार के कणों के रूप में पाये जाते है। मृदा में पत्थर, कंकड, मोटी बालू, महीन बालू सिल्ट तथा क्ले कण पाये जाते हैं मृदा में महीन अंश में द्वितीयक खनिज अधिकता में होते हैं। मृदा के खनिज पदार्थों में लगभग 90 प्रतिशत मात्रा सिलिका, एल्यूमिनियम, आयरन व ऑक्सीजन होते हैं। शेष 10 प्रतिशत में कैल्सियम, मैग्नेशियम, पोटैशियम, सोडियम तथा टाइटेनियम अधिक और, नाइट्रोजन, सल्फर, फास्फोरस, बोरोन, मैगनीज, जिंक व कॉपर कम मात्रा में होते हैं। इनके अलावा अन्य तत्व बहुत ही कम मात्रा में पाये जाते हैं।

2. **जीवांश पदार्थ (Organic Matter)** – भारात्मक दृष्टि से मृदा की ऊपरी परत में जीवांश पदार्थ की मात्रा 3 से 5 प्रतिशत होती है। यह मृदा में जन्तुओं एवं पौधों में जीवांश पदार्थ की मात्रा 20 प्रतिशत से कम होती है उन्हें खनिज मृदाएँ कहते हैं।

3. **मृदाजल** (Soil Water)– पौधों की वृद्धि के लिए जल मृदा में उपस्थित अनेकों लवणों को विलेय करके एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने का कार्य करता है। मृदा विलयन में घुले अनेक लवण पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक होते हैं। इनका सान्द्रण, वर्षा, वाष्पीकरण एवं पौधों की दैहिक क्रियाओं से घटता बढ़ता रहता है। मृदा में जल रन्ध्रावकाशों में विभिन्न बलों की सहायता से रुका रहता है। जब जल वाष्पीकरण एवं पौधों द्वारा वाष्पोत्सर्जन से उड़ा दिया जाता है तो रन्ध्रावकाशों में जल के स्थान पर वायु प्रवेश कर जाती है इस प्रकार मृदा में जल एवं वायु की मात्रा में परस्पर परिवर्तन होता रहता है।

4. **मृदा वायु** (Soil Air)– मृदा में रन्ध्रावकाशों में वायु भरी रहती है। वायुमण्डलीय वायु की अपेक्षा मृदा वायु में कार्बन–डाइ–ऑक्साइड की मात्रा अधिक होती है और ऑक्सीजन एवं नाइट्रोजन की मात्रा वायुमण्डल की अपेक्षा कम होती है। वायु केवल उन्ही रन्ध्रावकाशों में रहती है जिनमें जल नहीं होता है। गहराई के साथ–साथ मृदा वायु में कार्बन–डाइ –ऑक्साइड की मात्रा में वृद्धि और ऑक्सीजन की मात्रा में कमी होती है।

## मृदा गठन (कणाकार) (Soil Texture)

**परिभाषा–** ''बालू, सिल्ट एवं मृत्तिका के कणों के आकार के सापेक्ष अनुपात को जिसके फलस्वरूप मृदा में मोटापन अथवा महीनता होती है। मृदा गठन या मृदा कणाकार कहते हैं''

Size of soil particles called soil texture.

मृदा के कणों के आकार के आधार पर मृदा को निम्नलिखित दो पद्धतियों द्वारा वर्गीकृत किया जाता है–

1. इन्टरनेशनल सोसायटी ऑफ सोइल साइन्स प्रणाली (I.S.S.S.)
2. संयुक्त राज्य अमेरिका कृषि विभाग पद्धति (USDA)

इन पद्धतियों द्वारा वर्गीकृत किये गये कणों के नाम व व्यास निम्नलिखित सारणी में दर्शाये गये है–

मृदा वर्ग कणों का वर्गीकरण

| इन्टरनेशनल सोसायटी ऑफ सोइल साइन्स प्रणाली (I.S.S.S.) | | | संयुक्त राज्य अमेरिका कृषि विभाग पद्धति (U.S.D.A.) | | |
|---|---|---|---|---|---|
| क्र. सं. | कण वर्ग का नाम | कण का व्यास (मि.मी. में) | क्र. सं. | कण वर्ग का नाम | कण का व्यास (मि.मी. में) |
| 1 | मोटी बालू | 2.0 से 0.20 | 1 | बहुत मोटी बालू | 2.0 से 1.0 |
| 2 | महीन बालू | 0.20 से 0.02 | 2 | मोटी बालू | 1.0 से 0.5 |
| 3 | सिल्ट | 0.02 से 0.002 | 3 | मध्यम बालू | 0.5 से 0.25 |
| 4 | मृत्तिका | 0.002 से कम | 4 | महीन बालू | 0.25 से 0.10 |
| | | | 5 | बहुत महीन बालू | 0.10 से 0.05 |
| | | | 6 | सिल्ट | 0.05 से 0.002 |
| | | | 7 | मृत्तिका | 0.002 से 0.0005 |
| | | | 8 | कॉलाइड | 0.0005 से कम |

मृदा में मुख्य रूप से तीन प्रकार के कण वर्ग, बालू सिल्ट एवं मृत्तिका होते हैं जिनका वर्णन निम्नलिखित है –

**1. बालू** (Sand)– बालू के कणों में पृष्ठीय क्रियाशीलता कम होती है। इनकी उपस्थिति से मृदा में भुरभुरापन आता है। जिससे वायु तथा जल संचार को प्रोत्साहन मिलता है। इससे जल निकास में सुविधा रहती है। इसके कणों के बीच में बड़े आकार के रन्ध्र होने से जल का रिसाव शीघ्रता से हो जाता है। मृदा में जलधारण क्षमता बहुत कम होती है।

**2. सिल्ट** (Silt)– ये कण अनियमित आकार के होते है। सिल्ट की जल धारण क्षमता बालू से अधिक और मृत्तिका से कम होती है। इसमें बालू की अपेक्षा केशीय रन्ध्र अधिक संख्या में होते हैं। जिसमें मृदा में अधिक जल रहता है। जो पौधों की वृद्धि के लिए उपयोगी रहता है। इसमें संकुचन अधिक नहीं होता है और यह चूर्ण भी बन जाती है। जब सिल्ट में मृत्तिका तथा जीवांश पदार्थ की उचित मात्रा होती है तो यह फसल उत्पादन के लिए उपयुक्त रहती है।

3. **मृत्तिका** (Clay) :– मृत्तिका के कण अत्यधिक क्रियाशील होते हैं और मृदा के भौतिक एवं रासायनिक गुणों में बहुत योगदान देते है। इसमें कण सटे हुए रहते है जिससे ये जल मिलाने पर फूल जाती है और सूख जाने पर सिकुड़ जाने से दरारें बन जाती है। शीत ऋतु में ये मृदायें ठण्डी व चिपचिपी बनी रहती है। ऐसी मृदायें शीघ्र जलाक्रान्त हो जाती है। इनकी जल, गैसों एवं विलेय लवणों के प्रति अवशोषण क्षमता अत्यधिक होती है।

उपर्युक्त तीनों कण वर्ग के कणों के अनुपात के आधार पर मृदा का वर्गीकरण किया गया है। जब ये तीनों कण वर्ग एक विशेष अनुपात में मिलते है तो उस मृदा मिश्रण को एक विशेष नाम दिया जाता है। इसे मृदा गठन वर्ग कहा जाता है। यू.एस.डी.ए. पद्धति के अनुसार गठन वर्ग निम्नलिखित सारणी में दर्शाये गये है–

**सारणी–प्रमुख मृदा गठन (कणाकार) वर्ग (यू.एस.डी.ए. पद्धति के अनुसार)**

| क्र.स. | गठन वर्ग | बालू% | सिल्ट% | मृत्तिका (क्ले)% |
|---|---|---|---|---|
| 1 | बालू | 20–100 | 0–20 | 0–20 |
| 2 | बालू लोम | 50–80 | 0–50 | 0–20 |
| 3 | लोम | 30–50 | 30–50 | 0–20 |
| 4 | सिल्ट लोम | 0–50 | 50–100 | 0–20 |
| 5 | बलुई क्ले लोम | 50–80 | 0–30 | 20–30 |
| 6 | सिल्ट क्ले लोम | 0–30 | 50–80 | 20–30 |
| 7 | क्ले लोम | 20–50 | 20–50 | 20–30 |
| 8 | बलुई क्ले | 50–70 | 0–20 | 30–50 |
| 9 | सिल्ट क्ले | 0–20 | 50–70 | 30–50 |
| 10 | क्ले | 0–50 | 0–50 | 30–100 |

प्रमुख मृदा कणाकार वाली मृदाओं की विशेषताओं का वर्णन निम्नलिखित है–

1. **बालू (Sand)** :– रेगिस्तानी क्षेत्रों, नदी व समुद्र के किनारों पर बालू मृदा पायी जाती है। इस मृदा में जीवांश पदार्थ एवं चिपचिपेपन का अभाव होता है। शुष्क दशा में हाथ से दबाकर छोड़ने पर यह बिखर जाती है। जब धारण क्षमता प्राय कम होती है। इनमें चिकनी मिट्टी और जीवांश खाद का प्रयोग करके खरबूजा, तरबूज, लौकी, ककड़ी आदि कूष्माण्ड कुल की सब्जियाँ उगायी जा सकती है। वृक्षारोपण एवं हरी खाद के प्रयोग से मृदा धीरे–धीरे उपजाऊ होने लगती है।

2. **बलुई दोमट (Sandy Loam)** :– सूखी मृदा को हाथ में लेकर मसलने पर इसकी आकृति बनती है किन्तु बल हटाने पर आकृति समाप्त हो जाती है। आर्द्र मृदा में मसलने पर बनी आकृति सावधानी से रखने पर बनी रहती है। इस प्रकार की मृदा में कृषि कार्य सफलतापूर्वक किये जा सकते हैं। बाजरा, मूँगफली, आलू, प्याज, जैसी फसलें आसानी से उगायी जा सकती है।

3. **दोमट (Loam)** :– इस मृदा में बालू, सिल्ट और मृत्तिका की मात्रा लगभग समान होती है। यह चमकीली और लचीली होती है। शुष्क मृदा को दबाने पर बनी आकृति को सावधानीपूर्वक रखने पर वह ज्यों की त्यों बनी रहती है, और आर्द्र मृदा को मसलने पर बनी आकृति बिना टूटे यथावत रहती है। यह मृदा अच्छे जल धारण व वातन वाली है। फसल उत्पाद की दृष्टि से सर्वोत्तम मृदा मानी

जाती है। अतः इसमें सभी फसलें सफलतापूर्वक उगायी जा सकती है।

4. **सिल्ट दोमट (Silt Loam)** :– यह मृदा जब शुष्क होती है तो इसमें ढेले बन जाते है जो सरलता से टूट जाते हैं। ओट आने पर इसकी जुताई की जाए तो यह भुरभुरी और मुलायम हो जाती है। शुष्क एवं आर्द्र दोनों दशाओं में दबाने पर वांछित आकृति बनायी जा सकती है जिसे सुरक्षित रखा जा सकता है। इस मृदा में जल धारण क्षमता अच्छी होती है। यह कृषि के लिए अच्छी मृदा है।

5. **मृत्तिका दोमट (Clay Loam)** :–यह महीन कणाकार वाली मृदा है। इसमें पर्याप्त चिकनाहट होती है। मृदा में उँगलियों द्वारा दबाने पर पट्टी (Ribbon) बनती है जो सरलता से टूट जाती है। आर्द्र मृदा से स्थायी आकृति बन जाती है। जब इसकी गोलियाँ बनायी जाती है तो यह छोटे टुकड़ों में सरलता से नहीं टूटती है। इसमें धान, गन्ना की फसलें सफलतापूर्वक उगायी जा सकती है।

6. **मृत्तिका (Clay)** :– यह महीन गठन वाली मृदा होती है। जो सूखने पर कठोर आकार रहित ढेलों का निर्माण करती है। आर्द्र अवस्था में चिपचिपी और अधिक लचीली रहती है। उँगलियों के बीच में दबाने पर बहुत लम्बी पट्टी का निर्माण होता है। इस मृदा में हल भारी चलता है। इसलिये इसे भारी मृदा कहते है। यह देर से सूखती है जल निकास ठीक नहीं रहता, फसलें देर से पकती है। जीवांश खाद के प्रयोग से इन मृदाओं में भुरभुरापन आता है। जिससे वायु संचार बढ़ता है और जलधारण क्षमता में भी सुधार होता है।

7. **सिल्ट (Silt)** :– कृषि के लिए इसके कणवर्ग उपयोगी है। इस मृदा में फसलों की अच्छी उपज होती है।

**मृदा गठन का महत्व (Importance of Soil Texture)**:– मृदा कणाकार उचित होने पर कृषि कार्य ठीक प्रकार से होते है। मृदा कणाकार भूमि की उर्वरा शक्ति को बनाये रखता है और फसलों को पोषण देने में सहयोग करता है। मृदा में उपयुक्त नमी रहती है। उचित वायु संचार होता है, उचित मृदा ताप रहता है मृदा मुलायम एवं भुरभुरी रहती है। जलधारण क्षमता अच्छी रहती है।

मृदा में उपस्थित प्राथमिक कण बालू, सिल्ट एवं मृत्तिका है। प्राकृतिक रूप से संयुक्त होकर एक प्राथमिक समुच्चय का निर्माण करते हैं। इन प्राथमिक कणों और समुच्चयों (Aggregates) की किसी प्रतिरूप में व्यवस्था को मृदा संरचना कहा जाता है। प्राकृतिक रूप से बने पुंज को ढेला (Clod) कहते हैं।

**मृदा संरचना (Soil Structure)**– मृदा कणों के व्यवस्थापन को मृदा संरचना कहा जाता है।

मृदा संरचना के निम्नलिखित प्रमुख चार प्रकार है–

**मृदा संरचना के प्रकार (Types of Soil Structure)**

मृदा संरचना के प्रकार
- गोलाकार (Spherical)
  - कणीय (Granular)
  - मृदुकणीय (Crumb)
- खण्ड सदृश्य (Blocky)
  - कोणित खण्डीय (Angular Blocky)
  - उप कोणित खण्डीय (Sub Angular Blocky)
- त्रिपार्श्व या प्रिज्मीय (Prismatic)
  - प्रिज्मीय (Prismatic)
  - स्तम्भी (Columnar)
- प्लेट सदृश्य (Platy)
  - स्तरीय (Liminar)
  - प्लेटी (Platy)

**(अ) गोलाकार संरचना (Spherical Structure)** – इस संरचना में सभी पैड्स (कणपुंज) गोलाकार रूप में होते हैं। कण समूह के फलक वक्रित, अनियमित होते हैं और सभी अक्षों की लम्बाई समान होती है। गोलाकार संरचना को उनकी सरन्ध्रता के आधार पर दो प्रकार से विभाजित किया जाता है–

1. **कणीय (Granular)** – इनके पैड्स कम रन्ध्रीय होते हैं। कण संरचना अनेक प्राथमिक कणों से बनती है और पैड्स 1–10 मिमी आकार के होते हैं। जिन मृदाओं में अधिक जीवांश पदार्थ होते हैं उनमें यह संरचना पायी जाती है।

2. **मृदुकणीय (Crumb)** – इसके पैड्स 1–5 मिमी आकार के होते हैं। पैड्स में अधिक रन्ध्र होने के कारण सरलता से टूट जाते है।

(i) मृदु कणीय (ii) कणीय

(अ) गोलाकार संरचना

**चित्र संख्या 3.3**

**(ब) खण्ड सदृश्य (Blocky)** –इस संरचना में कण घनाकार में व्यवस्थित होते हैं अर्थात् पैड्स की लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई तीनों अक्षों में समान होती है। संरचना

को उनके कोणों की संरचना एवं दृढ़ता के आधार पर दो प्रकार से विभाजित किया जाता है–

1. **कोणित खण्डीय (Angular blocky)** – इस संरचना में पैड्स के फलक चपटे, कोण व भुजाएँ समुचित विकसित एवं तेज कोणीय होते हैं तथा पैड्स 5–50 मिमी आकार के होते हैं।

2. **उप कोणित खण्डीय (Sub-angular blocky)** – इसमें कोण व भुजाएँ टूट फूट कर घिस जाती है और पैड मिश्रित गोलाकार रूप में आ जाता है। इस प्रकार की संरचना का विकास अवमृदा में पौधों की जड़ों के प्रवेश, मृदा वातन एवं जल विकास पर निर्भर करता है।

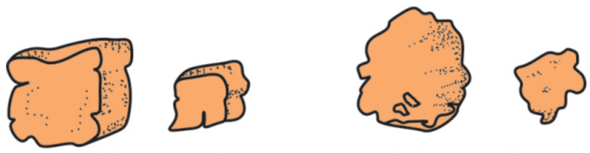

(i) कोणित खण्डीय (ii) उपकोणित खण्डीय

(ब) खण्ड सदृश

**चित्र संख्या 3.3**

**(स) त्रिपार्श्व सदृश्य (Prismatic)** – इस संरचना में पैड्स की ऊर्ध्वाकार अक्ष दो क्षैतिज अक्षों की अपेक्षा लम्बी होती है। ऊर्ध्वाकार भुजा तेज, चमकदार पृष्ठों एवं चपटे किनारे वाली होती है। शुष्क व अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों की अव मृदाओं के सस्तरों में यह संरचना पाई जाती है। यह निम्नलिखित दो प्रकार की होती है–

1. **प्रिज्मीय (Prismatic)** – इस संरचना में प्रिज्म के शीर्ष समतल और भुजाएँ तीव्र धार वाली होती है। पैड्स 10–100 मिमी आकार के होते है।

2. **स्तम्भी (Columnar)** – इसमें कण पुजों के शीर्ष चौरस और किनारे गोल, टोपीनुमा आकार के होते है। तथा इनक पैड्स 10–100 मिमी आकार के होते है।

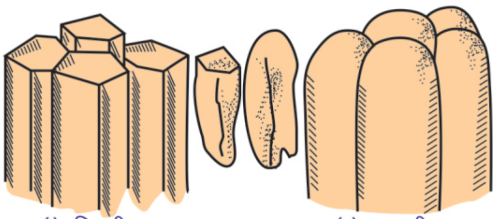

(i) प्रिज्मीय (ii) स्तम्भी

(स) त्रिपार्श्व सदृश

**चित्र सं. 3.4**

**(द) प्लेट सदृश्य (Platy)** – इस प्रकार की संरचना में कण पुंजों का क्षैतिज अक्ष ऊर्ध्वाकार अक्ष की अपेक्षा अधिक विकसित होता है। तथा चपटे दबे हुए दिखाई पड़ते हैं। कण पुजों की मोटाई के आधार पर इस संरचना के दो प्रकार हैं।

1. **स्तरीय (Liminar)** – स्तरीय संरचना के पैड्स की मोटाई लगभग 1–2 मिमी तक होती है। यह पतली चिपकी हुई होती है।

2. **प्लेटीय (Platy)** – इस संरचना में पैड्स की मोटाई लगभग 2–10 मिमी तक होती है।

(द) प्लेट सदृश

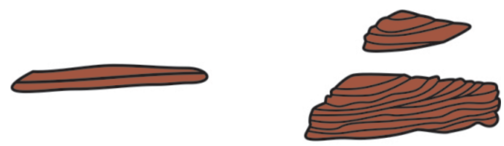

(i) स्तरीय (ii) प्लेटीय

(द) प्लेट सदृश

**चित्र सं. 3.5**

## मृदा संरचना को प्रभावित करने वाले कारक

1. **जलवायु (Climate)** – जिन स्थानों पर वर्षा अधिक और तीव्रता से होती है वहाँ पर मृदा संरचना के कण वर्षा की बूंदों के प्रहार से चकनाचूर होकर बिखर जाते हैं। रेगिस्तान में मृदा कणों के सम्मुचय नहीं बन पाते हैं अर्द्ध शुष्क तथा अर्द्ध आर्द्र क्षेत्रों में समुच्चयों की प्रतिशतता अधिकतम होती है।

ताप सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता को प्रभावित करता है। अनुकूल ताप पर जीवाणुओं की सक्रियता से कार्बनिक पदार्थों का शीघ्रता से विच्छेदन होता है और समुच्चय निर्माण भी प्रभावित होता है।

2. **पक्षान्तर भीगने एवं सूखने की क्रिया का प्रभाव (Effect of alternate wetting and drying)** – पक्षान्तर भीगने और सूखने की क्रिया से मृदा के ढेले टूटकर दानेदार बन जाते हैं जिससे इनके बीच रन्ध्रावकाश बन जाते हैं सूखने की क्रिया असमान होने के कारण मृदा पिण्ड में टेढ़ी–मेढ़ी दरारें बन जाती हैं।

3. **जड़ों का प्रभाव (Root effect)** – पौधों की जड़ों से एक प्रकार का लसदार पदार्थ निकलता है जो मृदा कणों को बांधने का कार्य करता है। जड़ों के मृदा में प्रवेश करने

से मृदा सरन्ध्रता बढ़ती है। जिससे संरचना अच्छी बन जाती है।

**4. फसलों का प्रभाव (Crop effect)** – फसल के पौधों की पत्तियाँ एव तने वर्षा की तीक्ष्ण बूंदों के प्रहार से मृदा संरचना की सुरक्षा करते हैं। इस प्रकार फसल मृदा संरचना को बनाये रखने में सहायता करती है।

**5. कार्बनिक पदार्थ का प्रभाव (Effect of organic matter)** – कार्बनिक पदार्थ सरन्ध्री होने के कारण क्ले मृदा की सुघट्यता को कम कर देता है। बलुई मृदा में जल धारण क्षमता में वृद्धि करता है तथा मृदा कणों को बाँधने का कार्य करता है। इस तरह कार्बनिक पदार्थ मृदा में मिलाने से मृदा संरचना में सुधार होता है।

**6. कर्षण क्रियाओं का प्रभाव (Effect of Tillage)** – जुताई गुड़ाई तथा अन्य कर्षण क्रियाओं से मृदा के सभी अवयव भली प्रकार मिश्रित हो जाते हैं जिससे मृदा में विरलता आ जाती है और मृदा वातन अच्छा हो जाता है। एक ही गहराई पर बार बार कर्षण क्रिया करने से मृदा में कठोर परत बन जाती है और उसमें जल प्रवेश कठिन हो जाता है जिससे मृदा संरचना पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

**7. सिंचाई का प्रभाव (Effect of irrigation)** – सिंचाई के जल के साथ अनेक खनिज लवण मृदा में पहुंचते हैं जिनके आपेक्षिक अनुपात से मृदा संरचना प्रभावित होती है। जैसे यदि जल में कैल्सियम की मात्रा अधिक होती है तो मृदा संरचना में सुधार होता है। और सोडियम लवण की अधिकता मृदा संरचना को खराब कर देती है।

**8. जल निकास का प्रभाव (Effect of drainage)** – मृदा में जल निकास की सुविधा न हो तो जल भराव से वायु के लिए स्थान नहीं रह पाता और पौधों की जड़ों का समुचित विकास नहीं होता जिससे मृदा संरचना खराब हो जाती है। उचित जल निकास होने पर अतिरिक्त जल बाहर निकल जाता है और मृदा संरचना ठीक बनी रहती है।

**मृदा संरचना का महत्व (Importance of Soil Structure)** – मृदा संरचना मृदा में उपस्थित जल और वायु पर नियन्त्रण करती है और मृदा के कई गुणों को प्रभावित करती है। मृदा संरचना का जल की अन्तःस्रवण दर पर प्रभाव चित्र सं. 3.6 के द्वारा दर्शाया गया है।

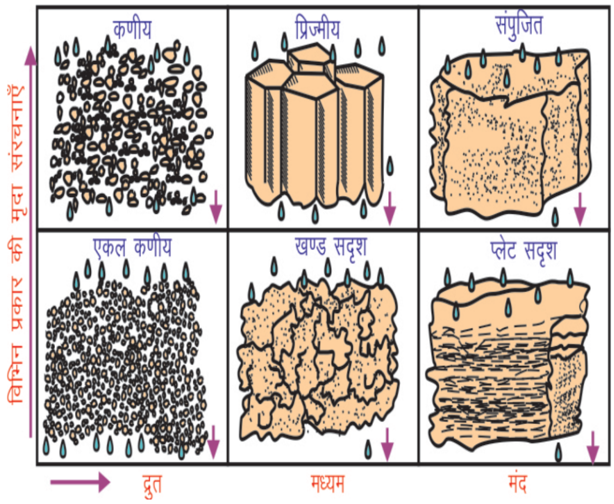


**चित्र सं. 3.6**

कणीय व एकल कणीय मृदाओं में तीव्र, प्रिज्मीय एवं खण्ड सदृश्य मृदाओं में मध्यम तथा सपुंजित एवं प्लेटी मृदाओं में जल स्रवण पर मन्द होती है।

मृदा संरचना जल एवं वायु के स्तर, आर्द्रता, अन्तःस्रवण, वातन सरन्ध्रता, मृदा अपरदन तथा ऊष्मा स्थानान्तरण को प्रभावित करती है। अतः मृदा संरचना को उर्वरता की कुंजी कहा जाता है।

## मृदा जल (Soil Water)

मृदा कणों के बीच रन्ध्रावकाशों में उपस्थित जल मृदा जल कहलाता है। पौधों का लगभग 70–95 प्रतिशत जल से निर्मित होता है यह विलेय ऑक्सीजन को मृदा में अन्दर पहुँचाता है। प्रकाश संश्लेषण की क्रिया में सक्रिय भूमिका निभाता है। मृदा को अधिक गर्म एवं अधिक ठण्डी नहीं होने देता है। यह सर्व व्यापक विलायक के रूप में अधिकांश आवश्यक पोषक तत्वों को विलयन के रूप में पौधे के विभिन्न अंगों तक पहुँचाने का कार्य करता है। इस प्रकार समस्त भौतिक एवं जैव रासायनिक क्रियाओं में जल का महत्वपूर्ण योगदान रहता है।

**मृदा जल का भौतिक वर्गीकरण** – मृदा जल को भौतिक ढंग से निम्नलिखित तीन वर्गों में विभाजित किया गया है–

1. आर्द्रताग्राही जल (Hygroscopic Water)
2. केशीय जल (Capillary Water)
3. गुरूत्वाकर्षण अथवा स्वतन्त्र जल (Gravitational or Free water)

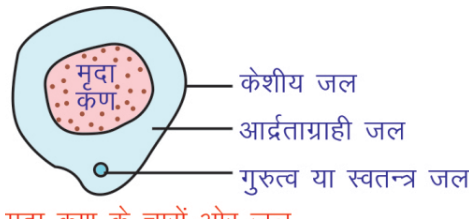


मृदा कण के चारों ओर जल

चित्र सं. 3.7

1. **आर्द्रताग्राही जल** – इस जल को शुष्क मृदा वायुमण्डलीय जल वाष्प को अवशोषित करके ग्रहण करती है। इसलिए इसे आर्द्रताग्राही जल कहते हैं। यह जल पतली झिल्ली के रूप में मृदा कणों के चारों ओर आसंजन बल के साथ दृढ़ता से जुड़ा रहता है। पौधे इसका उपयोग करने में अक्षम रहते हैं। अतः कृषि उत्पादन में इसका कोई उपयोग नहीं होता है।

2 **केशीय जल** – केशीय जल मृदा कणों पर पृष्ठीय बलों द्वारा धारित रहता है। आर्द्रताग्राही जल के विपरीत केशीय जल के अणु स्वतन्त्र, गतिशील और द्रव अवस्था में रहते हैं। इसे गुरुत्व बलपृथक नहीं कर सकता किन्तु पौधों की जड़ें इसे आसानी से अवशोषित कर लेती हैं। इस जल को सुलभ जल भी कहते हैं। अतः यह जल कृषि उत्पादन की दृष्टि से सर्वोत्तम माना जाता है।

**केशीय जल की मात्रा को प्रभावित करने वाले कारक –**

मृदा में केशीय जल को प्रभावित करने वाले कारक निम्नलिखित हैं :–

1. **पृष्ठ तनाव** – केशीय जल की मात्रा पृष्ठ तनाव के बढ़ने के साथ बढ़ती है और तनाव कम होने पर केशीय जल की मात्रा में कमी होती है।
2. **मृदा कणाकार** – महीन कणों वाली मृदा में केशिकाओं की संख्या अधिक होती है इस कारण मृत्तिका मृदा में बलुई मृदा की अपेक्षा अधिक मात्रा में केशीय जल रहता है।
3. **मृदा संरचना** – जिन मृदाओं में कणीय संरचना होती है उनमें एकल संरचना वाली मृदाओं की अपेक्षा अधिक मात्रा में केशीय जल होता है।
4. **जीवांश पदार्थ** – मृदा में जीवांश की अधिक मात्रा होने पर केशीय जल की मात्रा अधिक होती है क्योंकि ह्यूमस में पर्याप्त केशिका क्षमता पायी जाती है।

**केशीय जल की गति (Movement of capillary water)** – केशिका जल मृदा कणों के चारों ओर बीच में पतली झिल्ली बनाता है यह झिल्ली एक कण से दूसरे कण की ओर लगातार बढ़ती है। दो कणों के परस्पर मिलने पर उनके बीच का रिक्त स्थान केशिका जल से भर जाता है। जल की यह गति दोनों जलीय झिल्लियों द्वारा विकसित बल एक समान होने तक होती रहती है। यह गति कई झिल्लियों में होती रहती है जिससे जल एक कण से दूसरे कण की ओर गतिशील होता रहता है मृदा द्वारा जल को अधिकतम मात्रा में धारण करने की क्षमता को अधिकतम केशीय क्षमता कहते है।

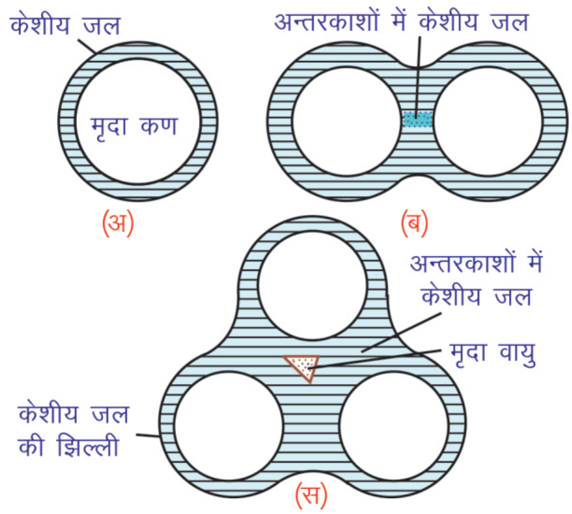


चित्र स. 3.8

3. **गुरूत्वाकर्षण अथवा स्वतन्त्र जल** – मृदा में उपस्थित अधिकतम केशीय क्षमता से अधिक जल मृदा के दीर्घ रन्ध्रों में भर जाता है। यह जल पृथ्वी के गुरूत्व के प्रभाव में आ जाता है। इस जल को गुरूत्वाकर्षण जल या स्वतन्त्र जल कहते हैं। जब गुरूत्व जल मृदा में नीचे की तरफ गति करता है तो उसे अन्तःस्रवण कहते हैं।

**जल धारण क्षमता (water holding capacity)** – मृदा द्वारा जल की अधिकतम मात्रा को धारण करने की क्षमता को जल धारण क्षमता कहते हैं। यह गुरूत्वाकर्षण जल के विरूद्ध धारित जल की अधिकतम मात्रा को प्रदर्शित करती है।

**क्षेत्र क्षमता (Field capacity)** – जल की वह मात्रा जिसको मृदा जल निकास की उचित व्यवस्था होते हुए भी गुरूत्वाकर्षण बल के विरूद्ध नीचे जाने से रोक देती है। इस अवस्था में मृदा के द्वारा जो जल धारण किया जाता है उसे

क्षेत्र क्षमता कहते हैं।

**मुरझान गुणांक (Wilting co-effient)** – जब मृदा में नमी की मात्रा इतनी कम हो जाती है कि पौधों की जड़े मृदा कणों से जल का अवशोषण नहीं कर पाती है। पौधा वाष्पोत्सर्जन द्वारा हो रही जल की हानि की पूर्ति करने में असमर्थ रहता है। पौधे के अन्दर स्फीर्ति (Turgidity) कम होकर सूखना प्रारम्भ हो जाता है। इस अवस्था में मृदा में पानी देने पर पौधा पुनः स्फीर्ति लाकर जीवित होने लगता है तो उसे अस्थायी म्लानि बिन्दु कहते हैं। और यदि पौधा पुनः स्फीर्ति प्राप्त करने में असमर्थ रहकर मुरझा जाता है तो उसे स्थायी म्लानि बिन्दु कहते हैं। ऐसी अवस्था में मृदा में उपस्थित जल की प्रतिशत मात्रा को मुरझान गुणाक कहते हैं।

**असलांग बिन्दु (Sticky point)** – मृदा में नमी की वह प्रतिशत जिस पर मृदा और लेप (Paste) किसी दूसरे पदार्थ से चिपकना बन्द कर देता है, असलांग बिन्दु कहलाती है।

## मृदा जल को प्रभावित करने वाले कारक

1. **मृदा गठन** –बड़ें कणों में बड़े आकार की रन्ध्र नलिकाएँ होने से मृदा जल का प्रभाव तीव्र होता है। छोटे कण वाली मृदा में आर्द्रताग्राही जल का अधिशोषण अधिक होता है। और इनमें केशीय जल की द्रुतगति होती है।

2. **आर्द्रता** – वायु मण्डल में अधिक आर्द्रता होने पर मृदाओं में आर्द्रताग्राही जल की मात्रा बढ़ जाती है। मानसून के दिनों में शुष्क दिनों की अपेक्षा मृदा में आर्द्रताग्राही जल की प्रतिशत मात्रा अधिक होती है। वर्षा जब मन्द गति से होती है तो यह जल केशीय जल के रूप में पौधों के काम आता है। अधिक वर्षा होने पर जल समस्त रन्ध्रावकाशों को संतृप्त करके गुरूत्वाकर्षण के कारण भूमि की नीचे की तहों में चला जाता है और यह जल पौधों के लिए अनुपयोगी रहता है।

3. **मृदा संरचना** – मृदा के कण पास–पास व्यवस्थित होने पर जल की अन्तःस्रवण गति कम होती है। गुरूत्व जल का अन्तःस्रवण प्लेटी एवं सपुंजित मृदाओं में कम होता है। मृत्तिका मृदाओं में प्रायः जलाक्रान्त स्थिति बनी रहती है। अच्छी दानेदार मृदाओं में केशीय जल की पर्याप्त मात्रा पौधों को उपलब्ध रहती है।

4. **तापमान** – तापमान में कमी होने पर केशीय जल की मात्रा में वृद्धि होती है और तापमान में वृद्धि होने पर केशीय जल की मात्रा में कमी आ जाती है।

5. **जीवांश पदार्थ** – मृदा में जीवांश पदार्थ की उपस्थिति से केशीय क्षमता में वृद्धि होती है। अतः अधिक जीवांश पदार्थ वाली मृदा की जलधारण क्षमता अधिक होती है।

## मृदा ताप (Soil Temperature)

सूर्य के विकिरण, गर्म वर्षा, रासायनिक और जैविक प्रक्रमों से मृदा में उपस्थित सम्पूर्ण उष्णता को मृदा ताप कहते है। मृदा ताप आर्द्रता, वातन संरचना, सूक्ष्म जीव, जीवांश पदार्थो के अपघटन तथा पोषक तत्वों की उपलब्धता को प्रभावित करता है। अतः मृदा ताप पौधों की वृद्धि के लिए एक महत्वपूर्ण कारक है।

मृदा ताप का महत्व –

1. **बीजों का अंकुरण एवं पौधों की वृद्धि** :– बीज बोने से फसल पकने तक एक निश्चित तापमान की आवश्यकता होती है। मृदा ताप बीजों के अंकुरण के लिए उपयुक्त तापमान अलग–अलग होता है। तापमान कम या अधिक होने पर बीज कम संख्या में अथवा मंद गति से अंकुरित होते हैं। इसी प्रकार पौधों की वृद्धि के लिए भी उपयुक्त मृदा ताप आवश्यक होता है।

2. **जड़ों की वृद्धि** :– पौधों की जड़े अनुकूल ताप पर अच्छी प्रकार से वृद्धि करती है। निर्धारित ताप से कम या अधिक ताप पर जड़ों की वृद्धि कम होती है और अन्त में रूक जाती है।

3. **मृदा से पोषक तत्व और जल अवशोषण** :– मृदा से पोषक तत्व और जल अवशोषण करने के लिए पौधों को अनुकूल ताप की आवश्यकता होती है। इसमें दिन के समय ताप का विशेष महत्व है क्योंकि दिन में अधिक वाष्पन होने से पौधों में अनुकूल आन्तरिक जल स्तर स्थापित करना आवश्यक होता है।

4. **उपज** :– इष्टतम मृदा ताप से कम या अधिक ताप होने पर फसलों की उपज प्रभावित होती है। उदाहरण के तौर पर आलू में कन्द बनने के लिए मृदा में उपयुक्त तापमान 17 डिग्री सेल्सियस होता है तथा 29 डिग्री सेल्सियस से अधिक मृदा ताप होने पर कन्द बनना बन्द हो जाता है।

5. **मृदा जीवाणुओं की क्रियाशीलता** :– मृदा में पाये जाने वाले सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता के लिए एक निश्चित ताप (लगभग $50^0$F से $104^0$F) की आवश्यकता होती है। मृदा में अनेकों प्रकार के सूक्ष्म जीव रहते है जो पौधों की वृद्धि के लिए आवश्यक माध्यम तैयार करते है।

6. **कार्बनिक पदार्थो का विच्छेदन** :– जीवांश पदार्थो का अपघटन भी मृदा ताप द्वारा नियन्त्रित रहता है। सामान्यतः कार्बनिक पदार्थो का विच्छेदन 45 डिग्री सेल्सियस से 98.6 डिग्री सेल्सियस के बीच होता है। 20 डिग्री सेल्सियस से 40 डिग्री सेल्सियस के बीच अमोनिया गैस तीव्रगति से उत्पन्न होती है।

**मृदा ताप को प्रभावित करने वाले कारक** :– मृदा ताप को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन निम्नलिखित है –

1. **मृदा की प्रकृति (Nature of soil)**:– मृदा, खनिज पदार्थ एवं जीवांश पदार्थ से मिलकर बनी होती है। खनिज पदार्थो की विशिष्ट ऊष्मा जीवांश पदार्थो की अपेक्षा कम होती है। इसलिए खनिज मृदायें जीवांश मृदाओं की अपेक्षा शीघ्रता से ताप ग्रहण कर लेती है। छोटे कण वाली मृदा में जल की मात्रा अधिक होती है जिससे वे मंदगति से ताप ग्रहण करती है। इसी प्रकार खराब संरचना वाली मृदायें शीघ्रता से गर्म हो जाती है।

2. **मृदा का रंग (Colour of Soil )**:– गहरे रंग वाली मृदा में सूर्य से ताप अवशोषण की क्षमता अधिक होती है जिससे काली, भूरी मृदायें हल्कें रंग की मृदाओं की अपेक्षा शीघ्रता से गर्म हो जाती है। हल्का रंग ताप के अधिकतर भाग को वायुमण्डल में परावर्तित कर देता है। यही कारण है कि मध्य राजस्थान की मृदायें दक्षिणी राजस्थान की काली मृदा की अपेक्षा कम गर्म होती है।

3. **मृदा आर्द्रता (Soil Humidity)**:– जल का विशिष्ट ताप अधिक होता है इसलिए आर्द्र मृदायें शुष्क मृदाओं की अपेक्षा मन्द गति से गर्म होती है।

4. **वनस्पतिक आच्छादन (Vegetative Cover)**:– वनस्पति आच्छादित मृदायें पड़ती मृदाओं की अपेक्षा कम ताप अवशोषित करती है। साथ ही ताप की हानि कम होने से ये मृदायें शीतल होने से बच जाती हैं। अतः जिन मृदाओं पर घनी वनस्पति होती है वे गर्मियों में ठण्डी तथा सर्दियों में गर्म रहती है।

5. **भूमि का ढाल (Slope of land)**:– उत्तरी गोलार्द्ध में सूर्य की किरणें दक्षिणी ढाल पर लम्बवत् पड़ती है जिससे वहाँ की मृदायें शीघ्र गर्म हो जाती है। और उत्तरी ढाल पर स्थित मृदायें अपेक्षाकृत कम गर्म होती है।

6. **जलवायु (Climate)**:– ध्रुवों की ओर स्थित मृदायें भूमध्य रेखा, कर्क रेखा एवं मकर रेखा पर स्थित मृदाओं की अपेक्षा ठण्डी होती है क्योंकि जैसे–जैसे ध्रुवों से भूमध्य रेखा की तरफ बढ़ते है, मृदा ताप में वृद्धि होने लगती है। अधिक वर्षा वाले क्षेत्र की मृदायें कम वर्षा वाले क्षेत्रों की तुलना में ठण्डी रहती है।

7. **ऋतुएँ (Seasons)**:– वर्ष में ऋतु परिवर्तन के साथ मृदा ताप भी परिवर्तित होता रहता है क्योंकि शीत ऋतु में सूर्य के विकिरण से कम ऊष्मा और ग्रीष्म ऋतु में अधिक ऊष्मा प्राप्त होती है।

## मृदा वायु (Soil Air)

मृदा में उपस्थित सूक्ष्म जीवों, जीवित पौधों की जड़ों को श्वसन क्रिया के लिए ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है। बहुत सी फसलों और जीवाणुओं की क्रियाशीलता मृदा में ऑक्सीजन की पर्याप्त मात्रा न होने से प्रभावित होती है।

''वह मृदा जिसमें उगे पौधों तथा सूक्ष्म जीवों के लिए उनकी आवश्यक उपापचयी क्रियाओं की दर को प्रोत्साहित करने के लिए गैसें उचित अनुपात एवं प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो वातित मृदा कहलाती है।''

**मृदा वातन (Soil Aeration)**:– मृदा वायु निरन्तर वायुमण्डलीय वायु के सम्पर्क में रहती है। यह मृदा रन्ध्रावकाशों से वायुमण्डल और वायुमण्डल से मृदा रन्ध्रावकाशों में लगातार गतिशील अवस्था में रहती है। मृदा में वायु के इस निरन्तर परिभ्रमण के फलस्वरूप गैसों के नवीनीकरण को 'मृदा वातन' कहते है।

**मृदा वायु का संगठन (Composition of Soil air)** – मृदा वायु में मुख्य रूप से नाइट्रोजन, ऑक्सीजन, कार्बन–डाइ–ऑक्साईड व जल वाष्प होती है। किन्तु मृदा वायु का संगठन वायुमण्डलीय वायु से निम्न बातों में भिन्न होता है।

(i) मृदा वायु में $CO_2$ की मात्रा अधिक होती है।
(ii) मृदा वायु जलवाष्प से संतृप्त रहती है।
(iii) इसमें ऑक्सीजन तथा नाइट्रोजन की मात्रायें वायु से कम होती है।

**मृदा वायु के संगठन को प्रभावित करने वाले कारक** :–

निम्नलिखित प्रमुख कारक मृदा वायु को प्रभावित करते है :–

1. **मृदा ताप (Soil Temperature)**:– दिन के समय मृदा वायु गर्म होकर फैलने लगती है और वायुमण्डल में चली जाती है। रात्रि के समय जब मृदा ताप में गिरावट होती है तो मृदा वायु के सिकुड़ने से वायुमण्डलीय वायु मृदा में प्रवेश कर जाती है। तापमान के घटने बढ़ने से मृदा में विभिन्न रासायनिक एवं जैविक क्रियाओं की गति प्रभावित होती है। जिससे मृदा वायु भी प्रभावित होती है।

**2. अवमृदा एवं पृष्ठीय मृदा (Sub-Soil & Top Soil):–** पृष्ठीय मृदाओं की अपेक्षा अब मृदा में ऑक्सीजन की कमी पायी जाती है और कार्बन–डाई–ऑक्साइड की मात्रा अधिक होती है। रन्ध्रावकाश तथा औसत रन्ध्रों का आकार नीचे के संस्तरों में सामान्यतः कम होता है।

**3. फसलें (Crops):–** फसल श्वसन क्रिया द्वारा मृदा वायु में ऑक्सीजन की मात्रा को कम करती है और कार्बन–डाइ–ऑक्साइड की मात्रा को बढ़ाती है। खड़ी फसल में कार्बन–डाइ–ऑक्साइड की मात्रा परती मृदा की अपेक्षा लगभग 10 गुनी अधिक पायी जाती है।

**4. जीवांश पदार्थ (Organic matter):–** जीवांश पदार्थ की मात्रा से मृदा वायु प्रभावित होती है। अधिक वातन वाली बलुई मृदा में शुष्क जलवायु के अन्तर्गत जीवांश पदार्थ शीघ्रता से ऑक्सीकृत हो जाता है।

**ऋतु परिवर्तन (Seasonal variations):–** ग्रीष्म ऋतु में मृदा शुष्क होती है और उसमें गैसों का विनियम अधिक होता है। जिससे मृदा वायु में ऑक्सीजन की मात्रा अधिक एवं कार्बन–डाइ–ऑक्साइड की मात्रा कम हो जाती है। इसके विपरीत मृदा में अधिक आर्द्रता होने पर मृदा वायु में ऑक्सीजन की मात्रा कम और कार्बन–डाइ–ऑक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है।

**मृदा वायु का महत्व (Importance of soil air):–** मृदा वायु के समुचित संचार से ही पौधों की अच्छी वृद्धि होती है। उचित वायु संचार न होने पर पौधों में जड़ों की संख्या कम हो जाती है और जड़ें असामान्य आकार की हो जाती है। पौधों द्वारा पोषक तत्वों एवं जल का अवशोषण प्रभावित होता है। कुछ विषैले अकार्बनिक पदार्थ बनने के कारण पौधों की वृद्धि कम हो जाती है। जब मृदा में ऑक्सीजन की पूर्ति 10 प्रतिशत से कम होती है तो जड़ों का विकास कम हो जाता है और 5 प्रतिशत पर पूर्णतः रूक जाता है। इसी प्रकार मृदा वायु में कार्बन–डाइ–ऑक्साइड का 1 प्रतिशत से अधिक सान्द्रण होने पर पौधों की जड़ों पर जहरीला असर होता है और कार्बन–डाइ–ऑक्साइड की मात्रा 10 प्रतिशत पहुँचने पर पौधों की जड़ें मर जाती है।

## मृदा रन्ध्रावकाश (Pore space)

"मृदा द्रव्यमान का वह आयतन जो मृदा कणों या ठोस पदार्थों द्वारा घिरा हुआ नही होता रन्ध्रावकाश कहलाता है। इस रन्ध्रावकाश में वायु तथा जल भरा रहता है। इसी रन्ध्रावकाश में पौधों की जड़े प्रवेश करके वृद्धि करती है।"

**रन्ध्रावकाश का आयतन :–** मृदा गठन, संरचना और जीवांश पदार्थ की मात्रा के अनुसार रन्ध्रावकाश के आयतन में परिवर्तन होता रहता है। बड़े कणों वाली मृदा में महीन कणों वाली मृदा की अपेक्षा रन्ध्रावकाश कम होता है। चित्र 3.9 (अ) तथा (ब) में गोलों की एक जैसी संरचना रखते हुए, यदि गोले का व्यास 1 सेमी के स्थान पर 1/2 सेमी कर दिया जाये तो उसी आयतन में 8 गोलों के स्थान पर 32 गोले आ सकते है। अतः छोटे कणों के बीच कुल रन्ध्रावकाशों का आयतन बडे कणों की तुलना में अधिक होता है। इसी कारण मृत्तिका मृदाओं में रन्ध्रावकाश अधिक तथा एक घन सेमी शुष्क जल का द्रव्यमान बालू एवं बलुई मृदाओं में कम होता है।

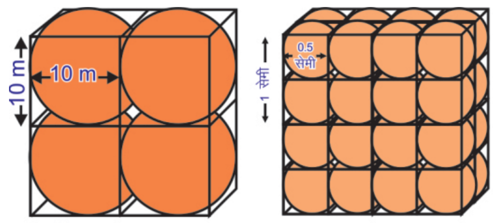

(अ) मोटे कणाकार वाली मृदा (ब) महीन कणाकार वाली मृदा

चित्र सं. 3.9

**मृदा रन्ध्रावकाश प्रतिशतता :–** मृदा के कुल आयतन का वह प्रतिशत भाग जो रिक्त होता है। मृदा रन्ध्रावकाश प्रतिशतता कहलाता है। शुष्क मृदा में रन्ध्रावकाश वायु से और आर्द्र मृदा में जल तथा वायु दोनों से भरे हुए रहते हैं। जब मृदा जल में संतृप्त होती है तो रन्ध्रावकाशों में वायु के स्थान पर जल भर जाता है। अतः मृदा में जल और वायु के आयतन में परिवर्तन होता रहता है।

मृदा रन्ध्रावकाश प्रतिशतता की गणना निम्नलिखित सूत्र द्वारा की जा सकती है–

सूत्र– मृदा रन्ध्रावकाश का प्रतिशतता

$$= 100 - \frac{\text{स्थूल घनत्व}}{\text{कण घनत्व}} \text{X}100$$

इसको पूर्णरूप से समझने के लिए स्थूल घनत्व और कण घनत्व की जानकारी होना आवश्यक है।

**स्थूल घनत्व (Bulk density)** शुष्क मृदा के इकाई आयतन के द्रव्यमान को मृदा का स्थूल या आभासी घनत्व कहते है।

मृदा का स्थूल घनत्व =

$$\frac{\text{एक घन सेमी. शुष्क मृदा का द्रव्यमान}}{\text{एक घन सेमी. जल का द्रव्यमान}}$$

**कण घनत्व (Particle density)** रन्ध्रावकाश रहित शुष्क मृदा के प्रति इकाई आयतन के द्रव्यमान को कण घनत्व या वास्तविक घनत्व कहते है। इसे ग्राम प्रति घन सेमी में व्यक्त किया जाता है।

**रन्ध्रावकाश को प्रभावित करने वाले कारक –** रन्ध्रावकाश को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक निम्नलिखित है।

1. **मृदा कणाकार (Soil Texture)** :– मृदा में महीन कण अधिक होने पर उसमें संरन्ध्रता बढ़ जाती है। मृत्तिका में रन्ध्रावकाश सूक्ष्म आकार के होते है और बालू मृदा में रन्ध्रावकाश सबसे बड़े तथा दोमट मृदा में रन्ध्रावकाश की प्रतिशतता मध्यम होती है।

2. **मृदा संरचना (Soil Structure)**:– गोलाभ संरचना में अन्य संरचनाओं की अपेक्षा संरन्ध्रता अधिक होती है। और खण्ड सदृश्य संरचना में रन्ध्रावकाश प्रतिशत अन्य संरचनाओं की अपेक्षा कम होता है।

3. **मृदा परिच्छेदिका (Soil Profile)**– मृदा के ऊपरी संस्तरो में रन्ध्रावकाश प्रतिशत सर्वाधिक होती है और नीचे के संस्तरों की तरफ बढ़ने पर कम होती जाती है। इसका मुख्य कारण ऊपरी सस्तर "ए" में जीवांश पदार्थ की मात्रा अधिक होना है। निचले सस्तर "बी" तथा "सी" तथा अपेक्षाकृत ठोस होते है।

4. **मृदा में जीवांश पदार्थ की मात्रा (Organic matter in Soil )**:– मृदा में जीवांश पदार्थ की वृद्धि के साथ रन्ध्रावकाश प्रतिशत में वृद्धि होती है क्योंकि जीवांश पदार्थ रन्ध्रीय प्रकृति का होता है और जीवांश पदार्थ की मात्रा में कमी होने पर रन्ध्रावकाश प्रतिशतता कम हो जाती है। अतः जीवांश पदार्थ की मात्रा और रन्ध्रावकाश प्रतिशत एक दूसरे से सीधा सम्बन्ध रखते है।

5. **जैविक सक्रियता (Biological Activity)** :– केचुए, सूक्ष्म जीव तथा अन्य जन्तु मृदा में रन्ध्रावकाशों की संख्या में वृद्धि करते रहते हैं। सूक्ष्म जीवों द्वारा जीवांश पदार्थों का विघटन होता रहता है और मृदा संरचना दानेदार बनती है जिससे मृदा रन्ध्रावकाशों में वृद्धि होती है।

## अम्लीय व लवण प्रभावित मृदाओं का प्रबन्धन

**अम्लीय मृदा (Acidic Soil)**– "वह मृदा जिसमें हाइड्रोक्सिल (OH) आयन्स की अपेक्षा हाइड्रोजन ($H^+$) एवं एल्यूमिनियम ($Al^{3+}$) आयन्स की प्रधानता होती है अम्लीय मृदा कहलाती हैं। "

अम्लीय मृदाएँ सामान्यतः आर्द्र क्षेत्रों में पायी जाती है और इनमें जीवांश पदार्थ अधिक मात्रा में पाया जाता है।

**अम्लीयता के प्रकार (Types of Acidity)** – मृदा में अम्लीयता दो प्रकार की होती है।

1. **सक्रिय अम्लीयता (Active Acidity)**:– मृदा विलयन में उपस्थित आयन्स के कारण उत्पन्न होने वाली अम्लीयता को सक्रिय अम्लीयता कहते है।

2. **संचित अम्लीयता (Reserve Acidity)**:– जो अम्लीयता मृदा कणों पर अधिशोषित हाइड्रोजन आयन्स के कारण उत्पन्न होती है संचित अम्लता कहलाती है।

**अम्लीय मृदाओं का निर्माण (Formation of Acidic Soil)**:– अम्लीय मृदाएँ बनने के निम्नलिखित कारण हैं :–

1. **मूल पैतृक पदार्थ की प्रकृति (Nature of Parent Material)**:– जिन मृदाओं का विकास अम्लीय पैतृक पदार्थ जैसे क्वार्टज, ग्रेनाइट आदि चट्टानों से होता है। उनमें उपस्थित सिलिका जल के साथ संयोग करके आर्थो सिलिसिक अम्ल बनाता है।

2. **अधिक वर्षा द्वारा क्षारों का ह्रास** :– अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में मृदा के अम्लीय होने की सम्भावना रहती है क्योंकि मृदा कणों पर अधिशोषित घुलनशील क्षारीय आयन्स जैसे $Ca^{2+}$, $Mg^{2+}$, $Na^+$, $K^+$ आदि वर्षा के जल में घुलकर मृदा के निचले संस्तरों में चले जाते है और अपेक्षाकृत कम घुलनशील Al, Fe के यौगिक मृदा में रह जाते है। हल्की मृदाओं में भारी गठन वाली मृदाओं की अपेक्षा अधिक मात्रा में क्षार पदार्थों का ह्रास होता है।

3. **अम्लीय उर्वरकों का प्रयोग (Use of Acidic Fertilizers)** :– अम्लीय प्रकृति के उर्वरक जैसे अमोनियम सल्फेट, अमोनियम नाइट्रेट आदि का उपयोग मृदा में अम्लता बढ़ाता है। ऐसे उर्वरकों के लगातार प्रयोग से मृदा अम्लीय हो जाती है।

4. **कार्बनिक पदार्थ (Organtic Matter)**:– कार्बनिक पदार्थों के जैविक अपघटन से ह्यूमस का निर्माण होता है। जिसमें उपस्थित क्रियाशील समूह जैसे (-COOH) कार्बोक्सिलिक होते है। जो ($H^+$) हाइड्रोजन आयन्स को आकर्षित एवं पृथक कर सकते है। इस प्रकार कार्बनिक अम्ल तथा कार्बन–डाइ–ऑक्साइड की मात्रा बढ़ जाती है जो संयुक्त रूप से मृदा अम्लीयता को बढ़ाते है।

5. **सूक्ष्म जीवों का प्रभाव (Micro biological Effect)** :– मृदा में पाये जाने वाले विभिन्न सूक्ष्म जीवों मृदा में कार्बनिक पदार्थ के विघटन एवं नाइट्रीकरण आदि क्रियाओं के लिए जिम्मेदार होते है। इन सूक्ष्म जीवों की क्रिया के फलस्वरूप अम्लों का निर्माण होता है। मृदा कणों पर क्षारों की कमी होने पर ये अम्ल उदासीन नहीं हो पाते है और मृदा में अम्लीयता उत्पन्न करते है।

**मृदा अम्लीयता का पौधो पर प्रभाव (Effect of Acidity on Plants):–**

1. अधिक अम्लीय मृदाओं में पायी जाने वाली हाइड्रोजन आयन्स (H+) की अधिक सान्द्रता पौधों के लिए हानिकारक होती है।
2. जड़ों की बढ़वार रूक जाती है।
3. पौधों में कोशिका विभाजन, डी.एन.ए. निर्माण एवं श्वसन आदि क्रियाएँ प्रभावित होती है।
4. कुछ महत्वपूर्ण पोषक तत्वों जैसे P, Ca, Fe, Mn आदि का मृदा से अवशोषण रुक जाता है।
5. मृदा में सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता कम हो जाती है।
6. पौधे मुरझा जाते है।

**अम्लीय मृदाओं का प्रबन्ध (Reclamation of Acidic Soil)**– अम्लीय मृदाओं का प्रबन्ध निम्नलिखित में से एक या अधिक विधियों द्वारा किया जा सकता है।

1. **समुचित जल निकास (Proper Drainage)** – अनावश्यक जल को खेत से बाहर निकालते रहने से क्षार पदार्थों का मृदा के अन्दर अपक्षालन होता है और अम्ल भी जल के साथ बह जाते है। मृदा में वायु संचार बढ़ता है जिससे मृदा में पायी जाने वाली कार्बन–डाइ–ऑक्साइड जल के साथ संयोग नहीं कर पाती और वायुमण्डल में चली जाती है। इस कारण मृदा में अम्ल का निर्माण नहीं हो पाता और मृदा अम्लीय होने से बच जाती है।

2. **क्षारीय उर्वरकों का प्रयोग (Use of Basic Fertilzers)**– अम्लीय मृदाओं में क्षारीय उर्वरकों जैसे सोडियम नाइट्रेट, कैल्सियम नाइट्रेट आदि का प्रयोग करने से इन उर्वरकों के क्षारीय अवशेष मृदा की अम्लीयता को कम करने में सहायता करते है। लकड़ी की राख भी इन मृदाओं में प्रयोग की जा सकती है।

3. **चूना वाले पदार्थो का प्रयोग (Use of Lime Materials)**– मृदा में चूना मिलाने पर Ca आयन्स के द्वारा मृदा कणों पर अवशोषित हाइड्रोजन आयन्स विस्थापित कर दिये जाते है। Ca मृदा कणों पर अधिशोषित होता रहता है। इस प्रक्रम को निम्न प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है।

$$CaO + H_2O \quad = \quad Ca(OH)_2$$
$$Ca(OH)_2 + CO_2 \quad = \quad CaCO_3 + H_2O$$

$$H\boxed{\text{मृदा कण}}H + Ca(OH)_2 = Ca\boxed{\text{मृदा कण}} + H_2O$$
$$H\boxed{\text{मृदा कण}}H + CaCO_3 = Ca\boxed{\text{मृदा कण}} + H_2O + CO_2$$

4. **अम्लीयता सहने वाली फसलें उगाना (Growing of Tolerant Crops to Acidity )** :– अलग–अलग प्रकार की फसलों में अम्लीयता सहन करने की शक्ति अलग–अलग होती है। जैसा निम्न तालिका में दर्शाया गया है:–

| कम अम्लीयता सहन करने वाली फसलें | सामान्य अम्लीयता सहन करने वाली फसलें | अधिक अम्लीयता सहन करने वाली फसलें |
|---|---|---|
| फूल गोभी, चुकन्दर बरसीम, रिजका | गेहूँ,जौ,जई,मक्का बाजरा, ज्वार,आलू | राई,घासें |

अतः अम्लीय मृदा में उसकी प्रकृति के अनुसार फसलों का चयन करना चाहिए।

## लवणीय मृदायें (Saline Soil )

ऐसी मृदा जिसके संतृप्त निष्कर्ष की विद्युत चालकता $25^0c$ ताप पर 4 डेसी साइमेंस प्रतिमीटर (4 ds/m) से अधिक, विनियम शील सोडियम 15 प्रतिशत से कम तथा $P^H$ सामान्यतः 8.5 से कम होती है लवणीय मृदा कहलाती है।

इन मृदाओं की सतह पर सफेद लवण होता है इस कारण पूर्व में इन्हें सफेद क्षारीय मृदा कहा जाता था। इनमें घुलनशील लवण जैसे NaCl व $H_2SO_4$ की प्रधानता पायी जाती है। Ca, Mg के क्लोराइड, सल्फेट तथा बाइकार्बोनेट्स भी पर्याप्त मात्रा में होते है। हिलगार्ड ने इन्हें सफेद ऊसर का नाम दिया है।

**लवणीयता का पौधों पर प्रभाव (Effect of Salt on Plants)**– लवण प्रभावित मृदाओं में बीजों का अंकुरण ठीक प्रकार से नहीं होता है। मृदा में घुलनशील लवणों की अधिकता होने से मृदा घोल गाढ़ा हो जाता है और पौधों की जड़ो के अन्दर का घोल अपेक्षाकृत पतला होने से बाह्य परासरण (Exosmosis) के कारण पौधों की कोशिकाओं से जल तथा जीवद्रव्य मृदा विलयन में आने लगता है, जिससे पौधे मुरझा जाते है और मर भी जाते है। इस प्रकार

मृदा में पर्याप्त नमी हाने पर भी पौधों की वृद्धि एवं विकास रूक जाता है और पौधे सूखने लगते है।

**लवणीय मृदा बनने के कारण (Causes of Formation of Sailne Soil):–** निम्नलिखित प्रमुख कारणों से मृदा लवणीय बन जाती है।

1. **शुष्क एवं अर्द्धशुष्क जलवायु (Arid or Semi Arid Climate):–** शुष्क एवं अर्द्धशुष्क जलवायु वाले क्षेत्रों में अधिक वाष्पीकरण तथा कम वर्षा के कारण घुलनशील लवण मृदा में निक्षालित नहीं हो पाते और जल के वाष्पीकरण के बाद मृदा की सतह पर एकत्रित हो जाते है जिससे मृदा लवणीय हो जाती है।

2. **उच्च जल स्तर (High Water leval)–** भूमि में पाये जाने वाले जल में घुलनशील लवण अधिक मात्रा में होते है।इनकी मात्रा भौगोलिक पदार्थो की प्रकृति एवं गुणों पर निर्भर करती है। उच्च जल स्तर हाने पर केशिका प्रभाव से जल, मृदा सतह पर आकर वाष्पित हो जाता है और लवण सतह पर एकत्रित हो जाते है।

3. **लवणीय जल से सिंचाई (Irrigation with Salted Water):–** लवणयुक्त जल से सिंचाई करने पर जल की कुछ मात्रा पौधों द्वारा ग्रहण कर ली जाती है और कुछ जल वाष्पीकरण द्वारा उड़ जाता है तथा लवण मृदा की सतह पर रह जाते है जिससे मृदा लवणीय हो जाती है।

4. **अवमृदा की अभेद्यता (Hard Layer in Sub- Soil):–** मृदा की सतह में कठोर परत होने पर जल मृदा की निचली सतहों तक नहीं पहुँच पाता है जिससे लवणों का निक्षालन नहीं हो पाता है और वे सतह पर आकर एकत्रित हो जाते है।

5. **खराब जल निकास(Improper Drainage):–** ऐसे स्थान जहाँ मृदाओं में समुचित जल निकास की सुविधा नहीं होती है। वहाँ भरे हुए जल के सूखने पर लवण वही रह जाते हैं और लगातार यही क्रम चलने से मृदा लवणीय हो जाती हैं।

6. **लवणीय मृदाओं का प्रबन्ध (Reclamation of Saline Soils)–** लवणीय मृदाओं को सुधारने हेतु निम्नलिखित उपाय किये जा सकते है।

**(अ) भौतिक उपाय (Mechanical Methods):–**

1. **खुरचना (Scraping):–**लवणीय मृदा की ऊपरी सतह पर जमा लवणों की परत को खुरचकर प्रभावित क्षेत्र से बाहर निकाल देते है। यह विधि छोटे क्षेत्र के लिए उपयोगी है किन्तु महँगी और अस्थाई है क्योंकि कुछ समय पश्चात् नीचे के लवण ऊपरी सतह पर आ जाते है।

2. **लवणों को बहाना (Flushing of Soluble Salts):–** इस विधि में प्रभावित क्षेत्र में पर्याप्त जल भर दिया जाता है जिससे ऊपरी सतह के लवण जल में घुल जाते हैं। अब इस जल को तेजी के साथ खेत के बाहर निकल देते है जिससे लवण जल के साथ बहकर चले जाते है और मृदा में लवणों की सान्द्रता कम हो जाती है।

3. **निक्षालन (Leaching):–** इस विधि में लवणों को जल में विलेय करके पौधों की जड़ क्षेत्र से नीचे ले जाया जाता है। इस क्रिया के लिए सम्बन्धित क्षेत्र का जल स्तर नीचा होना चाहिए एवं सिचांई हेतु लवण रहित जल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होना चाहिए। निक्षालन के लिए इतना जल दिया जाता है कि फसलों की आवश्यकता के साथ–साथ निक्षालन माँग को भी पूरा कर सके।

**(ब) रासायनिक उपाय (Chemical Methods)–** क्षारीय मृदाओं में विनिमयशील सोडियम को अन्य धनात्मक आयन्स द्वारा मृदा सतह से हटाने के लिए काम में लिये जाने वाले रसायन मृदा सुधारक कहलाते है। सामान्यतः मृदा सुधारकों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जाता है।

1. विलेय कैल्सियम लवण – जिप्सम, फास्फो जिप्सम
2. कम विलेय कैल्सियम लवण – चूना पत्थर
3. अम्ल एवं अम्ल उत्पादक – गंधक का अम्ल, गंधक, पाइराइट्स

इस सुधारकों में से निम्न सुधारकों का अधिक उपयोग किया जाता है।

1. **जिप्सम –** यह सुधारक सस्ता एवं आसानी से उपलब्ध होने से अधिक प्रचलित है जिप्सम का प्रयोग लवण प्रभावित मृदाओं में करने पर जिप्सम में उपस्थित कैल्सियम, मृदा कणों पर उपस्थित विनिमयशील को विस्थापित कर उसके स्थान पर कैल्सियम आयन्स को स्थापित कर देता है। और सोडियम आयन्स मृदा विलयन में उपस्थित सल्फेट आयन्स से अभिक्रिया करके सोडियम सल्फेट का निर्माण करते है। सोडियम सल्फेट जल विलेय होने के कारण मृदा से जल के साथ निक्षालित हो जाता है।

$$\begin{matrix} Na \\ \boxed{\text{क्ले}} \\ Na \end{matrix} + CaSO_4 \longrightarrow Ca\boxed{\text{क्ले}} + Na_2SO_4$$

2. **चूना पत्थर–** जिन मृदाओं का $p^H$ 8.0 से कम होता है उनमें चूना पत्थर का उपयोग किया जाता है। क्योंकि

अधिक $p^H$ पर चूना अविलेय हो जाता है। चूने में उपस्थित कैल्सियम मृदा कणों पर उपस्थित सोडियम को निम्न प्रकार विस्थापित कर देता है।

$$\boxed{\text{क्ले}}\begin{matrix}Na\\ \\ Na\end{matrix} + CaCO_3 \longrightarrow Ca\boxed{\text{क्ले}} + Na_2CO_3$$

3. **पाइराइट्सः–** पाइराइट मृदा में मिलाने पर इसका ऑक्सीकरण शुरू हो जाता है जिससे यह वायु एवं जल के संयोग सलफ्यूरिक अम्ल एवं आयरन सल्फेट का निर्माण करता है। इसे मृदा में मिलाने पर होने वाली अभिक्रिया को निम्न प्रकार दर्शाया जा सकता है–

$$2FeS_2+7O_2+2H_2O \longrightarrow 2feSO_4+H_2SO_4$$
$$H_2SO_4+ CaCO_3 \longrightarrow CaSO_4+H_2O+CO_2$$
$$CaSO_4 + Na \longrightarrow Ca + \underset{\text{(निक्षालन)}}{Na_2SO_3}$$

## (स) मृदा प्रबन्ध उपाय
## (Soil Mangement Practices) –

1. **खेत की तैयारी एवं जुताई (Tillage Practices):–** लवणीय भूमि वाले खेत को समतल बना लेना चाहिए जिससे सिंचाई का जल उसमें समुचित रूप से बराबर बट सके। खेत असमतल होने पर उसमें ऊँचे स्थानों पर जल नहीं पहुँच पाता और वहाँ लवण निक्षालन द्वारा नीचे नहीं जा पाते है। इन मृदाओं में जुताई उपयुक्त नमी होने पर ही करनी चाहिए। परीक्षणों से ज्ञात हुआ कि मिट्टी पलटने वाले हल से 15–20 सेमी. गहरी जुताई करने के पश्चात् बीज बोने पर बीजो का अंकुरण अधिक होता है।

2. **बुआई की विधि (Sowing Method):–** इन मृदाओं में बीज का अंकुरण एक जटिल समस्या है क्योंकि अंकुरण पर लवणों का बुरा प्रभाव पड़ता है। अतः इनमें कूँड़ सिंचाई वाली फसलों के बीज को मेडों के ढलान पर बोना चाहिए तथा कूँड़ में सिंचाई करनी चाहिए इससे लवण कूँड़ की उपरी सतह पर आकर जमा होगें और पौधों की बढ़वार होती रहेगी।

3. **बीज की मात्रा (Seed Rate)–** ऐसी मृदाओं में बीजों का अंकुरण कम होता है इसलिए इनमें बीज की मात्रा सामान्य दर से 15–20 प्रतिशत अधिक काम में लेनी चाहिए।

4. **सिंचाई (Irrigation)–** इन मृदाओं में सिंचाई की प्रवाह विधि अधिक लाभप्रद रहती है सिंचाई जल्दी–जल्दी करना चाहिए तथा प्रत्येक सिंचाई के समय अधिक पानी देना चाहिए। ऐसी भूमि में बूंद–बूंद सिंचाई विधि भी उपयोगी रहती है।

5. **कार्बनिक पदार्थों का प्रयोग (Use of Organic Matter)–** जीवांश पदार्थ के प्रयोग से मृदा की भौतिक दशा सुधरती है साथ ही इसके विघटन के समय उत्पन्न कार्बन–डाइ–ऑक्साइड जल में संयोग करके कार्बनिक अम्ल बनाती है। यह अम्ल क्षारीयता को कम करने में सहायक होता है। इसके अतिरिक्त जीवांश पदार्थ से मृदा में जीवाणुओं की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है।

6. **लवण प्रतिरोधी फसलों का चयन (Selection of Salt Tolerant Crops) :–** इन मृदाओं में लवणीयता सहन करने वाली फसले उगानी चाहिए। लवण सहिष्णु फसलों को निम्नलिखित तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है।

1. **उच्च लवण सहिष्णु फसलें–** जौ, ढेंचा, चुकन्दर, शलजम, पालक, मूली, दूबघास आदि।
2. **मध्यम लवण सहिष्णु फसलें–** राई, गेहूँ, सरसों, जई, धान, ज्वार, बाजरा, मक्का, टमाटर, फूलगोभी, पत्ता गोभी, आलू, प्याज, रिजका, बरसीम आदि।
3. **न्यून लवण सहिष्णु फसलें–** सेम, मूंग, उड़द, चना, मोठ, मटर, सेम, भिण्डी, लौकी, सेव , सन्तरा, नीबू, पपीता आदि।

4. **उचित फसल चक्र –** इन मृदाओं में सदैव फसलें उगानी चाहिए इन्हें परती नहीं छोडना चाहिए। इन मृदाओं के लिए उपयुक्त कुछ फसल चक्र निम्नलिखित है–

(अ) धान – सरसों (एक वर्ष)
(ब) धान– जौ, ढेंचा (हरी खाद)–सरसों (दो वर्ष)
(स) ढेंचा –गेहूँ–धान–आलू (दो वर्ष)
(द) कपास – रिजका–मक्का–आलू (दो वर्ष)

(य) ढेंचा (हरी खाद)– चुकन्दर–मक्का–जौ (दो वर्ष)
(र) ग्वार– जौ – कपास–मेथी (दो वर्ष)

## राजस्थान की मृदायें

पौधों के लिए मृदा एक प्राकृतिक माध्यम है। पौधे अपने भोजन के अधिकांश पोषक तत्व, जल,वायु तथा मृदा से प्राप्त करते है। मृदा पौधों को सीधा खड़ा रखने में प्रत्यक्ष आधार प्रदान करती है। राजस्थान में पायी जाने वाली मृदाओं को उनकी प्रधानता, उपलब्धता व विशेषता तथा कृषिगत उर्वरता के आधार पर आठ प्रकारों में बांटा गया है जो निम्न है–

1. रेतीली या बलुई मृदा
2. भूरी रेतीली मृदा
3. लाल पीली मृदा
4. लाल लोमी मृदा
5. दोमट या कछारी मृदा
6. काली मृदा
7. लाल व काली मिश्रित मृदा
8. भूरी रेतीली कछारी मिट्टी

**1 रेतीली या बलुई मृदा (Sandy Soil)–** यह मृदा राजस्थान के सर्वाधिक क्षेत्र में पायी जाती है। इस मृदा में अन्त स्पन्दन एवं पारगम्यता की दर अत्यधिक होने के कारण इनमें जल एवं पोषक तत्वों का ह्रास अधिक होता है। मृदा कम उपजाऊ होती है। इसमें 90 से 95 प्रतिशत बालू तथा 5 से 7 प्रतिशत मृत्तिका पायी जाती है। यह जोधपुर, बीकानेर, बाड़मेर, जैसलमेर, झुंझुनूं, चूरू व नागौर में पायी जाती है।

**2 भूरी रेतीली मृदा (Brown Sandy Soil )–** अरावली के पश्चिमी भाग में यह मृदा लगभग 36500 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पर विस्तृत है। बाड़मेर, जालौर, जोधपुर, सिरोही, पाली, नागौर, सीकर और झुंझुनूं, जिलों में अधिकतर पायी जाती है। इसका रंग भूरा होता है। यह रेतीली मृदा की अपेक्षा अधिक उपजाऊ होती है। इस मृदा में फॉस्फोरस तल अधिक मात्रा में पाया जाता है। बनावट की दृष्टि से यह मृदा मध्यम से थोड़ी भारी होती है।

**3 लाल पीली मृदा (Red Yellow Soil )–** अरावली पर्वत के पश्चिमी पहाड़ी क्षेत्र में लाल–पीली मृदा पायी जाती है। यह मृदा कम उपजाऊ होती है। इसमें कैल्सियम कार्बोनेट व चूने की मात्रा अधिक पायी जाती है। इसमें कपास, मूँगफली तथा मक्का की फसलें बोयी जा सकती है। यह मुख्यतः उदयपुर, भीलवाड़ा, बांसवाड़ा, सिरोही, अजमेर, चित्तौडगढ़ जिलों में पायी जाती है।

इस मृदा का pH मान 5.5 से 8.5 के बीच होता है।

**4 लाल लोमी मृदा (Red Loamy Soil ) –** इस मृदा का लाल रंग इसमें उपस्थित लोह कणों के कारण होता है। इसमें पानी अधिक समय तक रहता है। इसलिए वर्षा के बाद लम्बे समय तक मृदा में नमी बनी रहती है। इस मृदा में चूना, पोटाश एवं फॉस्फोरस की कमी होती है। रासायनिक खाद देने और सिंचाई करने पर चावल, कपास, चना, गेहूँ, गन्ना आदि उगाये जा सकते है। यह मृदा दक्षिणी राजस्थान के डूंगरपुर, बासंवाड़ा,उदयपुर व चित्तौडगढ़ के कुछ भागों में पायी जाती है।

**5 दोमट या कछारी मृदा (Loamy Soil )–** यह मृदा कृषि के लिए सबसे अच्छी मानी जाती है। इसकी रचना नदी नालों के किनारे तथा उनके प्रवाह क्षेत्र में होती है। इसका रंग लाल होता है। यह राज्य में अलवर, भरतपुर, धौलपुर, टोंक, कोटा व सवाईमाधोपुर जिलों में पायी जाती है। इसमें सभी फसलें सफलतापूर्वक उगायी जा सकती है।

**6 काली मृदा (Black Soil )–** यह मृदा काले रंग की होती है। उदयपुर व कोटा डिवीजन (खण्ड) में बहुतायत से पायी जाती है कपास की खेती के लिए सर्वोत्तम मानी जाती है। वैसे सभी प्रकार के फसल उत्पादन के लिए उपयुक्त रहती है।

**7 लाल व काली मिश्रित मृदा (Red & Black Mixed Soil )–** यह मृदा सामान्यतः हल्के गठन वाली होती है। इसमें साधारणतः फॉस्फेट, नाइट्रोजन, कैल्सियम और कार्बनिक पदार्थों की कमी होती है। इसमें कपास, मक्का, आदि की खेती की जा सकती है। यह भीलवाड़ा व उदयपुर के पूर्वी भागों में एवं चित्तौड़गढ़ , डूंगरपुर व बासंवाड़ा आदि जिलों

में मिलती है।

**8 भूरी रेतीली कछारी मिट्टी (Brown Sandy Loam Soil )–** यह मिट्टी अलवर व भरतपुर के उतरी भाग में और गंगानगर जिले के मध्य भाग में मिलती है। यह मिट्टी नदियों द्वारा लायी गई है। इसलिए उपजाऊ है। यह कपास और गेहूँ के उत्पादन के लिए अच्छी है।

मृदाओं का उपरोक्त वर्गीकरण तथ्यों व pH मूल्य के आधार पर किया गया है। राजस्थान कृषि विभाग ने मिट्टी की उर्वरता के आधार पर भी वर्गीकरण किया है जिसमें निम्नलिखित 14 तरह की मृदाओं के नाम उल्लेखित है।

| | |
|---|---|
| 1 रेतीली मृदा | 2 रेतीली चूना रहित मृदा |
| 3 रेतीली धोरेयुक्त मृदा | 4 रेतीली जलोढ़ मृदा |
| 5 सीरो जोन मृदा | 6 जिंक एवं चूनायुक्त मृदा |
| 7 भूरी चूना युक्त मृदा | 8 लवणीय व क्षारीय मृदा |
| 9 नई जलोढ़ मृदा | 10 धूसर भूरी जलोढ़ मृदा |
| 11 पीली भूरी मृदा | 12 लाल दोमट मृदा |
| 13 गहरी सामान्य काली मिट्टी | 14 पथरीली मिट्टी |

## अभ्यास प्रश्न

### बहुचयनात्मक प्रश्न

1. मृदा आयतन का कितना प्रतिशत आयतन ठोस पदार्थ से घिरा रहता है?
   (अ) लगभग 50 प्रतिशत (ब) लगभग 25 प्रतिशत
   (स) लगभग 5 प्रतिशत (द) लगभग 100 प्रतिशत
2. मृतिका के कणों का व्यास होता है –
   (अ) 0.002 मिमी से कम
   (ब) 0.002 मिमी से अधिक
   (स) 1.00 मिमी से 1.20 मिमी तक
   (द) 0.25 मिमी से 0.5 मिमी से तक
3. पौधों का कितने प्रतिशत भाग जल से निर्मित होता है?
   (अ) लगभग 50 प्रतिशत
   (ब) लगभग 70 से 95 प्रतिशत
   (स) लगभग 25 से 35 प्रतिशत
   (द) लगभग 100 प्रतिशत
4. निम्न में से पौधों के लिए महत्वपूर्ण जल है –
   (अ) आसुत जल (अ) आर्द्रताग्राही जल
   (स) केशीय जल (द) स्वतंत्र जल
5. खड़ी फसल की मृदा में कार्बन–डाई–ऑक्साईड की मात्रा परती मृदा की अपेक्षा होती है –
   (अ) लगभग 10 गुनी (ब) लगभग 2 गुनी
   (स) लगभग बराबर (द) लगभग 20 गुनी

### अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

6. मृदा की परिभाषा लिखिए।
7. मृदा के मुख्य अवयव कौन–कौन से है ?
8. मृदा ह्यूमस के बारे में लिखिए ।
9. मृदा ताप का क्या महत्व है?
10. मृदा वातन किसे कहते है?
11. लवणीय मृदा से क्या तात्पर्य है ?
12. असलांग बिन्दु किसे कहते है?
13. मृदा अम्लीयता के प्रकार लिखिए।

### लघूत्तरात्मक प्रश्न

14. मृदा गठन किसे कहते है? इसका कृषि में महत्व समझाइये।
15. मृदा संरचना का जल की अन्तःस्रवण गति पर क्या प्रभाव पड़ता है? लिखिए।
16. मृदा रन्ध्रावकाश प्रतिशतता की गणना का सूत्र लिखिए।
17. लवणीयता का पौधों पर क्या प्रभाव पड़ता है? लिखिए।
18. यू.एस.डी.ए.पद्धति के अनुसार मृदा वर्ग कणों का वर्गीकरण लिखिए।

### निबंधात्मक प्रश्न

19. मृदा जल कितने प्रकार का होता है? इनमें कौनसा जल पौधों के लिए उपयोगी है? और क्यों?
20. लवणीय मृदा किसे कहते है? इन मृदाओं को सुधारने के रासायनिक उपाय लिखिए?
21. मृदा वायु के संगठन को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कीजिए।
22. अम्लीय मृदा की परिभाषा लिखिए। अम्लीय मृदा बनने के कारण लिखिए।
23. मृदा संरचना के प्रकारों का वर्णन कीजिए।
24. मृदा के प्रमुख अवयवों का वर्णन कीजिए।
25. राजस्थान की प्रमुख मृदाओं का वर्णन कीजिए।

**उत्तर माला –** 1. (अ) 2. (अ) 3. (ब) 4. (स) 5. (अ)

# अध्याय–4
# पोषक तत्व एवं उर्वरक
# (Plant Nutrients and Fertilizers)

बीज में संचित पोषक तत्वों का उपयोग करते हुए अंकुरण के समय प्रांकुर (Plumule) एवं मूलांकुर (Radicle) बीज से बाहर निकलते है। संचित भोजन समाप्त होने तक पौधों पर पत्तियों का निर्माण होने लगता है और स्वपोषी (Autotroph) पौधे पत्तियों में उपस्थित पर्ण हरित (Chlorophyll) की सहायता से वायु से कार्बन–डाइ–आक्साईड ($CO_2$) व भूमि से पानी ($H_2O$) व अन्य पोषक तत्व ग्रहण करके कार्बोहाइड्रेट के रूप में अपने भोजन का निर्माण करते है। शताब्दियों से यह माना जाता रहा है कि धरातलीय पौधों की जड़ें मृदा से अपना पोषण प्राप्त करती है। 19वीं सदी के पूर्वाद्ध तक यह माना जाता रहा है कि पौधों को वृद्धि एवं विकास के लिए कुछ निश्चित रासायनिक तत्वों की आवश्यकता होती है। ये पोषक तत्व मृदा से मुख्यतः अकार्बनिक आयनों के रूप में पौधों की जड़ों द्वारा अवशोषित किए जाते है। चूंकि ये आयन मृदा के खनिज (Minerals) घटकों से मृदा विलयन में व्युत्पन्न (Derived) होते है। अतः ऐसे अकार्बनिक आयन जो मृदा से प्राप्त होते है और पादप वृद्धि के लिए अपेक्षित/अभिष्ट होते है, खनिज पोषक तत्व (Mineral Nutrient) कहलाते है। पौधों द्वारा पोषक तत्वों का अवशोषण (Absorption), स्थानांतरण (Translocation) एवं आत्मसात्करण (पचाने की क्रिया, Assimilation) की प्रक्रिया को खनिज पोषण कहा जाता है। मृदा द्वारा पौधों को पर्याप्त मात्रा एवं उचित अनुपात में पोषक तत्व आपूर्ति करने की पैतृक क्षमता को मृदा उर्वरता कहते है। यह उत्पादकता ज्ञात करने का मुख्य घटक है।

अद्यतन तकनीको से पादप विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि प्राकृतिक रूप से पादप शरीर में 30 तत्व और कुछ मामलों (Cases) में 90 तक तत्व पौधों में पाये जाते है। परंतु पादप शरीर में उपस्थित ये सभी तत्व पौधे के वृद्धि और विकास में आवश्यक नहीं होते है। वैज्ञानिकों आरनन और स्टाउट (Arnon and Stout) ने 1939 में पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्व के मापदण्ड प्रस्तावित किए जिन्हें आरनन ने पुनः 1954 में परिष्कृत (Refined) किया। उनके अनुसार उन पोषक तत्वों को पौधे के लिए आवश्यक माना जाता है जो निम्न मापदण्ड पूर्ण करते है :–

1. किसी तत्व की कमी के कारण पौधा अपने जीवन चक्र की वानस्पतिक वृद्धि अथवा प्रजनन प्रक्रिया को पूर्ण नहीं कर सकता है।
2. पौधे पर कमी के लक्षण तत्व विशेष के लिए विशिष्ट होते है, अर्थात् पौधे पर कमी के लक्षण प्रकट होने पर वह तत्व विशेष उपयोग करने पर ही कमी के लक्षण दूर होते है किसी अन्य तत्व के उपयोग से नही।
3. तत्व पौधें के पोषण या उपापचय (Metabolism) क्रियाओं में प्रत्यक्ष तौर पर सम्मिलित होता है

इस आधार पर निम्न सारणी में उल्लिखित 17 तत्वों को पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्व (Essential Nutrients) माना जाता है।

**सारणी : पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्व एवं तत्वों का रूप (उपलब्ध अवस्था, Available forms) जिनमें पौधे तत्व का अवशोषण करते है।**

| खनिज तत्व | आयनिक रूप | गैर आयनिक रूप |
|---|---|---|
| कार्बन (C) | | |
| हाइड्रोजन (H) | | |
| ऑक्सीजन (O) | | |
| नाइट्रोजन (N) | $NH^+_4$ (अमोनियम), $NO_3^-$ (नाइट्रेट) | $CO(NH_2)^2$ (एमाइड) |
| फॉस्फोरस (P) | $H_2PO_4^-$ (मोनो), $HPO_4^{-2}$(डाइ), $PO_4^{-3}$ (ट्राइ), | |
| पोटैशियम (केलियम K) | $K^+$ | |

| | | |
|---|---|---|
| कैल्सियम (Ca)<br>मैग्नीशियम (Mg)<br>गन्धक (S)<br>लोहा (Fe)<br>मैंगनीज (Mn)<br>ताम्बा (Cu)<br>जस्ता (Zn)<br>बोरॉन (B)<br>मोलिब्डेनम (Mo)<br>क्लोरीन (Cl)<br>निकल (Ni) | $Ca^{++}$<br>$Mg^{++}$<br>$SO_4^{-2}$(सल्फेट),<br>$Fe^{++}$(फेरस), $Fe^{+++}$(फेरिक)<br>$Mn^{++}$<br>$Cu^{++}$<br>$Zn^{++}$<br>$H_3BO_3$, $H_2BO_3^-$<br>$MoO_4^{-2}$<br>$Cl^-$<br>$Ni^{++}$ | $SO_2$ (पत्तियों द्वारा)<br>EDTA के साथ $FeSO_4$<br>EDTA के साथ $MnSO_4$<br>EDTA के साथ $CuSO_4$<br>EDTA के साथ $ZnSO_4$ |

यूरिया ($NH_2CONH_2$) उर्वरक का उपयोग करने पर पौधे नत्रजन को कार्बनिक रूप एमाइड ($NH_2$) द्वारा भी ग्रहण कर सकते है। अधिकांशतः पौधें नत्रजन को नाइट्रेट ($NO_3^-$) रूप में ग्रहण करते है। विशेष परिस्थितियों जैसे धान के खेत जहाँ पानी भरा रहता है, या अन्य जलमग्न खेतों में पौधे अमोनियम($NH_4^+$) के रूप में भी नत्रजन को ग्रहण करते है।

इन मापदण्डो के आधार पर उपरोक्त 17 तत्वों के अलावा अन्य तत्वों को पौधों के लिए आवश्यक नहीं माना जाता है। परन्तु कुछ तत्व फसलों की उपज बढ़ानें में सहायक होते है जैसे साडियम (Na), चुकन्दर (Sugarbeat),शलजम (Turnip) आदि फसलों के लिए प्रभावी होता है। 1961 में निकोलस (Nicholas) ने "Functional Nutrient" क्रियात्मक पोषक तत्व शब्द प्रतिपादित किया जिसके अनुसार किसी पोषक तत्व का कार्य विशिष्ट हो या नहीं, यदि पौधें की उपापचयी क्रियाओं में कार्य करता है उसे क्रियात्मक पोषक तत्व कहते है। सोडियम के अलावा, कोबाल्ट (CO), वेनेडियम (V) और सिलिकॉन (Si) तत्वों को भी क्रियात्मक पोषक तत्व कहा जाता है। किसी भी एक आवश्यक पोषक तत्व की कमी के कारण पौधे की वृद्धि प्रभावित होती है। पौधे एक आवश्यक तत्व की कमी के कारण अन्य उपलब्ध तत्वों का उचित उपयोग नहीं कर पाते है और अन्य सभी आवश्यक तत्वों की अनुकूल अवस्था में उपलब्धता होते हुए भी फसलों से अधिकतम उत्पादन प्राप्त नहीं किया जा सकता है। पौधे की अच्छी बढ़वार के लिए यह आवश्यक है कि भूमि में पोषक तत्व (i) घुलनशील एवं उपलब्ध अवस्था (Available form) में हो। (ii) मृदा घोल में तत्वों की सान्द्रता उचित हो एवं (iii) विभिन्न तत्वों का मृदा में संतुलन पौधों की बढ़वार के अनुकूल हो।

## पोषक तत्वों का वर्गीकरण

पौधों को अपनी सामान्य वृद्धि और जीवन चक्र पूर्ण करने के लिए 17 पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। पौधे के ऊतको में इन तत्वों की सापेक्षिक मात्रा या सांद्रण के आधार पर इनको निम्नानुसार वर्गीकृत किया जाता है –

**(अ) मुख्य पोषक तत्व (Macro/major nutrients)** :– इन पोषक तत्वों की पौधों को अधिक मात्रा में (>1ppm) आवश्यकता होती है। इन्हे पुनः दो भागों में विभक्त किया गया है –

1. **प्राथमिक पोषक तत्व (Primary Nutrients)** :– कार्बन (C) , ऑक्सीजन (O), हाइड्रोजन (H), नत्रजन (N), फॉस्फोरस (P) एवं पोटैशियम (K)। इनमें से C, O, H पौधों को प्राकृतिक रूप से हवा और पानी के द्वारा प्राप्त हो जाते है। शेष तीनों (N, P, K) तत्व विश्व की लगभग सभी प्रकार की मृदाओं में कम मात्रा में पाये जाते है। इस कारण से विश्व का उर्वरक उद्योग इन तत्वों को अधिक महत्व देता है। अतः इन्हें प्राथमिक (Primary) या उर्वरक पोषक तत्व (Fertilizer Nutrients) भी कहा जाता है।
2. **द्वितीयक पोषक तत्व (Secondary Nutrients)** :– प्राथमिक पोषक तत्वों की तुलना में कम मात्रा में पौधों को आवश्यकता होती है साथ ही अनजाने तौर पर N, P, K उर्वरकों के साथ प्रयुक्त किए जाते है। अतः द्वितीयक पोषक तत्व कहलाते है। इस वर्ग में कैल्सियम, मैग्निशियम एवं गन्धक (सल्फर) पोषक तत्व सम्मिलित किये जाते है।

**(ब) सूक्ष्म पोषक तत्व (Micro nutrients)** :– इन पोषक तत्वों की पौधों को कम मात्रा में (<1ppm) आवश्यकता

होती है। अतः इन्हे सूक्ष्म पोषक तत्व कहते है। आयनों पर आवेश के आधार पर इनको दो भागों में विभक्त किया जाता है –

1. **धनायन (Cations) :–** लोहा, जस्ता, ताम्बा, मैग्नीज व निकल।
2. **ऋणायन (Anions) :–** बोरॉन, मोलिब्डेनम व क्लोरीन।

यद्यपि विभिन्न पोषक तत्व पौधों द्वारा भिन्न–भिन्न मात्राओं में ग्रहण किए जाते है तथापि सभी पोषक तत्व पौधे के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण होते है। सूक्ष्म पोषक तत्वों की सूक्ष्म मात्रा ही पौधों में इष्टतम प्रभाव लाने में प्रभावी होती है। इनकी हल्की सी कमी या अधिकता पौधों की वृद्धि व विकास को प्रभावित कर सकती है।

**पौधों में कार्य के आधार पर पोषक तत्वों को निम्नानुसर वर्गीकृत किया जा सकता है :–**

1. आधारभूत संरचनात्मक पोषक तत्व(Basic structural nutrients) :– जो पौधों की आधारभूत/बुनियादी संरचाओं के संघटक तत्व होते हैं जैसे – कार्बन, हाईड्रोजन व आक्सीजन।
2. सहायक संरचनात्मक पोषक तत्व (Accessory structural nutrients):– ये तत्व ऊर्जा भण्डारण, स्थानान्तरण एवं ऊर्जा बन्धन में उपयोगी होते है। ये जीवित ऊतकों के लिए बहुत सक्रिय एवं महत्वपूर्ण होते हैं। ये तत्व हैं : नत्रजन, फॉस्फोरस एवं गन्धक(सल्फर)
3. नियामक एवं वाहक पोषक तत्व (Regulatory and Carrier Nutrients) ये पोषक तत्व कोशिका जीव द्रव्य में आवेश संतुलन के लिए आवश्यक होते हैं और नियामक व वाहक की तरह कार्य करते हैं। पोटैशियम कैल्सियम एवं मैग्नेशियम इस वर्ग में आते हैं।
4. उत्प्रेरक एवं क्रियावर्द्धक पोषक तत्व (Catalyser and Activator Nutrients) लोहा, मैग्नीज, जस्ता, ताम्बा, बोरॉन, मोलिब्डेनम व क्लोरीन जैसे तत्व जो किण्वक (Enzyme) क्रियावर्द्धक और इलेक्ट्रान परिवहन में शामिल होते हैं, उत्प्रेरक एवं क्रियावर्द्धक पोषक तत्वों की श्रेणी में आते है।

**मृदा में गतिशीलता (Mobility) के आधार पर**

मृदा में पोषक तत्व की गतिशीलता पौधों के लिए तत्वों की उपलब्धता और उर्वरक प्रयोग विधि को प्रभावित करती है। मृदा में गतिशीलता के आधार पर पोषक तत्वों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत करते हैं :–

**(अ) गतिशील (Mobile) :–** ये मृदा विलयन में अत्यधिक घुलनशील होने के कारण गतिशील होते है। इस कारण जड़ क्षेत्र से इनका ह्रास भी शीघ्र होता है। नाइट्रेट ($NO_3^-$), सल्फेट ($SO_4^{-2}$), बोरेट ($BO_3^{-3}$), मैग्नीज ($Mn^{2+}$)एवं क्लोरीन ($Cl^-$) इस वर्ग में शामिल होने वाले तत्व हैं।

(ब) कम गतिशील (Less Mobile) :– ये गतिशील तत्वों की तुलना में कम गतिशील होते है और मृदा में मृतिका कणों(Clay particles) पर चिपके (Adsorbed) रहते है। अमोनियम ($NH_4^+$), पोटैशियम ($K^+$), कैल्सियम ($Ca^{2+}$), मैग्नीशियम ($Mg^{2+}$), व ताम्बा ($Cu^{2+}$) इस वर्ग के तत्व है।

(स) स्थिर (Immobile) :– जस्ता ($Zn^{+2}$) एवं फॉस्फोरस ($H_2PO_4^-$ व $HPO_4^{-2}$) जैसे तत्व अत्यधिक प्रतिक्रियाशील होते है और मृदा में शीघ्र ही स्थिर हो जाते है।

अत्यधिक स्थिर पोषक तत्वों को जड़ें केवल अपनी सतह के पास आने पर ही अवशोषित कर पाती है जबकि अत्यधिक गतिशील पोषक तत्व सम्पूर्ण जड़ क्षेत्र से भी जड़ों द्वारा अवशोषित किए जा सकते है। पौध वृद्धि के लिए जड़े जिस जड़ क्षेत्र से पोषक तत्वों को अवशोषित करते है वह जड़ क्षेत्र फोरेज क्षेत्र (Forage area) कहलाता है। स्थिर तत्वों के लिए जड़ों की सतह का क्षेत्र और अत्यधिक गतिशील तत्वों के लिए पूरा जड़ क्षेत्र ही फोरेज क्षेत्र कहलाता है।

**पौधे में गतिशीलता के आधार पर :–** इस आधार पर पौधों पर प्रकट होने वाले पोषक तत्वों की कमी के लक्षणों को पहचानने और उनके निराकरण में सहायता मिलती है। जो पोषक तत्व पौधे में अत्यधिक गतिशील होता है, कमी की अवस्था में पौधे के शीर्ष भाग में पहुँच जाते है और उनकी कमी के लक्षण पौधे के निचले भागों तथा पुरानी पत्तियों पर दिखाई देते हैं।

1. अत्यधिक गतिशील (Highly mobile) :– नत्रजन, फॉस्फोरस, पोटेशियम, मैग्नेशियम, मोलिब्डेनम (कमी के लक्षण पौधे के नीचे के भाग पर)।
2. मध्यम गतिशील (Moderately mobile) :– जस्ता (कमी के लक्षण पौधे के मध्य भाग पर)।
3. कम गतिशील (Less mobile) :– गन्धक, लोहा, मैग्नीज, ताम्बा, क्लोरीन (कमी के लक्षण पौधे के शीर्ष भाग में नई पत्तियों पर)।
4. स्थिर (Immobile) :– कैल्सियम एवं बोरॉन (कमी के लक्षण नव कलिकाओं और शीर्ष भाग पर)।

पौधे में गतिशीलता के आधार पर पोषक तत्वों की कमी के लक्षणों को निम्न तालिका के आधार पर समझा जा सकता है :–

- पुरानी पत्तियों पर (N,P,K,Mg,Mo)
  - मृत स्थान के साथ (With dead spot) (K,Mo)
  - मृत स्थान के अलावा (Without dead spot) (N,P,Mg)
    - पर्ण शिराएँ हरी (Mg)
    - पर्ण शिराएँ पीली (N)
- नई पत्तियों पर (S,Fe,Mn,Cu,Cl)
  - पर्ण शिराएँ हरी (Fe, Mn)
  - पर्ण शिराएँ पीली (S,Cu,Cl)
- पौधे के मध्य भाग पर (Zn)
- पौधे के शीर्ष भाग पर (Ca,B)

## पोषक तत्वों का महत्व एवं कमी के लक्षण व कमी को दूर करने के उपाय :–

### नत्रजन के कार्य

(1) पत्ती में हरे रंग (पर्णहरित), अमीनो अम्ल, प्रोटीन, न्यूक्लिक अम्ल (RNA, DNA), कई किण्वकों (Enzymes), जीव द्रव्य की रचना में नत्रजन मुख्य संघटक तत्व है। पौधों में नत्रजन से अमीनो अम्ल, प्रोटीन व जीव द्रव्य का निर्माण होता है।

(2) नत्रजन की कुछ मात्रा सैलूलोज इत्यादि के रुप में कोशिका–भित्ति पदार्थ बनाने के काम भी आती है। नत्रजन से कोशिका का आकार बढ़ता है।

(3) नत्रजन से, फास्फोरस व पोटैशियम का पौधों द्वारा उपयोग सन्तुलित रुप में होता है।

(4) पत्ती वाली सब्जियों के गुणों में वृद्धि करती हैं, पत्तियों में सरसता लाती है।

(5) दाने व चारे की फसलों में प्रोटीन की मात्रा बढ़ती है।

(6) दाने सुडौल व गूदेदार बनते हैं।

(7) गन्ना, गेहूँ, जौ व जई आदि में कल्ले अधिक फूटते हैं।

(8) जैविक (कार्बनिक) पदार्थ के शीघ्र सड़ाव में सहायक है।

(9) पौधों की वानस्पतिक वृद्धि तेजी से होती है।

### अधिक नजत्रन से हानियाँ :–

(1) फसल देर में पकती है क्योंकि अधिक नत्रजन ग्रहण कर फसल काफी समय तक हरी बनी रहती है। अगर मृदा में फॉस्फोरस व पोटाश की कमी है तो फसल में दाना बहुत देर में बनता है व वजन भी कम होता है।

(2) पत्तियों में अधिक सरसता आने से पौधों पर कीट पतंगों व बीमारियों का आक्रमण भी बढ़ जाता है।

(3) पौधों में कोमलता व कोशिका भित्ति पतली होने के कारण पाला व सूखा सहन करने की शक्ति भी पौधे में कम हो जाती है।

(4) सब्जियों व अन्य फसलों के भण्डारण गुणों (keeping quality) में कमी आ जाती है।

(5) गन्ने की फसल में अधिक नत्रजन से शक्कर की मात्रा घटती है।

(6) आलू जैसी फसलों में वानस्पतिक वृद्धि अधिक होकर कन्द की पैदावार कम होती है।

(7) अधिक नत्रजन ग्रहण कर पौधे बढ़ते हैं व गिरने लगते है।

(8) भूसे की मात्रा दाने की अपेक्षा अधिक बढ़ती है।

### नत्रजन की कमी के लक्षण :–

1. नत्रजन पौधों में गतिशील होने के कारण कमी के लक्षण पहले पुरानी (निचली) पत्तियों पर आते है और फिर ऊपर की ओर नई पत्तियाँ प्रभावित होती हैं व सूखती रहती हैं।
2. पौधे हल्के पीले रंग के दिखाई पड़ते है। सर्वप्रथम पर्ण शीर्ष से शुरू होकर पर्ण आधार की तरफ V आकार के रूप में पीलापन विकसित होता है।
3. पौधे बौने रह जाते हैं।

4. नत्रजन की भारी कमी में, पौधे पर फूल नहीं बनते या बहुत कम बन पाते है। दाने सिकुड़े हुए बनते है जिससे पौधे की उपज कम हो जाती है।
5. कल्ले (Tiller) वाली फसलों में कल्ले कम फूटते हैं।
6. इसकी अत्यधिक कमी से पत्तियों का रंग सफेद हो जाता है। पत्तियाँ सीधी और कठोर बन जाती है।
7. फल वाले वृक्ष में, फल गिर जाते हैं।
8. प्रोटीन प्रतिशत कम होती है।

## नत्रजन की कमी को दूर करने के उपाय :–

फसल में नत्रजन की कमी की पूर्ति के लिये विभिन्न नत्रजन स्रोत काम में लिये जा सकते हैं जैसे यूरिया, किसान खाद, अमोनियम सल्फेट तथा अन्य जैविक खाद आदि। इसके साथ–साथ जैव उर्वरक (Rhizobium, Azotobactor) आदि का उपयोग भी लाभदायक रहता है।

## फॉस्फोरस के कार्य :–

1. फॉस्फोरस कोशिकाओं में ऊर्जा भण्डारण एवं ऊर्जा स्थानान्तरण के लिए उत्तरदायी है। कोशिका की ऊर्जा मुद्रा (Energy Currency) कहलाता है।
2. फॉस्फोरस न्यूक्लिक अम्ल, शर्करा फॉस्फेट, न्यूक्लियोप्रोटीन आदि का अवयव होकर पौधों के आनुवांशिक गुणों के अगली पीढ़ी में वाहक का कार्य करता है।
3. फॉस्फोरस से पौधे की जड़ों का विकास तेज एवं सुदृढ़ होता है जो कि अन्य पोषक तत्वों के मृदा से अवशोषण में सहायक है।
4. इसकी उपस्थिति से कोष विभाजन शीघ्र होता है। क्योंकि यह कोशिका के केन्द्रक में पाये जाने वाले गुणसूत्र तथा ऐसी रचनाओं को बनाने के काम में आता है जिनसे नई–नई कोशिकाओं का निर्माण होता है।
5. पौधों में बीज स्वस्थ उत्पन्न होते हैं तथा बीजों का भार भी बढ़ जाता है अर्थात फूल व फल के लिए इसकी उपस्थिति आवश्यक है।
6. फॉस्फोरस से फसलों में (विशेष तौर से अनाज वाली फसलों में) परिपक्वता जल्दी आती है।
7. फॉस्फोरस पर्याप्त मात्रा में देने से दाने की उपज, भूसा की अपेक्षा अधिक बढ़ती है।
8. फल सब्जियों व दानों के गुणों में वृद्धि होती है।
9. पौधों में रोगों व कीटों के आक्रमण के प्रति प्रतिरोधकता बढ़ती है।
10. दलहनी फसलों की जड़ों में पाये जाने वाली ग्रन्थियों का विकास इसकी उपस्थिति में अधिक होता है, जिससे वायुमण्डलीय नत्रजन का मृदा में स्थिरीकरण अधिक होकर पौधों में उपलब्धता बढ़ती है।
11. अधिक नत्रजन के बुरे प्रभाव को दूर करता है।

## पौधों पर फॉस्फोरस की कमी के लक्षण :–

(1) पत्तियों का रंग हल्का बैंगनी या भूरा हो जाता है। पौधों में फॉस्फोरस गतिशील है अतः लक्षण पहले नीचे की पत्तियों पर तत्पश्चात् ऊपर की पत्तियों की ओर बढ़ते हैं। पत्तियों के सिरे से यह रंग प्रारम्भ होकर, किनारे की और बढ़ता है। गेहूँ व गन्ना आदि की फसलों में कल्ले कम फूटते हैं।

(2) पौधों की जड़ो की वृद्धि व विकास बहुत कम होता है तथा कभी–कभी जड़ें भी सूख जाती है।

(3) परिपक्वता देर से होती है, फूल फल बहुत देर में बनते हैं तथा फलों या बीजों का आकार बहुत छोटा होता है।

(4) पौधे में पर्व छोटे पड़ जाते है। शाखाएँ पतली व कमजोर होती है।

(5) पौधे छोटे रह जाते है तथा पत्तियों का रंग गहरा हरा हो जाता है।

## फॉस्फोरस की कमी को दूर करने के उपाय :–

फसलों में जब फॉस्फोरस की कमी दिखाई पड़ती हैं, उस समय तक उर्वरक देने का समय निकल जाता है। लेकिन लम्बी अवधि वाली फसलों तथा फल वृक्षों में इसकी कमी को दूर किया जा सकता है। फॉस्फोरस की कमी के प्रभाव से फसलों को बचाने के लिये, सबसे उत्तम उपाय यही है कि फॉस्फेट की मात्रा का निर्धारण, मृदा परीक्षण के आधार पर फसल योजना बनाते समय अवश्य करें।

## पोटाश के कार्य :–

(1) यह पत्तियों के पर्ण रन्ध्रों के खुलने बन्द होने को नियमित करता है। अतः पौधों के वाष्पोत्सर्जन को नियन्त्रित करने के साथ – साथ पोषक तत्वों के उद्ग्रहण व संवहन के लिए महत्वपूर्ण है।

(2) फसल को गिरने से रोकता है तथा भूमि व जलवायु की प्रतिकूल दशाओं में फसलों के अन्दर प्रतिरोधकता बढ़ाता है। जड़ों को मजबूत बनाता है।

(3) फसलों में बीमारी व कीटपतंगो के आक्रमण के प्रति प्रतिरोधकता बढ़ाता है।

(4) फसलों की गुणवत्ता में वृद्धि होती है। आलू व अन्य सब्जियों के स्वाद में वृद्धि करता है। सब्जियों के पकने के गुण को सुधारता है। तम्बाकू में पत्तियों की गुणवत्ता सुधारता है।

(5) यह पौधों के शर्करा निर्माण व संवहन में सहायक होता है। अधिक कार्बोहाइड्रेट रखने वाली फसलें जैसे आलू, धान, चुकन्दर एवं अन्न वाली फसलें आदि पोटाश के अभाव में अधिक प्रभावित होती है।

(6) पोटाश अनाज के दानों में अधिक गूदा पैदा करके उन्हें सुडौल करता है। इससे दाने हृष्ट–पुष्ट व अच्छे बनते है। उनके आकार में वृद्धि होकर उनकी रखने की गुणवत्ता (Keeping quality) अच्छी होती है। दानों में चमक आ जाती है।

(7) इससे भूमि में नाइट्रोजन की अधिकता का कुप्रभाव दूर हो जाता है।

**पोटाश की कमी के लक्षण :–**

(1) पोटैशियम की कमी में पत्तियाँ धब्बेदार व भूरी हो जाती है। कमी के लक्षण पहले पुरानी नीचे की पत्तियों पर प्रदर्शित होते है। पत्तियाँ समय से पूर्व ही गिर जाती है।

(2) पौधों की वृद्धि में कमी आती है। तना कमजोर हो जाता है। पोटाश की कमी में दानों का आकार छोटा रह जाता है और वजन में हल्के रह जाते हैं।

(3) पत्तियों के सिरे व किनारे झुलसे नजर आते हैं। कभी–कभी पत्तियाँ मोटी पड़ने लगती हैं और पत्तियों के सिरे मुड़ने लगते हैं। मुख्य नसें हरी बनी रहती है। बाद में सूखकर जालीदार संरचना बनती है।

(4) कपास में फसल वृद्धि के समय ही पत्तियाँ गिरने लगती है। डोडे छोटे रह जाते है और ठीक प्रकार से नहीं खुलते है।

(5) तम्बाकू के पौधों में, पत्तियों की नसों के बीच में, सिरों पर या किनारों पर उत्तक निर्जीव हो जाने के कारण फल छोटे पड़ जाते हैं।

(6) फल वृक्षों में फूल व फल कम लगते हैं।

(7) मक्का के भुट्टे छोटे तथा सिरे पर दाने कम निकलते हैं।

(8) आलू में पोटाश की कमी से पत्तियों का रंग गहरा हरा हो जाता है जो बाद में पीले भूरे एवं काँसे के रंग में परिवर्तित हो जाता है। कन्द छोटे पड़ जाते हैं तथा जड़ों का विकास कम होता है। दलहनी फसलों में पत्तियों के किनारे पर पीले सफेद धब्बे पड़ जाते हैं।

(9) कमी के लक्षण खेत में पहले नम क्षेत्र में दिखाई देते हैं। जड़ों का कम विकास होने के कारण पौधा गिर जाता है।

(10) रोग व कीटों का प्रकोप बढ़ जाता है।

**पोटाश की कमी को दूर करने के उपाय :–**

जब पोटाश की कमी दिखलाई पड़ती है उस समय तक पोटाश देने का समय निकल जाता है लेकिन लम्बी अवधि वाली फसलों, फलों के वृक्ष, दलहनी फसलें जिनमें दुबारा वृद्धि होती है, प्रयोग कर सकते हैं। इसकी कम को दूर करने का सबसे अच्छा उपाय यह है कि पोटाश की मात्रा का निर्धारण मृदा परीक्षण के आधार पर फसल योजना बनाते समय ही करें।

**कैल्सियम के कार्य :–**

1. कोशिका भित्ति का मुख्य अवयव है अतः कोशिकाओं की दीवारें स्वस्थ बनती हैं।
2. कोशिका विभाजन एवं वृद्धि में आवश्यक है।
3. पौधों में कई किण्वकों जैसे काईनेज, एमाइलेज, फास्पोलाइपेज आदि को नियमित करने में सहायक है।
4. पौधों में आयन उदासीकरण द्वारा कई अम्लों के हानिकारक प्रभावों को दूर करता है।
5. क्रोमोसोम का संघटक तत्व है।
6. दलहनी फसलों की जड़ों में ग्रन्थियों के विकास में सहायक है।
7. पौधों की जड़ों व वृद्धि कलिकाओं का शीघ्र विकास होता है।
8. पौधों में कार्बोहाइड्रेट संचालन में सहायक है।
9. लोहा, एल्यूमिनियम आदि की अधिकता के प्रभावों को दूर करता है।

**कैल्सियम की कमी के लक्षण :–**

1. अग्रिम कलिका सूख जाती है।
2. कलियाँ व फल अपरिपक्व अवस्था में मुरझा जाते है।
3. जड़ों का विकास अपूर्ण होता है।
4. नई (ऊपरी) पत्तियों के किनारे झुक (Hooking) या सिकुड़ जाते हैं। पत्तियों के किनारे व शिराएँ मर जाती है। नई पत्तियाँ सफेद हो जाती है।
5. अनाज वाली फसलों में पर्व संधियों के मध्य दूरी कम हो जाती है और पत्तियाँ पास–पास उगी प्रतीत होती है एवं पौधा बौना दिखाई देता है।
6. पौधों में पुष्पन एवं परिपक्वता देरी से आती है। बालियों में दाने कम बनते (barren ear heads) हैं।

**कैल्सियम की कमी को दूर करने के उपाय :–**

1. अम्लीय मृदाओं में कम कैल्शियम होती है। उदासीन व लवणीय भूमियों में बाहर से कैल्सियम मिलाने की आवश्यकता नहीं होती।
2. अपरोक्ष रुप में कैल्सियम अमोनियम नाइट्रेट, सुपर फास्फेट, साधारण हड्डी का चूरा, बैसिग स्लेग, चूना

पत्थर व जिप्सम (कैल्सियम सल्फेट) से, भूमि में कैल्सियम की पूर्ति होती रहती है।

3. इसकी पूर्ति के लिये 3–4 वर्ष में एक बार 4–5 कुन्तल जिप्सम प्रति हैक्टर खेत में दे सकते है। खेत तैयार करते समय बारीक पीसा 10 टन चूना (कम्पोस्ट या गोबर की खाद के बाद) बिखेर कर भूमि में मिलायें।

**मैगनीशियम के कार्य :–**

1. पर्णहरित (Chlorophyll) की संरचना में आवश्यक अंश है।
2. पौधे के अन्दर पोषक तत्वों के वाहन (Translocation) व पोषक तत्वों के उद्‌ग्रहण (Uptake) में सहायता करता है।
3. पौधों में तेल व वसा के निर्माण को बढ़ाता है।
4. पौधों में न्यूक्लिक अम्ल व शर्करा के उपापचय में सहायक है।
5. राइबोसोम का अवयव है।

**मैगनीशियम की कमी के लक्षण :–**

1. पौधे की निचली (पुरानी) पत्तियों का रंग किनारे व तने के बीच से नष्ट होता है एवं शिराएँ हरी बनी रहती हैं। (Interveinal chlorosis of lower leaves)
2. अधिक कमी में पुरानी पत्तियों पर मृत ऊतकों के साथ बैंगनी धब्बे बनकर पत्तियाँ सूख जाती हैं।
3. पत्तियाँ आकार में छोटी रह जाती हैं तथा ऊपर की ओर मुड़ जाती है।
4. पत्तियाँ अपरिपक्व अवस्था में गिर सकती है तथा इन पर फफूंदी का आक्रमण हो सकता है।

**मैगनीशियम की कमी को दूर करने के उपाय :–**

आवश्यकता पड़ने पर 25–50 किग्रा. मैग्निशियम सल्फेट प्रति हैक्टर की दर से, बुआई के समय खेत में बिखेर कर मिट्‌टी में मिलायें।

**गंधक के कार्य :–**

1. गंधक युक्त आवश्यक एमिनो अम्ल (सिस्टीन, सिस्टाईन, मिथियोनीन) की संरचना में आवश्यक अंग है।
2. प्रोटीन संरचना में विन्यास एवं स्थायित्व में सहायक है।
3. बायोटीन, विटामिन बी, कोएन्जाइम A आदि अन्य मेटाबोलाईट के निर्माण में भी सहायक होता है।
4. तिलहनी फसलों के लिए गन्धक आवश्यक है।
5. पत्तियों के पर्णहरित निर्माण में सहायता करता है।
6. पौधों में सुगन्ध तेल (Essential Oil) बनाने के लिए भी गन्धक जरूरी है।
7. दलहनों की जड़ों में ग्रन्थियों को अधिक विकसित करती है एवं यह जड़ के विकास(Development) में सहायक है।

**गन्धक की कमी के लक्षण :–** महत्व के आधार पर चौथा महत्वपूर्ण तत्व माना जाता है।

1. पौधे की ऊपरी (नई पत्तियों) पत्तियों की शिरायें व शिराओं के बीच के भाग हल्के हरे रंग (Light Green) के हो जाते है।
2. पौधे की वृद्धि धीमी हो जाती है।
3. अधिक कमी होने पर पूरा पौधा पीला पड़ जाता है।

**गन्धक की कमी को दूर करने के उपाय :–**

गन्धक अमोनियम सल्फेट में 23.7%, अमोनियम सल्फेट नाइट्रेंट 12.1% सिंगल सुपर फास्फेट में 12.5% पोटैशियम सल्फेट 17.5% व जिप्सम में 18.6%, तक पाई जाती है जो परोक्ष रूप में भूमि में मिलती रहती है तथा प्रति वर्ष 10 – 12 किग्रा./है. गन्धक वर्षा से भी भूमि में पहुंचती है। कार्बनिक खादों से भी गन्धक भूमि में पहुँचती रहती है।

**जस्ते के कार्य :–**

1. कार्बोनिक एनहाइड्रेज, लेक्टेट डिहाइड्रोजिनेज, डी एन ए, आर एन ए पॉलीमरेज जैसे कई किण्वकों का संघटक तत्व होने के कारण किण्वक गतिविधियों में शामिल होता है।
2. पौधों में न्यूक्लिक अम्ल (आर एन ए) व वृद्धि नियामक (आई ए ए व जिब्रेलिक अम्ल) के निर्माण में सहायक है।
3. पौधों में जल उद्‌ग्रहण (Water uptake) के लिए आवश्यक है।
4. जस्ते का पौधों में प्रकाश संश्लेषण व नत्रजन उपापचय (Metabolism) में महत्वपूर्ण योगदान है।
5. प्रोटीन और वसा आदि को ऑक्सीकरण होने से बचाने में सहायक है।

**जस्ते की कमी के लक्षण :–**

1. जस्ते की कमी के लक्षण नयी व पुरानी पत्तियों पर एक साथ दिखाई पड़ते हैं। पत्तियों का आकार छोटा (विशेष रूप से नींबू वर्गीय फल वृक्षों में) हो जाता है, पत्तियाँ मुड़ सकती हैं।
2. पत्तियों मे शिराओं के मध्य सफेद, पीले और हल्के हरे रंग के क्षेत्र बन जाते है।
3. पत्तियों का रंग धुंधला पीला हो जाता है। जस्ते की कमी बढ़ने पर इन क्षेत्रों में ऊतक मरने लगते हैं।
4. पौधों में जल्दी ही पत्तियाँ झड़ जाती हैं।

5. फलों का आकार छोटा हो जाता है तथा फलों में बीजों का उत्पादन घट जाता है। फल कलिका रचना बहुत कम होती है।
6. नींबू कुल में लक्षण स्पष्ट दिखाई देता है। इसका तना बौना रह जाता है (Rosette Appearance)।

**जस्ते की कमी को दूर करने के उपाय :–**

10 – 30 किग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हैक्टर फसल बोने से पूर्व, खेत में प्रयोग करें। खड़ी फसल में तुरन्त उपचार के लिए 0.5% जिंक सल्फेट +0.2 % चूने (Lime) के घोल का छिड़काव करें।

**लोहे के कार्य :–**

1. पर्णहरित की निर्माण प्रक्रिया के लिए आवश्यक है।
2. नाइट्रोजिनेज, लेगहीमोग्लोबिन आदि का संघटक होने के कारण दलहनी पौधों में नत्रजन स्थिरीकरण तंत्र का अभिन्न अंग है।
3. न्यूक्लिक अम्ल व प्रोटीन के निर्माण (संश्लेषण) व शर्करा के उपापचय (मेटाबोलिक) व अवकरण में उत्प्रेरक का कार्य करता है।
4. विभिन्न किण्वकों का धात्विक संघटक होता है।
5. मोलिब्डेनम के प्रतिस्थापन के तौर पर कार्य कर सकता है।

**लोहे की कमी के लक्षण :–**

1. पौधे की नई–नई (ऊपरी) पत्तियाँ पहले पीली पड़ती है।
2. पत्तियों के किनारे बहुत समय तक हरे बने रहते है तथा शिराएँ भी हरी बनी रहती है।
3. तना छोटा हो जाता है एवं नई कलिकाएँ मुरझााई नजर आती है।
4. अत्यधिक कमी की अवस्था में शिराएँ भी पीली पड़कर पूरी पत्ती कागज जैसी पतली होकर सफेद हो जाती है।

**ताम्बे के कार्य :–**

1. प्रकाश संश्लेषण, इलेक्ट्रोन परिवहन तंत्र एवं अन्य प्रक्रमों में भाग लेने वाले किण्वकों का अवयव होता है।
2. पौधों में फूल बनने और दानों के विकास के लिए आवश्यक है।
3. लोहे के उपयोग में सहायता करता है।
4. पौधों में विटामिन ए की वृद्धि निर्माण में सहायक है।
5. दलहनी फसलों में अप्रत्यक्ष तौर पर जड़ग्रन्थियों के विकास में सम्मिलित रहता है।

**ताम्बे की कमी के लक्षण :–**

1. नई पत्तियों के किनारें व पर्णशीर्ष पर पीलापन दिखाई पड़ता है और पौधा बौना रह जाता है।
2. नींबू कुल के पौधों में नई वृद्धि वाले भागों में डाइबैक हो जाता है अर्थात पौधा ऊपर से सूखना शुरू होता है।
3. अत्यधिक कमी की अवस्था में पर्णशीर्ष व किनारों में मृत ऊतक दिखाई पड़ते है (पोटैशियम की तरह परन्तु नई पत्तियों पर )।
4. नींबू कुल के फलों में लाल भूरे धब्बे अनियमित आकार के पाये जाते है।
5. फलों के रस में अम्ल कम बनता है।

**मैंगनीज के कार्य :–**

1. प्रकाश संश्लेषण की हिल अभिक्रिया में जल के अणुओं को तोड़कर ऑक्सीजन के निर्माण से जुड़े किण्वकों का मुख्य अंग होता है।
2. पौधों में ऑग्जीन (Auxins) वृद्धि नियामकों के स्तर एवं पर्णहरित झिल्ली संरचना को बनाये रखने में सहायक होता है।
3. नत्रजन के आत्मसात्करण (Assimilation) में सहायक होता है।
4. ऑक्सीकरण के मुक्त रेडिकल्स के दुष्प्रभावों से पादप कोशिकाओं को बचाता है।
5. मैंगनीज की अच्छी आपूर्ति घटिया वायुसंचरण के दुष्प्रभावों से पौधों को बचाती है।

**मैंगनीज की कमी के लक्षण :–**

1. नई (ऊपरी) पत्तियों की शिराओं के मध्य पीलापन विकासित होकर अत्यन्त कमी में पत्तियों पर शिराओं के मध्य मृत उत्तकों के धब्बे (Necrotic spots) बन जाते है।
2. जई एवं सोयाबीन पर बहुत शीघ्र कमी के लक्षण आते है।
3. पत्तियों की छोटी–छोटी शिराएँ हरी बनी रहती है।

**बोरॉन के कार्य :–**

1. वृद्धि ऊतकों मे नई कोशिकाओं की वृद्धि एवं विकास में सहायक होते है।
2. पौधों में कैल्सियम के अवशोषण व उपयोग में सहायक है।
3. पौधों में कैल्सियम व पोटैशियम के अनुपात को नियन्त्रित करता है।
4. परागण व प्रजनन क्रियाओं व फल बीज बनाने में सहायक है।
5. दलहनी फसलों में राइजोबियम (सहजीवी) जीवाणु की ग्रन्थियों के विकास के लिए आवश्यक है।
6. एमिनों अम्ल एवं प्रोटीन संश्लेषण में सहायक है।

7. पर्ण रन्ध्रों के खुलने को नियमित करके पानी के अवशोषण को नियंत्रत करता है।

**बोरॉन की कमी के लक्षण :–**

1. शीर्ष कलिका (Terminal bud) वृद्धि बन्द होकर नई पत्तियों की मृत्यु होने लगती है।
2. अधिक कमी में वृद्धि भागों की मृत्यु हो जाती है।
3. बाद की अवस्था में पत्तियाँ मोटी एवं मुड़ी हुई होने लगती है।
4. पुष्पन एवं फल विकास बाधित हो जाता है। बाद की अवस्था में सरसों एवं गेहूँ में खराब बीज जमाव एवं बांझपन आ जाता है।
5. कुछ पौधों में तने, फल एवं कन्द फट जाते है।
6. गोभी के फूल का आकार अनियमित (Deformed), छोटा व फल पर लाल धब्बे पड़ जाते है।

**मोलिब्डेनम के कार्य :–**

1. दलहनी फसलों की जड़ों में नत्रजन स्थिरीकरण जीवाणु के लिए आवश्यक है।
2. एजोटोबेक्टर जीवाणु द्वारा भूमि में स्वतन्त्र नाइटोजन के स्थिरीकरण के लिए आवश्यक है।
3. पौधों में लोहे के अवशोषण एवं स्थानान्तरण में अहम योगदान है।
4. पौधे में नाइट्रेट अवकरण के लिए भी आवश्यक है।
5. फॉस्फोरस उपापचय क्रिया को पौधों में प्रभावित करता है।
6. पौधों में कार्बोहाड्रेट संश्लेषण के लिए भी आवश्यक है।
7. पौधों में विटामिन सी के संश्लेषण के लिए आवश्यक है।

**मोलिब्डेनम की कमी के लक्षण (अधिकांशतः अम्लीय मृदाओं पर दिखाई देते है) :–**

1. पौधों की पुरानी एवं मध्य भाग की पत्तियों पर लक्षण दिखाई पड़ते हैं।
2. नत्रजन की कमी के समान पौधे छोटे एवं पीले दिखने लगते हैं।
3. टमाटर की नीचे की पत्तियों में मोटलिंग नेक्रोसिस (ऊतक क्षय) व पत्तियों में किनारे मुड़ जाते हैं (Cupping)।
4. जई की पत्तियाँ पीछे की ओर झुक जाती हैं।
5. दलहनी पौधों पर लक्षण स्पष्ट होते हैं तथा इनकी जड़ों में बनने वाली ग्रन्थियाँ कमजोर रह जाती हैं।

**क्लोरीन के कार्य :–**

1. इन्डोल एसिटिक अम्ल (IAA) का संघटक होता है।
2. पौधों में पर्ण रन्ध्रों की कार्य प्रणाली आदि के द्वारा जल विभव को नियंत्रित करता है।
3. हिल अभिक्रिया के मैंगनीज किण्वन का अवयव होता है।
4. पौधों को कई रोगों के प्रति सहनशील बनाता है।
5. कार्बोहाइड्रेट उपापचय क्रिया को प्रभावित करता है।

**क्लोरीन की कमी के लक्षण :–**

1. खेत में इसकी कमी के लक्षण अभी तक नहीं देखे गये हैं। गमलों में क्लोरीन की कमी में पत्तियों में म्लानी रोग (Wilt) के लक्षण नजर आते हैं।
2. पत्तियों पर अनियमित आकार के पीले और मृत ऊतकों के धब्बे बन जाते हैं।
3. नई विकसित पत्तियों पर पीलापन दिखाई देता है।
4. पत्ता गोभी में इसकी कमी में पत्ते मुड़ जाते हैं।
5. बरसीम की पत्तियाँ छोटी व मोटी हो जाती हैं।
6. तने व जड़ की वृद्धि रुक जाती है।

**निकिल के कार्य**

1. पौधों में नत्रजन उपापचय (Nitrogen metabolism) को नियमित करने वाले हाइड्रोजिनेज, मिथाईल रिडक्टेज एवं युरिएज किण्वकों (enzymes) की सक्रियता को बढ़ाने में सहायक होता है।
2. दाना भरने (grain filling) और बीज की जीवन क्षमता (seed viability) के लिए आवश्यक होता है।
3. यह युरिएज एन्जाइम का धात्विक अवयव है। दलहनी फसलों के लिए लाभदायक होता है।
4. यह पौधों द्वारा लोहा के अवशोषण के लिए आवश्यक है।

**निकिल की कमी के लक्षण :–**

1. निकिल की कमी के कारण पौधों में नाइट्रेट ($NO_3^-$) का जमाव होने लगता है और अमीनों अम्ल कम होने लगते है।
2. इसकी कमी के कारण युरिएज किण्वक की सक्रियता कम हो जाती है, इस कारण पत्तियों में यूरिया एकत्रित हो जाती है जो पौधों के लिए विषैली होती है।

उपर्युक्त सूक्ष्म तत्वों के अलावा अन्य सूक्ष्म तत्व जैसे – कोबाल्ट, सोडियम, सिलिकान तथा वेनेडियम आदि यदि मृदा में उपलब्ध नहीं होते हैं तो ये भी पौधों के वृद्धि में रूकावट डालते हैं। इनकी पूर्ति भी आवश्यकतानुसार करनी चाहिये।

**मृदा में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी के कारणः–**

1. विभिन्न फसलों की संकर प्रजातियाँ हम अपना रहे है जो कि मुख्य तत्व नत्रजन, फॉस्फोरस व पोटाश की

अधिक मात्रा का उपयोग करती है। साथ ही साथ ये प्रजातियाँ मृदा में सूक्ष्म पोषक तत्वों विशेष रूप से जस्ते व लोहे की कमी को बढ़ाती है।

2. लगातार फसलों को उगाने व सघन खेती से मृदा में इन तत्वों की कमी बढ़ती जा रही है।
3. जटिल उर्वरकों के अपनाने से हम केवल अशुद्धि के रूप में बहुत कम ही सूक्ष्म पोषक तत्व मृदा में दे पा रहे है और इन जटिल उर्वरकों (जैसे – डाइ अमोनियम फॉस्फेट आदि) का प्रयोग दिन प्रतिदिन बढ़ रहा है। अतः मृदाओं में सुक्ष्म पोषक तत्वों की कमी आने की सम्भावनायें अधिक बनती जा रही है।
4. वर्तमान में कार्बनिक खादों का प्रयोग कम हो रहा है।

### पोषक तत्वों की कमी से सर्वाधिक हानि उठाने वाली फसलें (Indicator Crops) :–

1. नत्रजन व कैल्सियम – फूलगोभी, गाँठगोभी
2. फॉस्फोरस – सरसों
3. पोटैशियम व मैग्नीशियम – आलू
4. लोहा – आलू, जई, फूलगोभी, गाँठगोभी
5. मैंगनीज – जई, चुकन्दर
6. जस्ता – धान, ज्वार, बाजरा, मक्का, गेहूँ, कपास, सोयाबीन व नींबू वर्गीय फल
7. ताम्बा – सेब, लीची, बेर, नींबू व प्याज
8. बोरॉन – सूरजमुखी
9. मोलिब्डेनम – लोबिया, गोभी, रिजका व चुकन्दर
10. सोडियम – चुकन्दर
11. सिलिकॉन – गन्ना व धान

### उर्वरकों का महत्व :–

- कारखानों में विभिन्न खनिज पदार्थों की सहायता से कृत्रिम रूप से तैयार किये जाते है और एक, दो या तीन तत्व कार्बनिक खादों की तुलना में अधिक मात्रा में इन उर्वरकों से प्राप्त होते है।
- प्रयोग के एक सप्ताह बाद ही इनकी उपलब्धता पौधों को होने लगती है।
- खेत में कार्बनिक खादों की तुलना में कम मात्रा में डाले जाते है।
- निर्धारित मात्रा में अधिक प्रयोग करने पर पौधे झुलस जाते है या नष्ट हो जाते है, जमीन खराब हो जाती है।
- खेत में फसल की बुआई के साथ – साथ खड़ी फसल में भी प्रयोग कर सकते है।
- इन उर्वरकों को प्रयोग करने से 2 – 4 दिन पहले या बाद में उर्वरक को खेत में डालकर सिंचाई करना आवश्यक है जो उर्वरकों की उपयोग दक्षता बढ़ाता है।
- भंडारण में विशेष सावधानी की आवश्यकता होती है।
- इनके निरन्तर प्रयोग से मृदा के जैविक, भौतिक व रासायनिक गुणों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जैसे अमो. सल्फेट के निरन्तर प्रयोग से मृदा अम्लीय व सोडियम नाइट्रेट से क्षारीय हो जाती है।
- मृदा जीवाणुओं पर कभी – कभी प्रतिकूल प्रभाव हो सकता है।
- इनके लगातार प्रयोग से मृदा में वायु संचार ठीक नहीं रह पाता।
- मृदा कटाव को रोकने में कम लाभदायक है।
- मृदा ताप पर प्रभाव नहीं पड़ता है।
- इन उर्वरकों के अधिक प्रयोग से मृदा में पोषक तत्वों का अनुपात सन्तुलित नहीं रहता है।
- पौधों के लिए पोषक तत्व उपयोग करने की खर्चीली विधि है।

### उर्वरकों के प्रकार :–

उर्वरक उद्योगों में तैयार किए गये रसायन है जिनमें पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्व होते है। इनमें जैविक खादों की तुलना में अधिक मात्रा में पोषक तत्व होते है। इनको निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है।

#### (क) संघटक पोषक तत्वों के आधार पर

##### (अ) सरल या एकल उर्वरक (Straight fertilizers) :–

ऐसे उर्वरक जिनमें केवल एक प्राथमिक पोषक तत्व (N,P एवं K) विद्यमान होता है। एकल उर्वरकों का निम्न प्रकार से वर्गीकरण किया जाता है –

1. **नत्रजन युक्त उर्वरक** – इस वर्ग के उर्वरकों में नत्रजन विद्यमान होती है, उदाहरणार्थ अमोनियम सल्फेट, यूरिया, अमोनियम क्लोराइड आदि
2. **फॉस्फोरस युक्त उर्वरक** – फॉस्फोरस प्रदान करने वाले सभी उर्वरक इस वर्ग में सम्मिलित किये जाते है, जैसे – सुपर फॉस्फेट, शैल फॉस्फेट आदि।
3. **पोटैशियम युक्त उर्वरक** – ऐसे उर्वरक जो पोटैशियम प्रदान करते है, पोटैशियम युक्त उर्वरक कहलाते है, जैसे – पोटैशियम सल्फेट, म्यूरियेट ऑफ पोटाश आदि।

**(ब) जटिल अथवा संयुक्त उर्वरक (Complex fertilizers) :–**

**जिन उर्वरकों में एक से अधिक प्राथमिक पोषक तत्व होते है तथा उनमें से दो प्राथमिक पोषक तत्व रसायनिक संयोजन मे विद्यमान होते है वे जटिल (Complex) अथवा बहुतत्वीय उर्वरक (Multiple nutrient fertilizers) कहलाते है।** ये प्रायः दानेदार रूप में तैयार किये जाते है। जब इन जटिल उर्वरकों में दो प्राथमिक पोषक तत्व विद्यमान होते है, तो इन्हें अपूर्ण जटिल उर्वरक कहते है, उदाहरणार्थ – अमोनियम फॉस्फेट, नाइट्रोफॉस्फेट, पोटैशियम नाइट्रेट, डाइ अमोनियम फॉस्फेट आदि। लेकिन जब इन जटिल उर्वरकों में तीनों ही प्राथमिक पोषक तत्व विद्यमान होते है तो इन्हें पूर्ण जटिल उर्वरक कहते है, जैसे – नाइट्रोफॉस्फेट पोटाश युक्त श्रेणी (ग्रेड) I व II आदि।

**(स) मिश्रित उर्वरक अथवा उर्वरक मिश्रण (Mixed fertilizer or fertilizer mixture) –**

**प्राथमिक पोषक तत्व युक्त दो अथवा दो से अधिक उर्वरकों के उपयुक्त अनुपात में भौतिक मिश्रण को मिश्रित उर्वरक अथवा उर्वरक मिश्रण कहते है।** इनके द्वारा सन्तुलित मात्रा में पोषक तत्वों की पूर्ति की जा सकती है। यदि सरल उर्वरकों का फसलों में प्रयोग किया जाता है, तो निश्चित रूप से श्रम की लागत मिश्रित उर्वरकों की अपेक्षा अधिक आती है। अतः मिश्रित उर्वरकों के प्रयोग से श्रम की लागत में कमी की जा सकती है।

जटिल उर्वरकों में पोषक तत्व एक निश्चित अनुपात में विद्यमान होते है। अतः ये विभिन्न प्रकार की मृदाओं के लिए सदैव अनुकूलित नहीं होते है। सामान्यतः विभिन्न प्रकार की मृदाओं की आर्थिक आधार पर आवश्यकताओं की पूर्ति मात्र मिश्रित उर्वरकों द्वारा ही की जा सकती है।

**(ख) प्राथमिक पोषक तत्वों की मात्रा/सांद्रण के आधार पर –**

**(अ) निम्न विश्लेषण उर्वरक (Low analysis fertilizer) :–** वे उर्वरक जिनमें प्राथमिक पोषक तत्वों की कुल मात्रा 25% से कम होती है। जैसे सिंगल फॉस्फेट (16%$P_2O_5$) सोडियम नाइट्रेट (16%N) आदि।

**(ब) उच्च विश्लेषण उर्वरक (High analysis fertilizer) :–** वे उर्वरक जिनमें प्राथमिक पोषक तत्वों की कुल मात्रा 25% से अधिक होती है। जैसे यूरिया (46%N), अमोनियम फास्फेट (20% N व 20% $P_2O_5$), डाइ अमोनियम फास्फेट (18% N व 46% $P_2O_5$), पोटैशियम क्लोराइड (58-60% $K_2O$)।

**(ग) भौतिक अवस्था के आधार पर –**

**(अ) ठोस उर्वरक (Solid fertilizer) :–**

अधिकांश उर्वरक ठोस अवस्था में आते है। ये भी कई प्रकार के होते है–

1. धूल/चूर्ण (Dust) :– जिप्सम, सिंगल सुपर फॉस्फेट
2. क्रिस्टल (Crystal) :– अमोनियम सल्फेट
3. दानेदार (Prills) :– यूरिया, डाई अमोनियम फॉस्फेट
4. कणाकार (granules) :– हालैण्ड ग्रेन्यूल
5. उच्च कणाकार (super granules) :– यूरिया सुपर ग्रेन्यूल (USG)
6. ब्रिकेट (Briquettes) :– यूरिया ब्रिकेट्स

**(ब) द्रव उर्वरक (Liquid fertilizer) :–**

सीधे तौर पर या सिंचाई जल के साथ प्रयोग करने के लिए कुछ उर्वरक द्रव अवस्था में भी आते है। संभालने में आसानी, कम श्रम की आवश्यकता और खरपतवारनाशी रसायनों के साथ मिलानें की संभावना के कारण द्रव उर्वरक की स्वीकार्यता किसानों में बढ़ रही है। ये दो प्रकार के होते है।

| क्र.सं. | उर्वरक का नाम | उर्वरक जिसके साथ मिश्रण में कदापि न मिलाये |
|---|---|---|
| 1. | अमोनियम सल्फेट, अमोनियम सल्फेट नाइट्रेट, अमोनियम क्लोराइड एवं अन्य अमोनिकल उर्वरक, कैल्सियम अमोनियम नाइट्रेट (किसान खाद) तथा नत्रजन युक्त जीवांश खादों को। | चूना |
| 2. | सोडियम नाइट्रेट अथवा पोटैशियम नाइट्रेट यूरिया तथा किसान खाद को। | सुपरफॉस्फेट |
| 3. | सुपरफॉस्फेट को। | चूना या राख अथवा कैल्सियम कार्बोनेट |

1. स्पष्ट द्रव उर्वरक (Clear liquid fertilizers) :– जब नत्रजन, फॉस्फोरस एवं पोटैशियम उर्वरक पानी में पूर्ण रूप में धुल जाते है स्पष्ट द्रव कहलाते है।

2. निलम्बन द्रव उर्वरक (Suspension liquid fertilizers) :– जब उर्वरक सामग्री का कुछ अंश महीन कणों के रूप में निलम्बन अवस्था में रहता है।

**(घ) पोषक तत्व की उपस्थिति के आधार पर**

उर्वरक में उपस्थित पोषक तत्व के आधार पर नत्रजन उर्वरक, फॉस्फोरस उर्वरक, सूक्ष्म पोषक तत्व उर्वरक, लोहा उर्वरक आदि कहलाते है।

1. **नत्रजन युक्त उर्वरक –** इस वर्ग के उर्वरकों में नत्रजन विद्यमान होती है, उदाहरणार्थ अमोनियम सल्फेट, यूरिया, अमोनियम क्लोराइड आदि इन उर्वरकों को पुनः चार उपवर्गों में विभाजित किया जाता है –

**(i) नाइट्रेट उर्वरक –** इन उपवर्ग के नत्रजन युक्त उर्वरकों में नत्रजन सदैव नाइट्रेट के रूप में होते है, जैसे – सोडियम नाइट्रेट, कैल्सियम नाइट्रेट, पोटैशियम नाइट्रोफॉस्फेट आदि।

**(ii) अमोनीकल उर्वरक –** इस उपवर्ग के नत्रजन युक्त उर्वरकों में नत्रजन सदैव अमोनियम के रूप में होती है, जैसे – अमोनियम सल्फेट, अमोनियम क्लोराइड, अमोनियम फॉस्फेट आदि।

**(iii) नाइट्रेट एवं अमोनिकल नत्रजन युक्त उर्वरक –** इस उपवर्ग के नत्रजन युक्त उर्वरकों में नाइट्रेट व अमोनिया दोनों ही रूपों में विद्यमान होती है, जैसे – अमोनियम सल्फेट नाइट्रेट, कैल्सियम अमोनियम नाइट्रेट आदि।

**(iv) एमाइड उर्वरक –** इस उपवर्ग के उर्वरकों में नत्रजन सदैव एमाइड के रूप में होती है, जैसे – यूरिया, कैल्सियम सायनामाइड आदि।

2. **फॉस्फोरस युक्त उर्वरक –** फॉस्फोरस प्रदान करने वाले सभी उर्वरक इस वर्ग में सम्मिलित किये जाते है, जैसे – सुपर फॉस्फेट, शैल फॉस्फेट आदि। इस वर्ग के उर्वरकों को उनकी विलेयता के आधार पर निम्नलिखित तीन उपवर्गों में विभाजित किया जाता है –

**(i) जल विलेय फॉस्फोरस उर्वरक –** इस उपवर्ग के उर्वरक जल में शीघ्र घुलनशील होते है, जैसे – सिंगल सुपर फॉस्फेट, ट्रिपल सुपर फॉस्फेट, मोनो–अमोनियम फॉस्फेट, डाइ अमोनियम फॉस्फेट आदि। पौधों को आसानी से उपलब्ध होते है।

**(ii) साइट्रेट विलेय फॉस्फोरस युक्त उर्वरक –** इस उपवर्ग के उर्वरक जल में अघुलनशील एवं साइट्रिक अम्ल में घुलनशील होते है। जैसे – डाई कैल्शियम फॉस्फेट। पौधों को उपलब्धता मध्यम होती है।

**(iii) जल तथ साइट्रेट में अविलेय फॉस्फोरस युक्त उर्वरक –** इस उपवर्ग के उर्वरक जल और साइट्रेट दोनों में अघुलनशील होते है, जैसे – शैल फॉस्फेट, हड्डी की खाद आदि। उपस्थित फॉस्फोरस पौधों को धीरे–धीरे उपलब्ध होता है अतः लम्बी अवधि वाली फसलों आदि के लिए अधिक उपयुक्त है।

3. **पोटैशियम युक्त उर्वरक –** ऐसे उर्वरक जो पोटैशियम प्रदान करते है, पोटैशियम युक्त उर्वरक कहलाते है, जैसे – पोटैशियम सल्फेट, म्यूरेट ऑफ पोटाश, पोटैशियम नाइट्रेट, आदि। इस वर्ग के उर्वरकों को मुख्य रूप से दो उपवर्गों में निम्नलिखित प्रकार से विभाजित किया गया है –

**(i) क्लोराइड युक्त उर्वरक –** वे पोटैशियम उर्वरक जिनमें क्लोराइड पाया जाता है। इस उपवर्ग में म्यूरेट ऑफ पोटाश (पोटैशियम क्लोराइड) आता है। गन्ना, आलू, तम्बाकू आदि फसलों की गुणवत्ता प्रभावित होती है अतः इन फसलों में इन उर्वरकों का उपयोग नहीं करना चाहिए।

**(ii) क्लोराइड रहित पोटैशियम उर्वरक –** वे पोटैशियम उर्वरक जिनमें क्लोराइड नहीं पाया जाता है। इस उपवर्ग में पोटैशियम सल्फेट, पोटैशियम नाइट्रेट आदि सम्मिलित किये जाते है।

**(ङ) मृदा पर प्रभाव के आधार पर –**

लगभग सभी प्रकार के उर्वरक, उपयोग के पश्चात् मृदा पर अपना प्रभाव डालते है। प्रकृति के अनुसार उपयोग के बाद उर्वरक मृदा की अम्लीयता या क्षारीयता बढ़ाते है। इस आधार पर इन्हे निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जाता है –

**(अ) अम्लीय उर्वरक (Acid forming fertilizers) :–** जो उर्वरक मृदा में अम्लीय अवशिष्ट प्रभाव (Acidic residual effect) छोड़ते है, उन्हें अम्लीय उर्वरक कहते है। इन उर्वरकों के अवशिष्ट अम्लीय प्रभाव को उदासीन/प्रभावहीन करने के लिए आवश्यक कैल्सियम कार्बोनेट (चूना) की मात्रा को तुल्यांकी या समकक्ष अम्लीयता (equivalent acidity) कहते है।

उदाहरणार्थ 100 किग्रा अमोनियम सल्फेट उर्वरक के उपयोग करने पर उत्पन्न अवशिष्ट अम्लीयता को उदासीन करने के लिए 110 किग्रा. कैल्सियम कार्बोनेट की आवश्यकता होती है अतः अमोनियम सल्फेट की तुल्यांकी अम्लीयता 110 किग्रा होती है। ये उर्वरक क्षारीय मृदाओं की क्षारीयता कम करने में सहायक होते है। अम्लीय उर्वरकों की तुल्याकी अम्लीयता निम्नानुसार होती है –

| उर्वरक | तुल्यांकी अम्लीयता |
|---|---|
| एनहाइड्स अमोनिया | 148 |
| अमोनियम क्लोराइड | 128 |
| अमोनियम सल्फेट | 110 |
| अमोनियम सल्फेट नाइट्रेट | 93 |
| अमोनियम फॉस्फेट | 86 |
| यूरिया | 80 |

**(ब) क्षारीय उर्वरक (Alkaline forming fertilizers)** :– इसी प्रकार कुछ उर्वरक उपयोग में लेने के बाद मृदा पर क्षारीय प्रभाव छोड़ते है। इनकों क्षारीय उर्वरक कहते है।

क्षारीय उर्वरक और उनकी तुल्यांकी क्षारीयता (Equivalent basicity) निम्न प्रकार है –

| उर्वरक | तुल्यांकी क्षारीयता |
|---|---|
| सोडियम नाइट्रेट | 29 |
| कैल्सियम नाइट्रेट | 21 |
| कैल्सियम सायनामाइड | 63 |
| डाइकैल्सियम फॉस्फेट | 25 |

**उर्वरक की श्रेणी या ग्रेड (Fertilizer grade)** – किसी उर्वरक की श्रेणी या ग्रेड इस बात का द्योतक है, कि उसमे प्राथमिक पादप पोषक तत्वों की कितनी प्रतिशत मात्रा है। 'श्रेणी' शब्द जटिल और मिश्रित दोनों ही प्रकार के उर्वरकों के लिए प्रयोग किया जाता है। इसके अन्तर्गत प्राथमिक पोषक तत्व निम्नलिखित क्रमानुसार प्रतिशत मात्रा के अनुपात में व्यवस्थित होते है –

| | | |
|---|---|---|
| कुल नाइट्रोजन | : | N |
| फॉस्फोरस पेन्टा ऑक्साइड | : | $P_2O_5$ |
| जल विलेय पोटाश | : | $K_2O$ |

उपर्युक्त अनुपात की अभिव्यक्ति प्रायः N:P:K से करते है। यदि कोई उर्वरक अथवा उर्वरक का मिश्रण 16:12:8 श्रेणी (ग्रेड) का है, तो इसका तात्पर्य यह है कि अमुक उर्वरक या उर्वरक मिश्रण में 16 भाग नाइट्रोजन (N), 12 भाग फॉस्फोरस पेन्टा ऑक्साइड ($P_2O_5$) और 8 भाग जल विलेय पोटाश $K_2O$ विद्यमान है। अतः उपर्युक्त 100 किलोग्राम उर्वरक अथवा उर्वरक मिश्रण में 36 किलोग्राम (16+12+8) प्राथमिक पादप पोषक तत्व विद्यमान है।

विभिन्न फसलों की आवश्यकतानुसार इस समय अनेक श्रेणी (ग्रेड) के उर्वरक प्रचलित है। उर्वरक मिश्रण सम्बन्धी निर्देशों का पालन करते हुए सरल एवं मिश्रित उर्वरकों से वांछित श्रेणी के उर्वरक सफलता पूर्वक बना सकते है।

**उर्वरक अनुपात (Fertilizer ratio)** – यह उर्वरक अथवा उर्वरक मिश्रण में निहित नाइट्रोजन (N), फॉस्फोरस पेन्टा ऑक्साइड ($P_2O_5$) और जल विलेय पोटाश $K_2O$ का पारस्परिक अनुपात होता है, उदाहरणार्थ – उपर्युक्त 16–12–8 श्रेणी के उत्पाद में अनुपात 4:3:2 का है। इस अनुपात से इस बात का पता चलता है, कि उत्पाद उर्वरक या उर्वरक मिश्रण में नाइट्रोजन, फॉस्फोरस और पोटाश किस अनुपात में मिश्रित है।

## उर्वरक प्रयोग की विधियाँ (Methods of fertilizer application) :–

उर्वरक कई विधियों से प्रयोग किए जाते है। उर्वरक प्रयोग के समय विधि का चयन करते समय इस बात का ध्यान रखते है कि पौधों को पोषक तत्व आसानी से उपलब्ध हो जाये, उर्वरको का कम से कम ह्रास हो और उनके प्रयोग में आसानी रहे, अर्थात् उर्वरकों की उपयोग दक्षता (Fertilizer use efficiency) बढ़ाई जा सके। उर्वरक प्रयोग करने की विधि के चयन में कई बातों का ध्यान रखा जाता है। इनमें मृदा की प्रकृति, फसल की प्रकृति और उर्वरक की प्रकृति मुख्य होती है।

उर्वरक प्रयोग करने की विधियाँ कई बातों पर निर्भर करती है, जिनमें प्रमुख रुप से मृदा की किस्म, मृदा की तलरुपता, मृदा में नमी की मात्रा, मौसम की दशा (जलवायु), फसल की किस्म व आयु, उर्वरक की किस्म व उर्वरक में पोषक तत्वों की उपलब्धता उर्वरक की उपलब्धता व इकाई मूल्य, उर्वरक के प्रयोग करने में काम आने वाले यन्त्र आदि की उपलब्धता, श्रम की उपलब्धता आदि है।

इनके अतिरिक्त मृदा गठन, पी एच मान, धनायन विनिमय क्षमता (CEC), पोषक तत्व, स्तर मृदा में कार्बन का स्तर फसल का जड़ तंत्र और पौध अंतरण (पौधे से पौधे और कतार से कतार

की दूरी) उर्वरक की भौतिक अवस्था मृदा में घुलनशीलता व गतिशीलता आदि उर्वरक प्रयोग की उपर्युक्त विधि के चयन को प्रभावित करते है।

**उर्वरकों के प्रयोग करने की विधियाँ –**

(A) ठोस (Solid) रुप में उर्वरकों का प्रयोग –

**(अ) छिटकवाँ विधि (Broadcasting method)**

(i) बुआई के समय छिड़कना (Broadcasting) एवं बुआई के समय कूँड़ में खाद देना (Basal Application)

(ii) खड़ी फसल में उर्वरक देना (Top dressing)

छिटकवाँ विधि (Broadcasting) या स्पॉट ड्रेसिंग (Spot dressing) या साइड ड्रेसिंग (Side dressing)

**(ब) संस्थापन विधि (Placement)**

(i) हल दुस्तर संस्थापन (Plough sole placement)

(ii) गहन–संस्थापन (Deep placement)

(iii) अधोभूमिक संस्थापन (Sub soil placement)

**(स) स्थानिक संस्थापन (Localized Placement)**

(i) डिबलिंग संस्थापन (Dibbling placement)

(ii) ड्रिलिंग संस्थापन (Drilling placement)

(iii) पट्टी संस्थापन (Band placement) – Row or Hill placement

(iv) गोलिका संस्थापन (Ball or pellet placement)

(v) रिंग संस्थापन (Ring placement)

(vi) सम्पर्क (Contact) संस्थापन

**द्रव (Liquid) रुप में उर्वरक का प्रयोग –**

(1) प्रारम्भिक उर्वरक घोल (Starter fertilizer solution)

(2) सिंचाई के जल के साथ उर्वरकों का प्रयोग अर्थात उर्वरिकृत सिंचाई (Application of fertilizer in irrigation water, Fertigation)

(3) तत्वों के घोल का पौधों पर छिड़काव (Foliar application or spray of fertilizers)

(4) बीजों को तत्वों के घोल में डुबाना (Sinking seed with nutrient solution)

(5) बीजों के ऊपर तत्वों के सान्द्र घोल की परत चढ़ाना (Coating seed with nutrients paste)

(6) पौधों में तत्व के घोल का इन्जेक्शन देना (Injection of nutrient solution into the plants)

(7) मृदा में उर्वरक घोल का प्रत्यक्ष प्रयोग (Direct application to the soil)

**(अ) छिटकवाँ विधि –**

1. **बुआई के समय** – इस विधि से कम्पोस्ट खाद व गोबर की खाद को फसल बोने से पूर्व खेत में बिखेर देते हैं और बाद में हल चलाकर इसको मिट्टी में मिला देते हैं। नत्रजन के उर्वरक भी फसल बोने से पहले व खड़ी फसल में बिखेर दिये जाते है। इस विधि में उर्वरक की मात्रा अधिक खर्च होती है। सिंचाई के उचित प्रबन्ध न होने पर यह विधि प्रयोग की जा सकती है। जिन मृदाओं में अधिक खरपतवार होते हैं वहाँ पर इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। जिन फसलों की तत्वों सम्बन्धी आवश्यकता अधिक होती है उनमें भी यह विधि काम में नहीं लेनी चाहिये। फॉस्फेटिक व पोटैशिक उर्वरक इस विधि से प्रयोग नहीं करने चाहिये क्योंकि इनकी घुलनशीलता व गतिशीलता कम होती है तथा इनका स्थिरीकरण शीघ्र हो जाता है। इस विधि से श्रम व समय की बचत होती है। असमतल अर्थात् ढालू मृदाओं में इस विधि का प्रयोग नहीं करना चाहिये क्योंकि सिंचाई व वर्षा के समय उर्वरक घुलकर नीचे की ओर बह सकता है। बलुई मृदाओं में इस विधि से उर्वरकों का प्रयोग भी अधिक लाभदायक नहीं होता। इस विधि में पौधों को बराबर मात्रा में पोषक तत्व प्रदान नहीं होते, तत्वों का ह्रास भी इस में अधिक होता है। बुआई के समय खेत में उर्वरक देना बेसल ड्रेसिंग (Basal dressing) कहलाता है।

2. **खड़ी फसल में उर्वरक देना** – खड़ी फसल में उर्वरक देना टॉपड्रेसिंग (Top dressing) कहलाता है। अधिकांशतः घनी फसलों में उपयोग किया जाता है। खड़ी फसलों में उर्वरक परिस्थितियों के अनुसार बिखेर (Broadcasting) सकते हैं या पंक्तियों के किनारे (Side dressing) पर डाल सकते हैं जिन फसलों में पौधों की अधिक दूरी होती है, वहां पर उर्वरक पौधों

के चारों ओर या एक ओर डाल दिया जाता है जैसे मक्का आदि। इस विधि को स्पॉटड्रेसिंग कहते है। खड़ी फसलों में पौधों को उनकी आवश्यकतानुसार उर्वरक देते हैं। इस विधि में पौधों की गीली पत्तियों पर उर्वरक पड़ जाने से पत्ती झुलसने का डर बन जाता है। अतः शुष्क मौसम में जब पत्ती गीली न हो, उर्वरक डालना चाहिये। बड़े क्षेत्रों में ठोस उर्वरकों को वायुयान की सहायता से भी छिड़क सकते हैं। पोषक तत्वों का ह्रास इस विधि में अधिक होता है।

**(ब) संस्थापन विधि–**

इस विधि में उर्वरक को मृदा में किसी उचित गहराई पर डाल देते है। इसमें निम्न विधियाँ काम में लाते हैं–

**(i) हल दुस्तर संस्थापन –** विशेष रुप से जिन उर्वरकों में तत्वों का स्थिरीकरण होता है उन सभी उर्वरकों को संस्थापन विधि से देना लाभकारी है। जब मृदा की ऊपरी सतह में नमी का अभाव होता है तब भी यह विधि अपनाई जाती है और उर्वरक उचित गहराई पर जहाँ मृदा में नमी उचित स्तर पर होती है डाल दिया जाता है। इस विधि में उर्वरकों का प्रयोग करने के बाद खेत में जुताई नहीं की जा सकती। कभी–कभी उर्वरक अधिक गहराई पर पहुँच जाते है जिससे इनके पोषक तत्वों का पोषण, छोटे पौधों की जड़ों द्वारा नहीं किया जा सकता। ठण्डे स्थानों पर अमोनिकल नत्रजन अधिक गहराई पर पहुंच जाने के कारण नाइट्रेट नत्रजन में परिवर्तित नहीं हो पाती। अतः नत्रजन आसानी से पौधों को उपलब्ध नहीं हो पाती।

**(ii) गहन संस्थापन –** यह विधि जापान में, धान के खेतों में नत्रजन के उर्वरकों का प्रयोग करने में अपनाई जाती है। इस विधि में अमोनिकल नत्रजन वाले उर्वरकों को काफी गहराई पर प्रयोग करते हैं। जिसमें नत्रजन, अमोनिकल रुप में ही रहकर पौधों को अधिक समय तक प्राप्त होती रहे। धान के पौधे नत्रजन को अमोनिकल रुप में ही अधिक प्राप्त करते है। इस विधि में उर्वरकों का पानी में बहकर, नष्ट होना असम्भव होता है। इस विधि से फॉस्फोरस उर्वरक का भी मृदा में प्रयोग कर सकते है।

**(iii) अधोमृदा संस्थापन–** इस विधि में उर्वरकों का प्रयोग मशीनों या भारी हलों की सहायता से अधोमृदा में करते हैं। यह विधि आर्द्र एवं उप आर्द्र क्षेत्रों में जहाँ पर मृदा अम्लीय होती है, प्रयोग करते है। इन क्षेत्रों में अच्छे जड़ विकास के लिए पोटाश व फॉस्फोरस के उर्वरकों का प्रयोग करते है।

**(स) स्थानीय संस्थापन विधि–**

इस विधि का प्रयोग उस समय करते हैं जब उर्वरकों की मात्रा कम होती है। इस विधि में उर्वरक पौधों की जड़ों के समीप ही प्रयोग किये जाते है। अतः पोषक तत्व आसानी से पौधों को उपलब्ध हो जाते है। इस विधि में उर्वरक की मात्रा कम लगती है। पोषक तत्वों का स्थिरीकरण कम होता है। इस विधि में कभी–कभी बीजों के पास उर्वरकों का एकत्रीकरण होने से बीजों का अंकुरण सम्भव नहीं होता, और यदि अंकुरण हो भी जाये तो बीजांकुर की बढ़वार पर बुरा प्रभाव पड़ता है। कभी–कभी पौधे प्रारम्भिक अवस्था में ही नष्ट भी हो जाते है। स्थानीय संस्थापन विधि में उर्वरक डिबलर व ड्रिल्स के द्वारा खेत में देते हैं खड़ी फसल में पट्टी का संस्थापन करना बैंड प्लेसमेन्ट कहलाता है। उर्वरकों का गोलिका के रुप में प्रयोग धान के खेतों में करते है और गोलिका धान के पौधे के समीप कीचड़ में रख देते है। आवश्यकतानुसार मिट्टी के 10–12 भाग में एक भाग उर्वरक मिलाकर छोटी – छोटी गोलियाँ बना ली जाती है। नत्रजन उर्वरकों को पक्तियों के 2.5 से 5 सेमी. पर इस विधि द्वारा प्रयोग किया जाता है। बगीचो में फलदार वृक्षों जैसे – पपीता, आदि के चारों ओर रिंग के आकार में भूमि में उर्वरक देना रिंग संस्थापन कहलाता है।

**द्रव रुप में उर्वरकों का प्रयोग :–**

**विभिन्न विधियों द्वारा उर्वरकों को द्रव रुप में प्रयोग किया जा सकता है–**

**(1) प्रारम्भिक उर्वरक घोल–** विभिन्न उर्वरकों के घोल प्रायः $N, P_2O_5, K_2O$ की 1:2:1 या 1:1:2 आदि के अनुपात में तैयार करते हैं इन घोलों का प्रयोग प्रायः रोपण के समय सब्जियों आदि की फसल में करते हैं और साथ ही हल्की सिंचाई कर देते हैं इस विधि में पौधों की जड़े आसानी से पोषक तत्व ग्रहण करके, खेत में शीघ्र ही पौधों को स्थापित कर देती हैं। प्रारम्भिक घोलों का प्रभाव पौधों की वृद्धि पर लाभदायक होता है। कभी–कभी उन फसलों में जिनमे सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती, इस विधि से उर्वरक देने से अतिरिक्त श्रम, समय व पूंजी खर्च होती है।

**(2) पोषक तत्वों के घोल का पौधों पर छिड़काव (Foliar application of fertilizer) –** पौधों की पत्तियों पर हल्के घोल का छिड़काव ही पर्ण अनुप्रयोग या पर्णीय छिड़काव कहलाता है। उर्वरकों का यह घोल, छिड़काव करने वाले यन्त्रों, जिन्हें स्प्रेयर (Sprayer) कहते हैं, के द्वारा किया जाता है

अनुसंधानों के आधार पर उर्वरकों को भूमि में देने या पौधों पर छिड़कने से जो परिणाम प्राप्त हुए है उनमें कोई विशेष अन्तर नहीं हैं। किन्हीं विशेष परिस्थितियों में घोल का पौधों पर छिड़कना लाभदायक पाया जाता है। घोल के रुप में उर्वरकों को पौधों पर छिड़कने के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं–

(1) कम मात्रा में उर्वरकों की आवश्यकता होती है।

(2) कम मात्रा का सम्पूर्ण क्षेत्र में, समान वितरण किया जा सकता है।

(3) पोषक तत्वों का पौधों द्वारा उपयोग अच्छा होता है।

(4) सूक्ष्म तत्व जो मृदा में जाकर स्थिर हो सकते हैं इस विधि से, उनकी हानि से कम किया जा सकता है।

(5) ऊँचे नीचे एवं रेतीले (भूमियाँ) खेतों में भी, उर्वरकों का समान वितरण हो जाता है।

(6) जहाँ पर सिंचाई के साधन कम होते हैं अर्थात् मृदा में नमी के अभाव के कारण, ठोस रुप में उर्वरकों का प्रयोग नहीं किया जा सकता, वहाँ पर इस विधि के प्रयोग से काफी लाभ उठाया जा सकता है। मृदा नमी के अभाव में पौधे पोषक तत्वों का चूषण नहीं कर सकते।

(7) उर्वरकों के घोल में, अन्य कीटनाशक या रोगनाशक रसायनों को भी पौधों पर छिड़का जा सकता है।

(8) लवणीय मृदाओं में जहाँ पर कि नत्रजन का गैस के रुप में नष्ट होने का डर रहता है। वहाँ पर नत्रजन की हानि को बचाया जा सकता है।

(9) जलमग्न भूमियों में नत्रजन का डिनाइट्रीफिकेशन हो जाता है। इस विधि के प्रयोग से इस प्रकार से नत्रजन की हानि को कम किया जा सकता है।

(10) फल वाले वृक्षों में सूक्ष्म तत्वों को इस विधि से देकर लाभ उठाया जा सकता है।

(11) जब पौधों पर साथ के साथ लाभदायक परिणाम प्राप्त करने हो तो इस विधि का प्रयोग सर्वोत्तम है।

(12) खड़ी फसल में पोषक तत्वों की कमी के लक्षण उत्पन्न होने पर इस विधि द्वारा उर्वरक उपयोग करके कमी तुरन्त दूर की जा सकती है।

**(3) सिंचाई जल के साथ उर्वरकों का प्रयोग (Fertigation) –** इस विधि में सिंचाई की नालियों में, पानी में घुलनशील उर्वरकों को डाल देते हैं। इस प्रकार उर्वरक घुलकर, पानी के साथ खेतों में पहुँच जाता है। इस विधि से उर्वरक को खेत में डालने से श्रम व समय बच जाता है। जिन खेतों का धरातल समतल नहीं होता वहाँ पर इस विधि का प्रयोग नहीं करना चाहिये। द्रव रुप में उर्वरकों का प्रयोग करने पर कभी–कभी जड़ों की वृद्धि पर बुरा प्रभाव पड़ता है उर्वरकों की कम मात्रा का भी इस विधि में समान वितरण हो जाता है। फुहारा एवं बूंद – बूंद सिंचाई प्रणाली द्वारा इस विधि का अच्छा उपयोग हो रहा है। उर्वरक घोल का एक समान वितरण करने के लिए फुहारा एवं बूंद – बूंद सिंचाई प्रणाली में वेन्च्यूरी (Venturi) का उपयोग किया जाता है।

**(4) मृदा में उर्वरक घोल का प्रत्यक्ष प्रयोग –** घोल के रुप में उर्वरक प्रयोग करने का ढंग विदेशों में काफी प्रचालित है। अमोनिया के घोल व फास्फोरस को मृदा सतह में 10 सेमी. गहरे छोड़ते है। इससे अमोनिया की हानि बहुत कम होती है। साथ ही साथ पौधों को भी इस विधि से कोई हानि नहीं होती है।

**(5) बीजों को पोषक तत्वों के घोल में डुबोना–** इस विधि में सूक्ष्म तत्वों जैसे लोहा आदि के यौगिकों के घोल में, बीजों को किसी निश्चित समय तक डुबो कर रखते हैं और बाद में खेत में बो देते है। इस विधि में घोल की सान्द्रता इतनी रखी जाती है कि बीजों के ऊपर इसका कोई हानिकारक प्रभाव न पड़े। साथ ही निश्चित सान्द्रता में, बीजों को निश्चित समय तक ही डुबोना लाभदायक होता है।

**(6) बीजों के ऊपर सान्द्र घोल की परत चढ़ाना –** इस विधि में भी सूक्ष्म तत्व जैसे ताँबा, लोहा व जस्ता आदि के गाढ़े घोल की परत बीजों पर चढ़ा लेते है। मृदाओं में जिस सूक्ष्म तत्व की कमी होती है, फसल के बीजों पर उसी की परत चढ़ा देते हैं। इस प्रकार सूक्ष्म तत्वों की कमी, पौधों की बढ़वार में बाधक नहीं होती। इस विधि में सूक्ष्म तत्वों का वितरण ठीक हो जाता है।

**(7) पौधों में तत्वों के घोल का इन्जेक्शन देना –** इस विधि में सूक्ष्म तत्वों के घोल की सुई (Injection) को जड़ों या तनों में लगाया जाता है। इनमें अनुभवी आदमी ही पौधों के जाइलम (Xylem) में, तत्वों के घोल को इन्जेक्शन द्वारा पहुंचा सकता है। जिस तत्व की कमी के लक्षण पौधे पर दिखाई देते हैं उसी तत्व का घोल पौधों को दिया जाता है। फल वाले वृक्षों में लोहे की कमी विशेष रुप से इस विधि से पूरी की जाती है। कभी–कभी तत्वों के घोल को, पौधों की जड़ों के पास भी इन्जेक्शन के द्वारा मृदा में दिया जाता है। खड़ी फसल में फॉस्फोरस को भी इस विधि से दे सकते हैं।

### उर्वरकों के मृदा प्रयोग तथा पर्णीय छिड़काव में तुलना

| मृदा प्रयोग (Soil application) | पर्णीय छिड़काव (Foliar application) |
|---|---|
| 1. पोषक तत्वों की उद्वीलन स्थिरीकरण तथा अपधावन से काफी हानि हो सकती है। | 1. इस विधि का प्रयोग करने से पोषक तत्वों को इन हानियों से बचाया जा सकता है। |
| 2. उर्वरकों की अधिक मात्रा प्रयोग होती है तथा उर्वरक ठोस रुप में प्रयोग होते है। | 2. उर्वरकों की कम मात्रा प्रयोग की जाती है तथा उर्वरक घोल के रुप में प्रयोग करते हैं। |
| 3. ऊँचे नीचे खेतो में पोषक तत्वों का समान वितरण नहीं हो पाता। ऊँचे खेतों में पोषक तत्व वर्षा या सिंचाई के पानी में घुलकर नीचे के खेतों में पहुँच जाते हैं। | 3. पोषक तत्वों का घोल के रुप में ऊँचे व निचले खेतों में समान वितरण होता है। |
| 4. मृदा में प्रयुक्त उर्वरकों का प्रभाव, प्रयोग करने की अपेक्षाकृत अधिक दिनों बाद प्रारम्भ होता है। | 4.घोल के रुप में उर्वरकों का प्रयोग करने से, तत्व का प्रभाव पौधों पर शीघ्र होता है। |
| 5. लवणीय भूमि में यूरिया आदि डालने से नत्रजन की गैस के रुप में हानि होती है। | 5. लवणीय भूमि में यूरिया की वनस्पति पर छिड़कने के कारण इस प्रकार की नत्रजन की हानि को रोका जा सकता है। |
| 6. सूक्ष्म तत्वों के यौगिक जो कम मात्रा में प्रयोग होते हैं, समान वितरण नहीं हो पाता। | 6. सूक्ष्म तत्वों के यौगिकों का घोल बनाकर, समान मात्रा में किसी भी क्षेत्र में छिड़का जा सकता है। |
| 7. जिन मृदाओं में पौधों की जड़ें विकसित नहीं हो पाती वहाँ पर जड़े पोषक तत्वों का अवशोषण उचित मात्रा में नहीं कर पाती और पौधों की वृद्धि उचित नहीं हो पाती। | 7. इस विधि में पोषक तत्वों का उपयोग पत्तियों, शाखाओं व तनों द्वारा होता है। |
| 8. इस विधि से अचल तत्वों जैसे फास्फेट आदि का प्रयोग खड़ी फसल में नहीं हो पाता। | 8. इस विधि से अचल तत्वों का प्रयोग खड़ी अवस्था में कर सकते है। |
| 9. उर्वरकों को मृदा में प्रयोग करने से मृदा घोल अधिक सान्द्र होता है जिसके लिये मृदा में उचित नमी का स्तर बनाये रखने के लिए सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। अन्यथा सान्द्र घोल पौधों की बढ़वार के लिये हानिकारक हो सकता है। | 9. इस विधि में उर्वरकों का हल्का घोल प्रयोग करते हैं। इसमें भी सान्द्र घोल पौधों की वृद्धि पर हानिकारक प्रभाव डालता है। |
| 10. इस विधि को फसलों के फल आने की अवस्था तक भी प्रयोग कर सकते हैं। | 10. इस विधि को पुष्प आने की अवस्था पर प्रयोग करने से फसलों की काफी हानि हो सकती है। |
| 11. इस विधि से उर्वरकों को मृदा में लगातार प्रयोग करने से, मृदा की संरचना, जैविक दशा व रसायनिक दशा पर प्रभाव पड़ता है। | 11. इस विधि से उर्वरकों का प्रयोग करने से मृदा पर कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता है। |
| 12. इस विधि से उर्वरक प्रयोग करने से यदि वर्षा हो तो लाभ होता हैं। | 12. इस विधि से उर्वरक छिड़कने से तुरन्त बाद यदि वर्षा हो जाये तो पत्तियों पर पोषक तत्व नहीं रूक सकते। |
| 13. इस विधि से उर्वरक मृदा में मिलाने के लिए निराई गुड़ाई या सिंचाई करनी पड़ती है अतः अरिरिक्त श्रम व समय नष्ट होता है तथा पूंजी अधिक लगती है। | 13. इस विधि से इस प्रकार का कोई अन्य श्रम व पूंजी व्यय नहीं होता है। |
| 14. सभी पोषक तत्वों को फसलों में प्रयोग किया जा सकता है। | 14. इस विधि द्वारा सीमित तत्वों का प्रयोग ही संभव है। |
| 15. कवकनाशी, कीटनाशी आदि रसायनों को उर्वरकों के साथ नहीं दिया जा सकता है। | 15. उर्वरको के घोल के साथ, फसल सुरक्षा सम्बन्धी अन्य रसायन दिये जा सकते है अतः खर्च कम आता है। |

उर्वरकों में पोषक तत्वों की प्रतिशत मात्रा :–

| खाद का नाम | नत्रजन % | फॉस्फोरस % | पोटाश % | अन्य |
|---|---|---|---|---|
| **(1.) नत्रजन उर्वरक** | | | | |
| अ. अमोनियम उर्वरक | | | | |
| 1. अमोनियम सल्फेट | 20.6 | | | 23.7 (S) |
| 2. अमोनियम क्लोराइड | 26 | | | |
| 3. एनहाड्रस अमोनिया | 82 | | | |
| ब. नाइट्रेट उर्वरक | | | | |
| 1. कैल्शियम नाइट्रेट | 15.5 | | | 19.5(Ca), 1.5 (Mg) |
| 2. सोडियम नाइट्रेट | 16 | | | |
| 3. पोटेशियम नाइट्रेट | 13 | | 44 | |
| स.नाइट्रेट एवं अमोनियम उर्वरक | | | | |
| 1. अमोनियम सल्फेट नाइट्रेट | 26 | | | 12.1(S) |
| 2. अमोनियम नाइट्रेट | 33-34 | | | |
| 3. कैल्सियम अमोनियम नाइट्रेट (CAN किसान खाद) | 25 | | | 8.1(Ca), 4.5(Mg) |
| द. एमाइड उर्वरक | | | | |
| 1. यूरिया | 46 | | | |
| 2. कैल्सियम सायनामाइड | 21 | | | 39.1(Ca) |
| **(2.) फॉस्फोरस संयुक्त उर्वरक** | | | | |
| अ. जल में घुलनशील | | | | |
| 1. सुपर फॉस्फेट (एकल) (SSP) | | 16 | | 19.5(Ca), 12.5(S) |
| 2. सुपर फॉस्फेट (डबल) | | 32 | | |
| 3. सुपर फॉस्फेट (ट्रिपल) | | 48 | | 14.3 (Ca), 4(S) |
| 4. अमोनियम फॉस्फेट | 16/20 | 20 | | |
| 5. डाइ अमोनियम फॉस्फेट (DAP) | 18 | 46 | | |
| ब. साइट्रिक अम्ल में घुलनशील | | | | |
| 1. डाइकैल्सियम फॉस्फेट | | 34-39 | | 23(Ca) |
| 2. बेसिक स्लेग | | 14-18 | | 15-33(Ca), 1.8-9(Mg) |
| स. अघुलनशील | | | | |
| 1. रॉक फॉस्फेट | | 20-40 | | 35-38(Ca) |
| 2. हड्डी का चूरा (Bone meal) | 3-4 | 20-25 | | 23(Ca) |
| **(3.) पोटाश युक्त उर्वरक** | | | | |
| 1. म्यूरेट ऑफ पोटाश (पोटैशियम क्लोराइड) | | | 58-60 | |
| 2. पोटैशियम नाइट्रेट | 13 | | 44 | |
| 3. सल्फेट ऑफ पोटाश (पोटैशियम सल्फेट) | | 48-52 | | 17.5(S) |
| **संयुक्त उर्वरक** | | | | |
| 1. मोनो अमोनियम फॉस्फेट | 11 | 48/55 | | |
| 2. डाइ अमोनियम फॉस्फेट (DAP) | 18 | 46 | | |
| 3. एमोफास ए | 11 | 46 | | |
| 4. एमोफास बी | 16.5 | 20 | | |
| 5. नाइट्रो फॉस्फेट (सुफला) | 20 | 20 | | |
| 6. पोटैशियम नाइट्रो फॉस्फेट (नाइट्रो फॉस्फा) | 15 | 30 | 15 | |
| 7. एन पी के (अनेक ग्रेड) | 15 | 15 | 15 | |
| 8. यूरिया अमोनियम फॉस्फेट | 28 | 28 | | |
| **द. मृदा सुधारक** | | | | |
| 1. जिप्सम | | | | 18.6-23.5(S),29.2(Ca) |
| 2. डोलोमाइट | | | | 14-31.5(Ca),4-10.6(Mg) |

## सूक्ष्म तत्वों को प्रदान करने वाले उर्वरक यौगिक (Compounds)

| सूक्ष्म तत्व | सूक्ष्म तत्वों को प्रदान करने वाले यौगिक | पोषक तत्व (%) | अन्य (%) |
|---|---|---|---|
| 1. लोहा | फेरस सल्फेट ($FeSO_4.7H_2O$) | 19 (Fe) | 18.8(S) |
| | पाइराइट ($FeS_2$) | 46.5 (Fe) | 53.5(S) |
| 2. मैंगनीज | मैंगनीज सल्फेट ($MnSO_4.4H_2O$) | 26-28 (Mn) | |
| 3. जस्ता | जिंक सल्फेट ($ZnSO_4.H_2O$) | 33 (Zn) | 17.8(S) |
| 4. ताम्बा | कॉपर सल्फेट($CuSO_4.5H_2O$) | 25 (Cu) | |
| 5. बोरोन | बोरेक्स | 10.60 (B) | |
| | सोल्यूबोर | 19-21 (B) | |
| 6. मोलिब्डेनम | सोडियम मोलिब्डेट | 39 (Mo) | |
| | अमोनियम मोलिब्डेट | 54 (Mo) | |

## अभ्यास प्रश्न

### बहुचयनात्मक प्रश्न

1. पौधे की वृद्धि के लिए आवश्यक पोषक तत्व है ।
   (अ) 15 (ब) 17
   (स) 19 (द) 21
2. पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्वों को पुनः परिष्कृत कब किया गया?
   (अ) 1949 (ब) 1939
   (स) 1954 (द) 1960
3. मृदा में गतिशील पोषक तत्व हैं ।
   (अ) जस्ता (ब) फास्फोरस
   (स) ताँबा (द) नाइट्रेट
4. द्वितीयक पोषक तत्व कौनसा नहीं है?
   (अ) नाइट्रोजन (ब) फॉस्फोरस
   (स) पोटैशियम (द) उपरोक्त सभी
5. कोशिका की ऊर्जा मुद्रा (Energy Currency) कौन सा तत्व है?
   (अ) पोटाश (ब) फॉस्फोरस
   (स) बोरान (द) जस्ता
6. पौधों की पुरानी पत्तियों पर कौनसे तत्व की कमी के लक्षण दिखाई देते हैं?
   (अ) Mg व Mo (ब) Ca व B
   (स) Fe व Mn (द) S एवं Cl
7. मैंगनीशियम की कमी दूर करने के लिए मैंगनीशियम सल्फेट की प्रति हैक्टर आवश्यकता होती है ।
   (अ) 10–20 किलो (ब) 20–25 किलो
   (स) 25–50 किलो (द) 10 किलो से कम
8. अमोनियम सल्फेट की तुल्यांकी अम्लीयता कितनी होती है?
   (अ) 93 (ब) 110
   (स) 80 (द) 128
9. जिप्सम में कैल्सियम की मात्रा कितनी होती है?
   (अ) 29.2% (ब) 19.5%
   (स) 39.5% (द) 26.5%
10. सरल या एकल उर्वरक का उदाहरण है ।
   (अ) पोटैशियम सल्फेट
   (ब) अमोनियम फॉस्फेट
   (स) डाइ अमोनियम फॉस्फेट
   (द) उपरोक्त सभी
11. अग्रिम कलिका किस पोषक तत्व की कमी से सूख जाती है?
   (अ) मोलिब्डेनम (ब) फॉस्फोरस
   (स) मैगनीशियम (द) कैल्सियम

### अति लघूत्तरात्मक प्रश्न–

12. जस्ते का मुख्य कार्य क्या है ?
13. पुरानी पत्तियों पर किस–किस पोषक तत्व की कमी के लक्षण दिखाई देते हैं ?

14. मोलिब्डेनम की कमी के लक्षण कैसे होते हैं?

15. पोटैशियम का मुख्य कार्य क्या है?

16. जिंक की कमी कैसे दूर की जा सकती है?

17. पौधों द्वारा नाइट्रोजन किस–किस रूप में शोषित होती है ?

18. जटिल अथवा संयुक्त उवर्रक क्या होते हैं ?

19. उवर्रक अनुपात से क्या अभिप्राय है ?

20. ट्रॉपड्रेसिंग क्या होती है ?

21. Fertigation (फर्टीगेशन) क्या होता है ?

**लघूत्तरात्मक प्रश्न–**

22. पौधों में गंधक के कार्य क्या है ? लिखिए ।

23. पौधों के लिए आवश्यक पोषक तत्व के लिए कितने मापदण्ड हैं ? उनके बारे में बताइए।

24. क्रियात्मक पोषक तत्व कौन–कौनसे हैं ?

25. सूक्ष्म पोषक तत्वों के बारे में आप क्या समझते हैं ?

26. मृदा में गतिशीलता के आधार पर पोषक तत्वों को कितने भागों में बांटा गया है ?

**निबन्धात्मक प्रश्न–**

27. आवश्यक पोषक तत्व कितने हैं ? इनका वर्गीकरण करें ।

28. उर्वरकों के प्रयोग की विधियों के नाम लिखिए ।

29. उर्वरकों के मृदा प्रयोग तथा वर्णीय छिड़काव की तुलना करें ।

30. नाइट्रोजन के कार्य, कमी के लक्षण तथा दूर करने के उपायों को समझाइये।

31. उर्वरकों का फसल उत्पादन में महत्व बताएं ।

32. द्रव उर्वरक (Liquid fertilizer) क्या होते हैं? तथा इनको किस–किस प्रकार के होते हैं एवं फसलों में कैसे उपयोग में लेते हैं? समझाइये।

**उत्तरमाला–**

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| 1. | ब | 2. | स | 3. | द |
| 4. | द | 5. | ब | 6. | अ |
| 7. | स | 8. | ब | 9. | अ |
| 10. | अ | 11. | द | | |

# अध्याय 5
# सिंचाई एवं जल निकास
# (Irrigation & Drainage)

## सिंचाई का महत्व एवं स्रोत

कहा गया है– "जल ही जीवन हैं।" "जल बिन सब सून।" पेड़–पौधों में लगभग 84 से 99 प्रतिशत जल पाया जाता हैं। जल पौधों के लिए एक प्रमुख तत्व हैं, जिसके बिना पौधे की कोई भी शरीर क्रियात्मक क्रिया सफलतापूर्वक सम्पन्न नहीं हो सकती हैं। पौधे अपना भोजन घोल रूप में प्राप्त करते हैं, जिसके लिए मृदा में जल का होना अतिआवश्यक हैं। पौधों को जल कृत्रिम व प्राकृतिक साधनों से प्राप्त होता हैं। वर्षा के अभाव में कृत्रिम रूप से दिया जाने वाला जल सिंचाई कहलाता हैं।

सिंचाई की आवश्यकता हम सरल भाषा में समझ सकते हैं कि जीव–जन्तु को जब प्यास लगती हैं, तब वह जल–स्रोत के पास पहुँचकर, अपनी प्यास बुझा लेता हैं, परन्तु जब पेड़–पौधों को प्यास लगती है, तब वह स्वयं स्रोत के पास चलकर नहीं जा सकता। चूँकि उसकी जड़ें बेड़ी रूपी मिट्टी से जकड़ी होती हैं। अतः पौधा अपने आसपास न होकर के जल को ग्रहण कर लेता हैं, परन्तु जब आसपास, उसकी क्षमता से दूर जल होता है या वर्षा नहीं होती हैं, तब जल के अभाव में खड़ा–खड़ा प्राण त्याग देता हैं, अर्थात् सूख जाता हैं। ऐसी परिस्थिति में सिंचाई आवश्यक हो जाती हैं।

### परिभाषा –

फसलों को उगाने के लिए कृत्रिम रूप से दिया गया जल, सिंचन कहलाता हैं।

अथवा

वर्षा के अभाव में भूमि को कृत्रिम तरीकों से जल पिलाने की क्रिया को सिंचाई करना कहा जाता हैं।

अथवा

फसलों की उचित वृद्धि के लिए मृदा के अन्दर उचित मात्रा में नमी बनाये रखने के लिए कृत्रिम जल देने की क्रिया को सिंचाई कहते हैं।

## सिंचाई का महत्व (Importance of irrigation)

फसलों की वृद्धि एवं विकास हेतु सिंचाई का निम्नलिखित महत्व है –

1. पौधों का सम्पूर्ण विकास जल पर निर्भर करता है।
2. जल, जीवद्रव्य का एक मुख्य अवयव हैं, अतः कोशिका विभाजन के लिए जल की आवश्यकता होती है।
3. पौधों के प्रत्येक भाग में स्फीति (Turgidity) बनाये रखने के लिए जल एक अहम भूमिका निभाता हैं और यह कोशिकाओं को स्फीति प्रदान करता है, जिससे गुहिकाएँ फूल जाती हैं। कोशिकाओं के तापमान पर नियन्त्रण रहता हैं, जिससे फसलें लू व पाले से बच जाती हैं।
4. जल, पौधों का अभिन्न अंग हैं। प्रकाश–संश्लेषण की महत्वपूर्ण क्रिया में जल, कार्बन–डाइ–ऑक्साइड के संयोग से प्रकाश की उपस्थिति में, पर्णहरित के माध्यम से शर्करा (कार्बोहाइड्रेट्स) का निर्माण करता हैं, जो कि पौधे के विभिन्न भागों में वितरित हो जाता है।
5. कर्षण क्रियाओं में सिंचाई जल सहायक होता हैं और इसके कारण फसलों की समय पर बुआई की जा सकती हैं।
6. जल लाभदायक जीवाणुओं की क्रियाशीलता को बढ़ाता हैं। हानिकारक कीट जैसे– दीमक आदि सिंचाई के जल के प्रभाव से अपना असर कम दिखाते हैं।
7. जल की पूर्ति बढ़ाकर फसलों के परिपक्वता काल को कुछ लम्बी अवधि तक बढ़ाया जा सकता हैं, जिससे कि फसलों की गुणवत्ता पूर्ण अधिक उपज प्राप्त कर एवं बाजार की माँग के अनुसार काटकर बाजार में बेचा जा सकता है।
8. खेत के सिंचित होने पर मृदा में नमी रहेगी, जो बीजों के अंकुरण व पौधों की वृद्धिके लिए अत्यन्त आवश्यक है।
9. पेड़–पौधे अपने पोषक तत्वों को मृदा से घोल के रूप में लेते हैं, जिसके लिए सिंचाई करना आवश्यक हैं।
10. सिंचाई द्वारा वर्षा की अनिश्चितता से सुरक्षा की जा सकती हैं। जब वर्षा न हो अथवा असमय से हो तो फसलों को सिंचाई करके पानी दिया जाता है।
11. वाष्पोत्सर्जन पौधों के लिए एक आवश्यक एवं अनिवार्य प्रक्रिया हैं। पौधों की पत्तियों के द्वारा पर्ण रन्ध्रों के माध्यम से पानी उत्सर्जित किया जाता है। पानी की अनुपस्थिति में यह क्रिया पूर्णतया असम्भव ही है और वाष्पोत्सर्जन के अभाव में पौधो की जल एवं पोषक तत्व अवशोषण क्रियाएँ प्रभावित होती हैं।

12. मरूस्थल के प्रसार को रोकने में मदद मिलती है क्योंकि सिंचित क्षेत्र में वानस्पतिक आच्छादन हो जाता है जिससे मृदा क्षरण कम होता है।

13. खाद एवं उर्वरकों को ठोस से द्रव रूप में बदलने के लिए जल की आवश्यकता होती है।

14. मृदा में अपक्षालन द्वारा लवणीय प्रभाव को सिंचाई से कम किया जाता है।

## सिंचाई के स्रोत (Source of irrigation)

सर्वप्रथम यह बताना जरूरी है कि सिंचाई के स्रोत व साधनों में अन्तर क्या हैं ? सिंचाई के स्रोत वे स्थान हैं, जहाँ पर जल एकत्रित रहता हैं, जिन्हें जल भण्डार भी कहते है। जैसे – कुआँ, नहरे, तालाब, बावड़ी, झील, झरने, सीवर, नदियाँ आदि। सिंचाई के साधन वे यंत्र हैं, जिनकी सहायता से सिंचाई के लिए जल–भण्डारों से जल लिया जाता है। जैसे – रहट, ढेकली, चरस, बेडी, पवनचक्की, पम्पसैट, बरमा आदि।

सिंचाई के मुख्य स्रोत निम्नलिखित हैं –

**(1) नहरें (Canals)** – नदियों पर बांध बनाकर नहरें निकाली जाती हैं, फिर इनके जल का सिंचाई हेतु उपयोग किया जाता हैं। बाँध तथा नहरों के निर्माण में काफी पूंजी तथा समय की आवश्यकता होती हैं।

### नहरों के प्रकार –

(i) अनित्यवाही नहरें (Seasonal canals) – इन्हें बरसाती नहरें भी कहते हैं। नदियों के जल की बाढ़ को कम करने के लिए अथवा रोकने के लिए, ये नहरें बनाई जाती हैं। जिनका पानी सिंचाई के काम आता हैं। नदियों में जलस्तर एक निश्चित ऊँचाई से ऊपर जाने लगता हैं, तो पानी को इन नहरों में छोड़ दिया जाता हैं। इन नहरों के मुख्य रूप से दो दोष हैं। प्रथम जब नदी में पानी नीचे रह जाता हैं तो नहर में पानी नहीं जाता है और नहरें सूख जाती हैं। दूसरा इन नहरों से पूरे वर्ष सिंचाई नहीं होती है। अतः इन नहरों का बनवाना अधिक लाभदायक नहीं रहता है। इसलिए अब इस प्रकार की नहरें कम बनवायी जाती हैं। इस प्रकार की नहरों का उदाहरण भारत में कृष्णा, कावेरी, डेल्टा क्षेत्रों में है।

(ii) नित्यवाही नहरें – इन्हें बारहमासी नहरें भी कहते हैं क्योंकि इनमें पूरे वर्ष पानी बहता रहता हैं और ये पूरे वर्ष सिंचाई के काम आती हैं। ये नहरें हमेशा बहने वाली नदियों से निकाली जाती हैं अथवा नदियों पर बाँध बनाकर निकाली जाती हैं। उदाहरण – इन्दिरा गांधी नहर । राजस्थान में गंगानगर, हनुमानगढ़, बीकानेर, जैसलमेर, कोटा, बूंदी आदि जिलों में नहर सिचांई का मुख्य स्रोत हैं। बीकानेर के महाराजा गंगासिंह द्वारा बनवाई गई गंगनहर राजस्थान ही नहीं देश की भी प्राचीनतम नहर प्रणालियों में से एक हैं जिससे वर्तमान में भी सिंचाई की जा रही है।

**(2) तालाब (Tanks)**– तालाब किसी का व्यक्तिगत नहीं होता है। प्रायः एक गांव का एक तालाब होता हैं जो गांव के निचले भाग में स्वतः बन जाता हैं। इसमें पूरे गांव एवं आसपास से वर्षा का पानी आकर एकत्रित होता हैं।जहाँ धरातल कुएँ खोदने के लायक नहीं हैं। इस कारण तालाबों की आवश्यकता होती हैं। राजस्थान में भीलवाड़ा, टोंक आदि क्षेत्रों में तालाब सिंचाई के अच्छे स्रोत हैं।

**(3) कुएँ (Wells)**– कुओं के माध्यम से सिंचाई परम्परागत रूप से की जाती रही है। कुओं द्वारा सिंचाई में अधिक व्यय एवं परिश्रम की आवश्यकता होती हैं। राजस्थान में सिंचाई का सबसे प्रमुख स्रोत कुएँ हैं।

### कुओं के प्रकार –

1. अस्थाई कुआँ – जिन क्षेत्रों में भूमि का जल स्तर ऊँचा होता है तथा किसान निर्धन होता है। उन क्षेत्रों में अस्थाई कुआँ बनाया जाता है। इसकी गहराई 15 से 20 फीट तक होती है और यह एक या दो वर्ष ही काम आते हैं।

2. स्थाई कुआँ – ये दो प्रकार के होते हैं –

(i) कच्चा कुआँ – जिन क्षेत्रों में मिट्टी कठोर होती हैं अथवा चट्टानें होती हैं, उन क्षेत्रों में इस प्रकार का कुआँ बनाया जाता है।

(ii) पक्का कुआँ – इस प्रकार के कुए की खुदाई भी वैसे ही की जाती है, जिस प्रकार से कच्चे कुएँ की होती है लेकिन अन्तर यह होता है कि यह कुआ अन्दर से पक्का होता हैं अर्थात यह ईंट या पत्थर से बना होता है। गहराई 25 फीट से अधिक होती है।

3. पाताल तोड़ कुआँ (Artisan wells)– ये अधिकतर उत्तरांचल राज्य के तराई क्षेत्रों में मिलते हैं। पाताल तोड़ कुओं में भूमिगत जल स्वतः अपने ही दबाव से धरातल पर बाहर निकलता है। इन कुओं के लिए विशेष भूगर्भिक सरंचना की आवश्यकता होती है।

4. नलकूप (Tubewell) – भूमि की अधिक गहराई से पानी प्राप्त करने के लिए मशीनों की सहायता से अधिक गहराई (120 मीटर से 150 मीटर तक या इससे अधिक) तक लोहे के मजबूत पाइप डालकर पानी प्राप्त किया जाता है। ट्यूबवैल से पानी सब मर्सिबलपम्प द्वारा निकाला जाता है।

5. झीलें – पृथ्वी तल पर कहीं–कहीं प्राकृतिक कारणों से निचले क्षेत्र में जल एकत्रित हो जाता है। उस स्थान विशेष को झील कहते हैं।

झील दो प्रकार की होती हैं – 1. मीठे पानी की 2. खारे पानी की

6. झरने (Cascade) – वर्षा के दिनों में पहाडों पर पानी एकत्रित हो जाता हैं। यह पानी धीरे–धीरे पहाड़ों की दरारों एवं कन्दराओं में रिसता रहता है यह पानी झरनों का रूप ले लेता है।

कुछ झरने बारहमासी होते हैं जबकि कुछ झरनें गर्मी के मौसम में सूख जाते हैं।

7. बावड़ी – ये छोटे जलाशय होते है जिन्हें बदियां भी कहते है। जिस प्रकार से कुएँ होते हैं, उसी प्रकार ये बावड़ी भी होती हैं। ये चौकोर आकार की अन्दर से पक्की होती हैं। जिनमें अन्दर से पानी आने के स्रोत होते हैं। ये कुएँ की भांति गोल न होकर चौकोर होती हैं और आकार में बड़ी होती हैं जिनमें काफी गहराई तक सीढ़िया बनी होती हैं जिनकी सहायता से ऊपर–नीचे आया–जाया जा सकता हैं।

बावड़ी उन स्थानों में अधिक बनाई जाती हैं जहाँ 20 इंच से कम वार्षिक वर्षा होती हैं। राजस्थान, शेखावटी क्षेत्र में बावड़ी का अधिक चलन रहा हैं। यह वर्षा के पानी को भी संग्रहित करने की परम्परागत विधि है।

## सिंचाई के साधन (Means of irrigation) –

सिंचाई के साधन वे यन्त्र हैं जिनकी सहायता से सिंचाई के लिए जल–भण्डारों से लिया जाता हैं। भूमि के अन्दर एवं सतह पर उपलब्ध जल को सिंचाई के लिए खेत में उपयोग करने के लिए विभिन्न प्रकार के साधन अपनाये जाते हैं, जैसे– रहट, चरस, ढेकली, बेड़ी, पवनचक्की, पम्प सैट, बरमा आदि। इन्हें संचालित करने के लिए पशु–शक्ति, मानव–शक्ति, वायु–शक्ति एवं यांत्रिक शक्ति काम में लेते हैं।

अतः सिंचाई के पानी को जल स्रोतों से उठाने और उसे नियन्त्रित करने के लिए जल निकालने के उन्नत साधनों की आवश्यकता होती हैं। इस प्रकार की सिंचाई को जलोत्थान सिंचाई Lift irrigation कहते हैं।

सिंचाई के साधन निम्नलिखित हैं –

1. **चरस –** इसे क्षेत्रीय भाषा में मोट या पूर के नाम से भी जानते हैं। यह सिंचाई का प्राचीन साधन है। इस साधन से लगभग 30 फीट तक गहरे कुओं से आसानी से पानी निकाला जा सकता है। इससे 10 घण्टे में लगभग 60,000 लीटर पानी उठाया जा सकता है। यदि दो जोड़ी बैल काम में लेवे तो यह मात्रा बढ़ाई जा सकती है।

**चित्र–5.1 चरस**

2. **रहट (Persian Wheal)** – सिंचाई का यह साधन भी पुराना हैं। रहट द्वारा 10 से 12 मीटर की गहराई तक का पानी उठाया जाता है। इसमें लोहे के बड़े पहिये पर छोटी–छोटी बाल्टियों की माला होती हैं। इसकी कुछ बाल्टियाँ पानी में डूबी रहती हैं। पहिये को एक धुरी द्वारा घुमाया जाता हैं।

**चित्र–5.2 रहट**

इसे चलने के लिए एक आदमी तथा एक जोड़ी बैल या ऊँट काम में लेते हैं। इससे प्रति घण्टा लगभग 10000 लीटर पानी उठाया जा सकता हैं।

3. **बेड़ी (दोलन टोकरी)** – यह भी सिंचाई का पुराना साधन है। इससे लगभग 1 मीटर ऊँचाई तक पानी उठाया जा सकता है। तालाब, नदी, झील, नहर आदि से पानी इसके द्वारा उठाते हैं। इसमें दो आदमियों की आवश्यकता पडती है। चमड़े की बनी टोकरी को दोनों ओर दो रस्सियों से बांध कर दो आदमी पानी उठाते हैं। इससे कम क्षेत्र की सिंचाई होती हैं। इससे प्रतिघण्टा 3600 से 5000 लीटर पानी निकाला जा सकता हैं।

चित्र–5.3 बेड़ी (दोलन टोकरी)

4. **ढेकली** – सिंचाई का यह साधन भी पुराना हैं। इससे कम गहरे कुओं व तालाबों का पानी उठाया जा सकता है। इसमें लकड़ी की बल्ली या लम्बा खम्भा जल स्रोत के पास भूमि सतह पर पर लगा होता है। इसके ऊपर लकड़ी की बल्ली काम में लेते हैं जिसके एक सिरे पर पत्थर बांधा जाता है तथा दूसरे सिरे पर रस्सी के द्वारा बाल्टी बंधी रहती है। जब पत्थर ऊपर उठता है। तब बाल्टी में पानी भर जाता है। इससे कम क्षेत्र की सिंचाई होती है। इससे 1 से 3 मीटर गहराई से पानी उठाया जा सकता है तथा एक घण्टे में 2000 से 2300 लीटर पानी निकाला जा सकता है।

5. **पवन चक्की** (Wind mill) – पवन चक्की में लोहे के बड़े पहिये पर चारों ओर ब्लेड लगे होते हैं। इस पहिये को काफी ऊँचे लोहे के टावर पर लगाया जाता हैं जो कि वायु की शक्ति से घूमता रहता है। लोहे की छड़ द्वारा घूमते पहिये की शक्ति को भूमि पर रखे प्लंजर पम्प तक पहुँचाया जाता हैं। पम्प का पानी उठाने वाला पाइप कुएँ के पानी में डूबा रहता हैं। पवन की गति से घूमते हुए इस पहिये की शक्ति द्वारा पम्प चलता रहता हैं। पम्प

चित्र–5.4 पवन चक्की

से पाइप द्वारा पानी बाहर निकलता है। पानी की मात्रा हवा की गति पर निर्भर रहती है। पवन चक्की को चलाने के लिये कम से कम 16 मील प्रति घण्टा वेग से पवन चलनी चाहिए। पवन चक्की ऐसे स्थान पर लगाई जानी चाहिए, जहाँ हवा में रूकावट न हो। इसे चलाने के लिये आदमी या बैलों की आवश्यकता नहीं पड़ती। वायु का चलना अति आवश्यक है।

6. **पम्प सैट** – आजकल कुंओं व नलकूपों से पानी निकालने के लिए डीजल इंजन पम्प, विद्युत मोटर पम्प व ट्रैक्टर काम में लिए जाते हैं। इनकी क्षमता अन्य साधनों से अधिक होती है। सबसे अधिक प्रचलन विकेन्द्रीय पम्प (Centrifugal Pump) का है। यह पम्प विकेन्द्रीय बल (Centrifugal Force) के सिद्धांत पर कार्य करता है। पम्प के बॉडी को केसिंग कहते हैं। इसके अन्दर पंखा होता है, जो कि साफ्ट्स के द्वारा तीव्र गति से इंजन या मोटर की शक्ति द्वारा चलता है। पम्प का पानी उठाने वाला चूषक नल (Suction pipe) पानी में डूबा रहता है। चूषक नल में नीचे की तरफ फुट वॉल्व लगा होता है, जो कि पानी को कुएँ में वापस बोरिंग पाइप के अन्दर जाने से रोकता है। इसके द्वारा पानी वापस कुएँ में नहीं जा सकता है। इस पाइप का पानी पंखे की सहायता से खींचा जाता है। बाद में यह प्रसार नल (Delivery pipe) से बाहर निकल जाता है। बनावट के आधार पर पम्प के प्रकार –

(1) मोनो ब्लॉक पम्प–इसमें पंखा व मोटर एक ही ब्लॉक में स्थित होते हैं।

(2) डबल ब्लॉक पम्प – इसमें चालक शक्ति का भाग अलग होता है तथा पंखे वाला भाग अलग होता है। इंजन पम्प प्रायः इसी प्रकार के होते हैं।

(3) सबमर्सिबल पम्प – यह पम्प पानी के अन्दर रहकर कार्य करता है।

इसलिये यह पम्प अधिक गहराई की जलस्तर वाली भूमि में प्रयोग में लाया जाता है। नलकूप में अधिकांश यही पम्प उपयोग में लाये जाते हैं।

चित्र–5.5 डीजल पम्प सेट

## फसलों की जल माँग (Water Requirement of Crops)

### जल माँग –

फसल की जल माँग जल की वह मात्रा है जो निश्चित परिस्थिति में निश्चित अवधि तक फसल की सामान्य वृद्धि एवं उत्पादन के लिये आवश्यक है तथा जिसकी पूर्ति जल अवक्षेपण या सिंचाई या दोनों द्वारा होती है। इसमें वाष्पीकरण, वाष्पोत्सर्जन, पादप उपापचय में प्रयुक्त जल के अतिरिक्त वह जल भी सम्मिलित होता है जो भूमि की तैयारी, पौधरोपण, लवण निक्षालन तथा जल प्रयोग में होने वाली हानि जैसे रिसने, बहने आदि में प्रयुक्त होता है। पौधों की उपापचयी क्रिया (शरीर निर्माण) में कुल फसल जल माँग की 1 प्रतिशत से कम जल की मात्रा की आवश्यकता होती हैं अतः जल माँग को सूत्ररूप में निम्न प्रकार दिया जा सकता है –

जल माँग = वाष्पोत्सर्जन + वाष्पीकरण + सिंचाई में जल की हानि + विशेष प्रक्रियाओं में प्रयुक्त जल

जल माँग को इस प्रकार भी प्रदर्शित किया जा सकता हैं–

जल माँग = सिंचाई जल की आवश्यकता + प्रभावी वर्षा + मृदा में संग्रहित नमी का योगदान

सिंचाई जल की आवश्यकता = जल माँग – प्रभावी वर्षा – मृदा में संग्रहीत नमी का योगदान

### जल माँग को प्रभावित करने वाले कारक

पौधों की जल माँग , भूमि की दशा, जलवायु, पौधों की प्रकृति व फसल प्रबन्धन द्वारा प्रभावित होती है। जल माँग को प्रभावित करने वाले कारक निम्नलिखित हैं –

**(अ) फसल की प्रकृति** – जल माँग फसल व फसल की किस्म पर निर्भर करती हैं। उदाहरण के लिए ज्वार को कम पानी की आवश्यकता होती हैं जबकि धान व गन्ना की जल माँग अधिक हैं। एक ही फसल की विभिन्न किस्मों की जल माँग अधिक हैं। एक ही फसल की विभिन्न किस्मों की जल माँग भिन्न–भिन्न होती हैं। दीर्घ अवधि की किस्म की जल माँग मध्यम व कम अवधि की किस्म की तुलना में अधिक होती हैं। फसल के लिए उपभोग में प्रयुक्त जल की मात्रा पौधों की प्रारम्भिक अवस्था में कम, पौधों की बढ़वार के समय अधिक, फलावस्था में अधिकतम और परिपक्वता पर घटती हैं। अंकुरण के समय वाष्पीकरण से भूमि से जल का ह्रास अधिक होता है। जिन पौधों की जड़ें कम विकसित व उथली होती हैं वे कम पानी का अवशोषण कर पाती हैं। जड़ें जितनी गहराई तक जाती हैं उतने ही अधिक क्षेत्र से जल का शोषण करती हैं तथा उतने ही ज्यादा पानी की आवश्यकता होती है। सूखा सहनशील फसलों को वृद्धि एवं विकास के लिए कम जल की आवश्यकता होती है। जिन फसलों में पत्तियाँ एवं शाखाएँ अधिक होती हैं, उनकी जल माँग कम पत्तियों वाली फसल की तुलना में अधिक होती है।

**(ब) मृदा** – मृदा की जल संग्रहित करने की क्षमता व पानी की उपलब्धता उसके भौतिक गुणों पर निर्भर करती है जैसे मृदा संरचना, मृदा रंग, मृदा ताप आदि। ये कारक किसी भी फसल की जल आवश्यकता को प्रभावित करते हैं।

1. हल्की बलुई मृदाओं की अतःस्पन्दन गति (Infiltration rate) अधिक होने के कारण भारी मटियार मृदाओं की अपेक्षा अधिक पानी की आवश्यकता होती है।
2. उथली मृदाओं को गहरी मृदाओं की तुलना में जल्दी–जल्दी लेकिन प्रति सिंचाई कम पानी की आवश्यकता होती है।
3. कार्बनिक पदार्थो की उपस्थिति से मृदा की जल अवशोषण क्षमता बढ़ जाती है तथा मृदा को कम पानी की आवश्यकता होती है।
4. मृदा उर्वरता भी पौधों द्वारा प्रयुक्त जल की मात्रा को प्रभावित करती है। कम उर्वर मृदाओं में उगाये गये पौधे या फसलें प्रति इकाई शुष्क पदार्थ उत्पन्न करने के लिए अधिक पानी वाष्पोत्सर्जित करती हैं। उर्वरक उपयोग से फसल का वाष्पोत्सर्जन अनुपात कम होता हैं तथा पानी के प्रभावी उपयोग में मदद मिलती हैं।
5. जिन भूमियों का रंग काला होता हैं वे वातावरण से अधिक ताप का अवशोषण करती हैं, जिससे भूमि से वाष्पीकरण अधिक होता हैं। जल माँग अधिक होगी।
6. जल निकास भी जल माँग को प्रभावित करता है। जलमग्न मृदाओं में वाष्पोत्सर्जन कम होने से पौधों द्वारा पानी का अवशोषण कम होता है। इसलिए दोषपूर्ण जल निकास परिस्थितियों में फसलें कम पानी लेती हैं।

**(स) जलवायु** – यह सर्वमान्य तथ्य हैं कि वाष्पीकरण –वाष्पोत्सर्जन सौर विकिरण, वायुमण्डल तापमान, सापेक्ष आर्द्रता तथा वायुगति से प्रभावित होता हैं। गर्मियों में बोई जाने वाली फसलों की जल माँग अधिक होती हैं क्योंकि गर्मियों में अधिक तापमान से वाष्पीकरण व वाष्पोत्सर्जन क्रियाएँ तेज हो जाती हैं। वातावरण में आर्द्रता कम होने पर वाष्पीकरण व वाष्पोत्सर्जन बढ़ जाता हैं। अतः फसल को अधिक पानी की आवश्यकता होती है। मध्यम व तेज हवाएँ चलने पर मृदा सतह से वाष्पीकरण बढ़ने के कारण मृदा में नमी कम हो जाती है तथा फसल में जल्दी ही सिंचाई करने के कारण जल माँग बढ़ जाती है। दिन के समय सूर्य जितना चमकीला होगा उतना ही वाष्पीकरण अधिक होगा। फसल के वृद्धि काल में बरसात होने पर फसल की जल माँग में कमी आती है।

**(द) फसल प्रबन्धन** – कर्षण क्रियाओं का फसल की जल माँग पर सीधा प्रभाव पड़ता है। अधिक जुताई करने पर मृदा संरचना में सुधार होता है। अतः जल माँग में कमी आती हैं। बीज दर बढ़ाने पर प्रति इकाई क्षेत्र में पौधों की संख्या बढ़ने से जल मांग में वृद्धि होती हैं। यदि फसल बुवाई वायु गति के विरूद्ध कतारों में करे तो वाष्पीकरण की क्रिया कम होगी व जल माँग भी कम होगी। निराई–गुड़ाई करने से खरपतवार नष्ट हो जाते हैं जिससे खरपतवारों द्वारा वाष्पोत्सर्जन में व्यर्थ जल की बचत होती है। खेत में पलवार या अवरोध परत का प्रयोग (Mulch) का प्रयोग करने से जल माँग में कमी आती है। सिंचाई प्रबन्धन भी जल माँग को प्रभावित करता हैं। सिंचाई की प्रभावित करता हैं। सिंचाई की प्रवाहित सिंचाई विधि (Flood irrigation) में नाली सिंचाई विधि (Furrow irrigation) की तुलना में अधिक पानी की आवश्यकता होती हैं। प्रवाहित विधि की तुलना में क्यारी विधि से सिंचाई करने पर जल माँग कम होती हैं। जल स्रोत से खेत तक पानी ले जाने हेतु कच्ची नाली में अन्तःस्रवण (Percolation) और अपसरण (Seepage) द्वारा जल की हानि पक्की नालियों की अपेक्षा अधिक होती है। फसलों पर विभिन्न कीटों व रोगों के प्रकोप के कारण पौधों की वृद्धि रूक जाती है जिससे जल माँग बढ़ जाती हैं।

## जल निकास (Drainage)

जिस प्रकार जल के अभाव में पौधों की वृद्धि एवं विकास कम हो जाता है ठीक उसी प्रकार आवश्यकता से अधिक जल पौधों की वृद्धि पर विपरीत प्रभाव डालता हैं। मृदा में फालतू जल होने से रन्ध्रावकाशों में हवा की जगह पानी भर जाता है, जिससे हवा और जल का सन्तुलन नहीं रह पाता है। अतः खेत से अतिरिक्त पानी को बाहर निकालना अति–आवश्यक हो जाता है।

सिंचाई और जल निकास दोनों विपरीत क्रियाएँ हैं। सिंचाई से जल की आपूर्ति की जाती हैं जबकी जल–निकास से अतिरिक्त पानी बाहर निकाला जाता है।

**परिभाषा** – मृदा से अतिरिक्त पानी को कृत्रिम विधियों द्वारा बाहर निकालने की क्रिया को जल–निकास कहते हैं।

अथवा

मृदा की सतह अथवा अधोसतह से अनावश्यक जल को बाहर निकालना जल–निकास कहलाता है।

पौधों के जल माँग व वातन (वायु संचार) से अधिक जल की मात्रा को अतिरिक्त या अनावश्यक जल कहते है।

### जल निकास की आवश्यकता क्यों ?

1. अधो–भूमि में सख्त तह का उपस्थित होना जिसके कारण पानी नीचे की सतहों में नहीं पहुँच पाता व ऊपरी सतह पर एकत्रित हो जाता है।
2. अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में जहाँ पानी की जल निकासी छोटे–छोटे नाले या नालियों द्वारा सीमित हो जाती है।
3. चिकनी भूमियों जहाँ पर भूमि के द्वारा कम मात्रा में पानी अवशोषित किया जाता है और अधिक पानी की मात्रा ऊपरी सतह पर एकत्रित हो जाती है।
4. ऐसे क्षेत्रों में जहाँ पर भूमि में जल भूमि की ऊपरी सतहों में ही पाया जाता है।
5. लवणीय भूमियों में हानिकारक लवणों को खेत में हटाने के लिये, भूमिगत जल निकासी की आवश्यकता होती है।
6. नहरी क्षेत्रों में जहाँ किनारे के खेतों में पानी निस्पन्दन द्वारा एकत्रित हो जाता है।
7. जो भूमियाँ जल–क्षरण को प्रभावित होती हैं वहाँ पर कभी–कभी जल–क्षरण को कम करने के लिये जल निकास के रास्ते तैयार किये जाते हैं।
8. समतल भूमियों में कुछ फसलें पानी में 8–10 घण्टे रहने पर प्रतिकूल रूप में प्रभावित होती हैं, अतः ऐसी अवस्था में जल निकास आवश्यक है।
9. वे भूमियाँ जिनमें फालतु जल, शीघ्र नहीं निकाला जा सकता।
10. निचली समतल भूमियाँ।
11. तराई क्षेत्र की दलदली भूमियाँ।

### खेती में जल उपयोग –

| क्र.स. | खेत में जल की आवक | खेत में जल की जावक |
|---|---|---|
| 1 | वर्षा से ( सभी खेतों में ) | 1. भूमि सतह से बहकर (रन ऑफ लोसेज) |
| 2 | सिंचाई से (केवल सिंचित खेतों में) | 2. फसलों द्वारा उपभोग |
| 3 | सीपेज से (नदियों/कच्ची नहरों एवं बांध के किनारे के खेतों में या निचले क्षेत्र में) | 3. भूमि में नीचे जाकर नष्ट |
| | | 4. वाष्पीकरण द्वारा नष्ट |
| | | 5. खरपतवारों द्वारा नष्ट |
| | | 6. स्रोत से खेत तक ले जाने में नष्ट |
| | | 7. सिंचाई विधि में खामी के कारण नष्ट |
| | | 8. सिंचाई प्रवृत्ति में खामी के कारण |

## जल निकास के लाभ

1. भूमि का वायु संचार बढ़ता हैं फलस्वरूप भूमि में ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ जाती हैं जिसके कारण भूमि में बीजों के अंकुरण, जड़ों द्वारा खाद्य तत्वों के अवशोषण पौधे के जड़ व तने की वृद्धि, पौधों के रोग एवं सूखा आदि सहन करने की क्षमता में वृद्धि होती है।
2. खेतों से जल निकास होने पर, अगली फसल के लिये खेत की तैयारी व बुआई समय पर हो जाती है।
3. हानिकारक लवण भूमि की ऊपरी सतह पर एकत्रित नहीं हो पाते हैं, अतः भूमि ऊसर नहीं हो पाती हैं।
4. जल–निकास का उचित प्रबन्ध होने से जल द्वारा मृदा कटाव में रूकावट पड़ जाती है।
5. जलमग्न भूमियों में अगर जल–निकास का उचित प्रबन्ध न हो तो कार्बन–डाइ–ऑक्साइड की मात्रा बढ़ जाती हैं और यह कार्बन–डाइ–ऑक्साइड पानी के साथ मिलकर कार्बनिक अम्ल बनाती रहती हैं। फलस्वरूप मृदा अम्लीय हो सकती हैं। अम्लीय भूमियों में एल्यूमिनियम व लोहे के लवणों की मात्रा आ जाती हैं जो फसल की बढ़वार के लिये हानिकारक होते हैं।
6. उचित जल–निकास होने पर भूमियों में अणुजीवियों की क्रियाशीलता बढ़ती है जो कि फसल वृद्धि के लिये अपरोक्ष रूप में लाभदायक होती है।
7. जल–निकास की सुविधा होने पर पौधों के खाद्य तत्त्वों का भूमि में निक्षालन की क्रिया द्वारा बहुत कम ह्रास होता है।
8. जल–निकास होने पर भूमि का तापक्रम भी अधिक नहीं गिर पाता जो फसलों की वृद्धि में सहायक होता है।
9. भूमि दलदली होने से बच जाती है।

### भूमि में अतिरिक्त जल की हानियाँ –

1. मृदा से वायु संचार में बाधा आना।
2. हानिकारक लवणों का इकठ्ठा होना।
3. मृदा के ताप का कम होना।
4. लाभदायक जीवाणुओं की क्रियाशीलता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।
5. जड़ों का पूर्ण विकास न होना अर्थात् जड़ें कम गहराई तक जाती हैं।
6. भूमि का दलदल होना।
7. मृदा अपरदन होना।
8. भूपरिष्करण क्रियाओं में बाधा।
9. बीमारियों व हानिकारक कीटों का प्रकोप।

## जल संरक्षण की आवश्यकता

जल समेट प्रबन्ध एक बहुआयामी कार्यक्रम हैं जिसके अन्तर्गत मृदा, जल, वनस्पति, मनुष्य व जानवरों का संर्वधन व विकास, मृदा अपरदन व गाद की रोकथाम, बाढ़ व सूखा नियन्त्रण,भूमि व भूमिगत जल में सुधार, घास चारा, ईंधन व फसलों की पैदावार में अनियमित आधार पर वृद्धि, पर्यावरण व पारिस्थितिकीय सुधार आदि कार्य आते हैं। साथ ही प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग पर आधारित कुटीर उद्योगों और धन्धों का विकास का स्थानीय जनता की आर्थिक दशा में सुधार करना भी इसका उद्देश्य है। इन सभी कार्यों में स्थानीय निवासियों का सक्रिय सहयोग वांछनीय है।

जल समेट प्रबन्ध कार्यक्रम के निम्नलिखित एक या अधिक उद्देश्य हो सकते हैं, जैसे –

– जलागम में त्वरित/अत्यधिक भू–क्षरण से रोकथाम,
– विश्वसनीय एवं स्वच्छ जल की आपूर्ति,
– बाढ. एवं सूखे का नियन्त्रण,
– फसल, चारा, ईंधन, फल आदि की लगातार आपूर्ति,
– विशेष समस्याओं , जैसे– भूस्खलन, खनिज क्षेत्र, नदी, नाला, कटाव आदि का नियन्त्रण।

### जल संरक्षण

जल संरक्षण चाहे मृदा में हो या मृदा की सतह पर हो। आज के बदलते परिवेश में जल का संरक्षण करना अति आवश्यक हो जाता हैं।

जल का अभाव कई कारणों से होता हैं। जैसे – पौधों द्वारा वाष्पोत्सर्जन, वाष्पीकरण द्वारा, पानी का अपवाह, वर्षा का अभाव, भूमि की जल सोखने एवं जल धारण क्षमता, वर्षा का वितरण, शैल की संरचना, तीव्र दोहन, जल–स्रोतों का अनुपयुक्त रख–रखाव आदि।

### जल–संरक्षण की परिभाषाएँ –

भूमिगत अथवा भूमि की सतह पर जल–भण्डारों में जल की सुरक्षा करना ही जल संरक्षण कहलाता है।

अथवा

जल का सदुपयोग करना ही, जल संरक्षण कहलाता है।

अथवा

जल नष्ट होने से बचाना एवं आवश्यकता के समय फसलों को उपलब्ध करना ही, जल संरक्षण कहलाता है।

### जल संग्रह (Water harvesting) –

**परिभाषाएँ** – "जल संग्रह की वह तकनीक है, जिसमें बहते हुए वर्षा जल को भूमि में या खेत के पोखर में खेती के उपयोग के लिए इकठ्ठा किया जाता है, वॉटर–हार्वेस्टिंग कहलाता है।"

अथवा

"महावट अथवा खरीफ ऋतु में प्राप्त वर्षा जल को बाह क्षेत्र से जल अपवाह में वृद्धि करके निचले स्थान पर निर्मित जलप्रद गड्ढे में एकत्रित कर लेना, जल–संग्रह कहलाता हैं।"

अथवा

"ढलान वाले क्षेत्र बनाकर और ढलान से होने वाले अपवाह पानी को इकट्ठा करके एवं संरक्षण करके जरूरत के समय, इसका उपयोग करना ही वाटर–हार्वेस्टिंग कहलाता है।" वाटर–हार्वेस्टिंग की दो विधियों का वर्णन किया जा रहा है –

**(1) लघु जल–संग्रह विधि** – इस विधि में जल को भूमि में संग्रह किया जाता है। इसके भी दो तरीके हैं –

**(अ) दो कतारो के बीच** – इसमें खेत में डोलियाँ एवं नालियाँ बनाकर डोलियों पर फसलें उगाई जाती हैं और नालियों में जल संग्रह किया जाता है। यह तरीका उन क्षेत्रों में अपनाया जाता है, जहाँ वर्षा लगभग फसल के पानी की जरूरत के बराबर होती है। डोलियाँ एवं नालियाँ बनाने के लिए रीजर–सीडर यन्त्र का प्रयोग करना अच्छा रहता है।

इस विधि से बाजरा बाजरा, ग्वार, मूंग एवं लोबिया आदि फसलें ली जा सकती हैं।

**(ब) दो प्लॉटों के बीच** – इस तरीके में पूरे खेत में फसल न उगाकर खेत के कुछ भाग में ही फसल उगायी जाती है और शेष खेत में इस प्रकार ढलान दी जाती है कि वर्षा का पानी उस भाग से बहकर फसल वाले भाग में इकट्ठा हो जावे। यह विधि फसलों के पानी की जरूरत से कम वर्षा वाले क्षेत्रों में अपनायी जाती है। इस विधि द्वारा अनाज एवं दालवाली फसलों के अलावा बेलवाली सब्जियों एवं बारानी फलों की खेती की जा सकती है।

**(2) वृहद जल संग्रह** – इस विधि में जल को पोखर में एकत्र किया जाता हैं और उसे फसलों को सूखने से बचाने के लिए एवं पलेवा देने में उपयोग किया जाता है। शुष्क क्षेत्रों के लिए 10 x 10 x 2 मीटर के पोखर बनाये जाते हैं। ऐसे पानी से भरे पोखर से एक एकड़ भूमि में 5 सेमी. की एक सिंचाई की जा सकती है। इस प्रकार सिंचित फसलें असिंचित फसलों से 2–3 गुना अधिक पैदावार देती हैं।

**स्थल पर मीठे जल के दो मुख्य प्राप्ति क्षेत्र हैं –**

1. **भूमिगत** (Under Ground)
2. **धरातलीय** (surface)

धरातल के नीचे गहराई पर चट्टानों के कणों के मध्य रिक्त स्थान तथा दरारों में उपलब्ध जल के भूमिगत जल कहते हैं। धरातल पर उपलब्ध कुल जल का केवल 0.6 प्रतिशत भाग ही भूमिगत जल के रूप में संग्रहित है। वर्षा, नदियों, दलदलों, तालाबों, झीलों आदि के जल के रिसाव से भूमिगत जल–भण्डार (Aquifer) बनता हैं। रिसाव की मात्रा धरातल के ढाल तथा चट्टानों की संरचना पर निर्भर करती है। समतल भूमि या धीमे ढाल तथा रन्ध्रयुक्त शैलों में जल रिसाव अधिक होता है। इसके विपरीत तीव्र ढाल तथा अरन्ध्रयुक्त शैलों में बहाव अधिक होने से रिसाव कम होता है।

प्राचीनकाल से ही मानव भूमिगत जल की प्राप्ति कुओं के माध्यम से करता आ रहा हैं। आज भी हाथ से खोदे हुए कम गहरे कुओं से करोड़ों लोग पीने तथा अन्य उपयोगों के लिए पानी प्राप्त करते हैं।

"भूमिगत जल के ऊपरी तल को भूमिगत जल–स्तर कहते है।

भूमिगत जल तल से अधिक गहरा कुआँ खोदने पर उसमें भूमिगत जल–स्तर के स्तर तक पानी प्रकट हो जाता है। इन कम गहरे व हाथ से खोदे हुए साधारण कुओं द्वारा भूमिगत जल के ऊपरी भाग का ही दोहन हो पाता है। शुष्क मौसम में भूमिगत जल–स्तर नीचे गिर जाने पर कई छिछले कुएँ सूख जाते हैं। कुओं से जल अधिक मात्रा में खींचने पर भूमिगत जल तल उल्टे शंकु की भांति नीचे बैठ जाता है। इसे गर्तशंकु कहते (Cone of Depression) हैं।

शंकु उत्पन्न करने वाला मुख्य कुआँ ही नहीं बल्कि ऐसे शंकु की परिधि में आने वाले छिछले कुएँ भी सूख जाते हैं। आजकल तीव्र दर से बढ़ती जनसंख्या के लिए प्रत्यक्ष रूप से तो पानी की खपत बढ़ ही रही हैं, साथ ही अधिक कृषि उपजों की आवश्यकता के कारण तथा बढ़ती हुई औद्योगिक माँग के कारण भी जल की आवश्यकताएँ काफी बढ़ गई हैं। अतः विश्व के अनेक क्षेत्रों व देशों में कुओं को मशीनों की सहायता से गहरा खोदकर गहराई पर उपलब्ध विशाल भूमिगत जल–भण्डार का उपयोग किया जा रहा है। इन्हें नलकूप कहते हैं। इनसे न केवल विश्व की जनसंख्या के बहुत बड़ें भाग को पीने का पानी, बल्कि सिंचाई तथा औद्योगिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु काफी मात्रा में जल उपलब्ध कराया जाता हैं। प्राप्त किये जाने वाले जल की मात्रा के बराबर जल का पुनर्भरण अति आवश्यक है। ऐसा न होने पर गर्तशंकु निरन्तर विशाल तथा गहरे होते जाते हैं। यह स्थिति लम्बे समय तक बनी रहने पर जल–स्तर निरन्तर गिरता जाता है।

**कुओं में जल पुनर्भरण करने के उपाय –**

1. जलीय प्रचुरता वाले क्षेत्रों व मौसम में जल एकत्रण की सुविधाएँ जुटाकर अतिरिक्त जल को शुष्क क्षेत्रों तथा शुष्क मौसम में उपलब्ध करना। जैसे – एनीकट तथा बाँध बनाकर। उदाहरण – अजमेर जिले के चीताखेड़ा, जलग्रहण विकास क्षेत्र में एनीकट से कुओं का जलस्तर 2 फुट से 20 फुट तक बढ़ा है।
2. पारम्परिक जल स्रोतों का उपयुक्त रख–रखाव करना।
3. कुओं व नलकूपों के मध्य उपयुक्त दूरी बनाये रखना, ताकि वे पारस्परिक शंकुगर्त में नहीं आये।

4. प्रत्येक क्षेत्र में वर्षा के जल को छोटे–छोटे तालाबों में एकत्रित करना ताकि स्थानिक रूप से भूमिगत जलस्तर में वृद्धि होते–होते व्यापक क्षेत्र में भूमिगत जल का पुनर्भरण हो सके।

5. जल स्रोतों के दोहन की मात्रा पुनर्भरण की मात्रा तक सीमित रखना।

**वर्षा जल संग्रहण हेतु निम्नलिखित उपक्रम स्थापित किया जा सकता है –**

वर्षा के जल को संग्रह करना व आगे भविष्य में उपयोग में लेना एक वर्षो पुरानी तकनीक है। ऊँचे–ऊँचे किलों पर व रेगिस्तानों में टांकों में इसी जल को भविष्य के लिए संग्रहित किया जाता रहा है।

वर्षा जल को भूजल में पहुँचाने की विधि बहुत ही सरल है व इस उपक्रम को आसानी से कहीं भी बनाया जा सकता है, वह भी बिना किसी तोड़ फोड़ के छत के पानी को एक ही पाइप में संग्रहित करके फिल्टर के माध्यम से घरों/छतों में स्थित टयूबवैल या टैंक में डाला जाता है, अगर छत से पानी निकालने के तीन चार निकास ( नाल्दे ) हैं तो उन सबकों जोड़ कर एक पाइप में संग्रहित किया जाता है, फिर उसको फिल्टर से जोड़ा जाता है और फिल्टर के आगे पाइप लगाकर उसे टयूबवैल/हैण्डपम्प/कुओं से जोड़ा जा सकता है।

एक गणना के अनुसार यदि 1000 वर्ग फीट की छत या धरातल पर 1 से.मी. वर्षा होती हैं तो लगभग 1000 लीटर पानी एकत्रित होता है अर्थात् कही अगर 100 से.मी. अर्थात 40 इंच वर्षा होती है तो एक लाख लीटर शुद्ध जल भूजल में जायेगा।

**इसमें होने वाले लाभ :–**

- भू–जल में शुद्ध जल जायेगा।
- भू–जल की मात्रा निश्चित बढ़ेगी।
- भू–जल की गुणवत्ता बढ़ेगी।
- गली मोहल्ले के नाले वर्षा में बंद नहीं होंगे व घरो में पानी भरने जैसी स्थिति नहीं होगी।
- भू–जल स्तर बना रहने से टयूबवैलों/हैण्डपम्प में बराबर शुद्ध जल आता रहेगा।

## जल संरक्षण की विभिन्न विधियाँ (Methods of water conservation)

**समतलीकरण एवं मेड़बन्दी :** उबड़–खाबड़ जमीन पर वर्षा जल का वितरण कहीं आवश्यकता से अधिक तो कहीं पर आवश्यकता से बहुत कम हो जाता है। खेत के समतलीकरण द्वारा वर्षाजल वितरण की इस असमानता को दूर किया जा सकता है। समतल सतह से जल का बहाव कम होने के कारण वर्षाजल भूमि में अधिक मात्रा में रिसता है व नमी गहराई तक बनी रहती है। खेत के चारों ओर मेड़ न होने से वर्षा जल अनियन्त्रित रूप से बहकर मृदा का अपरदन कर खेत में अवलानिकायें विकसित कर भूमि को खराब कर सकता है। अतः खेत को समतल कर चारों ओर न्यूनतम 50 सेमी से 60 सेमी ऊंची मेड़ बनाकर वर्षाजल, पोषक तत्व, खाद व बीज को बाहर जाने से रोका जा सकता है।

**समोच्च बांध व वानस्पतिक अवरोध :** अधिक ढलान के खेतों में समतलीकरण संभव नहीं होता है वहाँ ढलान के अभिलम्ब दिशा में मिट्टी के समोच्च अवरोध बनाकर वर्षा जल के बहाव व मृदा क्षरण को रोका जा सकता है। सामान्यतः दो समोच्च अवरोधों के मध्य 60–70 मीटर की दूरी रखी जाती है जो स्थानीय औसत वर्षा व ढलान पर निर्भर करती है। समोच्च अवरोध 0.75 से 1 मीटर ऊँचे व 1 से 1.5 मीटर चौड़े आधार के बनाये जा सकते हैं। इन अवरोधों को अधिक मजबूती प्रदान करने के लिये इन पर स्थानीय वनस्पति जैसे मूंजा, सेवन आदि लगाया जा सकता है।

**समोच्च नाली :** इस तकनीक के तहत अधिक ढलान वाले खेत या चारागाह में ढलान के अभिलम्ब दिशा में समोच्च नाली बनायी जाती हैं। नाली से निकाली गई मिट्टी ढलान की तरफ मेड़ के रूप में डाल दी जाती है। वर्षा होने पर सतही बहाव इस नाली में एकत्र हो जाता है जो पौधों को लगाने के लिये प्रारम्भिक अवस्था में बहुत लाभदायक सिद्ध होता है। ढलान की तरफ बनाई गई मेड़ बहते पानी के मार्ग में अवरोध का कार्य करती है। सामान्यतः नाली 0.75 से 1 मीटर व 0.60 से 0.75 मीटर चौड़ी बनाई जा सकती है। दो नालियों के मध्य 60 से 90 मीटर का अन्तराल पर्याप्त होता है। समोच्च नाली तकनीक विशेषतः ढलान वाले चरागाहों में वृक्ष व घास स्थापित करने में काफी सहायक होती है।

**खेत में जल धारण क्षमता बढ़ाना :** वर्षाकाल के दौरान बहाव के साथ तालाबों में चिकनी काली मिट्टी जमा हो जाती है। इस मिट्टी की जलधारण क्षमता बलुई मिट्टी की अपेक्षा ज्यादा होती है। गर्मियों में तालाबों के खाली होने के बाद इनकी काली मिट्टी को खेतों में बिछा देने से खेतों की बलुई मिट्टी की जलधारण क्षमता बढ़ाई जा सकती है व पानी अधिक समय तक फसलों के उपयोग के लिये भूमि में उपलब्ध रहेगा।

**खेत की जुताई :** अच्छे जमाव, पौधों की बढ़वार तथा अधिकतम उपज के लिये खेत की जुताई एक आवश्यक कृषि कार्य है। खरीफ में आवश्यक से अधिक जुताई करने पर तेज हवाओं द्वारा मिट्टी एवं नमी ह्रास होता है अतः जुताई करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि तैयारी एवं बुआई के बीच कम समय अन्तराल हो। बुआई के लिये अच्छी तरह खेत तैयार करने के लिये स्वीप कल्टीवेटर द्वारा एक जुताई बरसात के समय तथा एक जुताई बुआई से पहले पर्याप्त होती है। जुताई हमेशा खेत के ढाल

के अभिलम्ब दिशा में करनी चाहिये। इससे मृदा क्षरण व जल के बहाव में कमी आती है।

**पंक्तिदार बुआई :** पंक्तिदार बुआई भूमि एवं जल संरक्षण के दृष्टिकोण से मरूक्षेत्र में बहुत ही उपयोगी है। अनुसंधान के आधार पर यह ज्ञात हुआ है कि यदि तिल की चार कतारों के साथ मोंठ की 6 कतारों को एकांतर क्रम में बोई जायें तो अधिकतम लाभ मिल सकता है। सेवण घास के साथ खरीफ में दलहनी फसलों (मूंग, मोठ, ग्वार) के पट्टीदार सस्यन से वायु द्वारा मृदा क्षरण को रोकने के साथ–साथ प्रति इकाई क्षेत्र से उपज भी अधिकतम प्राप्त होती है।

**सतही पलवार :** शुष्क क्षेत्रों में उच्च तापमान के द्वारा तीव्र वाष्पीकरण होता है जिससे मृदा में व्याप्त नमी का तेजी से ह्रास होता है व पौधे नमी के अभाव में सूखने लगते है। अतः संचित नमी को बचाये रखने के लिये खेत से निकाले गये खरपतवार व अन्य घास–फूस से सतह पर की गई पलवार मृदा के वातीय व जलीय क्षरण तथा मृदा नमी को बचाने में काफी सहायक होती है। सतही पलवार के रूप में उपलब्धता के आधार पर फसलों के अवशिष्ट अंश, पत्तियाँ, सूखी घासें, लकड़ी का बुरादा या पॉलिथीन की चादरें काम में ली जा सकती है।

**उचित फसलों का चुनाव व समय पर बुआई :** मरूस्थलीय क्षेत्रों में फसलोत्पादन पूरी तरह से वर्षा पर निर्भर करता है अतः इन क्षेत्रों में फसलों का चुनाव करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि फसलें ऐसी हो जो कम पानी व कम समय में तैयार हो जाये तथा इनमें सूखा सहन करने की क्षमता हो। मरूस्थलीय स्थानों में ऊपरी सतह पर मृदा जल की कमी होने के कारण ऐसे क्षेत्रों में गहरे जड़ों वाली फसलें ज्यादा उपयुक्त रहती है। फसलों की बुआई सही समय पर करनी चाहिये। ऐसा करने से फसलों की बढ़वार के लिये अनुकूल अवधि मिल जाती है और फसल के पकने के समय सूखे का सामना नहीं करना पड़ता है। रेतीली मिट्टियों के लिये बाजरी, मूंग, मोठ, ग्वार आदि फसलें उपयुक्त रहती है। इन फसलों की किस्म विशेष का चुनाव भूमि व उपलब्ध जल आदि के आधार पर किया जा सकता है।

**पौध संख्या एवं रक्षण :** शुष्क क्षेत्रों में पानी की कमी के कारण पौधों की संख्या सिंचित कृषि की तुलना में 10 से 15 प्रतिशत कम रखी जाती हैं। यदि अधिक सूखे की स्थिति उत्पन्न हो रही हो तो पौधों की संख्या को ज्यादा पानी उपलब्ध रहेगा। पौध संख्या कम करने से घटी हुई पौध संख्या को ज्यादा पानी उपलब्ध रहेगा। पौध संख्या कम होने से उत्पादन में हुई कमी को कम पौधों को ज्यादा पानी उपलब्ध रहने से उत्पादन में हुई वृद्धि द्वारा पूरा किया जा सकता हैं। बुआई से पूर्व बीजोपचार किया जाना आवश्यक है। 2–3 वर्ष के अन्तराल पर जैविक खाद का प्रयोग भी फसल उत्पादन में काफी सहायक होता है।

**खरपतवार निकालना :** खरपतवार खेत में उपलब्ध जल व पोषक तत्वों को शीघ्रता से ग्रहण करते हैं, फलस्वरूप फसलों को आवश्यक पोषक तत्व व पानी पर्याप्त मात्रा में नहीं मिल पाते हैं। अतः फसलों को पर्याप्त नमी व पोषक तत्व उपलब्ध कराने हेतु समय पर खेत को खरपतवारों से मुक्त कर देना चाहिए। खरपतवार को उपयुक्त फसल चक्र अपनाते हुए खुरपी, कल्टीवेटर या खरपतवार नाशक दवाईयों का प्रयोग करके नियंत्रित किया जा सकता हैं। इस प्रकार मरू क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के सस्यन से अधिकतम उपज एवं लाभ प्राप्त किया जा सकता है। जल संरक्षण की ऊपर दी गई विधियों के सफल प्रयोग से खरीफ की फसलों की अच्छी उपज के साथ–साथ रबी की फसलों की बुआई के लिए भी नमी मृदा में संरक्षित रहती है।

## अभ्यास प्रश्न

### बहुचयनात्मक प्रश्न

1. पेड़–पौधों में औसत जल कितना पाया जाता है?

(अ) 40 प्रतिशत (ब) 90 प्रतिशत
(स) 60 प्रतिशत (द) 30 प्रतिशत

2. पौधो–में स्फीति कोशिका विभाजन प्रकाश संश्लेषण के लिये आवश्यक अवयव है :–

(अ) मृदा (ब) खाद
(स) जल (द) वायु

3.पौधों की पत्तियों के पर्ण रन्ध्रों के माध्यम से पानी के उत्सर्जित करने की प्रक्रिया को कहते है :–

(अ) वाष्पीकरण (ब) वाष्पोर्त्सजन
(स) अवशोषण (द) वृषण

4. जिन नहरों में हमेशा पानी बहता है, उन्हें कहते है :–

(अ) अनित्यवाही (ब) नित्यवाही
(स) एनिकट (द) झरने

5. ऐसा जल स्रोत जिसमें सीढ़ियाँ बनी होती हैं :–

(अ) पक्का कुआँ (ब) कच्चा कुआँ
(स) नलकूप (द) बावड़ी

6. अनावश्यक जल को खेत से निकासी की क्रिया को कहते हैः–

(अ) जलमाँग (ब) जल निकास
(स) जल संग्रह (द) जल प्लावन

### अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

7. नलकूप की औसत गइराई कितनी होती है ?

8. कुएँ कितने प्रकार के होते हैं ?

9. रहट का संचालन किस शक्ति के द्वारा होता है ?

10. जल माँग का सूत्र लिखिए ?

11. वह पम्प जो पानी के अन्दर रहकर कार्य करता है, क्या कहलाता है।

12. पहाड़ों की दरारों व कन्दराओं से रिसने वाला पानी का स्रोत क्या कहलाता है ?

### लघूत्तरात्मक प्रश्न

13. सिंचाई किसे कहते हैं ?

14. किन कृषण क्रियाओं के लिये जल आवश्यक है ?

15. भूमि में लाभदायक जीवाणु की क्रियाशीलता कैसे बढ़ती है?

16. सिंचाई के साधन किसे कहते हैं ?

17. पाताल तोड़ कुआँ कैसा होता है ?

### निबंधात्मक प्रश्न

18. सिंचाई की परिभाषा देते हुये, सिंचाई के महत्त्व का वर्णन कीजिए।

19. सिंचाई के प्रमुख स्रोतों का सविस्तार वर्णन कीजिए।

20. जलमाँग को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कीजिए।

21. जल निकास किसे कहते है ? जिल निकास का महत्त्व का वर्णन कीजिए।

### उत्तरमाला

| | | |
|---|---|---|
| (1) ब | (2) स | (3) ब |
| (4) ब | (5) द | (6) ब |

# अध्याय–6
# कृषि यंत्रों की सामान्य जानकारी
# (General Information of Agricultural Implements)

देश के सत्तर के दशक में आयी हरित क्रान्ति का आधार यहाँ एक ओर उन्नत किस्में थी वहीं दूसरी ओर कृषि के यंत्रीकरण ने भी एक विशेष भूमिका निभाई। कृषि क्रियाऐं जैसे – खेत की जुताई, बुआई, निराई–गुड़ाई, फसल की कटाई, मड़ाई तथा ओसाई आदि में कृषि यंत्रों ने क्रान्तिकारी काम किया। देश में कृषि यंत्रों से सम्बन्धित तकनीकी का विकास, प्रचार व प्रसार हेतु भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् (ICAR) ने राष्ट्रीय स्तर पर वर्ष 1976 में भोपाल (म.प्र.) में केन्द्रीय कृषि इंजीनियरिंग संस्थान (CIAE) की स्थापना की।

कृषि यंत्रीकरण का तात्पर्य सभी कृषि कार्य मनुष्य या पशु के स्थान पर यदि मशीन से किया जाये तो उसे कृषि यंत्रीकरण कहते है। यह मुख्यतः दो प्रकार के होते है – पूर्ण (सम्पूर्ण कार्य मशीनों से किये जाये) व आंशिक (कुछ मशीनों के द्वारा और कुछ पशुओं के द्वारा) यंत्रीकरण।

आज के परिप्रेक्ष्य में कृषि यंत्रीकरण की हमारे देश में आवश्यकता बढ़ती जा रही है, क्योंकि अन्य उद्योगों की तुलना में आज कृषि कार्यों के लिए मानव श्रम (मजदूर) की उपलब्धता कम है तथा कृषि कार्यों को समय पर सम्पादित करने में कठिनाई आने से फसल उत्पादन लागत बढ़ रही है कृषि बिना यंत्रीकरण कम लाभ का साधन होता जा रहा है तथा परम्परागत कृषि मजदूर गाँव को छोड़कर शहर की ओर पलायन कर रहा है। मजदूरों की इस कमी को कृषि यंत्रों के प्रयोग से निश्चित समय में पूरा करना सम्भव है।

**कृषि में यंत्रीकरण निम्नलिखित तीन तरीको से किया जा सकता है :–**

1. छोटे किसानों के लिए बैलों से चलाने वाले उन्नत यंत्रों का प्रयोग।
2. मध्यमवर्गीय किसानों के लिए छोटे ट्रेक्टर और उनसे चलने वाले यंत्रों का प्रयोग।
3. बड़े किसानों के लिए बड़े ट्रेक्टर, कम्बाइन आदि यंत्रों का प्रयोग।

**कृषि यंत्रीकरण के लाभ :–**

**अ. कार्य क्षमता में वृद्धि (Increase efficiency):-** यंत्रों की सहायता से कम समय में अधिक कृषि कार्य किया जा सकता है।

**ब. समय की बचत (Time saving):-** मानव (0.1 अश्व शक्ति) या पशु श्रम (0.5 अश्व शक्ति) के द्वारा कार्य करने में अधिक समय लगता है। वही कार्य यंत्र की सहायता से (ट्रेक्टर) कम समय में निष्पादित किया जा सकता है।

**स. कम श्रम की आवश्यकता (Less labour requirement):-** मानव श्रम प्रति फसल उत्पादन, यंत्रों से करने पर कम मजदूरों की आवश्यकता पड़ती है, जैसे – खेत जुताई, फसल बुआई व कटाई ट्रेक्टर से करने पर कम श्रम की जरूरत होगी।

**द. उत्पादन लागत में कमी (Less cost of production):-** यंत्रों द्वारा किया गया कार्य मानव व पशु शक्ति की तुलना में दक्षता व समय पर होने से उत्पादन में बढ़ोत्तरी व कम लागत में सम्पन्न होगा।

**य. भूमि सुधार (Land reclamation):-** ऊँची नीची, जंगल टीले आदि भूमि की सफाई कर उसे कृषि योग्य बनाया जा सकता है इसके लिए बड़े ट्रेक्टर, बुलडोजर, जे.सी.बी. आदि का उपयोग।

**र. अनावश्यक व्यय की बचत (Saving of unnecessary expenses):-** पशु शक्ति में इनका रखरखाव एक महँगा सौदा है कृषि यंत्रों का कार्य के समय ही डीजल या पेट्रोल खर्च होगा, इस तरह अनावश्यक व्यय की बचत होती है।

**ल. जोखिम में कमी (Avoidance of Risk):-** पशुओं या मानव शक्ति से काम करने पर कृषक को हानि उठानी पड़ती है क्योंकि फसल का बहुत हिस्सा वर्षा में भीग जाता है या समय पर बुआई नहीं होती परन्तु यंत्रीकरण से इसमें कमी आयेगी।

**व. अन्य (Other):-** इन सब लाभों के अलावा कुछ अन्य लाभ जैसे – फसल उत्पादन में वृद्धि, दूसरे व्यवसाय की स्थापना सम्भव तथा राष्ट्र का औद्योगीकरण होगा।

## यंत्रीकरण से हानियाँ (Disadavantages of mechanization):-

**अ. उच्च प्रारम्भिक लागत (High initial cost):-** भारतीय कृषकों का बड़ा भाग आर्थिक रूप से बहुत कमजोर है तथा इन महँगे यंत्रों को खरीदना उनके वश की बात नहीं है।

**ब. जोतों का आकार छोटा होना (Small holding size):-** भारतवर्ष में सीमान्त व लघु (2 हैक्टर से कम जोत धारक) कृषक 80 प्रतिशत से अधिक है, वहां मशीनों का पूर्ण उपयोग सम्भव नहीं होगा तथा परिवारों के आपसी बंटवारो से जोतो का आकार निरन्तर छोटा होता जा रहा है।

**स. प्राविधिक शिक्षा की कमी (Lack of technical education):-** भारत में कृषकों की अशिक्षा के कारण तकनीकी ज्ञान की कमी है जिस कारण यंत्रों की मरम्मत व सम्बन्धित ज्ञान के लिए कृषकों को गाँवों से कस्बों या शहरों में जाना पड़ता है जहाँ जिसमें समय व धन की हानि होती है।

**द. अन्य हानियाँ जैसे –** पशुओं द्वारा प्राप्त अवशेष लाभों (गोबर की खाद, चमड़ा आदि) में कमी होगी।

## भारतवर्ष में कृषि यंत्रीकरण की उन्नति व भावी सम्भावनाऐं (Progress of Agril. mechanization and scope):-

भारतवर्ष में कृषि में यंत्रीकरण विभिन्न क्रियाकलापों को पूरा करने के लिए वर्ष दर वर्ष बढ़ रहा है। सर्वेक्षण से पता चलता है कि 2 टन प्रति हैक्टेयर उपज के लिए 1 अश्व शक्ति की दर से शक्ति की आवश्यकता पड़ती है जिसे आधुनिक ट्रेक्टर, डिस्क हल, पम्पिंग सेट, रिपर, कम्बाइन और पावर टिलर का निर्माण कर पूरा किया जा रहा है।

भारत में यंत्रीकरण आवश्यक है जैसा कि इनके लाभ व उन्नति से पता चलता है अतः इस ओर काफी प्रबल सम्भावनायें है परन्तु इसके लिए निम्न कारकों को ध्यान में रखना होगा जैसे बड़े – बड़े यंत्रों के निर्माण से ज्यादा ध्यान देशी यंत्रों को ही सुधार कर उन विशेष परिस्थितियों और जलवायु अनुकूल बनाने से कार्यदक्षता बढ़ेगी तथा किसान लाभान्वित होंगे। किसानों को भी सहकारी खेती को अपनाने की जरूरत है जिससे किसानो के व्यक्तिगत खर्च में कमी रहेगी। सरकार के प्रयास सस्ती दरों पर ऋण की व्यवस्था करना, तकनीकी ज्ञान हेतू कृषक प्रशिक्षण व्यवस्था, यंत्र विकास के लिए अनुसंधान केन्द्रो की स्थापना तथा प्रदर्शनियों का आयोजन करते रहना चाहिए, जिससे भारत में यंत्रीकरण को बढ़ावा मिलेगा।

## कृषि यंत्रो का वर्गीकरण (Classification of Equipments):-

शस्य क्रियाओं व शक्ति स्रोत के आधार पर कृषि यंत्रो का वर्गीकरण किया जा सकता है जो निम्नलिखित है :–

### अ. शस्य क्रियाओं के आधार पर :–

**1. जुताई एवं बीज शैय्या तैयार करने वाले कृषि यंत्र –**

**हल –** प्राथमिक भू–परिष्करण की कृषि क्रियाएँ जिनमें मृदा की जल शोषण क्षमता, जलधारण क्षमता, मृदा भुरभुरापन एवं उर्वरता में बढ़ोतरी होने से पौधे की वृद्धि अच्छी हो तथा फसल उगाने के बाद भी इस अवस्था को बनाये रखा जा सके भू–परिष्करण कहलाती है। इसके लिए विभिन्न हल प्रयुक्त होते है, उदाहरण – देशी हल, मोल्ड बोर्ड हल एवं तवे दार (डिस्क) हल

**हेरो –** यह भी प्राथमिक भू–परिष्करण यंत्र है जिसका उपयोग जुताई के पहले खरपतवार काटने, सतह की पपड़ी तोड़ने, मिट्टी के बड़े–बड़े ढेलों को तोड़कर भुरभुरा करने व खेत की बिखरी खाद को मृदा में मिलाने में किया जाता है। इस प्रकार डिस्क हेरो, ड्रेग हेरो (स्पाइन टूथ, स्प्रिंग टाइन, पेग/तिकोनिया हेरो) व ब्लेड हेरो (बाखर) आदि।

**कल्टीवेटर –** यह द्वितीय भूपरिष्करण यंत्र है जिसका उपयोग लाइन में बोयी गई फसलों में घास निकालना, मिट्टी को भुरभुरी करना, निराई–गुड़ाई करना आदि है। यह क्षेत्र मानव, पशु व ट्रेक्टर चालित हो सकता है तथा इनकी संरचना के आधार पर खुरपादार, तवेदार व सतही क्ल्टीवेटर तथा प्रयोग के आधार पर कानपुर कल्टीवेटर, वाह–वाह कल्टीवेटर, शाबास कल्टीवेटर, आर.एस.कल्टीवेटर व ट्रेक्टर चालित कल्टीवेटर को भारतवर्ष में उपयोग लेते है।

**2. बुआई वाले कृषि यंत्र –** खेत में फसल बुआई के समय तीन बातों का ध्यान रखना चाहिए– (1)बीज की मात्रा, (2)बीज की उचित दूरी व (3) बुआई की उचित गहराई। इन कार्यों को सम्पादित करने हेतु प्रयुक्त यंत्र डिबलर, सीड ड्रील, देशी हल के पीछे बुआई, प्लान्टर आदि हैं।

**3. निराई – गुड़ाई वाले कृषि यंत्र –** द्वितीयक भू परिष्करण यंत्र जिनमें खुरपी, कुदाली, हैंड हो, फावड़ा, व्हील हो, ड्राई लैण्ड वीडर आदि।

**4. कटाई वाले कृषि यंत्र –** फसल पक जाने के बाद उसकी कटाई में प्रयुक्त यंत्रों में हँसिया (दराँती), कटर बार, मोअर, रीपर एवं कम्बाइन आदि।

**5. मड़ाई तथा ओसाई वाले कृषि यंत्र –** फसल के काटने के बाद उसकी मड़ाई की जाती है। इसमें दानों को स्वतंत्र किया जाता है फिर ओसाई क्रिया की जाती है जिसमें दानों से भूसा दूर उड़ा दिया जाता है। इन कार्यों के लिए प्रयोगार्थ यंत्र में थ्रेसर (अल्प पैड व शक्ति चालित) मुख्यतः प्रयोग में लेते हैं। आजकल बडे फार्मो पर फसल कटाई, मड़ाई व ओसाई (सफाई) ये तीनों कार्य एक साथ कम्बाइन (Combine) की मदद से करते हैं।

**6. अन्य कृषि यंत्र** – फसल विशेष की शस्य क्रियाओं को पूरा करने में प्रयोग लेते है। जैसे **भूमि को समतल करने में** – पाटा, स्क्रेपर, रोलर, लेबलर, लेंजर–लेवलर

**कूँड़ बनाने में** – रिज मेकर

**चारा काटने में** – गंडासा, चॉफ कटर

**ब. शक्ति स्रोत के आधार पर :–**

**1. मानव चालित कृषि यंत्र** –
साधारणतया एक स्वस्थ मनुष्य में 0.1 एच.पी. (अश्व शक्ति) होती है। इससे खुरपी, फावड़ा, हो, कुदाली, हँसिया, डिबलर आदि यंत्र चला सकता है।

**2. पशु चालित कृषि यंत्र** – कृषि में पशु शक्ति के रूप में बैल, ऊंट, घोड़े, भैंसे व हाथी का प्रयोग होता है। एक सामान्य स्वस्थ बैल में 0.5 एच.पी (अश्व शक्ति) होती है। जिससे विभिन्न कृषि यंत्र जैसे हल, कल्टीवेटर, हैरो, सीड ड्रील, ऑलपेड थ्रेसर आदि चलते हैं।

**3. ट्रेक्टर चालित कृषि यंत्र** – यहां शक्ति का प्रमुख स्रोत ऊष्मा इन्जिन है। साधारण कृषि कार्यों हेतु 32 से 42 अश्व शक्ति के ट्रेक्टर बाजार में उपलब्ध है जिनसे विभिन्न कृषि यंत्र. चला सकते है। ट्रेक्टर माउण्टेड, सेमी माउण्टेड एवं ट्रेल्ड टाइप के हो सकते हैं।

**प्रमुख कृषि यंत्रों की सामान्य जानकारी**

**1. देशी हल (Desi Plough):–** भारतवर्ष में देशी हल का प्रयोग प्राचीन काल से ही सबसे ज्यादा किया जा रहा है। इस यंत्र का प्रयोग जुताई–बुआई तथा निराई–गुड़ाई के लिए किया जा सकता है यह आकृति, आकार, भार व प्रयोग के अनुसार लगभग 40 प्रकार का होता है परन्तु सभी का कार्य सिद्धान्त लगभग एक जैसा ही होता है। इसे गाँव का बढ़ई अथवा लुहार आसानी से बना लेता है। इस हल के मुख्यतः 5 भाग है (1)बॉडी (body), (2)शू (shoe), (3)फाल (share), (4)हरीस (beam) and (5)हत्था (handle)

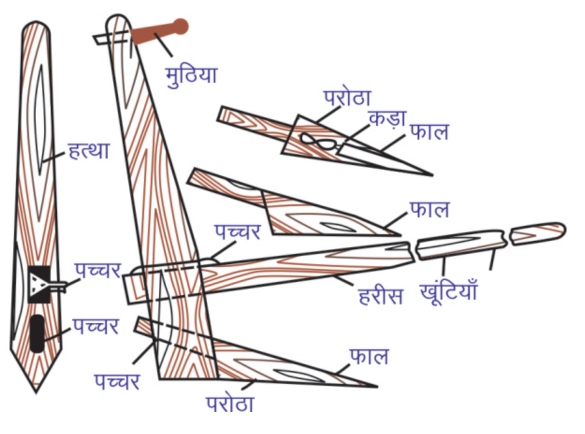


**देशी हल**

1. बॉडी (Body) :– बॉडी हल का मुख्य भाग है। यह 3 फीट लम्बा लकड़ी का बना होता है जिसमें शू, हरीस तथा हत्था जुड़ा रहता है।
2. शू (Shoe) :– यह हल को सहारा देता है तथा स्थिर रखता है तथा निश्चित गहराई पर फॉल को स्थिर रखता है।
3. हरीस (Beam) :– यह लकड़ी का एक लम्बा टुकड़ा होता है जो बॉडी को जुड़े से जोड़ता है।
4. फाल (Share) :– फार या फाल हल का कार्य करने वाला भाग है जो शू से जुड़ा रहता है और मिट्टी के अन्दर घुसकर उसे चीरता है।
5. हत्था (Handle) :– यह भी लकड़ी का एक टुकड़ा होता है जो बॉडी से लम्बवत जुड़ा रहता है। हाली या किसान इसे पकड़कर हल और बैलों को नियन्त्रित करता है तथा दिशा प्रदान करता है।

**2. मोल्ड बोर्ड हल (Mould board Plough):–**
यह हल हर प्रकार की मिट्टी में अच्छी तरह प्रयोग में लाया जाता है चूंकि यह मिट्टी को पलटता है जिससे खरपतवार आदि नीचे दबकर खाद बन जाते है। इस हल के तीन मुख्य भाग होते हैं। (अ) हल तल (plough bottom) (ब) हरीस (beam) तथा (स) हत्था (handle)

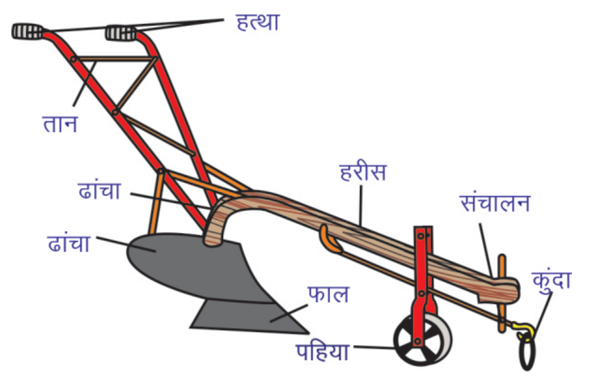


**मोल्ड बोर्ड हल**

हल तल – इसके चार भाग होते है जिसमें (1) फार का कार्य मिट्टी को काटना है तथा ढलवा लोहे या इस्पात से इसे बनाया जाता है जो कि 12 इंच तक जुताई करती है। (2) मोल्ड बोर्ड का कार्य काटी गई मिट्टी को भुरभुरी बनाना है। (3) लैड साइड भाग कूँड़ की दीवार के विरूद्ध हल तल को सहारा देता है। (4) आधार (frog) भाग जिसमें फाल मोल्ड बोर्ड तथा लैड साइड जुड़ती है। पूर्ण स्थिरता, मजबूती तथा हल की पर्याप्त दक्षता के लिए इसमें कई छेद होते हैं।

हसल या हरीस (Beam) – इसका एक सिरा हलतल से तथा दूसरा सिरा आगे की ओर रहता है। इस भाग की लम्बाई कम (भारी हलों की) या ज्यादा (हल्के हलों की) हो सकती है।

हत्था – हल को नियन्त्रित करने के लिए क्लोविस (clovice) से जुड़ा होता है। लम्बे हरीस वाले हलों में एक ही हत्था तथा छोटे हरीस वाले हलों में दो हत्थे होते है। ये लकड़ी या इस्पात के बने होते है।

इस हल में कूँड़ की गहराई को बढ़ाने हेतु फाल की नोक को लैंड साइड एड़ी की अपेक्षा नीचे की तरफ 5 से 8 मिली मीटर तथा झुकी हुई रखते है। इस झुकाव को खड़ा झुकाव (vertical suction) कहते है। इसी तरह कूँड़ की चौड़ाई को बढ़ाने हेतु फार की नोक को लैंड साइड की एड़ी की अपेक्षा, जमीन के समानान्तर 3 से 5 मिलीमीटर बाहर को रखा जाता है इसे क्षैतिज झुकाव (horizontal suction)कहते है।

**3. हैरो :–** इस यंत्र का प्रयोग ढेलो को तोड़ने, खरपतवार, काटने, मिट्टी को भुरभुरी बनाना, बीज ढकना तथा सतह को समतल बनाने में होता है। बोने से पहले बीज शैय्या की तैयारी में भी इसका प्रयोग होता है। हैरो निम्नलिखित प्रकार के होते हैं –

(1) डिस्क हैरो (Disk Harrow), (2) ड्रेग हैरो (Drag Harrow), व (3) ब्लेड हैरो (Blade Harrow)

इनमें से ड्रेग हैरों का प्रयोग सामान्यतः जुताई की गई जमीन को समतल करने तथा भू सतह की पपड़ी तोड़ने (स्पाइन टूथ हैरों का) व कंकरीली पथरीली जमीन (कमानीदार हैरो) में प्रयोग कर सकते है जिनका सीमित उपयोग भारतवर्ष में किया जाता है। परन्तु डिस्क व ब्लेड हैरो का प्रयोग प्रमुखता से होता है।

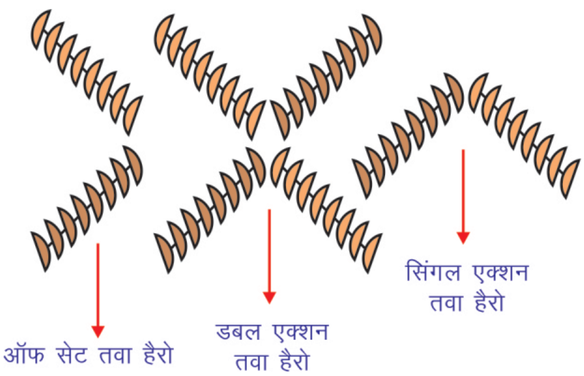


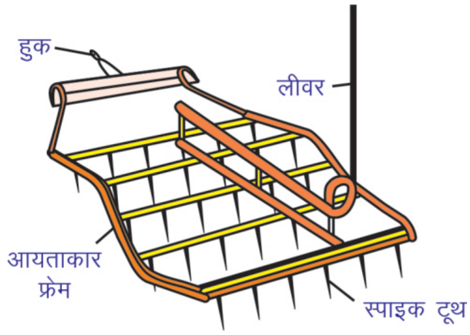


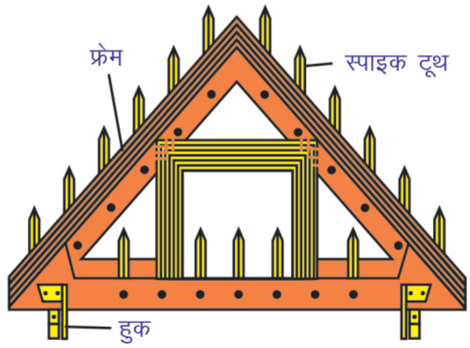


**डिस्क हैरो :–** इसमें जुताई से पहले इस्पात के तवों की मदद से (जो लगातार घूमते हुए) मृदा को काटकर भुरभुरा बनाते है। लम्बी घास, खरपतवारों तथा हरी खादों आदि से भरे हुए खेतो में डिस्क का व्यास 12 से 24 इंच तक होता है। यह डिस्क गैंग बोल्ट (45 से 60 सेमी.) (Gang Bolt) जो एक वर्गाकार छड़ होती है उस पर निश्चित संख्या कोण ($20^0$) तथा समान अन्तराल पर लगे रहते है। प्रत्येक आरवत वोल्ट (गैंग) पर तवों को घुमाने के लिए अलग से दो – दो वियरिंग लगी होती है। दो गैंगों के मध्य कोण को अन्तर्गत कोण कहते है, जिसे कम या अधिक किया जा सकता है। गैंग वोल्ट की फिटिंग के अनुसार डिस्क हल तीन प्रकार के होते है सिंगल एक्शन, डबल एक्शन तथा ऑफसेट डिस्क (बखर हैरो) हैरो। इनमें से डबल एक्शन डिस्क हैरो मे दो बार मिट्टी पलटी जाती है।

**ब्लेड हैरो या बखर :–** इसका प्रयोग खरीफ व रबी फसलों के लिए चिकनी मिट्टी में बीज शैय्या तैयार करने के लिए होता है साथ ही मिट्टी को भुरभुरी बनाने में भी प्रयोग किया जा सकता है। इस हैरो की ब्लेड इस्पात की बनी होती है तथा बाडी व हरीस शीशम या बबूल की लकड़ी का $1\frac{1}{2}$ – 3 फीट लम्बा होता है।

**4. कल्टीवेटर :–** मुख्यतः द्वितीय भूपरिष्करण यंत्र है जो पशुशक्ति व ट्रेक्टर चालित होते है तथा लाइन में बोई गई फसलों में निराई – गुड़ाई व आलू जैसी फसल की खुदाई में प्रयुक्त करते है। भारतवर्ष में प्रयोग होने वाले कल्टीवेटर मे कार्मिक कानपुर शाबास, वाह–वाह, आर.एस, आदि प्रकार के साथ ट्रेक्टर चालित

कल्टीवेटर प्रचलन में है। इस यंत्र के प्रयोग का उद्धेश्य खरपतवार का नियंत्रण करना जिससे वे पोषक तत्वों के लिए फसल संघर्ष न करें, सतह का वाष्पीकरण रोकना, वर्षा जल का भूमि में रिसाव बढ़ाना, उचित वायु प्रवेश की सुविधा तथा फसल के विकास के समय मिट्‌टी को अच्छी टिल्थ में रखना है।

इस यंत्र के निम्नलिखित भाग हैं :–

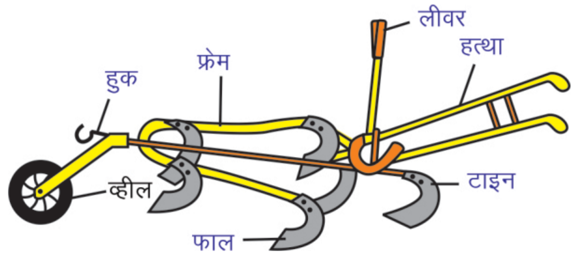


कल्टीवेटर

(1) हत्था (handle) – यह लकड़ी या माइल्ड स्टील का बना होता है जो एक या दो संख्या में होते है जिन्हे पकड़ कर खेत में इसे चलाया जाता है।

(2) ढाँचा (frame) – यह भाग स्टील से निर्मित होता है जिस पर सारे भाग जुड़े रहते है।

(3) लीवर (liver) – यह लीवर फ्रेम रैचेट के साथ जुड़ा रहता है। इससे फालों के बीच की दूरी को घटाया – बढ़ाया जा सकता है। यह कमानीदार इस्पात का बना होता है।

(4) खुरपे/फाल (shavels) – उच्च कार्बन स्टील के बने होते हैं जो फ्रेम से जुड़े होते है इनकी संख्या 5 – 7 होती है। बनावट के अनुसार दोनो तरफ से उपयोग में लाये जाते है (एक तरफ की धार समाप्त होने पर दूसरी तरफ से काम में लिया जा सकता है) इन फालों की चौड़ाई 3 – 4 इंच व लम्बाई 8 – 10 इंच तक होती है।

(5) गेज व्हील (gauge wheel) – कल्टीवेटर का अग्रस्त भाग गहराई नियन्त्रण पहिया जो कास्ट आयरन का बना होता है।

(6) शैन्क (shank) – यह गोलाकार होता है और ऊपरी तरफ फ्रेम से तथा नीचे की तरफ खुरपे से जुड़ा रहता है। सभी खुरपे (फाल) इसी में बोल्ट शैन्क से कसे रहते है इनकी संख्या फाल की संख्या के समान होती है।

(7) हरीस (beam) – यह भाग लकड़ी या लोहे का बना होता है जहाँ लोहे से बना होगा वहीं पर हुक लगा होता है इसी की सहायता से इसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाने व ले जाने में सुविधा रहती है।

### 5. बीज उर्वरक ड्रिल (सीड कम फर्टीलाइजर ड्रिल)

फसल को बोने में सबसे प्राचीन व आसान विधि छिड़काव विधि रही है परन्तु जैसे – जैसे बीज की लागत बढ़ी तो फसल बुआई पर बीज की मात्रा, इसकी गहराई व उचित पौध अन्तराल भरपूर उपज हेतु आवश्यक होता गया। उसी तरह बुआई की विधियों की जरूरत पड़ी जहाँ सीमान्त कृषक देशी हल के पीछे कूँड़ में बीज बोता है। आजकल सीड कम फर्टीलाइजर ड्रिल

### पशुचालित व ट्रैक्टरचालित हैरो में अन्तर

| पशुचालित हैरो | ट्रेक्टरचालित हैरो |
|---|---|
| 1. बैलों की सहायता से चलाये जाते है। | ट्रैक्टर द्वारा चलाये जाते है। |
| 2. यह सिंगल एक्शन होता है। | यह सिंगल, डबल या ऑफसेट तीनों रूप में होते हैं। |
| 3. इसकी सीमित क्षमता के कारण कम क्षेत्रफल में जुताई होती है। | अधिक क्षमता के कारण अधिक क्षेत्रफल में जुताई होती है। |
| 4. इसमें एक डिस्क का व्यास 30 – 40 सेमी होता है। | इनकी एक डिस्क का व्यास 45 – 60 सेमी. होता है। |
| 5. प्रति गैंग डिस्क की संख्या 3 से 4 होती है। | यहाँ डिस्क संख्या 4 से 10 होती है। |
| 6. समय अधिक लगता है। | समय कम लगता है। |

### डिस्क हल व डिस्क हैरो में अन्तर

| डिस्क हल | डिस्क हैरो |
|---|---|
| 1. यह प्राथमिक भू परिष्करण यंत्र है। | यह द्वितीय भू परिष्करण यंत्र है। |
| 2. यह गहरी जुताई करता है तथा खरपतवार भूमि के नीचे दबा देता है। | यह उथली जुताई करता है तथा खरपतवार को काटता रहता है। |
| 3. इसमें डिस्क कोण 45° तक होता है। | यह कोण अधिक से अधिक 20° तक होता है। |
| 4. इसमें टिल्ट कोण 15 से 25° होता है। | इसमें टिल्ट कोण नहीं होता है। |
| 5. इसमें गैंग नहीं होता तथा डिस्क की संख्या बहुत कम होती है। | इसमें गैंग होती है तथा डिस्क की संख्या बहुत अधिक होती है। |

## कल्टीवेटर व हैरो में अन्तर

| कल्टीवेटर | हैरो |
|---|---|
| 1. इस यंत्र का उपयोग खरपतवार नष्ट करने, ऊपरी परत तोड़ने, बीज बुआई, उर्वरक मिलाने आदि में करते है। | इसका उपयोग जमीन भुरभुरी करने, पपड़ी तोड़ने, बीज को मिट्टी से ढकने आदि कार्यो के लिए होता है। |
| 2. इसका उपयोग निराई – गुड़ाई हेतु वहीं होता है जहां लाइन में फसले बोई गई हो। | इसका उपयोग निराई – गुड़ाई हेतु नहीं करते इससे हरी खाद मिलाने का कार्य किया जाता है। |
| 3. इसमें फाल (shovel) लगे होते हैं। | इसमें तवे लगे होते हैं। |

पहले कूँड़ से उर्वरक (डी ए पी व पोटाश) नीचे गहराई पर डालकर मिट्टी चारों तरफ गिरती है। समान गहराई पर कूँड़ बनाता है तथा उसी में बीज डालते हुए उसे मिट्टी से दबाता है।

इस यंत्र का प्रयोग करने से उर्वरक डालने वाले समय की बचत होती है तथा उर्वरक सीधें अंकुरित बीज के जड़ तंत्र के पास होने से उर्वरक दक्षता बढ़ती है तथा फसल भी अच्छी रहती है।

बीज–उर्वरक ड्रिल यंत्र में बीज की नली तथा उर्वरक की नली अलग – अलग होती है, जिनसे दोनो क्रमशः कूँड़ बनने के बाद गिरती है परन्तु उर्वरक की मात्रा को मापने तथा उसका नियंत्रण करने हेतु बीज ड्रिल की भांति नियंत्रण तंत्र होता है जो निम्न में से कोई एक हो सकता है :–


बीज–उर्वरक ड्रिल

1. **विलोडक युक्त तंत्र :–** पंक्तियों में बुआई करने में जहाँ घूमने वाली प्लेट होती है जिसे हाथ से तब तक घुमाते है जब इच्छित छेद हॉपर के ऊपर एक विलोडक (एजीटेटर) यंत्र लगा होता है जो बीज/दानेदार उर्वरक को छेद के ऊपर आगे–पीछे घुमाता रहता है तथा इनकी बहाव दर को बनाये रखता है और इन्हें रुकने नहीं देता है।
2. **पूर्णी तली तथा पार्श्विक वितरण तंत्र (Rotary Bottom Side Delivery System) :–** इस यंत्र में उर्वरक ड्रिल में भिन्न – भिन्न कूँड़ों के लिए पृथक–पृथक उर्वरक हॉपर होते है जो उल्टे शंकु के आकार की होती है जिनके चपटी तली पहिये से गियर द्वारा प्राप्त शक्ति से क्षैतिज तल पर घूमती है। हर हॉपर में एक विडोलक व छोटा यंत्र लगा होता है जो इस में भरे उर्वरक को धकेल कर बगल में बने छिद्र में डालता रहता है इस छिद्र की नाप आवश्यकतानुसार नियंत्रित की जा सकती है। उर्वरक दर बीज दर की तरह निम्न तरह से गणना की जाती है।

जैसे (1) ड्रिल के पहिये की परिधि ज्ञात करते है,

($\pi$ D जहां $\pi$= 3.14 व D = पहिये का व्यास मीटर में)

(2) ड्रिल के हॉपर में बीज/उर्वरक भर कर इसके नीचे ट्यूब की जगह थैलिया बांध देते है तथा निश्चित समय पर कितना भरा है इसकी गणना करते है।

(3) पहिये को घुमाते है थैलों में बीज/उर्वरक गिरता है तो गिने हुए चक्करों में ड्रिल द्वारा कवर किया क्षेत्रफल वर्गमीटर में ज्ञात हो जाता है तथा बीजों को तोल कर ज्ञात कर लेते है।

(4) बीज मात्रा (किग्रा.) में ड्रिल के कुल क्षेत्रफल (वर्ग मीटर) से भाग देकर 10000 से गुणा करने पर प्रति हैक्टर बीज दर ज्ञात हो जाती है।

3. **तारक प्लेट तंत्र (Star Plate Feed System) :–** इस यंत्र में भी ड्रिल के अलग – अलग हॉपर होते है तथा एक क्षैतिज तारक प्लेट पर लगे रहते है जिनकी परिधि के किनारें पर काफी संख्या में लम्बे दांते बने होते है। हॉपर में भरा बीज/उर्वरक तारक प्लेट के ऊपर आता है तो इन खांचों में उर्वरक/बीज भर कर गोलाई में खिसकता हुआ उस स्थान पर पहुँचता है जहाँ हॉपर की तली में छिद्र होता है जिसके द्वारा यह उर्वरक/बीज नली में गिर कर कुंड में पहुंच जाता है। बीज/उर्वरक की दर कम या अधिक हॉपर में छिद्र को घटाने व बढ़ाने से व्यवस्थित कर सकते है। इससे बीज/उर्वरक आवश्यकतानुसार खेत में डाला जा सकता है।

**अन्य भाग :**

**हॉपर :–**

बीज व खाद के बक्से जिसमें बीज/उर्वरक भरा रहता

है उसे बीज और फर्टीलाइजर हॉपर कहते है। फर्टीलाइजर (उर्वरक) के लिए अलग हॉपर भी हो सकता है।

**मीटरिंग मैकेनिज्म :–**

हॉपर की तली में घुमने वाली प्लेट लगी रहती है जो बीज/उर्वरक को छेद/सेल में ले जाती है, ये प्लेटे निम्न प्रकार की होती है :–

1. एज ड्राप (Edge Drop)
2. फ्लेट ड्राप (Flate Drop)
3. हिल ड्राप (Hill Drop)

पहली दो (एज व फ्लेट ड्राप) प्रकार की प्लेटों में सेल बाहरी किनारे पर लगी होती है तथा हिल ड्राप में 3 – 4 बीज/उर्वरक के दाने प्रति सेल में आते है।

बीज लेने के बाद प्लेट कट आफ (Cut off) नीचे घूमती है जिससे बीज सेल में आ जाता है तथा यहाँ रूके बीज को धक्का देता है जिससे बीज/उर्वरक एक वाल्व के सहारे नलियों से कूँड़ में गिरता है।

**शक्ति स्थानान्तरण :–**

पहिये के घूमने से शक्ति चेन और स्प्राकेट के द्वारा स्थानान्तरित होकर सीड प्लेट को घुमाती है जिससे बीज/उर्वरक नीचे गिरता है।

**चालक पहिये :–**

यंत्र को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिए पहिये होते है।

**क्लच (Clutch) :–**

बीज/उर्वरक के दानों का सही मात्रा में कूँड़ में गिरना क्लच के द्वारा नियंत्रित किया जाता है।

**उर्वरक बीज ड्रिल के प्रयोग में सावधानियाँ**

1. खेत में जाने से पूर्व बीज व उर्वरक की दर के लिए समायोजित कर लेना चाहिए ताकि सही दर से खेत में गिरे।
2. बीज व उर्वरक साफ होने चाहिए।
3. खेत समतल व ढेले तथा खरपतवारों से मुक्त होना चाहिए।
4. खेत में उचित नमी होनी चाहिए।
5. बीज व उर्वरक की नलियों को देखते रहना चाहिए कि उनमें बीज व उर्वरक रूक तो नही रहा।
6. प्रत्येक मोड़ पर बीज व उर्वरक का गिरना बंद कर देना चाहिए।
7. यंत्र के नट–बोल्ट कसे हो तथा ग्रीस वाले भाग में ग्रीस लगी हो जिससे यंत्र के सभी भाग आसानी से कार्य करें।

**प्लान्टर (Planter) – पौध रोपण यंत्र :–**

नर्सरी में तैयार पौधे (धान, गन्ना, सब्जियों आदि) तथा कंद वर्गीय फसलों (आलू, शकरकंद आदि) के रोपण का पारम्परिक तरीका जिनमें हाथ से बोना (रोपण) पड़ता है जिससे अधिक समय तथा श्रम की आवश्यकता होती है साथ ही इन फसलों की एक समान दूरी व गहराई पर रोपण मेहनत का कार्य है यह कार्य आजकल दक्षता से कम लागत में प्लान्टर (Planter) से किया जा रहा है। जो फसलानुसार प्रचलन में है जैसे –

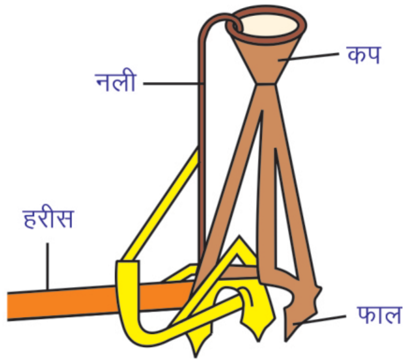


अ. आलू बोने की मशीन (Potato Planter)
ब. गन्ने बोने की मशीन (Sugarcane Planter)
स. धान बोने की मशीन (Rice Planter)
द. सब्जी बोने की मशीन (Vegetable Planter)

**इस यंत्र के निम्नलिखित कार्य–विधि (Mechanism) है:–**

1. **ऑटोमेटिक (Automatic) स्वचालित :–** इस मशीन में एक पिकिंग व्हील होती है जिसमें 3–12 तक पिकर आर्म (भुजाएँ) होती है। पिकर आर्म्स पिकर हेड द्वारा पिकिंग कक्ष (बीज बॉक्स–हॉपर) से जुड़ी रहती है। प्रत्येक पिकर हेड में तेज नुकीले पिकर बिन्दु लगे होते है जो पौध/बीज का एक–एक टुकड़ा उठा लेते है जब पिकर आर्म इसके नीचे आती है तब इसे छोड़ देता है जो स्पाउट में गिरता है जिसके द्वारा यह कूँड़ में पहुँचाता है। पिकर व्हील के चक्करों की संख्या को बदलकर बीज से बीज की दूरी को घटा–बढ़ा सकते है। पिकिंग कक्ष में बीज/पौध की मात्रा का बहाव स्वतः नियंत्रित होता है। मानव श्रम केवल हॉपर में पौध/बीज भरे है या नहीं पिकिंग कक्ष बन्द तो नहीं है इसे देखने में होता है।
2. **उच्च गति ऑटोमेटिक (High Speed Automatic) :–** इस यंत्र में दो पिकर व्हील होती है। प्रत्येक में आठ–आठ पिकर भुजाएँ होती है उच्च गति की बुआई साधारण गति की दुगुनी गति पर चलती है परन्तु

पिकर आर्म्स (भुजाएँ) ऑटोमेटिक मशीन से तेज नहीं चलती है।

3. अर्द्ध ऑटोमेटिक (Semi Automatic) :– इसकी बीज गिरने की प्रणाली उपरोक्त दोनो विधियों से सर्वथा भिन्न है। इसमें बीज/पौध एलीवेटर (उत्थापक) व्हील से फीड स्पाउट से घूमती हुई क्षैतिज फीडरिंग में गिरती है। जहाँ से कूँड़ में गिरता/रोपित होता रहता है। प्लान्टर पर बैठे आदमी की जिम्मेदारी है कि यह पॉकेट में पौध/बीज रखता रहे जिससे रोपण चलता रहे।

आजकल आलू के प्लान्टर के साथ पौध का रोपण भी खेत में मशीनों से किया जाता है जिन्हे ट्रान्सप्लान्टर कहते है। इसको धान व गन्ना जैसी धान्य फसलों के साथ सब्जी वर्गीय फसलों के खेत में पौध रोपण में काम में लेते है।

**प्लान्टर उपयोग में लेते समय निम्न बातों का ध्यान रखना आवश्यक है :–**

1. आलू में बीज (कंद के टुकड़े) निश्चित मोटाई में काटे जिससे इनका व्यास व वजन एक समान रहे जिससे बुआई/रोपण आसानी से हो सके।
2. प्लान्टर द्वारा 2 – 4 बीज एक जगह गिरते है अतः बीज गिरने का समायोजन (मक्का, मूँगफली, कपास, मटर, चना आदि में) ठीक तरह से किया जाये ।
3. पौध तैयार कर उनका रोपण आजकल ट्रान्सप्लान्टर से किया जाता है वहाँ पौध की लम्बाई व उम्र का ध्यान रखकर सही समय पर व गहराई में रोपण करें। जैसे – धान हेतु 3 सप्ताह की पौध। वर्तमान में प्रोट्रे (प्लास्टिक की ट्रे) में एक जैसी एक उम्र की पौध तैयार करके मशीनों का उपयोग रोपण में कर रहे हैं।
4. मशीन की गति एकसार रखें जिससे एक समान फसल खेत में रोपित हो जैसे – धान में दो पंक्ति प्लान्टर की गति 0.6 से 0.7 मीटर/सेकेण्ड जिससे एक घण्टे में 1000 वर्ग मीटर क्षेत्र में रोपण कार्य हो जाता है। वहीं गन्ने में 1.5 हैक्टर की बुआई 8 घण्टे में होती है।

## कम्बाइन (Combine)

भारतवर्ष में इस यंत्र का प्रयोग बड़े फार्मों पर किया जा रहा है। आजकल पंजाब, हरियाणा के बड़े कृषक इस मशीन का उपयोग अपने खेतों के साथ राजस्थान के श्रीगंगानगर, हनुमानगढ़ आदि जिलों में (जहाँ धान व गेहूँ की खड़ी फसल की कटाई, मड़ाई और सफाई तीनो कार्य एक साथ होते है) इस मशीन को किराये पर लेकर (Custome Hiring) कर रहे है।

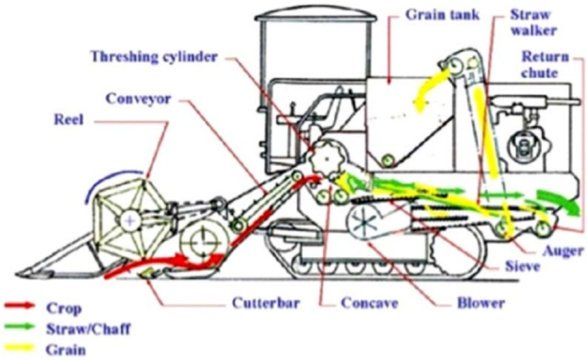


**कम्बाइन के लाभ :–**

1. कटाई और मड़ाई के खर्च में बचत।
2. कम श्रम की आवश्यकता।
3. किराये पर किसी सहायता की आवश्यकता नहीं पड़ती।
4. खेत शीघ्रता से खाली हो जाने से अगली फसल ले सकते हैं।
5. फसल को प्राकृतिक आपदाओं (ओले, वर्षा आदि) से क्षति नहीं होती ।
6. भूसा खेत में ही समान रूप से बिखेर दिया जाता है या ट्रेक्टर ट्राली में इकट्ठा कर लिया जाता है।

**कम्बाइन से हानियाँ :–**

1. खरीदने में अधिक धन व्यय करना पड़ता है।
2. इस मशीन को चलाने में दक्ष व्यक्ति की आवश्यकता होती है।
3. भूसा बेकार हो जाता है। (पशुओं के खाने लायक नहीं रहता)
4. सही अवस्था पर कटाई न होने पर दाने गीले रहते है।
5. बड़ी मशीन होने से अधिक ऊर्जा (HP) की जरूरत पड़ती है।

**कम्बाइन के प्रकार :–**

**अ. बनावट के आधार पर वर्गीकरण**

(i) स्ट्रेट थ्रू कम्बाइन (Straight Through Combine)

(ii) प्लेटफार्म टाइप (Plateform Type)

**ब. शक्ति के आधार पर वर्गीकरण**

(i) स्वचालित कम्बाइन (Automatic Combine)

(ii) पुलटाइप/ट्रेक्टर चालित कम्बाइन (Pull Type or Tractor Driven Combine)

**कम्बाइन की बनावट –**

**इस यंत्र की निम्नलिखित मुख्य इकाईयाँ होती है :–**

1. कटाई इकाई (Cutting Unit)
2. भरण तथा उत्थापन इकाई ( Feeding and Elevating Unit)
3. गहाई इकाई ( Threshing Unit)
4. पृथक्कारी इकाई (Seperating Unit)
5. सफाई इकाई (Cleaning Unit)

**कटाई इकाई –** मोअर के सिद्वान्त पर कार्य करता है जिसमें कटाई दण्ड (मुख्यतः लम्बाई 1 से 7 मीटर) के ऊपर रील (इसका व्यास 50 सेमी.) लगी होती है जिसका कार्य चालू स्थिति में फसल को कटाई दण्ड के ऊपर लाना होता है ताकि फसल सुगमता से काटी जा सके।

**भरण तथा उत्पादन इकाई –** कटी हुई फसल एक बेदी पर गिरती है जो या तो किरमिच की बनी होती है या ऑगर होता है इस इकाई का कार्य कटी फसल को गहाई इकाई में पहुँचाना है।

**गहाई इकाई –** इस इकाई के दो भाग होते है जिन्हे बेलन (खूंटीदार या रेतीदार) और अवतल पृष्ठ कहते है। बेलन द्वारा दानें डंठल तथा बालियों से अलग हो जाते है। बेलन व अवतल पृष्ठ की दूरी घटाई–बढ़ाई जा सकती है जो फलानुसार तथा उसकी नमी की मात्रा पर निर्भर करती है।

**पृथक्कारी इकाई –** अब भूसे से दाने अलग करने का कार्य पृथक्कारी इकाई द्वारा किया जाता है। गहाई के बाद दानें भूसे से भारी होने के कारण गिर जाते है। कुछ दाने जो भूसे के साथ उलझे होते है एक हिस्से पर पहुँचते है जिनको स्ट्रार्टेक या स्ट्रावाकर कहते है। जब भूसा मिश्रित दाना स्ट्राटेक पर आता है तो दानें स्ट्राटेक की प्रत्यागामी गति के साथ भूसे से अलग होकर स्ट्राटेक के छिद्रों से नीचे गिर जाते है। स्ट्रावर की चाल भी निश्चित (इष्टतम) होनी चाहिए। यदि स्ट्रावर की चाल इष्टतम चाल से अधिक होती है तो दाने भूसे के साथ खेते में गिर जाते है, यदि उसकी चाल इष्टतम स्तर से कम होती है तो दानें भूसे से अलग नहीं हो पाते तथा भूसे के साथ खेते में गिर जाते है।

**सफाई इकाई –** भूसे से अलग होने पर दाने एक चलनी में जाते है। चलनी छिद्रों का आकार फसल के दानों पर निर्भर करता है अर्थात् चलनी फसलानुसार बदल दी जाती है। अभी तक दानों के साथ भूसे के डंठल व खरपतवार के बीज साथ रहते है जो चलनी के बाद पंखें की हवा से विजातीय बीज उड़कर बाहर निकलने लगेंगे तथा शुद्ध दानें छलनी से छनकर एलीवेटर (उत्थापक) के द्वारा बोरे में भरने के लिए टंकियों में भेज दिया जाता है।

**कम्बाईन में खराबियां एवं उनको दूर करने के उपाय :–**

1. **दानों का टूटना :–** सिलिण्डर की चाल घटाईये। फसल अधिक सूखी होने पर भी ऐसा होता है।
2. **दानों का बालियों में लगा रहना :–** फसल में नमी अधिक होने से ऐसा हो सकता है इसलिए फसल को सुखाएं तथा सिलिण्डर की गति बढ़ायें।
3. **सिलिण्डर पर फसल का लिपटना :–** सिलिण्डर की गति बढ़ाये तथा फसल गीली हो तो उसे सुखायें।
4. **चलनी पर माल का अधिक होना :–** चलनी के छेद बड़े करे पंखे की चाल बढ़ायें। वायु द्वार के छेद बड़ें करें। चलनी की गति बढ़ायें।
5. **भूसे के साथ खुले दानों का आना :–** मशीन का अगला भाग नीचा कीजिए। सिलिण्डर की चाल कम कीजिए। कटाई इकाई की गति कम कीजिए। सिलिण्डर और कोनकेव के बीच की दूरी कम कीजिए।
6. **दानो के साथ भूसे का आना :–** पंखे व स्ट्राटेक की गति बढ़ाईये। छिद्रों का आकार कम तथा सिलिण्डर की गति बढ़ावें साथ ही सिलिण्डर व कानकेव की बीच की दूरी बढ़ाईये।

**कम्बाइन में समायोजन –**

1. फसल की सही कटाई के लिए कटाई दण्ड (हीडर) की ऊँचाई उचित होनी चाहिए (सामान्यतः 4 से 8 सेमी.)।
2. रील की गति मशीन की गति से 25–30% अधिक होनी चाहिए जिनके अनुपात को रील स्पीड इण्डेक्स कहते है।
3. फसल की किस्म तथा उसकी दशा के अनुसार सिलिण्डर की गति और इसकी कानकेव के मध्य की दूरी रखनी चाहिए।
4. जरूरत के अनुसार चलनियों के छिद्रों का आकार छोटा या बड़ा किया जाता है।
5. पंखें की गति और हवा की दिशा ठीक तरह से होनी चाहिए।

**कम्बाइन के कार्य क्षमता ज्ञात करने का सूत्र –**

C = 1000 X S X W X कार्य क्षमता (%)/10000

या

C = S X W X कार्य क्षमता (%)/10

C = प्रति घंटा किया गया कार्य (हेक्टेयर क्षेत्रफल में)

W = कटबार की लम्बाई (मीटर में)

S = चाल प्रति घंटा (किलो मीटर में)

## अभ्यास प्रश्न

### बहुचयनात्मक प्रश्न

1. भू–परिष्करण कितने प्रकार का होता है?
   (अ) पाँच (ब) दो
   (स) तीन (द) एक
2. केन्द्रीय कृषि इंजीनियरिंग संस्थान की स्थापना किस वर्ष में हुई थी?
   (अ) 1950 (ब) 1956
   (स) 1976 (द) 1986
3. देशी हल का भाग नहीं है ।
   (अ) शू (ब) हरीस
   (स) पेडल (द) हत्था
4. मोल्ड बोर्ड हल का उपयोग कौनसे कार्य के लिये किया जाता है?
   (अ) बुआई (ब) कटाई
   (स) मिट्टी पलटने (द) समतल करने में
5. कम्बाइन का कार्य होता है ।
   (अ) जुताई (ब) कटाई एवं मड़ाई
   (स) बुआई (द) उपरोक्त सभी
6. ट्रेक्टर चलित हैरो में कितने डिस्क होते हैं?
   (अ) 2–4 (ब) 3–4
   (स) 4–10 (द) 4 से कम

### अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

7. भू–परिष्करण को परिभाषित करें।
8. प्लान्टर क्या है?
9. हरीस क्या है?
10. कल्टीवेटर से आप क्या समझते हैं?
11. क्लच का क्या कार्य है?

### लघूत्तरात्मक प्रश्न–

12. देशी हल का कार्य एवं इसके मुख्य भाग कौन–कौन से है?
13. हैरो से आप क्या समझते हैं?
14. बीज उर्वरक ड्रिल क्या है?
15. कल्टीवेटर एवं हैरो में क्या अंतर है?
16. प्लान्टर कितने प्रकार के होते हैं? नाम लिखिए । प्लान्टर उपयोग में लेते समय क्या सावधानी रखनी चाहिए ?

### निबन्धात्मक प्रश्न–

17. डिस्क हल एवं डिस्क हैरो में क्या अन्तर होता है? लिखिए ।
18. कम्बाइन क्या है? इसके प्रकार, लाभ तथा हानियों के बारे में विस्तार से लिखिए ।
19. थ्रेसर की कार्य प्रणाली का सचित्र वर्णन करें ।
20. बैल चलित यंत्रों का वर्णन करें ।
21. कृषि यंत्रीकरण के लाभ एवं हानियों के बारे में लिखे ।
22. कृषि में काम आने वाले यंत्रों का वर्गीकरण करें ।
23. हैरो का मुख्य कार्य एवं इसके प्रकार के बारे में चर्चा करें ।

### उत्तरमाला–

1. ब 2. स 3. स 4. स 5. ब 6. स

# अध्याय–7
# फल एवं सब्जियों का मानव आहार में महत्व
# (Importance of fruits and vegetables in human diet)

हमारे देश में खेती योग्य भूमि के 7.2 मिलियन हेक्टेयर में फलो की खेती एवं 9.3 मिलियन हेक्टेयर में सब्जियों की खेती की जाती है। इस क्षेत्र से हमारे देश में 2013–14 में फल उत्पादन 88.97 मिलियन टन एवं सब्जी उत्पादन 162.29 मिलियन टन हुआ (इंडियन हॉर्टीकल्चर डाटाबेस, 2014)। आहार विशेषज्ञों के अनुसार भारत में संतुलित आहार में कम से कम 300 ग्राम सब्जी, जिसमें 100–125 ग्राम पत्तियों वाली, 80–120 ग्राम अन्य दूसरी सब्जियाँ तथा 85–100 ग्राम जड़ों वाली सब्जियाँ प्रत्येक दिन प्रति व्यक्ति को खानी चाहिए। भारतीय औषधि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली, ने संतुलित आहार में कम से कम 120 ग्राम फल एवं 280 ग्राम सब्जी प्रत्येक दिन प्रति व्यक्ति को संस्तुति की गई है।

फल एवं सब्जियाँ मनुष्य को स्वस्थ रहने के लिए आवश्यक पोषक तत्व प्रदान करती है, इनमें विटामिन खनिज पदार्थ, कार्बोहाइड्रेट एवं प्रोटीन पर्याप्त मात्रा में पाये जाते है। इनके साथ ही साथ फल एवं सब्जियाँ स्थूल खाद्य के साधन हैं। प्रायः हमारे भोजन में कैलोरी, विटामिन– "ए" तथा विटामिन "बी" का अभाव पाया जाता है। यह देखा गया है कि आलू, शकरकन्द आदि कुछ सब्जियों में गेहूँ एवं मक्का की अपेक्षा प्रति हेक्टेयर अधिक भोज्य पदार्थ मिलता है। मानव आहार में फलों एवं सब्जियों की महत्ता सर्वविदित है। साधारण भारतीय के भोजन में आवश्यक पोषक तत्व बहुत कम मात्रा में पाये जाते है। फलों एवं सब्जियों में विटामिन एवं खनिजों की प्रचुर मात्रा पायी जाती है इसलिए इन्हें संरक्षी खाद्य (Protective food) भी कहा जाता है। पोषक तत्वों की प्रचुरता के आधार पर मुख्य फलों एवं सब्जियों का वर्णन निम्न हैः–

**1. खनिजों की प्रचुरता (Richness of minerals)** शरीर के स्वस्थ संचालन एवं वृद्धि के लिये कम से कम दस खनिजों की अधिक मात्रा में आवश्यकता पड़ती है। इसमें से कैल्सियम (चूना), आयरन (लोहा) तथा फॉस्फोरस की हमारे भोजन में कमी पायी जाती है।

**(अ) कैल्सियम –** इसकी कमी से बच्चे सूखा रोग, चिड़चिड़ापन व अल्प वृद्धि के शिकार हो जाते है। आहार में इसकी कमी से अस्थिमृदुता (Osteomalacia) होने के कारण शिशु जन्म में कष्ट होता है। इसकी प्रचुर मात्रा शरीर में हो तो लौह तत्व की भी कम आवश्यकता होती है। यह हड्डियों को मजबूत तथा शरीर को रोगरोधी बनाने के लिए आवश्यक है। लीची, करौंदा, केला, बेल तथा धनिया, मेथी एवं मूली पत्ती आदि में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

**(ब) आयरन –** लौह तत्व लाल रुधिर कणिकाओं का एक अनिवार्य अंग है जो शरीर में ऑक्सीजन के संवाहक का कार्य करता है। यह अनेक ऊतकों (Tissues) तथा उत्प्रेरको का अनिवार्य भाग बनाता है जो देह में ऑक्सीकरण एवं अपचयन को नियमित करते है। करौदां, खजूर, काजू, धनिया पत्ती आदि में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

**(स) फॉस्फोरस –** यह शरीर के सभी सक्रिय ऊतकों के लिए अनिवार्य तत्व है। हड्डियों व मृदु ऊतकों के गुण तथा ऊतकों में उचित द्रव अंश के अनुरक्षण के लिए इसकी आवश्यकता पड़ती है। फॉस्फोरस अम्ल क्षार सन्तुलन के अनुरक्षण में मदद करता है। यह वसा अम्लों के स्थानांतरण में भी सहायक होता है। फॉस्फोरस काजू, अखरोट, लीची, केला, आलू, एस्पैरगस, पालक, चुकंदर, मेथी, अरबी, मटर, लोबिया, चौलाई, सहजन एवं मूली की पत्तियों में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

**2. विटामिन्स की प्रचुरता (Richness of Vitamins)** सन्तुलित भोजन में विटामिन्स का बहुत महत्व है। ये शरीर की रोगों से रक्षा करते है। विटामिन ए,बी,सी,डी तथा ई शरीर के लिए मुख्य है। विटामिन ए,बी,सी फलों एवं सब्जियों में पर्याप्त मात्रा में पाये जाते है।

**(i) विटामिन 'ए'-** यह शरीर की सन्तुलित वृद्धि एवं जनन, आँख के रोग (रतौंधी) इन्फ्लूएन्जा एवं घाव भरने के लिए आवश्यक

तालिका 1.1 प्रमुख फलों का पोषण मान

| क्र. स. | फल | नमी % | प्रोटीन % | वसा % | कार्बोहा % | कैल्शियम % | फास्फोरस % | लोहा % | विटामिन 'ए' IU/100 ग्राम | विटामिन 'बी1' | निकोटिनिक अम्ल | राइबोफ्लेविन | विटा. 'सी' |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | | | | | | | | | मि. ग्रा./100 ग्राम | | | |
| 1 | अनार | 78.0 | 1.6 | <0.1 | 14.6 | 0.01 | 0.07 | 0.3 | – | – | – | 100 | 16 |
| 2 | अनन्नास | 86.5 | 0.6 | <0.1 | 12.0 | 0.02 | 0.01 | 0.9 | 60 | – | – | 120 | 63 |
| 3 | अमरूद | 76.1 | 1.5 | 0.2 | 14.5 | 0.01 | 0.04 | 1.0 | अल्प | 30 | 0.2 | 30 | 299 |
| 4 | आम (कच्चा) | 90.0 | 0.7 | 0.1 | 8.8 | 0.01 | 0.02 | 4.5 | 150 | – | – | 30 | 3 |
| 5 | आम (पका) | 86.1 | 0.6 | 0.1 | 11.8 | 0.01 | 0.02 | 0.5 | 4800 | 40 | 0.3 | 50 | 13 |
| 6 | आंवला | 81.2 | 0.5 | 0.1 | 14.1 | 0.05 | 0.02 | 1.2 | – | 30 | 0.2 | – | 600 |
| 7 | अंगूर | 85.5 | 0.8 | 0.1 | 10.2 | 0.03 | 0.02 | 0.4 | 15 | 40 | 0.3 | 10 | 3 |
| 8 | केला | 61.4 | 1.3 | 0.2 | 36.4 | <0.01 | 0.05 | 0.4 | अल्प | 150 | 0.3 | 30 | 1 |
| 9 | खजूर | 26.1 | 3.0 | 0.2 | 66.3 | 0.07 | 0.08 | 10.6 | 600 | 90 | 0.8 | 30 | – |
| 10 | जामुन | 28.2 | 0.6 | 0.1 | 9.7 | 0.02 | 0.01 | 1.0 | – | – | – | – | – |
| 11 | नारंगी | 88.0 | <0.6 | 0.1 | 10.2 | 0.03 | 0.03 | 0.1 | 200 | 30 | 0.2 | – | 20 |
| 12 | नाशपाती | 86.9 | 0.2 | 0.1 | 11.5 | 0.01 | 0.01 | 0.7 | 14 | 20 | 0.2 | 30 | अल्प |
| 13 | पपीता | 89.6 | 0.5 | 0.1 | 9.5 | 0.01 | 0.01 | 0.4 | 2020 | 40 | 0.2 | 250 | 46 |
| 14 | बेर | 35.9 | 0.8 | 0.1 | 12.8 | 0.03 | 0.03 | 0.8 | 70 | – | – | – | – |
| 15 | बेल | 68.2 | 1.3 | 0.2 | 30.6 | 0.09 | 0.05 | 0.3 | 186 | 12 | 0.9 | 1191 | 15 |
| 16 | लाइम | 84.6 | 1.5 | 0.1 | 10.9 | 0.09 | 0.02 | 0.3 | 26 | 20 | 0.1 | – | 63 |
| 17 | लीची | 84.3 | 0.7 | 0.3 | 9.4 | 0.21 | 0.31 | 0.03 | 14 | 87.5 | – | 122.5 | अल्प |
| 18 | लेमन | 85.0 | 1.0 | 0.9 | 11.1 | 0.07 | 0.01 | 2.3 | अल्प | 20 | 0.1 | 4 | 39 |
| 19 | शरीफा | 73.5 | 1.6 | 0.3 | 23.9 | 0.02 | 0.04 | 1.0 | अल्प | – | – | – | |
| 20 | सेव | 85.9 | 0.3 | 0.1 | 13.4 | <0.01 | 0.02 | 1.7 | अल्प | 120 | 0.2 | 30 | 2 |
| 21 | संतरा | 87.8 | 0.9 | 0.3 | 10.6 | 0.05 | 0.02 | 0.1 | 350 | 120 | 0.3 | 60 | 68 |

तालिका 1.2 विभिन्न सब्जियों के प्रति 100 ग्राम खाद्य भाग का पोषण मान

| सब्जी का नाम | नमी की मात्रा % | कार्बो (ग्राम) | प्रोटीन (ग्राम) | वसा (ग्राम) | विटा.ए (IU) | विटा.बी1 (मि.ग्रा.) | राइबो. (मि.ग्रा) | विटा. सी (मि.ग्रा.) | कैल्शि. (मि.ग्रा.) | फॉस. (मि.ग्रा.) | लोह (मि.ग्रा.) | पोटे. (मि.ग्रा.) |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| चौलाई | 85.7 | 6.3 | 4.0 | 0.5 | 9,200 | 0.03 | 0.10 | 99 | 397 | 83 | 25.5 | 341 |
| चुकंदर | 87.7 | 8.8 | 1.7 | 0.1 | 0 | 0.04 | 0.09 | 88 | 200 | 55 | 1.0 | 43 |
| करेला | 92.4 | 4.2 | 1.6 | 0.2 | 210 | 0.07 | 0.09 | 88 | 20 | 70 | 1.8 | 152 |
| लौकी | 96.1 | 2.5 | 0.2 | 0.1 | 0 | 0.03 | 0.01 | 6 | 20 | 10 | 0.7 | 87 |
| बैंगन | 92.7 | 4.0 | 1.4 | 0.3 | 124 | 0.04 | 0.11 | 12 | 18 | 47 | 0.9 | 2 |
| पत्तागोभी | 91.9 | 4.6 | 1.8 | 0.1 | 2,000 | 0.06 | 0.03 | 124 | 39 | 44 | 0.8 | 114 |
| गाजर | 86.0 | 10.6 | 0.9 | 0.2 | 3,150 | 0.04 | 0.02 | 3 | 80 | 30 | 2.2 | 108 |
| फूलगोभी | 90.8 | 4.0 | 2.6 | 0.4 | 51 | 0.04 | 0.10 | 56 | 33 | 57 | 1.5 | 113 |
| हरी मिर्च | 85.7 | 3.0 | 2.9 | 0.6 | 292 | 0.19 | 0.39 | 111 | 30 | 80 | 1.2 | 217 |
| ग्वार | 81.0 | 10.8 | 3.2 | 0.4 | 316 | 0.09 | 0.09 | 47 | — | — | — | — |
| लोबिया | 84.6 | 8.0 | 4.3 | 0.2 | 941 | 0.07 | 0.09 | 13 | 80 | 74 | 2.5 | — |
| खीरा | 96.3 | 2.7 | 0.4 | 0.1 | 0 | 0.03 | 0.01 | 7 | 10 | 25 | 1.5 | 50 |
| सेम | 86.1 | 6.7 | 3.8 | 0.7 | 312 | 0.1 | 0.06 | 9 | 210 | 68 | 1.7 | 74 |
| लहसुन (सूखी) | 62.0 | 29.80 | 6.3 | 0.1 | 0 | 0.06 | 0.03 | 13 | 30 | 310 | 1.3 | — |
| गांठगोभी | 92.7 | 3.8 | 1.1 | 0.2 | 36 | 0.05 | 0.09 | 85 | 20 | 35 | 0.4 | 37 |
| भिण्डी | 89.6 | 6.4 | 1.9 | 0.2 | 88 | 0.07 | 0.10 | 13 | 66 | 56 | 1.5 | 103 |
| खरबूजा | 94.0 | 5.0 | 1.0 | 0 | 3,420 | 0.04 | 0.05 | 33 | 0.017 | 0.016 | — | — |
| प्याज | 86.8 | 11.0 | 1.2 | — | 0 | 0.08 | 0.01 | 11 | 180 | 50 | 0.7 | — |
| मटर | 72.0 | 15.8 | 7.2 | 0.1 | 139 | 0.25 | 0.01 | 9 | 20 | 139 | 1.5 | 79 |
| परवल | 92.0 | 2.2 | 2.0 | 0.3 | 255 | 0.05 | 0.06 | 29 | 30 | 40 | 1.7 | 83 |
| कद्दू | 92.6 | 4.6 | 1.4 | 0.1 | 84 | 0.06 | 0.04 | 2 | 10 | 30 | 0.7 | 139 |
| मूली (सफेद) | 94.4 | 3.4 | 0.7 | 0.1 | 5 | 0.06 | 0.02 | 15 | 50 | 22 | 0.4 | 138 |
| तोराई | 95.2 | 3.4 | 0.5 | 0.1 | 56 | 0.07 | 0.01 | 5 | 40 | 40 | 1.6 | 50 |
| टिंडा | 93.5 | 3.4 | 1.4 | 0.2 | 23 | 0.08 | 0.04 | 18 | 25 | 24 | 0.9 | 24 |
| पालक | 92.1 | 2.9 | 2.0 | 0.7 | 9,300 | 0.03 | 0.07 | 28 | 73 | 21 | 10.9 | 206 |
| पालक | 92.1 | 2.9 | 2.0 | 0.7 | 9,300 | 0.03 | 0.07 | 28 | 73 | 21 | 10.8 | 20.6 |
| टमाटर (हरा) | 93.1 | 3.6 | 1.9 | 0.1 | 320 | 0.07 | 0.07 | 0.131 | 20 | 36 | 1.8 | 114 |
| शलजम | 91.6 | 6.2 | 0.5 | 0.2 | 0 | 0.04 | 43 | 0.6 | 30 | 40 | 40 | |
| तरबूज | 95.8 | 3.3 | 0.2 | 0.2 | 590 | 0.05 | 0.05 | 6 | 0.07 | 0.07 | — | — |

है। यह आम,पपीता,खजूर,कटहल,सन्तरा, पालक तथा अरबी, धनिया, मेथी व सरसों की पत्तियों में पर्याप्त मात्रा में पायी जाती है।

(ii) **विटामिन 'बी1'**- (थायमिन) विटामिन की कमी में बेरी–बेरी, लकवा, त्वचा की स्पर्शशक्ति का ह्रास, गले की सूजन तथा भूख, शरीर भार में कमी आदि रोग हो जाते है। काजू, केला, पपीता, लीची, मटर, सेम, हरी पत्तियाँ (चौलाई व मेथी) हरी मिर्च, गाजर, लहसुन इसके अच्छे स्रोत है।

(iii) **विटामिन 'बी2'**-(राइबोफ्लेविन) विटामिन की कमी में शारीरिक भार कम, भूख कम लगना, नाक की सूजन व आँखो का लाल रहना आदि रोग होते है।

राइबोफ्लेविन वृद्धि एवं स्वस्थ त्वचा के लिए आवश्यक है जो मुख्य रूप से हरी सब्जियों, बेल, पपीता, काजू, लीची, अनन्नास व अनार आदि इसके अच्छे स्रोत है।

(iv) **विटामिन 'सी'** (एसकॉर्बिक अम्ल) विटाामिन की कमी से गठिया, स्कर्वी रोग, दांतों का कमजोर होना आदि बहुत से विकार उत्पन्न होते है। बारबडस चेरी, आँवला, अमरूद, सन्तरा, चीकू, अनन्नास, हरी मिर्च, टमाटर, हरा धनिया इसके अच्छे स्रोत है।

**3. कार्बोहाइड्रेट्स की प्रचुरता (Richness of carbohydrates)** – कार्बोहाड्रेट्स शक्ति का भण्डार है। एप्रीकोट, खजूर, करौंदा (सूखा), किशमिश, केला, बेल, शरीफा, जामुन, आलू, शकरकन्द आदि इसके प्रमुख स्रोत है।

**4. प्रोटीन की प्रचुरता (Richness of Proteins)** – प्रोटीन का शरीर की रचना में विशेष योगदान है। इसकी युवा अवस्था में अधिक आवश्यकता पड़ती है। अखरोट, कटहल, शरीफा, मटर, चवला, भारतीय सेम आदि इसके अच्छे स्रोत है।

**5. वसा की प्रचुरता (Richness of Fat)** – फल वसा शक्ति का मुख्य स्रोत है। फलों में अखरोट, बादाम, काजू व एवोकैडो में अपेक्षाकृत अधिक वसा पाई जाती है। सब्जियों में वसा की मात्रा बहुत कम पाई जाती है।

**6. कार्बनिक अम्लों की प्रचुरता (Richness of Organic acids )** – फलों में साइट्रिक यौगिक व टार्ट्रिक अम्ल पर्याप्त मात्रा में पाये जाते है। ये भूख बढ़ाने व पाचन क्रिया में सहायता करते है। सेव, अंगूर एवं नीबू वर्गीय फल ,हरीमिर्च, पालक इसके अच्छे स्रोत है।

**7. रेशों की प्रचुरता (Richness of Fibres)** – स्थूल खाद्य पदार्थ पाचन क्रिया में सहायक होता है। तथा कब्ज को रोकता है। अधिकांश फलों एवं सब्जियों में विशेष रूप से पत्ती वाली सब्जियों में जल रेशा या सेल्यूलोज अधिक होता है। ये आँत की पेशियों को स्फूर्ति प्रदान करती है। अमरूद, केला, अनार, आँवला, अंगूर, अखरोट, चौलाई, सरसों, पालक व विलायती पालक आदि इसके अच्छे स्रोत है।

## अभ्यास प्रश्न

### बहुचयनात्मक प्रश्न

1. किस फल में सर्वाधिक विटामिन 'सी' पाया जाता है?
   (अ) आम में (ब) नीबू में
   (स) आंवला में (द) बेल में
2. विटामिन 'बी1' की कमी से होने वाला रोग है–
   (अ) बेरी–बेरी (ब) रिकेट्स
   (स) एनीमिया (द) रतौंधी
3. कैल्सियम का हमारे शरीर में उपयोग है–
   (अ) दाँतों व हड्डियों के विकास के लिए
   (ब) भोजन को पचाने के लिए
   (स) प्रोटीन निर्माण के लिए
   (द) रक्त निर्माण के लिए

### अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

4. फल एवं सब्जियाँ मनुष्य को स्वस्थ रखने के लिए कौन–कौन से पोषक तत्त्व प्रदान करते है?
5. संतुलित मानव आहार में सब्जियों की कितनी मात्रा होनी चाहिये?

### लघूत्तरात्मक प्रश्न

6. संतुलित भोजन में विटामिन्स का महत्त्व लिखिये।
7. मानव आहार में रेशे का महत्त्व लिखिये।

### निबन्धात्मक प्रश्न

8. मानव आहार में फल एवं सब्जी का महत्त्व लिखिये।

### उत्तरमाला

1. (स) 2. (अ) 3. (अ)

# अध्याय–8

# सब्जियों का वर्गीकरण
# (Classification of Vegetables)

अध्ययन एवं उगाने की दृष्टि से सब्जियों को विभिन्न प्रकार से वर्गीकृत किया जाता है। तीन प्रकार के वर्गीकरण की जानकारी निम्न प्रकार है :–

**1. ऋतुओं के आधार पर वर्गीकरण – (Classification based on growing season)**

भारत में लगभग 125 वनस्पतियों को सब्जियों के रूप में उगाया जाता है। देश में फसल उत्पादन की तीन ऋतुएँ मानी जाती हैं।

(1) वर्षा ऋतु या खरीफ की फसल – जून से सितम्बर तक

(2) शीत ऋतु या रबी की फसल – अक्टूबर से फरवरी तक

(3) ग्रीष्म ऋतु या जायद की फसल – मार्च से मई तक

इन ऋतुओं में उगायी जाने वाली कुछ प्रमुख सब्जियाँ निम्न प्रकार हैं :–

(1) खरीफ की सब्जियाँ – ग्वार, टमाटर, लौकी, खीरा, करेला, भिण्डी, तोरई, बैंगन आदि।

(2) रबी की सब्जियाँ – फूलगोभी, मटर, प्याज, लहसुन, गाजर, मूली, पत्तागोभी, गाँठ गोभी आदि।

(3) जायद की सब्जियाँ – लौकी, तोरई, भिण्डी, खीरा, ककड़ी, खरबूज, करेला, टिण्डा आदि।

**2. उपयोगी भाग के आधार पर वर्गीकरण – (Classification based on parts used as food)**

इसमें खाये जाने वाले विभिन्न वानस्पतिक भागों के आधार पर सब्जियों को वर्गीकृत किया जाता है, जो निम्न प्रकार से हैं –

(1) जड़ वाली सब्जियाँ – मूली, गाजर, शलजम, चुकन्दर।

(2) कन्द वाली सब्जियाँ– आलू, शकरकन्द।

(3) बल्ब वाली सब्जियाँ – प्याज, लहसुन।

(4) तने एवं पत्तियों वाली सब्जियाँ – पालक, मेथी चौलाई, पत्तागोभी, धनिया।

(5) फूल वाली सब्जियाँ – फूलगोभी, ब्रोकली।

सारणी 8.1– एक बीज पत्रीय पौधे (Monocotyledeneae)

| कुल (Family) | सब्जी का हिन्दी नाम | वानस्पतिक नाम (Botanical Name) |
|---|---|---|
| 1. एलिएसी (Alliaceae) | प्याज | *Allium cepa L.* |
| | लहसुन | *Allium sativum L.* |
| 2. ऐरसी (Araceae) | अरबी | *Colocacia esculenta L.* |
| | जमीकन्द | *Amorphophallus companulatus L.* |
| 3. पोएसी (Poaceae) | | मीठी मक्का *Zea mays* var. raugosa *L* |
| 4. लिलिएसी(Liliaceae) | सतावर | *Asparagus officinalis L.* |
| 5. डायोस्कोरियेसी (Dioscoreceae) | रतालू | *Dioscorea alata L.* |
| | चाइनीज रतालू | *Dioscorea batatas L.* |

सारणी 8.2 – द्विबीज पत्रीय पौधे (Dicotyledeneae)

| कुल(Family) | सब्जी का हिन्दी नाम | वानस्पतिक नाम (Botanical Name) |
|---|---|---|
| 1. ब्रेसीकेसी (Brassicaceae) | मूली | *Raphanus sativus L.* |
| | फूल गोभी | *Brassica oleracea L.* var. *botrytis L.* |
| | पत्ता गोभी | *B. oleracea L. var. capitata L.* |
| | गाँठ गोभी | *B.oleracea L.* var. *Caulorapa L.* |
| 2. चीनोपोडिएसी (Chenopodiaceae) | चुकन्दर | *Beta vulgaris L.* |
| | विलायती पालक | *Spinacea oleracea L.* |
| | बथुआ | *Chenopodium album L.* |
| 3. कनवोलवुलेसी (Convolvulaceae) | शकरकन्द | *Ipomea batatus L.* |
| 4. कुकर बिटेसी(Cucurabitaceae) | लौकी | *Lagenaria siceraria (Mol.) Standl.* |
| | चिकनी तोरई | *Luffa cylindrica L.* |
| | नसदार तोरई | *L. acutangula ( L.) Roxb.* |
| | कद्‌दू | *Cucurbita moschata (Duch.) Poir* |
| | टिण्डा | *Citrullus lanatus var. fistulosus L.* |
| | करेला | *Momordica charantia L.* |
| | परवल | *Tricosanthes dioica L.* |
| | ककड़ी | *Cucumis melo L.* |
| | पेठा | *Benincasa hispida (Thumb.) cogn.* |
| | खीरा | *Cucumis sativus L.* |
| | खरबूज | *Cucumis melo L.* |
| | चप्पनकद्‌दू | *Cucurbita pepo L.* |
| | चिचिण्डा | *Trichosanthes cucumerina L.* |
| | कुन्दरू | *Coccinia indica L.* |
| 5. एसटिरेसी (Asteraceae) | सलाद | *Lactuca sativa L.* |
| 6. फेबेसी (Fabaceae) | मटर | *Pisum sativum L.* |
| | सेम | *Dolichas lablab L.* |
| | बाकला | *Vicia faba L.* |
| | ग्वार | *Cyamopsis tetragonoloba (L.) Taub.* |
| | लोबिया | *Vigna unguiculata L.* |
| | मेथी | *Trigonella foenum graecum L.* |
| | कसूरी मेथी | *T. corniculata L.* |
| | सोयाबीन | *Glycine max L.* |
| 7 लेबीएटी (Labiatae) | पोदीना | *Mentha arvensis L.* |
| 8. मालवेसी (Malvaceae) | भिण्डी | *Abelmoschus esculentus (L.) Moench.* |
| 9. सोलेनेसी (Solanaceae) | आलू | *Solanum tuberosum L.* |
| | टमाटर | *Lycopersicon Lycopersicum (L.) Karsten* |
| | बैगन | *Solanum melongena L.* |
| | मिर्च, | *Capsicum annum L.* |
| | शिमला मिर्च | *C. fruitescens L.* |
| 10. एपिएसी (Apiaceae) | गाजर | *Daucus carota L.* |
| | धनिया | *Coriandrum sativum L.* |
| 11. जिंजीबरेसी (Zingiberaceae) | हल्दी | *Curcuma domestica L.* |
| | अदरक | *Zingiber officinalis L.* |
| 12. अमेरेन्थेसी (Amaranthaceae) | बड़ी चौलाई | *Amaranthus tricolor L.* |
| | छोटी चौलाई | *A. blitum L.* |

(6) फल वाली सब्जियाँ – टमाटर, बैगन, मिर्च, भिण्डी, लौकी, तोरई, ककड़ी, सीताफल, ग्वार, सेम, बॉकला।

(7) बीज वाली सब्जियाँ– मटर, चना।

### 3. वानस्पतिक वर्गीकरण – (Botanical Calassification)

यह सब्जियों के वर्गीकरण की वैज्ञानिक विधि है। इसमें पौधों के कुल,वंश व जाति के आधार पर सब्जियों का वर्गीकरण सारणी 8.1 व 8.2 में किया गया है –

## सब्जियों की खेती के प्रकार (Types of Vegetable growing)

सब्जियों की खेती सब्जियों के उगाने के उद्देश्य, उगाने की विधि, साधन–सामग्री, जलवायु, प्रबंध व्यवस्था तथा विपणन की सुविधाओं के आधार पर निम्नलिखित सात भागों में बाँटी जा सकती है :–

1. गृहवाटिका स्तर पर सब्जियों की खेती।
2. व्यावसायिक स्तर पर सब्जियों की खेती।
   (अ) मार्केट गार्डनिंग (Market gardening)
   (ब) ट्रक गार्डनिंग (Truck gardening)
3. बीज उत्पादन के लिए सब्जियों की खेती।
4. संसाधन के लिए सब्जियों की खेती।
5. बे–मौसम सब्जियों की खेती।
6. तैरते हुए सब्जी उद्यान।
7. प्रदर्शनी के लिए सब्जियों की खेती

उपर्युक्त में से प्रमुख दो प्रकार की खेती का वर्णन निम्न प्रकार है –

### 1. गृहवाटिका स्तर पर सब्जियों की खेती (Kitchen gardening)

'' घर के आस–पास पड़ी खाली भूमि पर परिवार की निजी आवश्यकताओं की पूर्ति के उद्देश्य से सब्जियाँ उगाने को गृहवाटिका या रसोई उद्यान (Kitchen garden) कहा जाता है''

गृहवाटिका में सब्जी उगाने का प्रचलन प्राचीन काल से चला आ रहा है। इसका मुख्य उद्देश्य परिवार के लिए वर्षभर प्रतिदिन ताजा एवं पौष्टिक सब्जियाँ प्राप्त करना होता है। इस प्रकार के सब्जी उत्पादन का ध्येय पैसा कमाना नहीं होता है। सब्जियों का चयन परिवार के सदस्यों की इच्छानुसार किया जाता है। इसकी व्यावहारिकता एवं लाभों के कारण विगत 4–5 दशकों में इसका प्रचलन बढ़ रहा है। खाली भूमि न होने पर व्यक्ति गमलों, घर की छतों, ड्रमों या बक्सों आदि में सब्जियाँ उगा रहे हैं।

### गृहवाटिका के लाभ – (Advantages of kitchen garden)

(1) परिवार के सदस्यों की आवश्यकता के अनुसार ताजा एवं स्वादिष्ट सब्जियाँ वर्षभर उपलब्ध होती रहती है।

(2) घर के चारों ओर पड़ी खाली भूमि का सदुपयोग होता रहता है।

(3) परिवार के सदस्यों के लिए व्यायाम का अच्छा साधन है।

(4) रसोईघर व स्नानघर के पानी एवं कूड़े करकट का सदुपयोग हो जाता है।

(5) गृह वाटिका मनोरंजन का साधन है।

(6) सब्जियों के साथ फूल एवं फल भी प्राप्त होते हैं।

(7) सब्जी क्रय करने बाजार नहीं जाना पड़ता जिससे समय की बचत होती है।

(8) बाजार की तुलना मे उत्तम गुणवत्ता वाली व सस्ती सब्जियाँ मिलती है।

(9) परिवार के सदस्यों एवं बच्चों को सीखने का अवसर प्राप्त होता है।

(10) सब्जियों के खर्च में बचत होने से परिवार की आय बढ़ती है।

(11) अधिक सब्जियों का उपयोगकरने से खाद्यान्न की बचत होती है।

(12) गृह वटिका की सब्जियों पर कीटनाशक एवं रोग नाशक हानिकारक रसायनों का प्रयोग नहीं होता है।

(13) घर के आस–पास का वातावरण सौन्दर्यपूर्ण एवं स्वच्छ रहता है।

(14) स्वयं द्वारा उगायी सब्जियाँ मनोवैज्ञानिक रूप से स्वादिष्ट लगती है।

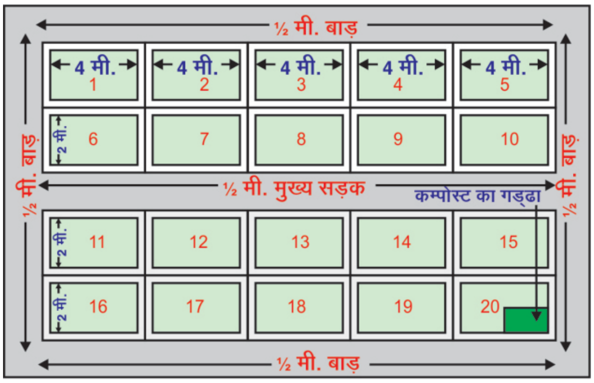


गृह वाटिका का प्रारूप

चित्र–8.1

**गृहवाटिका का अभिन्यास** (Layout of Kitchen garden) :– गृहवाटिका में फसल प्रबंध के लिए योजनाबद्ध खेती आवश्यक है। मौसम आने के पहले ही बुआई के कार्यक्रम की योजना तैयार कर लेनी चाहिए। इससे प्रत्येक सब्जी के क्षेत्रफल के अनुसार बीज की सही मात्रा, खाद, पानी आदि की जरूरतों का पता लग जाता है ताकि न्यूनतम मेहनत व खर्चे से सब्जियों की अच्छी फसल मिल सके। गृह वाटिका का आकार भूमि की उपलब्धता व परिवार में सदस्यों की संख्या पर निर्भर करता है एक औसत परिवार (5–6 सदस्य) को वर्ष भर सब्जियाँ प्राप्त करने के लिए 25 मीटर X 10 मीटर का क्षेत्रफल पर्याप्त रहता है। गृहवाटिका का अभिरूप स्थान के आकार–प्रकार परिवार की रूचि, भूमि, जलवायु तथा सब्जियों के चयन पर निर्भर करता है। एक बड़ी बेढंगी गृहवाटिका की अपेक्षा उचित ढंग से लगाई गई छोटी गृह वाटिका अच्छी रहती है। गृहवाटिका की उचित देख–रेख के लिए चौड़ाई कम व लम्बाई अधिक रखी जाती है। नमूने के तौर पर एक गृहवाटिका का प्रारूप चित्र संख्या 2.1 में दिया गया है। गृहवाटिका का अभिन्यास करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए–

1. गृहवाटिका निवास स्थान के समीप होनी चाहिए जिससे खाली समय में परिवार के सदस्य उसकी देखभाल कर सकें।
2. रसोईघर एवं स्नानघर से निकलने वाले पानी का सदुपयोग हो सके।
3. भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए जैविक खाद का प्रयोग करना चाहिए।
4. फसल चक्र सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए।
5. सब्जियों की बुआई सदैव पंक्तियों में करनी चाहिए।
6. ग्रीष्म व वर्षा ऋतु में बाड़ के साथ बेल वाली (कद्दूवर्गीय) सब्जियों को उगाएं।
7. सर्दी की ऋतु में बाड़ के साथ मटर उगाएं।
8. जड़ वाली सब्जियों मौसम के अनुसार मेंड़ो पर ही उगाएं।
9. कुछ सब्जियों की 2–3 कतारें लगातार 8–10 दिन के अन्तर पर लगाये जिससे अधिक समय तक सब्जियाँ प्राप्त होती रहें।
10. लम्बी अवधि की सब्जियों के मध्य कम अवधि की सब्जियाँ उगाये जैसे– टमाटर व बैंगन के बीच मूली, गाजर आदि।
11. पर्याप्त स्थान उपलब्ध होने पर पपीता, नीबू, अनार, अंगूर, केला आदि फल एवं फूलों के पौधे लगाएं।

**सब्जियाँ बोने का समय–** गृहवाटिका में वर्ष में तीन बार शाक–सब्जियाँ बोई जा सकती हैं।

(1) खरीफ की सब्जियाँ :– इन्हें जून– जुलाई में बोया जाता है। इस समय भिण्डी, मिर्च, बैंगन, लोबिया, अरबी, टमाटर, लौकी, करेला, तोरई, ग्वार आदि की बुआई करते हैं।

(2) रबी की सब्जियाँ – इन्हें सितम्बर–अक्टूबर में बोया जाता है। इस समय फूलगोभी, पत्तागोभी, मटर, प्याज, लहसुन, आलू, टमाटर, मूली, गाजर, शलजम, सरसों, मेथी, पालक आदि की बुआई की जा सकती है।

(3) जायद की सब्जियाँ :– इन्हें फरवरी–मार्च में बोया जाता है। इस समय टिण्डा, खीरा, ककड़ी, खरबूज, तरबूज,

लौकी, तोरई, भिण्डी, अरबी, सीताफल आदि की बुआई की जा सकती है।

**2. व्यावसायिक स्तर पर सब्जियों की खेती – (Commercial Cultivation of Vegetables)**

इसमें सब्जी उत्पादन का मुख्य उद्देश्य धनोपार्जन का होता है। इस प्रकार की खेती बड़े क्षेत्रफल पर की जाती है। सब्जियों के उत्पादन को स्थानीय अथवा दूरस्थ बाजारों में बेचा जाता है। बीजों का उत्पादन करके भी आय प्राप्त की जाती है। व्यावसायिक स्तर पर शाकोत्पादन को निम्न भागों में विभक्त किया जाता है–

(अ) मार्केट गार्डनिंग – इसमें उत्पादित सब्जियाँ बाजार में बेची जाती है। इस प्रकार की खेती में सघन फसल चक्र अपनाया जाता है इसलिए यह खेती श्रम प्रधान होती है। इसमें विशेष रूप से फूलगोभी, पत्तागोभी, गाजर, टमाटर, पालक, मेथी, आदि सब्जियाँ उगायी जाती है। आधुनिक मार्केट गार्डनिंग की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

(1) इन फार्मों की भूमि अधिक मूल्यवान होती है।

(2) इन फार्मों की बाजार से अधिकतम दूरी 20–25 किलोमीटर तक हो सकती है।

(3) इस प्रकार के फार्म का क्षेत्रफल सीमित होता है।

(4) बाजार की माँग के अनुसार सब्जियों की गहन खेती करके अधिक उत्पादन किया जाता है।

(5) इन क्षेत्रों में श्रमिकों की माँग मजदूरी अधिक रहती है।

(6) फार्मों पर नवीनतम कृषि तकनीक अपनायी जाती है।

(7) सब्जियों की तुड़ाई प्रायः सुबह के समय करके ताजा सब्जी बाजार में भेजी जाती है।

(8) इन फार्मों पर सिंचाई हेतु जल का प्रबन्ध नितान्त आवश्यक होता है।

(9) सब्जियों के परिवहन पर कम खर्च होता है।

(ब) ट्रक गार्डनिंग :– ट्रक का शाब्दिक अर्थ बाँटना या अदला–बदली है, जो फ्रेन्च भाषा के Traquer से लिया गया है। सब्जी उत्पादन की इस प्रणाली में आलू, प्याज, लहसुन, मटर, अरबी जैसी सब्जियाँ उगायी जाती है, क्योंकि इस प्रकार की सब्जियाँ शीघ्र खराब नहीं होती है। जल्दी खराब होने वाली सब्जियाँ जैसे पालक, मेथी आदि इन फार्मों पर नहीं उगाई जाती हैं। ट्रक गार्डनिंग में उगाई गई सब्जियों को दूर–दूर तक बाजारों में विपणन हेतु भेजा जाता है। इस प्रकार की खेती की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं :–

(1) इन फार्मों का क्षेत्रफल विस्तृत होता है।

(2) इन फार्मों की भूमि सस्ती होती है।

(3) ये फार्म बाजार से अधिक दूरी पर स्थित होते हैं।

(4) सब्जियों के परिवहन पर अधिक खर्च होता है।

(5) इन फार्मों पर ऐसी सब्जियाँ उगायी जाती है जिन्हें दूरस्थ बाजारों में भेजने पर शीघ्र खराब नहीं होती हैं।

(6) इन फार्मों पर मशीनों का प्रयोग अधिक किया जाता है।

(7) वर्ष भर में एक या दो फसलें ही उगायी जाती हैं।

(8) सब्जियाँ प्रायः शाम के समय तोड़कर दूर तक बाजारों में भेजी जाती है।

(9) इन फार्मों पर उगायी गयी सब्जियों का विपणन प्रायः मध्यस्थों द्वारा किया जाता है।

## अभ्यास प्रश्न

**बहुचनात्मक प्रश्न–**

1. निम्न में से फल वाली सब्जी है –

(अ) आलू (ब) प्याज
(स) भिण्डी (द) फूलगोभी

2. फूलगोभी का वानस्पतिक कुल है –

(अ) लिलिएसी (ब) ब्रेसीकेसी
(स) कुकरविटेसी (द) मालवेसी

3. मार्केट गार्डनिंग के फार्म की बाजार से अधिकतम दूरी होती है –

(अ) 0–5 किमी तक

(ब) 50–70 किमी तक

(स) 100–150 किमी तक

(द) 20–25 किमी तक

4. गृहवाटिका का उद्देश्य होता है –

(अ) परिवार के सदस्यों को निरन्तर ताजा सब्जियाँ उपलब्ध कराना

(ब) अधिक धन कमाना

(स) परिवार के सदस्यों को व्यस्त रखना

(द) सब्जी उत्पादकों से प्रतियोगिता करना

**अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–**

5. कन्द वाली किन्हीं दो सब्जियों के उदाहरण दीजिए।
6. लौकी व करेला किस कुल की सब्जियाँ है ?
7. गृह वाटिका किसे कहते हैं ?
8. जायद ऋतु की सब्जियाँ कब बोयी जाती हैं ?

**लघूत्तरात्मक प्रश्न–**

9. ऋतुओं के आधार पर सब्जियों का वर्गीकरण कीजिए।
10. मार्केट गार्डनिंग एवं ट्रक गार्डनिंग में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
11. ट्रक गार्डनिंग की विशेषतायें लिखिए।
12. सब्जियों की खेती के प्रकार लिखिए।

**निबंधात्मक प्रश्न–**

13. गृह वाटिका के लाभ लिखिए।
14. गृह वाटिका का अभिन्यास करते समय किन–किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?
15. वानस्पतिक आधार पर सब्जियों का वर्गीकरण कीजिए।

**उत्तरमाला–** 1. (स) 2. (ब) 3. (द) 4. (अ)

# अध्याय–9
# पौधशाला (Nursery)

फल, फूल तथा सब्जी के पौधों की प्रारम्भिक अवस्था में बहुत अच्छी तरह देखरेख करने की आवश्यकता पड़ती है। फूलों व सब्जियों के बीजों को अत्यन्त छोटे व महँगे होने के कारण सीधे खेत में बोना कठिन होता है क्योंकि प्रारम्भिक अवस्था में इनके नवजात पौधे अधिक कोमल होते है। अतः इन पौधों को गर्मी, सर्दी, तेज हवाओं, अधिक वर्षा, बीमारियों व कीटों से रक्षा करना अत्यन्त आवश्यक होता है। बड़े क्षेत्रफल में इस प्रकार के कोमल पौधों की देखभाल आसानी से करना सम्भव नही हो सकता, इसलिए बीजों को पहले छोटे स्थान पर सघन रूप में उगाया जाता है और जब पौधे कुछ बड़े हो जाते है तब उन पौधों को स्थाई या खेत में रोप दिया जाता है।

**परिभाषाः–**

1. वह सीमित क्षेत्र, जहाँ छोटे–छोटे तथा महँगे बीजों को सघन रूप में बोकर तथा उगे हुए पौधों को प्रारम्भिक अवस्था में सभी सम्भव सुविधायें प्रदान कर पौधे तैयार किये जाते है, उसे पौधशाला या नर्सरी कहते है।

2. छोटी–छोटी क्यारियों वाला वह क्षेत्र जहाँ अधिक मात्रा में एक साथ बोये गये बीजों से उत्पन्न पौधों की सामूहिक रूप से उस समय तक देखरेख की जाती है, जब तक कि उनको स्थाई स्थान पर स्थानान्तरित नहीं किया जाता, पौधशाला कहलाता है।

**महत्वः–** पौधशाला में नवजात पौधों की देखरेख उचित ढंग से होती है, जिससे स्वस्थ पौधे तैयार होते है और भविष्य में अच्छा उत्पादन मिलता है। आज सघन खेती (Intensive Cultivation), छोटी कृषि जोत व कुछ अन्य कारणों से पौधशाला का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। निम्नलिखित बिन्दुओं से पौधशाला का महत्व स्पष्ट हैः–

1. पौधशाला में पौध तैयार करने में भूमि की बचत होती है।
2. पौधशाला में पौध तैयार करने में बीज कम लगता है।
3. छोटे व हल्के बीजों की खेत में सीधी बुआई करना कठिन होता है लेकिन पौधशाला में आसानी से बुआई व सुरक्षा कर सकते है।
4. पौधशाला में उगे हुए नवजात व कोमल पौध की सीमित क्षेत्र के कारण देखभाल करना आसान रहता है।
5. पौधशाला में पौधो की वृद्धि के लिये सभी अनुकूल परिस्थितियाँ आसानी से प्रदान की जा सकती है।
6. बीजों की बुवाई नर्सरी में करने से मुख्य खेत की तैयारी के लिये अधिक समय मिल जाता है।
7. जिस समय में पौधशाला में पौध तैयार करते हैं उसी समय में खेत में दूसरी फसलें उगी रहती हैं अतः सघन खेती को बढावा मिलता है।
8. कम क्षेत्र ( पौधशाला ) में पौधों की कीटों, रोगों व प्रतिकूल मौसमी परिस्थितियों से आसानी से सुरक्षा कर सकते हैं।
9. पौधशाला में पौध तैयार कर खेती करने से उत्पादन व्यय कम होता है जिससे प्रति हैक्टर लाभ बढ़ जाता है।
10. व्यवसाय के रूप में पौधशाला में सब्जियों, फूलों व फलों की पौध तैयार कर अच्छा लाभ कमाया जा सकता है।

**पौधशाला के लिये स्थान का चुनावः–**

पौधशाला के लिये स्थान ऐसा होना चाहिये जहाँ पर नवजात पौधों को अधिक से अधिक आवश्यक सुविधाएँ देना सम्भव हो सके। उसके अलावा पौधशाला केवल स्वयं की आवश्यकता पूर्ति हेतु नये पौधे तैयार करने के लिये ही निर्माण नहीं की जाती अपितु यह एक अच्छा व्यवसाय भी है, जिसमें अनेक प्रकार के पौधे तैयार किये जाते है तथा उन्हें बेचकर अच्छी आमदनी प्राप्त की जाती है। अतः पौधशाला के लिये स्थान का चुनाव करते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिएः–

**(1) पौधशाला स्थल की स्थिति :–** पौधशाला के लिये चुना गया स्थान सामान्य धरातल से कुछ ऊँचा होना चाहिए। जिससे आसपास का पानी पौधशाला में इकठ्ठा नही हो।

**(2) मिट्टीः–** पौधशाला की सफलता उपलब्ध सुविधाओं, मिट्टी तथा विभिन्न अनुकूल परिस्थितियों पर निर्भर करती है। अतः नर्सरी के लिये, भूमि में निम्नलिखित विशेषताँएहोनी चाहिएः–

(i) भूमि उपजाऊ होनी चाहिये अर्थात् जीवांश पदार्थ व पोषक तत्वों की मात्रा पर्याप्त होनी चाहिए।

(ii) भूमि समतल होनी चाहिए।

(iii) भूमि कंकड़–पत्थर रहित होनी चाहिए।

(iv) भूमि खरपतवार रहित होनी चाहिये। बलुई दोमट व दोमट भूमि पौधों की बढ़वार के लिये उतम होती है। रेतीली या अधिक चिकनी मिट्टी उपयुक्त नहीं है।

(v) भूमि में निचली परतें कठोर नहीं होनी चाहिए।

**(3) सिंचाई की सुविधाः–** पौधशाला में उगाये गये पौधों के लिये वर्ष भर अर्थात् वर्षा ऋतु में वर्षा की कमी के कारण तथा बाकी दिनों में भी नियमित सिंचाई की आवश्यकता रहती है। पौधशाला में पानी की कमी होते ही कोमल पौधे मुरझाने लगते हैं इसलिये पौधशाला में या नजदीक सिंचाई के लिये स्थाई सुविधा होनी चाहिए। सिंचाई हेतु उपलब्ध पानी सिंचाई के योग्य होना चाहिए।

**(4) जल निकास की व्यवस्थाः–** पौधशाला में कोमल पौधे अधिक नमी के कारण आर्द्रगलन रोग वाइरस जनित रोगों व हानिकारक कीटों से प्रभावित हो जाते है। इसके अलावा अधिक नमी से भूमि में वायु संचार कम हो जाता है तथा मृदा ताप में भी गिरावट आ जाती है। जिससे स्वस्थ पौधे तैयार नहीं हो सकते। इसलिये नर्सरी निर्माण ऐसे स्थान पर करना चाहिये जहाँ जल निकास का उचित प्रबन्ध हो।

**(5) यातायात की सुविधाः–** नर्सरी में स्वयं के लिये नये पौधे तैयार करने के अलावा यह एक व्यवसाय भी है, इसलिये व्यावसायिक नर्सरी क्रेताओं की पहुँच से दूर नहीं होनी चाहिये। नर्सरी में आने–जाने हेतु आवागमन की अच्छी सुविधा होनी चाहिए। व्यावसायिक पौधशाला के निकट रेल या सड़क यातायात होने से तैयार पौधों की बिक्री अधिक से अधिक हो सकती है।

**(6) कार्बनिक खाद की सुविधाः–** पौधों की वृद्धि के लिये संतुलित पोषक तत्वों की आवश्यकता होती हैं। पौधों को पोषक तत्व विभिन्न कार्बनिक खादों से ही संतुलित मात्रा में प्राप्त होते है। इसलिये पौधशाला ऐसे स्थान पर निर्माण करनी चाहिये जहाँ आसानी से, कम कीमत पर तथा पर्याप्त मात्रा में कार्बनिक खाद मिल सके।

**(7) दैनिक व स्थानीय मजदूरी की सुविधाः–** पौधशाला में वर्षभर विभिन्न कार्यों हेतु समय–समय पर कम या अधिक संख्या में मजदूरों की आवश्यकता पड़ती रहती है। अतः पौधशाला ऐसे क्षेत्रों के नजदीक स्थापित करनी चाहिये, जहाँ दैनिक व स्थानीय मजदूरों की संख्या पर्याप्त हो तथा आसानी से उपलब्ध हो।

**(8) अन्य बातेंः–**

(i) पौधशाला सुरक्षित स्थान पर स्थापित करनी चाहिये ताकि आवारा पशु पौध व पौधों को नुकसान न पहुँचा सके। इसके लिये पौधशाला के चारों ओर बाड़ या काँटेदार तारों की व्यवस्था होनी चाहिए।

(ii) पौधशाला के नजदीक बड़ी–बड़ी फैक्ट्रियाँ नहीं होनी चाहिये क्योंकि उनसे निकलने वाला धुआं पौधों की वृद्धि के लिये हानिकारक है।

(iii) पौधशाला किसी बड़ी पहाड़ी या बडी–बड़ी हवेली या काफी बड़े वृक्षों के पश्चिम में नहीं बनानी चाहिये, क्योंकि ये प्रातःकालीन धूप को रोकती हैं इसका सीधा प्रभाव पौध व पौधों की वृद्धि पर पड़ता है।

(iv) पौधशाला में फलों व सजावटी पौधों से नये पौधे, प्रवर्धन की विभिन्न विधियों द्वारा तैयार करने का कार्य प्रशिक्षित बागवान या माली ही कर सकता है, अतः जहाँ पौधशाला स्थापित करनी हो वहाँ बागवान या माली आसानी से उपलब्ध होना चाहिये और उसका निवास स्थान पौधशाला के निकट ही होना चाहिये ताकि देख–रेख आसानी से हो सके।

(v) सजावटी पौधों की नर्सरी के लिये कुछ छायादार स्थान भी पौधशाला में होना चाहिये।

## खेत की तैयारी एवं पौध तैयार करना

**(अ) पौधशाला या खेत की तैयारी :–** पौधशाला का आकार छोटा हो या बड़ा, उसमें स्वस्थ पौधे तैयार करने के लिये उसकी व्यवस्थित तैयारी बहुत जरूरी होती है। ताकि स्वयं व क्रेताओं की आवश्यकताओं के अनुसार स्वस्थ व निरोग पौध प्राप्त हो सके। व्यवस्थित तैयारी के लिये निम्नलिखित बिन्दुओं के अनुसार कार्य करना चाहिये।

(1) पौधशाला की घेराबन्दी करना।

(2) काम में आने वाले यंत्र व उपकरणों की व्यवस्था करना।

(3) सिंचाई की स्थाई व्यवस्था करना।

(4) पौधशाला की योजना तैयार करना।

(5) पौधशाला की भूमि को तैयार करना।

**(1) घेराबन्दी करना (Fencing) –** पौधशाला में तैयार किये जाने वाले कीमती पौधों की रक्षा करने तथा बाहरी व्यक्तियों का पौधशाला में आवागमन रोकने के लिये सबसे पहले चुनाव किये गये स्थान की घेराबन्दी कर देनी चाहिये। घेराबन्दी पक्की ईटों की दीवार बनाकर की जा सकती है, या फिर लोहे के ऐंगल या सीमेंट कंकरीट से तैयार खम्भों पर 4–5 पंक्तियों में कंटीले तारों की बाड़ भी बनाई जा सकती है। इसके अलावा काँटेवाले पौधे जैसे जंगल–जलेबी, कीकर, बबूल इत्यादि की बाड़ भी बनाई जा सकती है। कुछ स्थानों पर बेर की सूखी झाड़ियों की बाड़ बनाई जाती है। अगर काँटेदार तारों के साथ–साथ उपरोक्त बाड़ वाले पौधे भी लगा दिये जाये जो अच्छी घेराबन्दी हो जाती हैं।

**(2) यंत्र व उपकरण –** नर्सरी में विभिन्न कार्य करने हेतु विभिन्न प्रकार के यंत्रों व उपकरणों की लगातार आवश्यकता

रहती है। उनकी समुचित व्यवस्था कर लेना चाहिये। नर्सरी में काम आने वाले मुख्य यन्त्र व उपकरण निम्नलिखित हैं –

| | | |
|---|---|---|
| 1. फावड़ा | 2. कुदाली | 3. खुरपी |
| 4. बेलचा व गैंती | 5. हो एण्ड रैक | 6. हैण्ड फोर्क |
| 7 डिबलर | 8 कलिकायन चाकू | |
| 9. हैरो व हैण्ड कल्टीवेटर | 10. ट्रॉवेल | |
| 11. हँसिया या दराँती | 12. सिकेटियर | |
| 14. उपरोपण चाकू | | |
| 15. झारा व फव्वारा | 16. कृन्तन आरी | |
| 17. डस्टर (भुरकाव यंत्र) | 18. स्प्रेयर (छिड़काव यंत्र) | |

**(3) सिंचाई व्यवस्था –** पौधशाला में वर्ष भर विभिन्न फूलों, फलों तथा सब्जियों की पौध तैयार कर अधिक से अधिक लाभ अर्जित करने का उद्देश्य रहना चाहिये। उसके लिये पूरे वर्ष नियमित सिंचाई की जरूरत रहती है, अतः पौधों व पौध के लिये पानी की कोई स्थाई व्यवस्था होनी चाहिए। बड़े–बड़े शहरों के आस–पास अस्थाई व्यवस्था से पौधशाला की आवश्यकताओं की पूर्ण आपूर्ति नहीं हो सकेगी। सिंचाई के लिये ट्यूबवैल अथवा कुएँ का निर्माण कराया जा सकता है। इसके अलावा पानी के संग्रहण हेतु एक बड़ी हौद या टंकी का निर्माण करना भी आवश्यक होगा, जिससे पौधों को समय–समय पर आवश्यकतानुसार पानी उपलब्ध कराया जा सके।

बड़ी पौधशाला में सिंचाई का कार्य स्प्रिंकलर द्वारा किया जा सकता है। पैतृक वृक्षों तथा पौध स्थानान्तरित क्यारियों में नालियों द्वारा सिंचाई की व्यवस्था करनी चाहिये। जिन क्यारियों तथा गमलों में बीज बोये गये है उनमें पानी झारे या फव्वारा द्वारा ही दिया जाना चाहिए।

**(4) पौधशाला की योजना –** योजना तैयार किये बिना कोई भी कार्य सही ढंग से किया जाना कभी भी सम्भव नहीं हो सकता, इस बात को ध्यान में रखते हुए पौधशाला में पौध तैयार करने से पहले उसकी एक पूर्ण योजना बनानी चाहिये। एक अच्छी पौधशाला में पौध तैयार करने से पहले उसकी एक पूर्ण योजना बनानी चाहिये। एक अच्छी पौधशाला निर्माण करने के लिये सभी बातों को ध्यान में रखते हुए आवश्यकतानुसार योजना बनाई जानी चाहिये। एक आदर्श पौधशाला का निम्नलिखित खण्डों में विभाजन करना चाहिए –

1. कार्यालय एवं आवास (Office cum residence)
2. स्थाई सिंचाई खण्ड (Permanent irrigation source)
3. खाद भण्डारण क्षेत्र (Manure storage)
4. बीज बोने की क्यारियाँ (Seed beds)
5. स्थानान्तरण क्यारियाँ (Transplanting beds)
6. मातृ वृक्ष खण्ड (Mother plant's block)
7. गमले व बीज पात्र क्षेत्र (Pot yard and seed pan area)
8. विशेष इकाई क्षेत्र (Special unit area)

**कार्यालय एवं निरीक्षण आवास –** पौधशाला से अच्छा लाभ प्राप्त करने की दृष्टि से इस व्यापार की देखरेख व सुव्यवस्थित करने के लिए मालिक या व्यवस्थापक को पौधशाला में रहना अत्यन्त आवश्यक होता है। यह आवास इनके उपयोग के काम आते हैं, इन्हें योजनानुसार बनाया जाना चाहिए।

**सिंचाई खण्ड –** पौधशाला में स्वस्थ व निरोग पौध तैयार करने के लिये जीवांश खाद की आवश्यकता समय–समय पर रहती है इस लिये खाद भण्डारण पौधशाला में ही आवश्यक होता है। यह क्षेत्र इसी उपयोग में लेनी चाहिए।

**बीज बोने की क्यारियाँ –** पौध तैयार करने के लिये सबसे पहले बीज इन्हीं क्यारियों में बोया जाता है। ये क्यारियाँ लगभग एक मीटर चौड़ी तथा तीन मीटर लम्बी तैयार करनी चाहिए। वर्षा ऋतु में बीज बोने के लिये इन क्यारियों को पौधशाला की भूमि से 10–15 सेमी ऊँची बनाये, जिससे जल निकास आसानी से हो सकेगा तथा पौध को बीमारियों से बचाया जा सकेगा। इन क्यारियों में आवश्यकता से अधिक जल रहने से पौध में आर्द्र गलन रोग की सम्भावना बढ़ जाती हैं।

**स्थानान्तरण क्यारियाँ –** इन क्यारियों को आकार में, बीज क्यारियों से बड़ा बनाया जाता है। बीज क्यारियों में तैयार हुई पौध इन क्यारियों में स्थानान्तरित करके बेचने हेतु रखा जाता है। इन क्यारियों में पानी देने की व्यवस्था नालियों द्वारा की जाती हैं।

**मातृ वृक्ष खण्ड –** इस क्षेत्र में पौधशाला में तैयार किये जाने वाले पौधों की विभिन्न जातियों के पैतृक वृक्षों को तैयार किया जाता है। इन्हीं वृक्षों से संवर्धन के लिये बीज तथा सांकुर डालियाँ ली जाती है। अच्छे किस्म के पौधे तैयार करने के लिये, अच्छे किस्म के पैतृक पौधे पौधशाला में होना बहुत जरूरी है।

**गमले व बीज बोने के पात्रों का क्षेत्र –** पौधशाला में कुछ मंहगे बीज गमलों या बीज पात्रों में बोकर पौध तैयार करने पड़ते हैं। अनेकों पौधे गमले में ही उगाये जाते है या पौधे तैयार करने के बाद उनको गमलों में स्थानान्तरित या रोपकर बेचा जाता हैं। इस प्रकार के बीज पात्रों व तैयार गमलों को इसी क्षेत्र में रखा जाना चाहिए।

**विशेष इकाई क्षेत्र –** यदि आर्थिक स्थिति अच्छी हो और बहुत से कीमती पौधे व वृक्ष तैयार करने हों तो काँच के घर, छायादार घर, गर्म क्यारियाँ, शीतघर तथा फुहार (मिस्ट यूनिट) इत्यादि विशेष इकाईयों का निर्माण पौधशाला में कर सकते हैं। इन इकाईयों की सहायता से और अधिक पौधे तैयार कर आर्थिक लाभ कमाया जा सकता है।

**(5) भूमि की तैयारी :–** पौधशाला का क्षेत्रफल अगर बड़ा हो तो सबसे पहले मिट्टी पलटने वाले हल से 1–2 जुताई करने के बाद 2–3 जुताइयाँ देशी हल या कल्टीवेटर से करनी चाहिए। जहाँ हल नहीं चलाया जा सकता, उस क्षेत्र की कस्सी या फावड़ा से 2–3 बार गहरी खुदाई करनी चाहिए। प्रत्येक जुताई या खुदाई के बाद घास–फूस तथा कंकड–पत्थर के टुकड़ों को अच्छी तरह चुनकर बाहर निकाल देना चाहिए। जुताई करने के बाद खेत में ढेले हो तो मिट्टी को भुरभुरा बनाने के लिये पाटा या सुहागा चलाना चाहिए। भूमि अगर कुछ ऊँची–नीची दिखाई दे तो कराहा या लेवलर से भूमि समतल बना लेनी चाहिए। छोटे क्षेत्रफल में यह कार्य लकड़ी की फट्टी से किया जा सकता है।

पौधशाला की भूमि में बीजों की बुआई से लगभग 1 से 1.5 माह पूर्व 20–25 किलोग्राम अच्छी सड़ी हुई, खरपतवारों के बीजों से रहित, गोबर या कम्पोस्ट खाद प्रति 10 वर्गमीटर क्षेत्रफल की दर से समान रूप से फैलाकर मिट्टी में मिला देनी चाहिए तथा भूमि को पुनः समतल कर देना चाहिए।

पौधशाला की मृदा को निर्जमीकृत करने के लिये 1 प्रतिशत फार्मेलीन का घोल 4.5–5 लीटर प्रति वर्गमीटर भूमि की दर से डालकर तुरन्त पॉलीथीन से 2–3 दिनों तक ढककर रखना चाहिये। जमीन को 15 सेमी तक फार्मेलीन घोल संतृप्त करना चाहिए। ऐसा करने से भूमि के अन्दर व्याप्त व्याधियाँ उत्पन्न करने वाले जीवाणु तथा कवक नष्ट हो जाते हैं।

नर्सरी की भूमि में दीमक व अन्य भूमिगत कीटों की रोकथाम के लिये क्लोरपायरीफॉस चूर्ण या नीम की पतियों की खाद भूमि की तैयारी के समय ही मिला देनी चाहिए।

इस प्रकार तैयार किये गये क्षेत्र को योजनानुसार छोटी–छोटी क्यारियों में विभाजित कर लेना चाहिए। क्यारियों की चौड़ाई 1–1.5 मीटर से अधिक नहीं रखनी चाहिए। उससे निराई–गुड़ाई करने में आसानी रहती है। क्यारियों की लम्बाई (3–5 मीटर) सुविधानुसार रखी जा सकती है।

**पौध तैयार करना :–**

पौध तैयार करने हेतु विभिन्न पौधों के बीच प्रसिद्ध एवं विश्वसनीय बीज उत्पादकों से ही खरीदने चाहिए। सरकारी क्षेत्र में उत्पादित बीज अधिक विश्वसनीय होते हैं बाद में बीज स्वयं द्वारा भी तैयार किया जा सकता है। पौध क्रेताओं की आवश्यकता के समय उपलब्ध कराई जानी चाहिए। अतः बीज की व्यवस्था पौध माँग से 1–2 माह पहले ही अवश्य कर लेनी चाहिए।

**पौधशाला में बीजों की बुआई निम्नलिखित तरीकों से की जा सकती हैं :–**

**(i) छिटककर बुआई करना –** अत्यन्त छोटे या बारीक बीजों जैसे मौसमी फूलों के बीज तथा गोभी वर्गीय सब्जियों के बीजों को बराबर या दुगुनी मात्रा में मिट्टी या राख के साथ मिलाकर पौध क्यारियों में समान रूप से बिखेर देना चाहिए। बीजों को सड़ी तथा छनी हुई गोबर की खाद या राख मिलाकर, इसकी पतली परत से ढक देना चाहिए। ढकने के बाद सिंचाई फव्वारे या झारे से करनी चाहिए।

**(ii) लाइनों या पंक्तियों में बुआई करना –** कुछ फल व सब्जियां जैसे पपीता, सन्तरा, अमरूद, टमाटर, बैंगन, प्याज, मिर्च इत्यादि के बीजों को छिटकवाँ विधि के अलावा पंक्तियों में भी बोया जा सकता है। बीजों को पंक्तियों में 5 से 6 सेमी. की दूरी रखते हुए 1/2 से 1 सेमी. गहरा बोना चाहिये। फलों व अन्य बड़े आकार के बीजों को 4 से 5 सेमी गहरा बोना चाहिए।

**(iii) चोबकर बुआई करना –** फलो के बीजों को तैयार क्यारियों या पॉलीथीन की थैलियों में चोबकर भी बोया जा सकता हैं।

फूल, शाक तथा फलों की पौध तैयार करने हेतु विभिन्न क्रियाएँ निम्नानुसार की जाती है :–

**(1) फूलों की पौध तैयार करना –** फूलों की पौध तैयार करने के लिये पौधशाला के क्षेत्र में ऊँचें व छायादार स्थान की क्यारियाँ काम में ली जाती है इसके लिये आमतौर पर छोटी–छोटी क्यारियाँ जिनकी चौड़ाई 1 मीटर, लम्बाई 1.5 मीटर व 10–15 सेमी. ऊँची उठी हुई बनानी चाहिए। प्रत्येक क्यारी में 2–5 किलोग्राम खाद मिला देते है आजकल पौध क्यारियों में वर्मी कम्पोस्ट का प्रयोग अधिक किया जा रहा है क्योंकि इससे छोटे पौधों को आवश्यक पोषक तत्व जल्दी सुलभ हो जाते हैं।

इस प्रकार तैयार क्यारियों में फूलों के बीजों को दुगनी मात्रा में मिट्टी या राख मिलाकर समान रूप से छिटककर ऊपर से छनी हुई खाद व मिट्टी के मिश्रण या राख की पतली परत बुरक कर ढक देते हैं। बड़े आकार के बीजों जैसे डहेलिया, सूरजमुखी आदि के बीजों को बोने से पूर्व एग्रोसन जी.एन.या बावेस्टिन की 2–3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करके बोने से आर्द्रगलन की बीमारी नहीं लगती है।

बीजों के अंकुरण होने से पहले प्रतिदिन सांयकाल में फव्वारा या झारे से हल्की सिंचाई करते रहना चाहिए। बीजों के अंकुरण के बाद मौसम के अनुसार सिंचाई का अन्तर बढ़ाया जा सकता है। जब पौध 2 सप्ताह की हो जाये, उस समय क्यारियों में उगे हुए खरपतवारों को हाथ से निकाल देना चाहिए तथा पतले फरवाली खुरपी या कील से गुड़ाई भी करनी चाहिए।

**शाकों की पौध तैयार करना –** टमाटर, बैगन, मिर्च, प्याज, गोभी वर्गीय सब्जियाँ इत्यादि की पौध तैयार करके ही रोपाई की जाती है। इन सब्जियों की पौध तैयार करने के लिये पौधशाला में 20–25 किलोग्राम अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद की कम्पोस्ट प्रति 10 वर्गमीटर क्षेत्र के हिसाब से मिलाकर, 1 मीटर चौड़ी व 2–3 मीटर लम्बी क्यारियाँ बना लेनी चाहिए। वर्मी कम्पोस्ट का

उपयोग करने से बीजो का अंकुरण व पौधों की बढ़वार भी अच्छी होती है। बरसात के मौसम में धरातल से उठी हुई क्यारियाँ तैयार करनी चाहिए।

बीजों को बुवाई से पूर्व कवकनाशी रसायन एग्रोसन जी. एन., थायरम 2–3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज के हिसाब से उपचारित कर लेना चाहिए। इससे पौध में आर्द्रगलन (Damping off of Seedlings) बीमारी का प्रकोप नहीं होता ।

इस प्रकार उपचारित बीजों को बराबर मात्रा में मिट्टी या राख के साथ मिलाकर क्यारियों में छिटककर ऊपर से मिट्टी व खाद के मिश्रण की बारीक परत से ढक देना चाहिये। बीजों को पंक्तियों में बोना अधिक लाभप्रद रहता है। उसके लिये बीजों को पौध की बढ़वार के अनुसार 6–10 सेमी की दूरी पर लाइनों में 1 से 1.5 सेमी गहराई पर बोना चाहिए। इसके बाद क्यारियों को सूखी घास से ढक कर, तुरन्त झारे या फुहारे से सिंचाई कर देना चाहिए।

बीजों के अंकुरण तक रोजना सुबह तथा सांय को झारे या फुहारे से हल्की सिंचाई करते रहना चाहिए। बीजों के अंकुरण के बाद सूखी घास को क्यारियों से हटा दें। अंकुरण के बाद सिंचाई की अवधि बढ़ाई जा सकती है। जब पौधे थोड़े बड़े हो जायें उस समय क्यारियों में उगे हुए खरपतवारों को हाथ से ध्यानपूर्वक निकाल देना चाहिए तथा बारीक फर वाली खुरपी से हल्की गुड़ाई भी कर देना चाहिए।

कीटों व रोगों से बचाव हेतु उपयुक्त कीटनाशी या कवकनाशियों का छिड़काव करना चाहिये। सर्दी में पौध को पाले से बचाव हेतु सांयकाल में क्यारियों को पॉलीथीन की चादर से ढक दें।

टमाटर, बैंगन, मिर्च, फूल गोभी, पत्ता गोभी इत्यादि की पौध 4–6 सप्ताह तथा प्याज की पौध 6–8 सप्ताह में प्रतिरोपण योग्य हो जाती हैं।

**3 फलों की पौध तैयार करना –** फलों के पौधे विभिन्न वंशवर्धी विधियों द्वारा तैयार किये जाते हैं। पपीता, फालसा, बेर व आम की बीजू किस्मों का बीजों द्वारा प्रवर्धन किया जाता है किन्तु अधिकतर फलों का प्रवर्धन अलैंगिक विधियों जैसे कलम, लेयरिंग, ग्राफ्टिंग एवं कालिकायन द्वारा किया जाता है। ग्राफ्टिंग व कलिकायन द्वारा प्रवर्धन में उपयोग आने वाला मूलवृन्त बीज द्वारा ही तैयार करते हैं।

फलों की पौध पौधशाला की क्यारियों के अलावा पॉलीथीन की थैलियों में भी तैयार की जा सकती हैं। पपीता, अनार एवं फालसा की पौध पौधशाला की क्यारियों के साथ–साथ पॉलीथीन की थैलियों में खाद व मिट्टी का मिश्रण भर कर तैयार कर सकते हैं। क्यारियों में फलों के पौधे तैयार करना हो तो क्यारियों की 2–3 बार गहरी जुताई या खुदाई करके घास–फूस तथा कंकड़–पत्थर सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट या वर्मी कम्पोस्ट अच्छी तरह मिलाकर क्यारियों को समतल कर लेना चाहिए।

पॉलीथीन की थैलियों में पौध तैयार करने के लिये लम्बे आकार की पॉलीथीन थैलियों का उपयोग करना चाहिए। वर्षा ऋतु में थैलियों को खाद व मिट्टी के मिश्रण से पूर्णरूप से भर देना चाहिये किन्तु शरद व ग्रीष्म ऋतु में थैलियों के ऊपर का 2–3 सेमी भाग खाली रखना चाहिए।

इस प्रकार तैयार क्यारियों या थैलियों में विभिन्न फलों के बीजों की बुवाई जून–जुलाई या फरवरी–मार्च के माह में

विभिन्न शाकों की पौध तैयार करने के लिये पौधशाला का क्षेत्रफल, बीज की मात्रा तथा बुवाई का समय –

| क.सं. | शाक का नाम | पौधशाला क्षेत्रफल (प्र.हे.बु. हेतु) | बीज की मात्रा प्रति हेक्टेयर | बुवाई का समय |
|---|---|---|---|---|
| 1 | टमाटर | 100–125 वर्ग मीटर | 350–450 ग्रा. | जून–जुलाई (अगेती) सितम्बर–अक्टूबर (मध्यम) मार्च–अप्रैल (पछेती) |
| 2 | बैंगन | 125–150 वर्ग मीटर | 375–500 ग्रा. | जून–जुलाई अक्टूबर–नवम्बर फरवरी–मार्च |
| 3 | मिर्च | 150–200 वर्ग मीटर | 1–1.5 कि.ग्रा. | जून–जुलाई नवम्बर–दिसम्बर मार्च–अप्रैल (शिमला मिर्च) अगस्त व नवम्बर |
| 4 | फूल गोभी | 200–250 वर्ग मीटर | 600–700 ग्रा.<br>400–500 ग्रा.<br>375–450 ग्रा. | मई–जून (अगेती) जुलाई–अगस्त (मध्यम) सितम्बर–अक्टूबर (पछेती) |
| 5 | पत्ता गोभी या बन्द गोभी | 200–250 वर्ग मीटर | 600–700 ग्रा.<br>400–500 ग्रा. | अगस्त–सितम्बर (अगेती) सितम्बर–अक्टूबर (पछेती) |
| 6 | प्याज | 500 वर्ग मीटर | 8–10 कि.ग्रा. | अक्टूबर–नवम्बर |

करनी चाहिए। बेर जैसे अधिक कठोर बीजों के ऊपरी कठोर छिलके को बोने से पहले तोड़कर अलग कर देना चाहिए। अमरूद के बीजों को बुआई से पहले 4–5 मिनट तक उबलते पानी में या हल्के सल्फ्यूरिक अम्ल में डालकर उपचारित किया जाता है ताकि अंकुरण अच्छा हो। पपीता, आम, अनार आदि के बीजों को सीधा ही बोया जाता है।

आम,बेर आदि के बीजो को 30 सेमी व पपीता के बीजों को पौधशाला में 2–3 सेमी की दूरी पर लाइनों में बोया जाना चाहिये। फलों के छोटे बीजों को 1–2 सेमी गहरा तथा बड़े बीजों को 4–5 सेमी गहरा बोया जाता है। पॉलीथीन थैलियों में प्रत्येक थैली में एक बीज बोना चाहिए।

पपीते के पौधे लगभग दो सप्ताह के होने के बाद क्यारियों में उगे हुए खरपतवारों को खुरपी से निकाल देना चाहिए। अन्य फलों के पौधों में भी समय–समय पर खरपतवारों को निकालते रहना चाहिए। क्यारियों या थैलियों में पानी की कमी होने पर झारे या फुहारे से नियमित सिंचाई करते रहना चाहिए। आम, बेर, आंवला तथा अमरूद के पौधे 3 माह की आयु के हो जाने पर उन्हें बड़ी पॉलीथीन थैली, गमले या दूसरी स्थानान्तरण क्यारियों में प्रतिरोपित कर देना चाहिए। इन पौधो को साधारणतया एक वर्ष तक इन क्यारियों में रखा जाता हैं। पाले से बचाव के लिये दिसम्बर–जनवरी माह में पौधशाला के ऊपर सरकण्डे या घास–फूस का छप्पर या पॉलीथीन की चादर से ढकने की व्यवस्था कर देनी चाहिये। कीटों तथा रोगों से बचाव हेतु उपयुक्त कीटनाशी व कवकनाशियों का छिड़काव करना चाहिए।

पपीते के पौधों के अलावा अन्य सभी फलो के पौधे 1 वर्ष की आयु में स्थाई स्थान (बाग)पर लगाने योग्य हो जाते है जबकि पपीते के पौधे केवल 2 माह की आयु में ही प्रतिरोपण योग्य हो जाते हैं।

## देखभाल एवं पौध प्रतिरोपण

**देखभाल –** स्वस्थ व निरोग पौध तैयार करने के लिए बीजों की बुवाई तथा इनके अंकुरण के बाद विशेष देखभाल की जानी चाहिए। अगर सही देखभाल नहीं होती है तो अधिकतर पौधे कमजोर रह जाते है। कमजोर पौधे खेत में प्रतिरोपण करने से उनकी वृद्धि बहुत धीमी गति से होती है और उत्पादन पर बुरा प्रभाव पड़ता हैं। देखभाल में निम्नलिखित क्रियाओं का विशेष ध्यान रखना चाहिए–

1. **सिंचाई :–** पौधशाला क्षेत्र में बीजों की बुवाई के बाद वर्षा ऋतु में वर्षा के अभाव में तथा शरद व ग्रीष्म ऋतु में अंकुरण से पहले प्रतिदिन सांयकाल महीन फुहारे या झारे से सिंचाई करना चाहिए। अंकुरण के बाद मौसम के अनुसार एक या दो दिन के अन्तर पर सिंचाई की जानी चाहिए। पौधघर में कभी भी प्रवाह विधि से तथा अधिक सिंचाई नहीं करनी चाहिए।
2. **निराई गुड़ाई –** जब पौध 10–15 दिनों की हो जाए, उस समय पौधघर क्षेत्र में उगे हुए खरपतवारों को हाथ से अथवा पतली फर वाली खुरपी से निकाल देना चाहिए। पौध क्यारियों में समय–समय पर हल्की गुड़ाई भी करनी चाहिए।
3. **पौध संरक्षण –** नवजात अंकुरित पौधों को तेज धूप या पाला आदि से बचाने के लिये पौधघर में उचित प्रबन्ध करना चाहिए। यदि पौधे पीले व कमजोर दिखाई दें तो यूरिया का 0.1 से 0.5 प्रतिशत का घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए। कोमल पौधों को कीटों व रोगों से बचाने के लिये उपयुक्त कीटनाशी रसायन जैसे मैलाथियान तथा कवकनाशियों जैसे डायथेन एम–45 या ब्लाइटॉक्स 50 का 1 ग्राम प्रति लीटर जल में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

**पौध प्रतिरोपण –** " पौधशाला क्षेत्र से स्वस्थ व निरोग पौधों को सावधानीपूर्वक निकालकर दूसरे स्थान अर्थात् खेत में लगाने को पौध प्रतिरोपण कहते हैं।"

पौधशाला में विभिन्न प्रकार के पौधे तैयार करने के बाद उन्हें सही तरीके से निकालना तथा दूर के बागों या अन्य स्थानों पर ले जाने के लिये पैकिंग करना आवश्यक होता है ताकि पौधे रोपाई के पश्चात् स्वस्थ बने रहें और सुचारू रूप से वृद्धि एवं फलन कर सकें। फूल व शाक की पौध कोमल तथा तीव्र रूप से बढने वाली होती है। इसलिये इनको 'कच्ची पौध' कहते हैं। इन पौधों को निकालते समय कुछ पोषक जड़े टूट भी जाये तो वे शीघ्र ही पुनः बन जाती है, क्योंकि उनकी कोशिकाएँ तीव्र गति से द्विगुणित होती हैं। इस कारण इनकी पौध बिना मिट्टी के निकाली जाती है। पौध निकालने के एक घण्टा पहले पौध क्यारियों में झारे से हल्की सिंचाई कर देनी चाहिए। तत्पश्चात् पौध को खुरपी या ट्रावेल की सहायता से कुछ गहरा खोदकर बिना साथ लगी मिट्टी के निकाल लेना चाहिए। निकालते समय पोषक जड़ों की क्षति कम से कम हो, इसका विशेष ध्यान रखना चाहिए। निकाली गई पौध को 1 प्रतिशत नत्रजन युक्त पानी में रखना चाहिए। खेत में लगने से पूर्व पौध को छायादार स्थान पर रखें। अगर पौध को रोपण हेतु बाहर भेजना है तो उनकी जड़ों पर गीली स्फ़ैगनम मॉस या पत्ती की खाद युक्त मिट्टी लपेट देनी चाहिए, और जब तक पौध की रोपाई नहीं हो जाती, कभी–कभी हल्का पानी छिड़कते रहना चाहिए।

**फलों या बहुवर्षीय पौधों का निकालना व पैकिंग करना –** बहुवर्षीय अलंकारी पौधे तथा फल वृक्ष धीमी गति से वृद्धि करने वाले होते हैं और इन पौधों की जड़ें भी धीमी गति से बढ़ती है। पौधों को पौधशाला से कितनी भी सावधानी से निकाला जाये, फिर भी उनकी जड़ो का क्षय कुछ न कुछ अवश्य हो जाता हैं।

जिसके कारण पौधों को आघात पहुंचना स्वाभाविक है। बहुवर्षीय पौधों में पुनः नई जड़े बनने में काफी समय लगता हैं अतः इन पौधों को भूमि से निकालते समय विशेष सावधानी रखनी चाहिए।

सदाबहार पौधों का स्थानान्तरण वर्षा ऋतु या बसन्त ऋतु में किया जाता है इस समय इन पौधों में सबसे अधिक नई जड़ो का निर्माण होता है। ये जड़े कोमल व पतली होने के कारण शीघ्र टूट सकती है, अतः इन पौधों को कुछ मिट्टी के पिण्ड सहित भूमि से निकालना चाहिये। पौधे के साथ निकाली गई मिट्टी पौधे के आकार तथा वृद्धि पर निर्भर करती हैं। अधिक गीली या अधिक सूखी भूमि से पौधे निकालने पर जड़े टूटने का भय अधिक रहता है। इसलिए भूमि में हल्की नमी भी होनी चाहिए। जड़ो से लगी मिट्टी के पिण्ड का आकार गमले की तरह ऊपर से चौड़ा तथा नीचे की ओर धीरे–धीरे पतला होना चाहिए। स्थानीय रोपाई के लिये उसी स्थिति में पौधों को गड्ढों में लगाना चाहिए। यदि पौधों को बाहर दूर स्थानों पर भेजना है तो पौधे के साथ लगी मिट्टी को उँगलियों की सहायता से दबा करके पिण्ड को "मॉसघास" से लपेट कर सुतली या मूंज से पिण्ड सहित पौधे को अच्छी प्रकार बाँध देते हैं। मिट्टी के पिण्ड को टूटने तथा पौधे को सूखने से बचाने के लिए पॉलीथीन की शीट या सरकण्डे की पत्तियों या पुआल का उपयोग भी किया जा सकता हैं।

पौधों को भली प्रकार बाँधने के पश्चात् टोकरी या लकड़ी की पेटियों में रखकर पुनः मूंज, सूतली इत्यादि से बाँधना चाहिये ताकि दूर स्थानो पर पौधें सुरक्षित पहुँच सकें। पॉलीथीन थैलियों में तैयार किये गये पौधों को दूरस्थ स्थानों पर भेजने में आसानी रहती है।

पतझड़ी पौधों को साधारणतया सर्दियों में जब वे सुषुप्तावस्था में होते है, लगाया जाता है। गुलाब, अंगूर, फालसा इत्यादि पौधे पतझड़ी होते हैं। इन पौधों को सर्दियों में बिना मिट्टी के पिण्ड के निकालकर, पॉलीथीन की थैलियों में बाँधकर रोपण हेतु दूर के स्थानों पर भेज दिया जाता है। इन पौधों की बागों में रोपाई बिना मिट्टी के ही की जाती है।

**रोपाई –** पौध का मुख्य खेत में रोपाई का कार्य उनकी किस्म के अनुसार उचित समय करना चाहिए। स्वस्थ पौधे को ही खेत में लगाना चाहिए। कमजोर तथा बहुत छोटी पौध को खेत में नहीं लगाना चाहिए। फूल व शाकों की तीन–चार पत्तियाँ निकल आये तब उनका प्रतिरोपण कर देना चाहिए। पौध अधिक समय तक पौधशाला में रहने से पौध कमजोर रह जाते है तथा उनमें समय से पहले ही फूल आने लगते हैं। रोपाई का कार्य सामान्यतया सांयकाल के समय ही करना चाहिए और तुरन्त सिंचाई कर देनी चाहिए। ताकि रात्रि के पौधों में वाष्पोत्सर्जन क्रिया न होने से उनमें जल की कमी की सम्भावनाएँ कम हो जाती हैं। रोपाई करते समय पौधों व लाइनों के बीच की दूरी कम ज्यादा नहीं होना चाहिए। पौध रोपाई के तुरन्त बाद सिंचाई करना अतिआवश्यक है। खेत का प्रतिदिन निरीक्षण कर, कमजोर या मरे हुए पौधों के स्थान पर नई पौध का प्रतिरोपण अवश्य कर देना चाहिए।

**सावधानियाँ –**

पौधशाला निर्माण, स्वस्थ व निरोग पौध तैयार करने तथा पौध प्रतिरोपण में निम्नलिखित सावधानियाँ रखनी चाहिए –

1. पौधशाला के लिये चुना गया स्थान सामान्य धरातल से नीचा नहीं होना चाहिए।
2. पौधशाला की भूमि में कठोर परत या कंकड़–पत्थर नहीं होने चाहिए।
3. भूमि अम्लीय या क्षारीय नहीं होनी चाहिए।
4. पौधशाला में पौध क्यारियों की चौड़ाई 1–1.5 मीटर से अधिक नहीं रखनी चाहिए।
5. पौध क्यारियों में किसी भी स्थान पर अधिक पानी नहीं ठहरना चाहिए।
6. वर्षा ऋतु में धरातल से उठी हुई क्यारियाँ बनाकर पौध तैयार करनी चाहिए।
7. पौध तैयार करने हेतु यदि बीज स्वयं द्वारा तैयार नहीं किया गया हो तो सरकारी क्षेत्र में उत्पादित बीज या प्रसिद्ध बीज उत्पादकों से ही बीज क्रय करना चाहिए।
8. बीजों को बुआई से पूर्व कवकनाशी रसायन की उचित मात्रा से अवश्य उपारित करना चाहिए।
9. पौधशाला में बीज बुआई के तुरन्त बाद व अंकुरण तक रोजना सुबह–शाम झारे से हल्की सिंचाई अवश्य करनी चाहिए।
10. पौध को तेज धूप, पाला, कीट तथा रोगों से बचाने का विशेष प्रबन्ध करना चाहिए।
11. पौध क्यारियों में खरपतवारों को हाथ से या पतले फर वाली खुरपी से निकालना चाहिए।
12. पौधघर से तैयार पौध को निकालने से 24 घण्टे पहले क्यारियों में हल्की सिंचाई अवश्य कर देनी चाहिए।
13. पौध निकालते समय मिट्टी शुष्क या अधिक गीली नहीं होनी चाहिए।
14. फलों व बहुवर्षीय पौधों को नर्सरी से मिट्टी के पिण्ड सहित निकालना चाहिए और दूरस्थ स्थानों पर भेजने के लिये पैकिंग अच्छी तरह से करनी चाहिए या पौधों को पॉलीथीन थैलियों में तैयार करना चाहिए।
15. रोपाई के लिये फूल व शाकों की पौध की आयु सामान्यतया 4–6 सप्ताह से अधिक नहीं होनी चाहिए तथा रोपाई कार्य सांयकाल को ही करना चाहिए।
16. ग्राफ्टेड पौधों की कली या शाखा का जोड़ रोपाई के बाद धरातल से 20–25 सेमी ऊपर रहना चाहिए।

17. रोपाई करते समय प्रत्येक स्थान पर एक पौधा ही लगाना चाहिए।

18. फल वृक्षो के पौधों को गड्ढे के ठीक मध्य में तथा सीधा लगाना चाहिए और इनके पिण्ड व जड़ो के चारों तरफ की मिट्टी अच्छी तरह दबा देनी चाहिए।

19. खेत का प्रतिदिन निरीक्षण कर कमजोर या मरे हुए पौधों के स्थान पर नई पौध का प्रतिरोपण अवश्य करना चाहिए।

## अभ्यास प्रश्न

### बहुचयनात्मक प्रश्न–

1. पौधशाला में नवांकुर पौधों को मुख्य रूप से हानि पहुँचाने वाली व्याधि कौन सी है?

(अ) आर्द्रगलन (ब) छाछ्या

(स) पर्ण कुन्चन (द) विषाणु

2. नर्सरी की मृदा में दीमक तथा भूमिगत कीटों से बचाव के लिये मिलाना चाहिए –

(अ) 2, 4–डी (ब) क्लोरपायरीफॉस

(स) गंधक का चूर्ण (द) मैलाथियान 50 प्रतिशत

3. पौध क्यारियों की सामान्यतया चौड़ाई रखनी चाहिए –

(अ) 1 मीटर से कम

(ब) 1 से 1.5 मीटर

(स) 1.5 मीटर से अधिक

(द) 2 से 2.5 मीटर

4. बुआई से पूर्व बीजों को कवकनाशी रसायनों की कितनी मात्रा से उपचारित करना चाहिए?

(अ) 5 ग्राम/किग्रा बीज

(ब) 1 ग्राम/किग्रा बीज

(स) 2–3 ग्राम/किग्रा बीज

(द) 10 ग्राम/किग्रा बीज

5. सामान्यतः किस आयु में वार्षिक पौधों की पौध रोपाई करनी चाहिए?

(अ) 1 सप्ताह में (ब) 8–10 सप्ताह में

(स) 2 सप्ताह में (द) 4–6 सप्ताह मे

### अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

6. पौधशाला में काम आने वाले यंत्र व उपकरणों की सूची बनाइए।

7. पौध घर से पौधे निकालने के बाद उनकी पैकिंग क्यों की जाती है ?

8. पौधशाला से क्या तात्पर्य है ? इसके महत्व को समझाइए।

9. पौधशाला की भूमि की विशेषतायें लिखिए।

10. पौध तैयार करके रोपाई की जाने वाली पाँच सब्जियों के नाम, पौध क्षेत्र प्रति हेक्टेयर, बीज की मात्रा तथा बुआई का समय लिखिए।

### लघूत्तरात्मक प्रश्न–

11. फूलों व सब्जियों की पौध को नर्सरी क्षेत्र से कैसे निकाला जाता है ?

12. पौधशाला के लिये स्थान का चुनाव करते समय किन–किन बातों का ध्यान रखना चाहिए।

13. फूल तथा सब्जियों की पौध तैयार करने की विधि लिखिए।

### निबन्धात्मक प्रश्न–

14. पौध प्रतिरोपण से क्या तात्पर्य है? फलों व बहुवर्षीय पौधों को नर्सरी से निकालने, पैकिंग करने तथा रोपाई की विधि लिखिए।

15. पौधशाला निर्माण तथा पौध तैयार करने में कौन–कौन सी सावधानियाँ रखनी चाहिए ?

**उत्तरमाला–** 1. (अ) 2. (ब) 3. (ब) 4. (स) 5. (द)

# अध्याय–10
# सब्जियों की खेती (Cultivation of vegetables)

## टमाटर
## (Tomato)

**वानस्पतिक नाम** *लाइकोपर्सिकन लाइकोपर्सिकम* (एल) कार्सटन *Lycopersicon Lycopersicum* (L.) Karsten

**कुल : सोलेनेसी (Solanaceae)**

टमाटर सोलेनेसी कुल की एक अत्यन्त लोकप्रिय सब्जी है । इसके फलों को विभिन्न प्रकार से प्रयोग में लाया जाता है। ताजी अवस्था में सलाद के रूप में और पका कर सब्जी, सूप व परिरक्षित करके चटनी, जूस, अचार, सॉस, केचप, प्यूरी इत्यादि रूप में प्रयोग में लाया जाता है । इसके पके फलों की डिब्बाबन्दी भी की जाती है ।

टमाटर एक बहुत पौष्टिक शाक है। टमाटर में 94 प्रतिशत जल, 0.9 प्रतिशत प्रोटीन, 0.2 प्रतिशत वसा, 3.6 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 20 पी.पी.एम. कैल्शियम, 48 पी.पी.एम फॉस्फोरस तथा 31 मि.ग्रा. / 100 ग्राम फल विटामिन 'सी' होता है । टमाटर औषधीय गुणों से भरपूर होता है, जिनमें रक्त साफ करना एवं पित्त मिटाना प्रमुख है।

**जलवायु** – टमाटर की अच्छी पैदावार में तापक्रम का बहुत बड़ा योगदान होता है । टमाटर की फसल के लिए इष्टतम तापमान $20^0$ से $25^0$ सेल्सियस होता है, अंकुरण के लिए इष्टतम तापमान $21^0$ से $26^0$ सेल्सियस है । तापक्रम अधिक होने पर फूल व अपरिपक्व फल गिरने लगते हैं । लू चलने पर नुकसान और बढ़ जाता है। 16 डिग्री से कम और 38 डिग्री से ज्यादा तापमान पर परागकणों का अंकुरण बहुत कम हो जाता है तथा इसके परिणामस्वरूप कम फल लगते हैं और फलों का स्वरूप भी बिगड़ जाता है । टमाटर में लाल रंग लाइकोपीन नामक वर्णक के कारण होता है । $20^0$ से $25^0$ सेल्सियस से ऊपर इस वर्णक का उत्पादन तेजी से गिरने लगता है और 30 डिग्री सेल्सियस से ऊपर इसका निर्माण बन्द हो जाता है जिससे टमाटर पीला दिखने लगता है ।

**मृदा एवं खेत की तैयारी (Soil and Field preparation):** टमाटर की खेती लगभग सभी प्रकार की भूमि में की जा सकती है परन्तु उचित जल निकास वाली रेतीली दोमट या दोमट मृदा जिसमें पर्याप्त मात्रा में जीवांश उपलब्ध हो इसकी खेती के लिए उपयुक्त होती है । साधारणतया इसकी खेती 6–7 पी.एच. मान वाली मृदाओं में अच्छी होती है । टमाटर के लिए समतल सतह वाली भुरभुरी भूमि की आवश्यकता होती है। इसके लिए एक जुताई, मिट्टी पलटने वाले हल से व 3–4 बार हैरो से करनी चाहिए।

**बुआई का समय एवं बीज की मात्रा (Time of sowing and Seed rate):–** टमाटर की पौध तैयार करके खेत में स्थानान्तरित की जाती है । खरीफ फसल लेने हेतु बीज जून माह में, गर्मी की फसल हेतु दिसम्बर–जनवरी में व सर्दी हेतु सितम्बर माह में बोने चाहिए । खेत की रोपाई हेतु 400 से 500 ग्राम बीज प्रति हैक्टेयर तथा संकर किस्मों में 150–200 ग्राम प्रति हेक्टेयर बीज की आवश्यकता पड़ती है । बीजों को बुवाई से पूर्व 2 ग्राम कैप्टान या बाविस्टिन 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करें । बीजों को 5–7 से.मी. की दूरी पर कतारों में बोया जाता है ।

**रोपण** – जब पौधे (10 से 15 से.मी. लम्बे) 4–5 सप्ताह के हो जाएं, तो इनकी रोपाई कर देनी चाहिए । पौधे की रोपाई खेत में शाम के समय करें । साधारण किस्मों में कतार से कतार व पौधे से पौधे के मध्य 45 x 45 से.मी. व संकर किस्मों में 90 x 45 से.मी. रखी जाती है ।

**उन्नत किस्में (Improved varieties):**

पूसा रूबी, पूसा अर्ली ड्वार्फ, मारग्लोब, पंजाब छुआरा, रोमा, पंत बहार, अर्का विकास, हिसार अरूण (सलेक्शन 7), एमटीएच 6, एचएस 101, पंजाब केसरी, पन्त टी–1, अर्का सौरभ

संकर किस्में – कर्नाटक हाईब्रिड, रश्मि, सोनाली, पूसा हाईब्रिड–1, पूसा हाइब्रिड–2, एआरटीएच – 3, एच ओई 606, एनए 601, बीएसएस 20, अविनाश–2,

**खाद एवं उर्वरक (Manure and fertilizer) :** टमाटर की अच्छी फसल प्राप्त करने के लिए भूमि में पर्याप्त मात्रा में खाद एवम् उर्वरकों का प्रयोग आवश्यक है । अतः प्रति हेक्टेयर की दर से 20–25 टन सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट खाद और तत्व के रूप में 60 कि.ग्रा. नत्रजन, 80 कि. ग्रा. फास्फोरस एवं 60 कि.ग्रा. पोटाश बुआई के पहले दें । पौधे लगाने के 30 दिन व 50 दिन बाद 30–30 कि.ग्रा. नत्रजन की मात्रा खड़ी फसल में देकर सिंचाई करें ।

टमाटर की चिटकन की समस्या रोकने के लिए 0.3 प्रतिशत बोरेक्स का छिड़काव फल लगने के समय व इसके 15 दिनों के बाद करें तथा तीसरा छिड़काव जब फल पकने शुरू हों तब करें ।

**सिंचाई (Irrigation):** पौधरोपण के बाद दो–तीन दिन तक फुहारों से हल्की सिंचाई करे या रोपण के पश्चात् हल्की सिंचाई इस प्रकार करें जिससे पौधे अच्छी प्रकार से वृद्धि कर सकें । सर्दी में 8 से 10 दिन व गर्मी में 5–6 दिन के अन्तराल से आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए ।

**निराई–गुड़ाई (Interculture operations):** पौध लगाने के 20 से 25 दिन बाद प्रथम निराई–गुड़ाई करें । आवश्यकतानुसार दुबारा निराई–गुड़ाई कर खेत से खरपतवारों को निकालें । अनिर्धारित वृद्धि वाली किस्मों को सहायता देने के लिए छड़ियाँ (Staking) लगाकर बाँध देना चाहिये। इससे फलों की गुणवता तो बढ़ती ही है साथ ही वे सड़ने से भी बच जाते हैं।

**प्रमुख कीट एवं व्याधियाँ (Important insect pests and diseases):–**

**कीट (Insect pests)**

**फल छेदक (Fruit borer):** इस कीट का डिंभक फल में प्रवेश कर गूदा खाता रहता है व फल को बिल्कुल बेकार कर देता है। इसकी रोकथाम के लिए मैलाथियान 50 ई.सी. 1 मिली प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

**हरा तेला (Jassid):** ये छोटे–छोटे कीड़े हैं तथा पत्तियों का रस चूसते हैं एवं विषाणु रोग फैलाते हैं। इनकी रोकथाम के लिए मिथाएल डिमेटान 0.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी का छिड़काव 15 दिन के अन्तराल से करना चाहिए।

**सफेद मक्खी, पर्ण जीवी, हरा तेला व मोयला** – ये कीट पौधों की पत्तियों व कोमल शाखाओं से रस चूसकर कमजोर कर देते हैं । सफेद मक्खी टमाटर में विषाणु रोग फैलाती है । नियन्त्रण के लिए डाइमेथोएट 30 ईसी या मेलाथियान 50 ईसी एक मि.ली. का प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें । आवश्यकता पड़ने पर यह छिड़काव 15 से 20 दिन बाद करें ।

**कटुआ कीट (Cut worm):** ये कीट रात के समय पत्तियाँ खाते है एवं दिन के समय छिपे रहते हैं। पौधों को जमीन की सतह से काटकर गिरा देते हैं। इनके नियंत्रण के लिए खेत में फसल रोपाई से पूर्व मिथाईल पैराथियान (2%) धूल को 20–25 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से भूमि में अच्छी तरह से मिला दें।

**व्याधियाँ (Diseases):–**

**आर्द्रगलन (Damping off):** टमाटर का यह एक गम्भीर रोग है जो फफूंद *पीथियम जाति (Pythium spp.)* या *राइजोक्टोनिया जाति* (*Rhizoctonia spp.*) या *फाइटोफ्थोरा जाति* (*Phytophthora spp.*) के कारण होता है। रोग के प्रकोप से पौधे का जमीन की सतह पर स्थित तने का भाग काला पड़ जाता है तथा नन्हे पौधे गिर कर मरने लगते हैं । यह रोग भूमि एवं बीज के माध्यम से फैलता है

**रोकथामः–** बुवाई से पहले बीजो को थायरम या केप्टान 3 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करें।

**गुच्छा मुच्छा रोग (Mosaic):** यह एक विषाणु जनित रोग है। इससे प्रभावित पौधे की पत्तियाँ व तना सिकुड़कर छोटे हो जाते हैं व पौधों की बढ़वार रूक जाती है।

**रोकथामः–** रोगी पौधों को जड़ सहित उखाड़कर जला दें।

रोगग्रस्त फसल पर मैलाथियान, मैटासिस्टॉक्स या डाइमिथोएट, 2 ग्राम दवा प्रति लीटर के घोल का छिड़काव करें।

**पर्ण कुंचन (Leaf curl):** इस रोग का विषाणु सफेद मक्खी (White fly) द्वारा फैलाया जाता है। पत्तियाँ छोटी, पौधा झाड़ीनुमा, अविकसित, शाखाएँ छोटी, पत्तियाँ विभिन्न प्रकार से मुड़ी–सिकुड़ी व टेढ़ी–मेढ़ी हो जाती हैं।

**रोकथामः–** रोगग्रस्त पौधों को उखाड़कर जला दें।

सफेद मक्खी की रोकथाम के लिए डाइमिथोएट नामक कीटनाशी का 1 मि.ली प्रति लीटर के घोल का छिड़काव करें।

बीज जमाव के बाद क्यारी को एग्रोनेट जाली से ढक दें।

**अगेती झुलसा (Early blight):** इस रोग का कारण *अल्टरनेरिया सोलनाइ* नामक फफूंद है। इस रोग में पत्तियों पर गोल काले व भूरे धब्बे दिखायी देते हैं व पत्तियाँ झड़ जाती हैं।

**रोकथामः–** 1. सभी रोगग्रस्त पौधों को उखाडकर जला दें।
2. रोग के लक्षण परिलक्षित होते ही ब्लाईटॉक्स 2 ग्राम प्रति लीटर के हिसाब से छिड़काव 14 दिन के अन्तर से करें।

**सूत्र कृमि रोग (Root knot nematode):** यह एक मूल ग्रन्थि रोग है जिसमें पौधों की जड़ो में गाँठें बन जाती हैं। यह रोग *मेलायडोगायनी (Meloidogyne)* के कारण होता है।

**रोकथामः**–1. रोग अवरोधी जातियों का प्रयोग करें।

2. पौध रोपण से पूर्व 25 किलो कार्बोफ्यूरॉन 3 जी प्रति हेक्टेयर की दर से भूमि में मिलायें।

**सन बर्न** – उत्तर भारत में अप्रेल – मई के महीनों में टमाटर के फल सूर्य के प्रकाश के सीधे सम्पर्क में आने से सफेद पड़ने लगते हैं । नियन्त्रण के लिए ऐसी किस्मों का चयन करें, जिनमें पत्तियाँ अधिक निकलती हों । सिंचाई की अच्छी व्यवस्था रखें । टमाटर की दो–तीन पंक्तियों के बीच सनई या ढैंचा लगायें ताकि छाये से फल खराब न हों ।

**तुड़ाई व उपज (Harvesting and Yield):** –

टमाटर के फलों को जब उनकी बढ़वार पूरी हो जाये तथा लाल व पीले रंग की धारियाँ दिखने लगे उस अवस्था मे तोड़ लेना चाहिए व कमरे में रख कर पकाना चाहिए । साथ ही साथ अधपके टमाटर को लम्बे स्थानों तक भेजा जा सकता है । खेत से टमाटर तोड़ने के पश्चात् रोग ग्रसित सड़े गले इत्यादि फलों को सर्वप्रथम छाँट कर अलग कर देना चाहिए । आकार के अनुसार वर्गीकरण कर बाजार में भेजने पर अच्छा बाजार भाव मिलता है । टमाटर की उपज किस्म, बुआई की विधि, खाद व उर्वरकों की मात्रा, मौसम आदि पर निर्भर करती है । टमाटर की औसत उपज 300 – 350 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक होती है ।

## बैंगन (Brinjal)

**वानस्पतिक नाम : *सोलेनम मेलोनजेना एल.* (*Solanum melongena* L.)**

**कुल : सोलेनेसी (Solanaceae)**

बैंगन (*सोलेनम मेलोनजेना*), सोलेनेसी कुल की सब्जी की एक मुख्य फसल है । इसे अत्यधिक ऊँचाई वाले स्थानों को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में उगाया जाता है। इसके पौधे बड़े आकार के होते हैं व फल तीखा, गर्म, उत्तेजक, क्षुधावर्धक, रक्तवर्धक, पित्त एवं कफनाशक होता है। इसकी खेती पूरे प्रदेश में की जाती है परन्तु जयपुर, कोटा, श्रीगंगानगर एवं जोधपुर जिलों में इसकी खेती बहुतायत से होती है इसमें विटामिन 'ए', 'सी', प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट व खनिज पदार्थो में लोह तत्व की पर्याप्त मात्रा होती है।

**जलवायु (Climate)** – यह ऊष्ण कटिबंधीय जलवायु की सब्जी है । इसे एक लम्बे गर्म मौसम की आवश्यकता पड़ती है । टमाटर की तरह यह भी पाले से प्रभावित होती है। अगेती तथा लम्बी किस्मों की अपेक्षा पछेती व गोल किस्म कुछ पाला सह सकती है । इसकी सफल खेती के लिए 13–21 डिग्री से. औसत तापमान उपयुक्त रहता है ।

**मृदा एवं खेत की तैयारी (Soil and Field preparation):** यह किसी भी प्रकार की मृदा में उगाया जा सकता है परन्तु अच्छे जल निकास वाली जीवांश युक्त, गहरी उपजाऊ दोमट मृदा सर्वोत्तम होती है । पौधों की अच्छी वृद्धि के लिए 6.5 से 7.5 पीएच होनी चाहिए। अगेती किस्म के लिए बलुई हल्की मृदा उपयुक्त है ।

**बुआई का समय एवं बीज की मात्रा (Time of sowing and seedrate)** – बैंगन की बुआई और रोपण का उपयुक्त समय –

| फसल | बीज की बुआई का समय | पौध रोपण का समय |
|---|---|---|
| शरद कालीन | जून–जुलाई | जुलाई–अगस्त |
| ग्रीष्मकालीन | दिसम्बर–जनवरी | फरवरी–मार्च |
| वर्षाकालीन | मार्च–अप्रैल | अप्रैल–मई |

एक हेक्टेयर में पौध रोपाई के लिए 400 – 500 ग्राम बीज की आवश्यकता होती है ।

**उन्नत किस्में (Improved varieties):**

**1. लम्बे फल वाली किस्मेंः** पूसा परपल लॉंग, पूसा परपल क्लस्टर, पूसा अनुपम, पत सम्राट, आजाद क्रान्ति, पूसा क्रान्ति, पंजाब सदाबहार ।

**2. गोल फल वाली किस्मेंः** पूसा परपल राउण्ड, टाइप–3, सेलेक्शन–1, पी.बी.एच. 6, पूसा अनमोल, पंत ऋतुराज।

**3. संकर किस्मेंः** पूसा हाइब्रिड–6, नरेन्द्र संकर–2, पूसा हाइब्रिड–9, अर्का नवनीत।

**खाद एवं उर्वरक (Manure and fertilizer):** – बैंगन के खेत में जुताई के समय 20–25 टन सड़ी हुई गोबर की खाद मिला दें । अन्तिम जुताई से पूर्व 40 कि.ग्रा. नत्रजन,

80 कि.ग्रा. फास्फोरस तथा 60 कि.ग्रा. पोटाश को प्रति हेक्टेयर की दर से खेत में समान रूप से मिला कर जुताई कर दें । शेष 40 कि.ग्रा. नत्रजन रोपाई के 45 दिनों बाद देवें ।

**सिंचाई (Irrigation):** बैंगन की फसल के लिए उपयुक्त एवं पर्याप्त मात्रा में सिंचाई आवश्यक है। भूमि के प्रकार के अनुसार शरद ऋतु में 10–15 दिन व ग्रीष्म ऋतु में 5–6 दिन के अंतर से सिंचाई करना आवश्यक होता है।

**निराई–गुड़ाई (Interculture operations):** खेत को साफ एवं भुरभुरा बनाने के लिए नियमित निराई एवं गुड़ाई आवश्यक है। खेत में पहली निराई 30–40 दिन के अंतराल पर व दूसरी 60–65 दिन बाद करनी चाहिए।

**प्रमुख कीट एवं व्याधियाँ (Important insect pests and diseases):–**

**1. कीट (Insect pests) तना एवं फल छेदक (Stem & Fruit borer)-** यह कीट तने तथा फल में छेदकर उन्हे खाता है, प्रारम्भ में तने पर छेद कर उसमें घुस जाता है तथा अन्दर ही अन्दर काटता रहता है जिससे पौधा सूख जाता है।

**रोकथामः–** 1. कीटग्रस्त शाखाओं एवं फलों को तोड़कर जला देवें।

2. मैलाथियान 0.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिडकाव करें या कार्बोरिल का 1.5 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से भुरकाव करें।

3. कीटरोधी किस्में उगाएं।

**2. हरा तेला (Jassid),** मोयला (Aphid) व सफेद मक्खी (White fly)– ये कीट पत्तियों के नीचे या कोमल भागों का रस चूसकर पौधों को कमजोर बना देते हैं।

**3. लाल माइट (Red mite)–** यह छोटा सा कीट पत्तियों का रस चूसकर उन्हे कमजोर बना देता है। पत्तियाँ पीली पड़कर गिरने लगती हैं।

**रोकथामः–** डाईमिथोएट 30 ई सी 1 मिली / लीटर या मैलाथियान 50 ईसी 1 मिली / लीटर या मिथाइल डिमेटान 25 ईसी 1 मिली / लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करें।

**4. एपीलेकना बीटल (Epilachna beetle)** यह कीट लाल रंग का होता है व मुख्यतः पत्तियाँ खाता है व उन्हें छलनीनुमा बना देता है।

**रोकथामः** 1.कार्बेरिल, एवं मैलाथियान का 1 मि.ली. प्रति लीटर घोल का छिड़काव करना चाहिए।

2. हाथ से इसके अण्डो, सूँड़ी और प्रौढ़ो को एकत्र कर नष्ट कर देना चाहिए।

**व्याधियाँ (Diseases):–**

**1. छोटी पती रोग (Little leaf)** यह बैंगन का एक माइकोप्लाज्मा जनित विनाशकारी रोग है । इस रोग के प्रकोप से पत्तियाँ छोटी रह जाती है तथा गुच्छे के रूप में तनों के ऊपर उगी हुई दिखाई देती है । पूरा पौधा झाड़ीनुमा लगता है व ऐसे पौधों पर फल नहीं बनते हैं ।

**रोकथामः–**

1. रोगग्रस्त पौधों को उखाड़कर जला दें।
2. फसल चक्र अपनाएँ।
3. 1 मिली / लीटर मिथाइल डिमेटान 25 ई सी या 1 मिली डाइमिथोएट 30 ईसी प्रति लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करें।

**2. आर्द्र गलन (Damping off)–** यह रोग पौधों में पौधशाला से ही लग जाता है। रोगग्रस्त पौधों का निचला तना गलने लगता है। तरूण पौधों का मुरझाना और बाद में सूख जाना इस रोग का प्रमुख लक्षण है।

**रोकथामः–**

1. बीज को बुआई पूर्व फफूंदनाशी दवा थाइरम 2–3 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करें।
2. पौधशाला में बीज सदैव पंक्तियों में बोएँ।
3. फार्मेलिन 0.2% से नर्सरी की भूमि उपचारित करें।

**3. सूत्र कृमि रोग (Nematode diseases)** बैंगन के पौधो में सूत्रकृमि के प्रभाव से जडों में गाठें बन जाती है। तथा पौधों की वृद्धि रूक जाती है, पतियाँ गिरने लगती है एवं उपज कम हो जाती है।

**रोकथामः–** 1. फ्यूराडॉन 1.5 से 2 किग्रा सक्रिय तत्व प्रति हेक्टेयर की दर से पौध रोपण के समय भूमि मे डालें।

2. रोगी पौधों को उखाड़कर जला दें ताकि उनमें बीज न बन सके।

**4. फोमोप्सिस झुलसा** (Phomopsis Blight)– यह बैंगन की प्रमुख बीमारी है जिसका प्रभाव पौधे के प्रत्येक भाग पर होता है । प्रभावित फल सड़ने लगते हैं और धीरे–धीरे सम्पूर्ण फसल नष्ट हो जाती है ।

**रोकथामः–** 1. रोग रहित बीज की बुआई करें, बीजों को बाविस्टिन से 2.5 ग्राम दवा प्रति किग्रा बीज की दर से उपचारित करके बुआई करें । फसल चक्र अपनायें । संक्रमित फसल अवशेषों को एकत्र करके जला दें।

**तुड़ाई व उपज (Harvesting and Yield): –** जब फलों की पूरी बढ़वार हो जाये लेकिन उनका रंग फीका न पड़े और उनमें बीज न बने हो, तुड़ाई करनी चाहिए । इसकी उपज लगभग 200–250 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है तथा संकर किस्मों से 350–400 क्विंटल प्रति हैक्टर तक पैदावार प्राप्त की जा सकती है।

## मिर्च (Chilli)

**वानस्पतिक नाम : *कैप्सिकम एनम्* एल. एवं *कैप्सिकम फ्रूटेसेन्स* एल.**

**(*Capsicum annum* L. and *Capsicum frutescens* L.)**

**कुल : सोलेनेसी (Solanaceae)**

*Capsicum annum* var. longum

*Capsicum annum* var. grosum

मिर्च का उपयोग कच्चा सलाद के रूप में, अचार बना कर, पकी लाल मिर्च को सुखा कर मसाले की तरह तथा हरी–मीठी मिर्च को सब्जी के लिए प्रयोग में लाते हैं । इसकी खेती सम्पूर्ण भारत में की जाती है परन्तु दक्षिणी राज्यों में यह बहुतायत से उगाई जाती है। इसके फलों में तीखापन ''केप्सेसिन'' (Capsacin) के कारण होता है। मिर्च में विटामिन ''ए'' तथा ''सी'', फॉस्फोरस तथा कैल्सियम प्रमुखता से पाये जाते हैं। इसका फल तेज स्वाद वाला, रक्तवर्धक, पीड़ानाशक, दर्द और सूजन दूर करता है।

**जलवायु (Climate)** – टमाटर व बैंगन के समान मिर्च के लिए भी गर्म जलवायु सबसे अच्छी रहती है । इसे उष्ण तथा उपोष्ण भागों में सफलतापूर्वक उगाया जाता है । फल बनने के लिए उपयुक्त तापमान $24^0$ से. है । उच्च तीव्रता वाले प्रकाश में फलों की उपज तो बढ़ती है परन्तु केप्सेसिन की मात्रा घटाती है, साथ ही रंग के विकास में काफी देरी होती है । शिमला मिर्च के लिए अपेक्षाकृत ठंडा मौसम अनुकूल रहता है

**मृदा एवं खेत की तैयारी (Soil and Field preparation):** अच्छे जल निकास वाली बलुई दोमट मिट्टी इसके लिए उपयुक्त मानी जाती है। इसके लिए भूमि का पी.एच. मान 6 से 7.5 होना चाहिये। अधिक लवण व क्षार वाली मृदा मिर्च के लिए उपयुक्त नहीं है इससे बीज अंकुरण तथा पादप ओज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। रोपाई पूर्व खेत में 5–6 जुताइयाँ करके एक बार पाटा लगाकर भूमि को समतल कर लेना चाहिए।

**बुआई का समय एवं बीज की मात्रा (Time of sowing and seed rate)** – मिर्च की वर्ष में तीन फसलें ली जा सकती है, लेकिन प्रायः इसकी फसल खरीफ एवं गर्मी में ली जाती है । पहले पौधशाला में बीज की बुआई कर पौध तैयार की जाती है । इसके लिए खरीफ की फसल हेतु मई–जून में और गर्मी की फसल हेतु फरवरी–मार्च में नर्सरी में बीज की बुआई करें । बीजों की बुआई से पूर्व 2 ग्राम केप्टान या बाविस्टीन 2 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें जिससे बीज जनित रोगों का प्रकोप न हो सके । एक हेक्टेयर खेत में मिर्च की खेती के लिए 1 – 1.5 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता होती है ।

**उन्नत किस्में (Improved varieties):** मिर्च की किस्मों को दो वर्गो में बाँटा जाता है।

**मसाले वाली** – पूसा ज्वाला, पंत सी–1, कल्याणपुर टाईप 1, कल्याणपुर मोहिनी, पूसा सदाबहार (निर्यात हेतु बहुवर्षीय), जवाहर मिर्च 128, अग्नि, डी.सी.एच.1,एनपी 46ए, हंगेरियन वैक्स (पीले रंग वाली),

**शिमला मिर्च (सब्जी वाली)** – कैलीफोर्निया वण्डर, रूबी किंग, बुलनोज, यलो वंडर, चायनीज जाएण्ट, सेलेक्शन–27, अर्का मोहिनी

**खाद एवं उर्वरक (Manure and fertilizer):** – मिर्च की पैदावार उसमें प्रयुक्त खाद एवं उर्वरकों की मात्रा व किस्म पर निर्भर करती है । अच्छी उपज के लिए 25–30 टन प्रति हेक्टेयर सड़ी गोबर की खाद खेत की तैयारी के समय खेत में मिलावें तथा तत्व रूप में 70–80 कि.ग्रा. नत्रजन, 40–45 कि. ग्रा. फास्फोरस तथा 40–50 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करना चाहिए । नाइट्रोजन की आधी व फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा रोपण से पहले दे तथा शेष नाइट्रोजन को दो भागों में बाँट कर रोपण से 25 व 45 दिनों बाद खड़ी फसल में डालें ।

**सिंचाई (Irrigation):** पौधे रोपण के तुरन्त बाद हल्की सिंचाई करना अत्यन्त आवश्यक है । उसके बाद आवश्यकता अनुसार सिंचाई करना चाहिए । मिर्च में भूमि तथा ऋतु के अनुसार सिंचाई की आवश्यकता होती है। यदि वर्षा कम हो रही

हो तो 10–15 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई करनी चाहिए । गर्मी के महीनों में सिंचाई एक सप्ताह के अन्तराल पर करें ।

**निराई–गुड़ाई (Interculture operations):** मिर्च की फसल से अच्छी पैदावार प्राप्त करने के लिए खेत में समय–समय पर निराई–गुड़ाई करते रहना चाहिए। प्रत्येक सिंचाई के बाद खेत में हल्की गुड़ाई करनी चाहिए ताकि सिंचाई के समय बनी हुई मिट्टी की पपड़ी टूट जाए। यदि पौधा अधिक भारी नजर आये तो पौधों पर मिट्टी चढ़ा कर सहारा दें।

**प्रमुख कीट एवं व्याधियाँ (Important insect pests and diseases):–**

**1. हरा तेला (Jassid),** मोयला (Aphid) व सफेद मक्खी (White fly)– ये कीट पत्तियों के नीचे या कोमल भागों का रस चूसकर पौधों को कमजोर बना देते हैं।

**रोकथामः–** डाईमिथेएट 30 ई सी 1 मिली / लीटर या मैलाथियान 50 ईसी 2 मिली / लीटर या मिथाइल डिमेटॉन 25 ईसी 1 मिली / लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करें।

**2 लाल माइट (Red mite)–** यह छोटा सा कीट पत्तियों का रस चूसकर उन्हें कमजोर बना देता है। पत्तियाँ पीली पड़कर गिरने लगती हैं।

**रोकथामः–** हरा तेला की भाँति।

**व्याधियाँ (Diseasè):–**

**1. आर्द्र गलन (Damping off)–** यह रोग नर्सरी में होता है तथा इसके कारण छोटे पौधे मर जाते हैं।

**रोकथाम–** 1. बीज बोने से पूर्व उन्हे एग्रोसन जी.एन. या सेरेसान से उपचारित करें।

2. फार्मेलिन 0.2% से नर्सरी की भूमि उपचारित करें।

3. नर्सरी, आस–पास की भूमि से 4 से 6 इंच उठी हुई भूमि में बनावें ।

**2. मोजैक (Mosaic)-** इस रोग से प्रभावित पौधों की पत्तियाँ सिकुड़कर छोटी हो जाती हे तथा तना भी छोटा हो जाता है। पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं।

**रोकथाम** 1. रोगग्रस्त पौधों को उखाडकर जला दें।

2. रोगी रोधी किस्में जैसे पूसा सदाबहार, पूसा ज्वाला, पंत सी–1 व 2 को उगाएँ।

3. मैलाथियान 50 ई.सी. का 1 मि.ली प्रति लीटर का घोल बनाकर 10–15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करें।

**3. मुरझान (Wilt)-** इस रोग से ग्रस्त पौधा अचानक सूख जाता है।

**रोकथाम** –1. उचित फसल चक्र अपनायें।

2. ताम्रयुक्त दवाओं का प्रयोग करें।

**4. पर्ण संकुचन रोग (Leaf curl)–** रोगग्रस्त पौधे की पतियाँ छोटी होकर मुड़ जाती है, पौधा छोटा रह जाता है व शीर्ष पर गुच्छा बन जाता है।

**रोकथाम–**1. एफिड नियंत्रण करें।

2. डाईमिथेएट 30 ई सी 1 मिली / लीटर का छिड़काव करें।

3. प्रभावित पौधों को उखाडकर जला दें।

**तुड़ाई व उपज (Harvesting and Yield): –** हरी मिर्च की तुड़ाई फल लगने के 15–20 दिन बाद कर सकते हैं । यदि सूखी लाल मिर्च के लिए तुड़ाई करनी हो तो एक या दो बार हरी मिर्च की तुड़ाई करके मिर्च पौधे पर ही पकने के लिए छोड़ दी जाती है । इससे फूल बहुलता से आते हैं । हरी मिर्च की 100–150 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज प्राप्त की जा सकती है ।

## फूल गोभी (Cauliflower)

**वानस्पतिक नाम – *ब्रेसिका ओलेरेसिया एल.किस्म बोट्राइटिस* (*Brassica oleracea L. var. botrytis*)**

**कुल – ब्रेसिकेसी (Brassicaceae)**

फूलगोभी (*ब्रेसिका ओलेरेसिया* किस्म *बोट्राइटिस*), क्रूसीफेरी कुल की सब्जियों में एक प्रमुख स्थान है । इसकी खेती मुख्य रूप से श्वेत, अविकसित व गठे हुए पुष्पकुंज (कर्ड) के लिए की जाती है जिसका प्रयोग सब्जी, सूप, अचार, सलाद, बिरियानी, पकोड़ा इत्यादि बनाने में किया जाता है । आयुर्वेदिक चिकित्सा में भी इसका विविध महत्व है । पाचन शक्ति बढ़ाने के साथ–साथ मधुमेह रोग के निदान में यह अत्यन्त लाभदायक है । फूल गोभी उत्पादन में भारत का विश्व में प्रथम स्थान है । राजस्थान में भी इसको बहुतायत से उगाया जाता है। यह प्रोटीन, कैल्सियम, विटामिन ए व विटामिन सी का भी अच्छा स्रोत है ।

**जलवायु (Climate) –** फूलगोभी मुख्यतः शीतोष्ण (ठण्डे) प्रदेश की फसल है । इनकी खेती अब उष्ण एवं उपोष्ण स्थानों पर भी सफलतापूर्वक की जा रही है । फूलगोभी, तापक्रम या

प्रकाश अवधि के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होती है । जलवायु की उचित परिस्थितियों के अनुसार इसकी किस्मों का चुनाव कर समय पर बुआई करनी चाहिए । अगेती तथा उष्ण (ट्रॉपिकल) किस्मों को उच्च तापमान तथा लम्बे प्रकाश काल की आवश्यकता होती है तथा इनमें कर्ड बनने के लिए 20–25 डिग्री से. तापमान की आवश्यकता होती है जबकि शीत प्रदेशों की (टेम्परेट) किस्मों में कर्ड बनने के लिए 10–16 डिग्री से. तापमान की आवश्यकता होती है । अत्यधिक तापमान (30–32 डिग्री से. अधिक) होने पर फूल (कर्ड) निम्न गुणवत्ता जैसे दानेदार, ढीले, रोयेंदार, पत्तीदार एवं पीले बनते हैं । तापमान औसत से कम होने पर परिपक्वता देर से आती है तथा फूल अत्यन्त ही छोटे बनते हैं ।

**मृदा एवं खेत की तैयारी (Soil and Field preparation):** फूल गोभी की खेती विभिन्न प्रकार की जीवांश युक्त अच्छे जल निकास वाली मृदा में सफलतापूर्वक हो सकती है। अगेती किस्मों के लिए बलुई दोमट तथा पछेती किस्मों के लिए दोमट या चिकनी दोमट अधिक उपयुक्त रहती है। इसकी खेती के लिए उपयुक्त पी.एच. मान 6–7 रहता है । अति अम्लीय (पीएच मान 5 से कम) मृदा होने पर मोलिब्डेनम की कमी हो जाती है जिससे व्हीप टेल रोग हो जाता है तथा अधिक क्षारीय मृदा में बोरान की कमी होने से फूलों में भूरा गलन रोग हो जाता है ।

**बुआई का समय एवं बीज की मात्रा (Time of sowing and seed rate)** – इसकी पौध पहले पौधशाला में तैयार की जाती है तत्पश्चात् उन्हें खेत में स्थानान्तरित किया जाता है । पौध तैयार करने के लिए अगेती किस्मों के बीज जून–जुलाई में मध्यम किस्मों के बीज अगस्त में व पछेती किस्मों के बीज अक्टूबर माह में पौधशाला में बोते हैं । जब पौध पर 3–4 पत्तियाँ आ जाएं तथा ये 30–45 दिन की हो जाएं तो इनकी मुख्य खेत में रोपाई कर देते हैं। अगेती किस्मों के लिए 600–700 ग्राम बीज तथा मध्यम व पछेती किस्मों के लिए 350 से 400 ग्राम बीज एक हेक्टेयर में पौध रोपाई के लिए पर्याप्त है। अगेती किस्मों में कतार से कतार 40 सेमी. व पौधे से पौधे के मध्य दूरी 30 से. मी. रखते हैं जबकि मध्यमी व पछेती किस्मों में अधिक वृद्धि होने

45 से.मी. रखते हैं ।

**उन्नत किस्में (Improved varieties):** फूल गोभी की किस्मों को उनके बुआई के समय के आधार पर तीन वर्गो में बाँटा गया है।

1. **अगेती किस्में (मध्य अगस्त से मध्य नवम्बर)** पूसा दीपाली, अर्ली कुआरी, अर्ली पटना, पूसा केतकी, पंत गोभी–3, पूसा अर्ली सिन्थेटिक आदि।
2. **मध्यकालीन किस्में (मध्य नवम्बर से मध्य जनवरी)–** इम्प्रूब्ड जापानीज, पूसा अगहनी, हिसार नं. 1, पूसा सिन्थेटिक, डी 96, पूसा हिमज्योति आदि।
3. **पिछेती किस्में (फरवरी से अप्रेल)** पूसा स्नोबाल के–1, स्नोबाल–16 आदि।

**खाद एवं उर्वरक (Manure and fertilizer):** – फूल गोभी की अच्छी फसल के लिए खेत में पर्याप्त मात्रा में जीवांश का होना अत्यन्त आवश्यक है । अतः 20 से 25 टन सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट खाद खेत में भलीभांति मिला दें। इसके अलावा 120 किलोग्राम नाइट्रोजन, 80 कि.ग्रा. फॉस्फोरस तथा 60–80 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से देना चाहिए। नाइट्रोजन की एक तिहाई मात्रा व फास्फोरस तथा पोटाश की पूरी मात्रा अन्तिम जुताई या रोपण से पूर्व खेत में अच्छी प्रकार मिला देना चाहिए तथा शेष आधी नाइट्रोजन की मात्रा दो बराबर भागों में बाँट कर खड़ी फसल में 30 व 45 दिन बाद टॉप ड्रेसिंग के रूप में देनी चाहिए ।

**सिंचाई (Irrigation):** पौध प्रतिरोपण के तुरन्त बाद सिंचाई करे। फूलगोभी की अगेती किस्मों में 6–7 दिन के अन्तर पर तथा मुख्य एवं पिछेती फसल में 10–12 दिन के अन्तर पर सिंचाई करनी चाहिये।

**निराई–गुड़ाई (Interculture operations):** फसल को खरपतवारों से बचाने के लिए समय समय पर निराई–गुड़ाई आवश्यक है। फूलगोभी की फसल में 2–3 निराई–गुड़ाई करने की आवश्यकता पड़ती है। खेत में गहरी निराई–गुड़ाई न करें एवं यह क्रिया करते समय पौधों पर मिट्टी चढ़ाएं।

**ब्लांचिंग** – फूल गोभी का अच्छा फूल बिल्कुल दूधिया सफेद होना चाहिए । इसे प्राप्त करने के लिए फूल को सूर्य के प्रकाश के सीधे सम्पर्क से बचाना चाहिए । वृद्धि की प्रारम्भिक अवस्था में फूल पत्तों से ढके रहते हैं परन्तु बाद में बढ़ने पर वह खुल जाते हैं तथा धूप के सम्पर्क में आकर पीले पड़ जाते हैं । इसके बचाव के लिए नीचे की पत्तियों को फूल के ऊपर रबर के छल्ले से बाँध देते हैं या फिर एक बड़ा पत्ता तोड़ कर फूल के ऊपर रख देते हैं । धूप व पीलेपन से बचाने की इस क्रिया को ही ब्लांचिंग कहते हैं ।

**प्रमुख कीट एवं व्याधियाँ (Important insect pests and diseases) :– कीट (Insect pests) :–**

1. **चैंपा (Aphid)–** यह कीट पत्तियों एवं पौधे के अन्य भागों से रस चूसता है जिससे पत्तियाँ पीली पड़ने लगती है।

2. **ग्रीन कैबेज वर्म** (Green cabbage worm)

3. **कैबेज लूपर** (Cabbage looper)

ये दोनों (2,3) कीट पत्तियों को खाते हैं एवं उनकी आकृति बिगाड़ देते हैं।

**रोकथाम –** इन सभी (1,2व 3) कीड़ों की रोकथाम के लिए मैलाथियान का 1 मि.ली प्रति लीटर घोल का छिड़काव करें एवं आवश्यकतानुसार 15 दिन बाद फिर दोहराएं।

4 **डायमण्ड बैक मोथ –** इसके नियन्त्रण के लिए बीटीके (*बैसीलस थ्यूरीन्जेन्सिस कस्टकी* ) 500 मि.ली. का एक हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें अथवा नीम के बीज (गुठली) के 40 ग्राम पाउडर को प्रति लीटर पानी की दर से घोल कर छिड़काव करें ।

**व्याधियाँ (Disease):–**

1. **आर्द्र गलन (Damping off) –** यह रोग पौधें में पौधशाला में ही लग जाता है। इसकी रोकथाम के लिए नर्सरी भूमि को बुवाई से पूर्व "फार्मेलिन" से उपचारित करें व बीजों को थायरम या कैप्टान 3 ग्राम प्रति किलो बीज दर से उपचारित करना चाहिये। जल निकास की समुचित व्यवस्था करें।

2. **भूरी गलन या लाल सड़न रोग (Browning):–** इस रोग से प्रभावित गोभी के फूलो पर भूरे रंग के गोल धब्बे पड़ जाते हैं एवं उनमें सड़न पैदा हो जाती है।

**रोकथाम:** यह रोग बोरोन तत्व की कमी के कारण होता है। भूमि में रोपाई से पूर्व 10–15 किलोग्राम बोरेक्स प्रति हेक्टेयर की दर से मिलावें अथवा खड़ी फसल पर 2–3 ग्राम प्रति लीटर बोरेक्स का छिड़काव करके नियंत्रण किया जा सकता है।

**दैहिक कियात्मक व्याधियाँ :–**

1. **बटनिंग** (Buttoning):– पौधों के पूर्ण विकसित नहीं होने के कारण फूल छोटे रह जाते हैं। अगेती किस्मों की देर से रोपाई करने पर भी यह व्याधि उत्पन्न हो जाती है। वैसे नाइट्रोजन का भूमि में अभाव, इसका प्रमुख कारण है। समय पर पौधरोपण करें व नाइट्रोजन की भूमि में उचित मात्रा डालें।

2. **व्हिप टेल** (Whiptail):– अधिक अम्लीय भूमि में मोलिब्डेनम तत्व की कमी हो जाती है एवं इस कारण पत्तियों में मध्य शिरा का ही विकास होता है तथा चाबुकनुमा आकार में परिवर्तित हो जाती है। इसकी रोकथाम के लिए 1 किलोग्राम अमोनियम मोलीबडेट प्रति हेक्टेयर की दर से डालें व भूमि का पी. एच. मान 6.5 तक लायें।

**तुड़ाई व उपज (Harvesting and Yield): –** जब गोभी का खाने वाला भाग (कर्ड) पूर्ण आकृति व रंग ग्रहण कर ले तब इनकी कटाई करनी चाहिए । देर से कटाई करने पर रंग पीला पड़ने लगता है और फूल ढीले पड़ने लगते हैं । अगेती किस्म से 150 से 200 क्विंटल तथा मध्यम एवं पिछेती किस्म की फसल से 200–300 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उत्पादन होता है।

## पत्ता गोभी (Cabbage)

वानस्पतिक नाम *ब्रेसिका ओलेरेसिया एल.किस्म कैपीटाटा*

(*Brassica oleracea L.* var. *capitata*)

कुल : ब्रेसिकेसी (Brassicaceae)

पत्ता गोभी (*ब्रेसिका ऑलेरेसिया* किस्म *कैपीटाटा*), ब्रेसिकेसी कुल का शरद कालीन सब्जियों में फूल गोभी के बाद दूसरा स्थान है। इसे बन्द गोभी या करम कल्ला के नाम से भी जानते हैं । बन्द गोभी का प्रयोग सलाद, अचार, सब्जी, कड़ी के साथ–साथ सूखी सब्जी के रूप में भी करते हैं । यह पाचन शक्ति को बढ़ाती है। इसका सेवन मधुमेह रोगियों के लिए लाभदायक होता है । इसमें 2000 आईयू विटामिन ए तथा 124 मि.ग्रा. विटामिन सी पाया जाता है ।

**जलवायु (Climate) –** पत्ता गोभी अपेक्षाकृत ठंडी एवं नम जलवायु की फसल है । भारत में इसकी खेती मुख्य रूप से शरद ऋतु में ही की जाती है । यह पाले को काफी हद तक सहन कर सकती है तथा इसमें फूल गोभी की तुलना में अधिक पाला एवं निम्न तापमान को सहने की क्षमता इसमें होती है। गर्म तथा शुष्क मौसम में इसकी उपज, स्वाद तथा सुगंध में कमी आ जाती है। इसकी वृद्धि के लिए 12–18 डिग्री से. तापमान उपयुक्त रहता है।

**मृदा एवं खेत की तैयारी (Soil and Field preparation) –** बन्द गोभी की खेती सभी प्रकार की मृदा में की जा सकती है । शीघ्र तैयार होने वाली फसल के लिए बलुई दोमट मिट्टी तथा देर से तैयार होने वाली फसल तथा अधिक उपज के लिए भारी मटियार दोमट मृदा अच्छी रहती है । मृदा पीएच मान 7–7.5 रहना चाहिए। पीएच 7 से नीचे होने पर पत्ता गोभी में क्लब गलन (जड़ गलन) रोग होने की संभावना बढ़ जाती है।

**बुआई का समय एवं बीज की मात्रा (Time of sowing and seedrate)** – अगेती किस्मों के लिए 500 ग्राम तथा पछेती किस्मों के लिए 300 ग्राम बीज एक हेक्टेयर खेती के लिए पर्याप्त है । अगेती किस्मों की बुआई अगस्त के अन्तिम सप्ताह से 15 सितम्बर तक करते हैं। मध्यमी और पिछेती किस्मों की बुआई सितम्बर मध्य से पूरे अक्टूबर तक करते हैं ।

**उन्नत किस्में (Improved varieties)**

अगेती किस्में – ये किस्में रोपाई के 60 से 70 दिन बाद तैयार हो जाती है । इनका हेड गोल व ठोस होता है । इनमें प्रमुख है – गोल्डन एकर, प्राइड ऑफ इण्डिया, कोपनहेगन मार्केट, सेप्टेम्बर, पूसा अगेती, आदि ।

पछेती किस्में – यह रोपाई के 100–120 दिन बाद तैयार हो जाती हैं। इनके तने छोटे व हैड चपटे तथा ठोस होते हैं । इनमें प्रमुख हैं – पूसा ड्रम हैड, रेड पत्ता गोभी, लेट लार्ज ड्रम हेड, पूसा मुक्ता आदि।

**खाद एवं उर्वरक (Manure and fertilizer)**– खेत तैयार करते समय 25 से 30 टन प्रति हेक्टेयर सड़ी हुई गोबर की खाद भूमि में मिला दें । इसके अलावा 150 कि.ग्रा. नत्रजन, 80 कि.ग्रा. फास्फोरस तथा 75 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है । नत्रजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा पौध लगाने के समय भूमि में मिला दें। नत्रजन की शेष मात्रा पौध लगाने के 6 सप्ताह बाद देवें ।

**सिंचाई (Irrigation)** – पत्ता गोभी में नियमित सिंचाई की आवश्यकता होती है। रोपाई के तुरन्त बाद हल्की सिंचाई करें इसके बाद 8–10 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करे। जब फसल पूरी तरह तैयार हो जाए तब एक साथ अधिक सिंचाई न करे अन्यथा कल्ले फटने की संभावना रहती है।

**निराई–गुड़ाई (Interculture operations)**– खरपतवारों की रोकथाम के लिए एवं भूमि की कड़ी परत तोड़ने के लिए खेत में 2–3 बार निराई–गुड़ाई करनी चाहिए। रोपण के 35–40 दिन बाद पौधो पर मिट्टी चढ़ायें।

**प्रमुख कीट एवं व्याधियाँ (Important insect pests and diseases)** – इसमें कीट व व्याधियाँ एवं उनका नियंत्रण फूल गोभी के समान ही है।

**तुड़ाई व उपज (Harvesting and Yield)** – जब गाँठे 5–8 से.मी. व्यास की हो जाये तब ठोस एवं पूर्ण विकसित गोभी तुड़ाई के योग्य मानी जाती है। गाँठों की औसत उपज 200–250 क्विंटल प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है ।

## मटर (Peas)

**वानस्पतिक नाम : *पाइसम सेटाइवम एल.* (*Pisum sativum L.*)**

**कुल : फेबेसी (Fabaceae)**

मटर शरद ऋतु की एक महत्त्वपूर्ण शाक है। इसका सब्जी के रूप में तो उपयोग किया ही जाता है साथ कैनिंग, निर्जलीकरण एवं फ्रोजन मटर के रूप में काफी मात्रा को परिरक्षित भी किया जाता है। इसमें सुपाच्य प्रोटीन, विटामिन व कई खनिज लवण भी पाये जाते हैं।

**जलवायु (Climate)** – इसकी खेती के लिए ठण्डी जलवायु उपयुक्त रहती है । पाले से इसके फूल व फली को नुकसान पहुँचता है । बीज की बुआई के समय भूमि का तापमान $22^{o}$ से. होना चाहिए । इससे कम तापमान पर अंकुरण बहुत धीरे होता है।

**मृदा एवं खेत की तैयारी (Soil and Field preparation)** : मटर की खेती विभिन्न प्रकार की मृदाओं से की जा सकती है लेकिन इसके लिए दोमट मृदा सबसे उपयुक्त रहती है। भारी मिट्टी जहाँ पानी का निकास अच्छा न हो वहाँ इसकी फसल अच्छी नहीं होती। इसकी खेती करने के लिए मृदा का पी.एच. मान 7.5 से अधिक नहीं होना चाहिए।

**बुआई का समय एवं बीज की मात्रा (Time of sowing and seed rate)** – मटर की अगेती किस्मों की बुआई अगस्त में तथा मुख्य फसल की बुआई अक्टूबर से नवम्बर में की जाती है । पंक्ति से पंक्ति व पौधों से पौधों के मध्य दूरी 30 x 10 से. मी. रखते हैं । अगेती फसल के लिए 100 – 120 कि.ग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त है जबकि पछेती फसल के लिए 80–90 कि. ग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है । बीजों को थायरम या कैप्टॉन से 3 ग्राम दवा प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करके ही बोना चाहिए ।

**उन्नत किस्में (Improved varieties):**

अगेती किस्में – वी.एल. 3, अर्किल, हरा बौना, जवाहर मटर 3, जवाहर मटर 4, मटर अगेती 6, प्रमुख किस्में हैं, इनकी फलियाँ 50 से 60 दिन में आती हैं।

मुख्य फसल के लिए बोनविला, जवाहर मटर 1, पंजाब 88, आजाद पी 1, आर.पी. बी 15, पंत उपहार आदि प्रमुख किस्में हैं।

**खाद एवं उर्वरक (Manure and fertilizer):** – मटर एक दलहनी फसल है, परन्तु इसे अन्य दलहनी फसलों की अपेक्षा

अधिक पोषण की आवश्यकता होती है । खेत की तैयारी के समय मृदा में 20–25 टन गोबर की सड़ी हुई खाद व 20–30 कि.ग्रा. नत्रजन, 60–80 कि.ग्रा. फॉस्फोरस व 50–60 कि.ग्रा. पोटाश मिला देना चाहिए ।

**सिंचाई (Irrigation)** : बीजो के अच्छे अंकुरण के लिए खेत में पलेवा करके ही बुआई करनी चाहिए। पहली सिंचाई बुआई के 4–5 सप्ताह बाद अथवा फूल निकलने के समय करें व दूसरी सिंचाई फली निर्माण के समय करनी चाहिए। मटर की फसल को अन्य सब्जियों की अपेक्षा कम पानी की आवश्यकता होती है।

**निराई–गुड़ाई (Interculture operations)** : बुआई के लगभग 25–30 दिन बाद निराई – गुड़ाई करना आवश्यक होता है, आवश्यकतानुसार दूसरी बार भी यह क्रिया करें। खरपतवारों की रोकथाम के लिए बुआई के तुरन्त बाद पेण्डीमिथलीन व फ्लूक्लोरालिन (1.0–1.5 किलोग्राम) में से किसी एक का 650 लीटर पानी मे घोलकर छिड़काव काफी प्रभावी रहता है ।

**सहारा देना** – मटर की खेती में यह एक महत्वपूर्ण अन्तराशस्य क्रिया है क्योंकि मटर लंबी बढ़ने वाली फसल है जिसको सहारे की आवश्यकता पड़ती है अन्यथा मटर की फली के भूमि के सम्पर्क में आने से उसकी गुणवत्ता खराब हो जाती है ।

**प्रमुख कीट एवं व्याधियाँ (Important insect pests and diseases)** :– **1. फली छेदक** : यह कीट फलियों को काफी नुकसान पहुँचाता है। प्रकोपग्रस्त फलियों के दाने कुछ कट जाते है या पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं।

**रोकथाम** (1) क्षतिग्रस्त फलियों को तोड़कर नष्ट कर देना चाहिए।

(2) **मेलाथियान** (0.1 प्रतिशत) या कार्बेरिल (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव 15–20 दिन के अन्तराल पर करना चाहिए ।

**2. पर्ण खनक** – यह कीट पत्तियों में सुरंग बनाता है तथा पर्ण हरित की मात्रा को प्रभावित करता है प्रभावित पौधे की पत्तियाँ मुरझाकर सूख जाती हैं एवं पौधे की वृद्धि रूक जाती है।

**रोकथाम** – डाइमिथोएट 30 ईसी अथवा इमीडाक्लोरपीड का 0.5 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करें।

**व्याधियाँ (Diseases)** : 1. **चूर्णी फंफूद** (Powdery mildew) : रोगग्रस्त भाग पर सफेद चूर्णी (फंफूद) धब्बे दिखाई देने लगते है। रोग की अधिक उग्रता पर पूरा पौधा सफेद चूर्णी धब्बों से ढक जाता है।

**रोकथाम**: (1) रोग ग्रस्त पौधे को उखाड़कर जला देवें।

(2) 25 किलोग्राम गन्धक का चूर्ण प्रति हेक्टेयर भुरकें अथवा कैराथियान 0.1 प्रतिशत का घोल छिड़के व आवश्यकतानुसार इसको दोहराएं।

2. **जड़ गलन (Root rot)** – इस रोग के प्रकोप से बीज अंकुरण के बाद पौध मरने लगते है। इसके रोकथाम के लिए बीजों को बुआई से पूर्व कैप्टान या मेन्कोजेब 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करें।

**तुड़ाई व उपज (Harvesting and Yield)** : – फलियों की तुड़ाई का समय फसल की गुणवत्ता को बहुत अधिक प्रभावित करता है । फलियों की तुड़ाई सदा तब ही करनी चाहिए जब उसमें दाने बन गये हों तथा वह कोमल व मीठे हों। देरी से तुड़ाई करने पर दाने बेस्वाद हो जाते हैं क्योंकि दानों की शर्करा मांड में परिवर्तित हो जाती है । अगेती फसल से 30–40 क्विंटल तथा पछेती फसल से 70–80 क्विंटल हरी फलियाँ प्राप्त हो जाती है।

## भिण्डी (Okra)

वानस्पतिक नाम *एबेलमोसकस एस्कुलेन्टस (एल.) मोइन्च*

*Abelmoschus esculentus (L.) Moench.*

कुल : मालवेसी (Malvaceae)

भिण्डी मालवेसी कुल की एक लोकप्रिय सब्जी जो देश के लगभग सभी भागों में उगाई जाती है। भिण्डी के हरे नर्म फल सब्जी एवं सूप के रूप में खाने के काम आते हैं। इसे भोजन के साथ सलाद के रूप में भी प्रयोग कर सकते हैं। विश्व के कुछ देशों में बीज का पाउडर बना कर "कॉफी" के स्थान पर इनका प्रयोग किया जाता है। इसकी जड़ व तना, गुड़ व शक्कर साफ करने में भी प्रयोग किये जाते हैं। यह स्वास्थ्य के लिए काफी लाभदायक है। दो चार ताजी भिण्डी प्रतिदिन खाने से पेट साफ रहता है। भिण्डी में 89.6 प्रतिशत पानी, 6.4 प्रतिशत कार्बोहाईड्रेट, 1.9 प्रतिशत प्रोटीन, 0.2 प्रतिशत वसा, 1.2 प्रतिशत रेशा तथा 66 मि.ग्रा./100 ग्राम फल कैल्सियम व 56 मि.ग्रा. फॉस्फोरस पाया जाता है।

**जलवायु (Climate)**–भिण्डी गर्म मौसम की फसल है। इसकी अच्छी उपज के लिए लम्बे समय तक गर्म एवं आर्द्र मौसम की आवश्यकता पड़ती है। इसकी खेती के लिए औसत तापक्रम 25 से 30°C से उपयुक्त पाया गया है। यदि तापमान 15°C से कम हो तो फल बनने पर बुरा असर पड़ता है।

**मृदा एवं खेत की तैयारी (Soil and Field preparation) :** इसको विभिन्न प्रकार की मृदाओं में उगाया जा सकता है, किन्तु उचित जल निकास वाली जीवांश युक्त दोमट या बलुई दोमट मृदा इसकी खेती के लिए उत्तम होती है। मृदा का पीएच मान 6.5 से 7.5 उत्तम रहता है। यह हल्की क्षारीय मृदाओं मे आसानी से उगाई जा सकती है ।

**बुआई, बीज की मात्रा एवं उपचार (Sowing, seed rate and seed treatment)** – हमारे यहां इसकी दो फसलें ली जाती है । ग्रीष्म ऋतु की फसल की बुआई फरवरी–मार्च में करते हैं तथा वर्षाकालीन फसल की बुआई जून–जुलाई में करते हैं। जबकि दक्षिण भारत में इसकी खेती वर्ष भर की जाती है। ग्रीष्मकालीन फसल के लिए 12–15 कि.ग्रा. तथा वर्षाकालीन फसल के लिए 8–10 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता होती है। ग्रीष्म काल में कतार X पौधे की दूरी 30 X 20 या 45 X 30 रखते हैं जबकि वर्षाकाल में 45 X 30 या 60 X 30 से.मी. रखते हैं। बीज बोने से पूर्व कैप्टॉन या थायरम 2 ग्राम प्रति किलो बीज दर से उपचार करें।

**उन्नत किस्में (Improved varieties) :** परभनी क्रान्ति, पूसा सावनी, पूसा मखमली, अर्का अभय, अर्का अनामिका, वी. आर.ओ. 6 ।

**खाद एवं उर्वरक (Manure and fertilizer)** – खेत तैयार करते समय अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद 15 से 20 टन प्रति हेक्टेयर की दर से भूमि में मिला देवें। इसके अलावा 30 कि.ग्रा. नत्रजन 40 कि.ग्रा. फास्फोरस तथा 30 कि.ग्रा. पोटाश बुआई के पूर्व प्रति हैक्टेयर की दर से देवें। 30 कि.ग्रा. नत्रजन बुआई के एक माह बाद खड़ी फसल में दें।

**सिंचाई (Irrigation):** यदि भूमि में अंकुरण के समय पर्याप्त नमी न हो तो पहली सिंचाई बुआई के तुरन्त बाद कर दें। अच्छी फसल प्राप्त करने के लिए आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहें। सिंचाई मार्च से 10–12 दिन, अप्रैल में 7–8 दिन और मई–जून में 4–5 दिन के अन्तर पर करें। बरसात में यदि बराबर वर्षा होती है तो सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती। वर्षा ऋतु में भिण्डी की फसल में ज्यादा पानी अधिक देर तक नहीं ठहरना चाहिए।

**निराई–गुड़ाई (Interculture operations):** अच्छी उपज के लिए खेत को खरपतवार से मुक्त रखना चाहिए। इसके लिये 2–3 निराई पर्याप्त होती है। खरपतवारों की रोकथाम के लिए खरपतवारनाशी दवा बासालिन (2 ग्राम/लीटर पानी) का उपयोग काफी प्रभावी होता है।

**प्रमुख कीट एवं व्याधियाँ (Important insect pests and diseases) :** (a) हरा तेला (Jassid) , मोयला (Aphid) एवं सफेद मक्खी (White fly) :– ये कीट पौधों के कोमल भागों विशेषकर पत्तियों से रस चूसकर पौधों को कमजोर बना देते हैं। ये कीट पौधों में कई व्याधियाँ फैलाने में भी सहायक होते हैं।

**रोकथामः** इनके नियन्त्रण हेतु डाइमिथोएट 30 ईसी या इमीडाक्लोरपीड का 0.5 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी के घोल का छिडकाव करें एवं आवश्यकतानुसार इसे दोहराएं।

(b) फल छेदक – इस कीट की लटें फलों में घुसकर उन्हें खराब कर देती हैं जिससे फसल की गुणवत्ता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

**रोकथाम :** फूल आने के तुरन्त बाद . मैलाथियान 1 मि.ली प्रति लीटर या कार्बेरिल 2 मि.ली प्रति लीटर घोल का छिड़काव 15–20 दिन के अन्तराल पर करना चाहिए ।

**व्याधियाँ (Diseases):** 1. पीत शिरा मौजेक (Yellow mosaic virus)–यह रोग विषाणु द्वारा फैलता है जिसके कारण पौधों की बढ़ोतरी रुक जाती है। पत्तियाँ एवं शिराएँ पीली पड़ जाती है। जब तने और फलों का रंग पीला पड़ने लगे तो समझें की रोग का प्रकोप ज्यादा है। यह रोग सफेद मक्खी द्वारा एक पेड़ से दूसरे पेड़ तक पहुँचता है।

इनके नियन्त्रण हेतु डाइमिथोएट 30 ईसी या इमीडाक्लोरपीड का 0.5 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी के घोल का छिड़काव करें व आवश्यकतानुसार इसे दोहराये।

2. छाछ्या (Powdery mildew) : प्रभावित पौधे की पत्तियों व तनों पर सफेद चूर्णी धब्बे दिखाई देते हैं। इस बीमारी की रोकथाम के लिए कैराथेन एल सी या केलिक्सिन 1 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

3. मूल ग्रन्थि (सूत्र कृमि) : इस रोग के कारण पौधो की जड़ों में गाँठे बन जाती है एवं उनकी वृद्धि रूक जाती है इसके नियन्त्रण हेतु बुआई से पहले 25 किलोग्राम कार्बोफ्यूरान 3 जी प्रति हेक्टेयर भूमि में मिलावें।

**तुड़ाई व उपज (Harvesting and Yield)** – भिण्डी के फलों की तुड़ाई नरम अवस्था में ही करनी चाहिए क्योकि कड़ा होने पर उसमें रेशे की मात्रा बढ़ जाती है एवं स्वाद खराब हो जाता है । फूल खिलने के 5–7 दिन बाद तोड़ने लायक हो जाते हैं। गर्मी की फसल से लगभग 50 क्विंटल तथा वर्षा की फसल से लगभग 100 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज प्राप्त होती है ।

## गाजर Carrot

**वानस्पतिक नाम :** ***डॉकस कैरोटा एल.***
***(Daucus carota* L.)**

**कुल : अम्बेलीफेरी (Umbelliferae or Apiaceae)**

गाजर (*डॉकस कैरोटा*), अम्बेलीफेरी कुल की सब्जी है । गाजर की जड़ को कच्चा सलाद के रूप में, सब्जी बनाकर, हलवा, मुरब्बा और रायता के रूप में इस्तेमाल करते हैं । इसकी मुलायम पत्तियों का साग बना कर उपयोग किया जाता है । इसमें विटामिन ''ए'' और शर्करा प्रचुर मात्रा में पाई जाती है । यह भूख बढ़ाता है और गुर्दे के लिये लाभप्रद है । यदि किसान इसकी खेती ठीक तरीके से करे तो अच्छी आमदनी प्राप्त कर सकते हैं और उपभोक्ता भी कम पैसों में अधिक पोषक तत्व प्राप्त कर सकता है ।

**जलवायु (Climate) –** गाजर ठण्डे जलवायु की फसल है लेकिन एशियाई किस्मों में अधिक तापमान सहने की शक्ति होती है । गाजर की जड़ का रंग और बढ़वार तापमान द्वारा प्रभावित होती है। इसकी बढ़वार और रंग के लिए 10–15 डिग्री से. तापमान उत्तम माना गया है । बहुत कम व अधिक तापमान पर गाजर का रंग हल्का व वृद्धि अनियमित होती है ।

**मृदा एवं खेत की तैयारी (Soil and Field preparation) :** गाजर के लिए अच्छे जल निकास वाली जीवांश युक्त गहरी भुरभुरी व हल्की दोमट मृदा सर्वोत्तम होती है । मृदा पीएच मान 6–7 के मध्य उपयुक्त रहता है । भारी मृदा में जड़ विकास अवरूद्ध हो जाता है तथा जड़ों में शाखाएँ भी निकल आती है जिससे उनकी गुणवत्ता पर गहरा असर पड़ता है ।

मिट्टी को भुरभुरी बनाने के लिए खेत में 2 जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से व 3–4 जुताई देसी हल से करके पाटा लगाएं।

**बुआई, बीज की मात्रा एवं उपचार (Sowing, seed rate & seedtreatment) –** राजस्थान प्रदेश में एशियाई किस्मों की बुआई अगस्त से अक्टूबर तक और यूरोपियन किस्मों की बुआई अक्टूबर–नवम्बर मे करते हैं । एक हेक्टेयर खेत के लिए 6–8 कि.ग्रा. बीज की आवश्यकता पड़ती है । इसकी बुआई या तो छोटी–छोटी समतल क्यारियों में या 30–45 से.मी. की दूरी पर बनी मेड़ों पर करते हैं । बुआई से पूर्व बीज को 12–24 घंटे तक पानी में भिगोकर बुआई करने से अंकुरण अच्छा होता है । बीज बोने से पूर्व उनका कैप्टान या थायरम 2 ग्राम प्रति किलो बीज दर से उपचार करें।

**उन्नत किस्में (Improved varieties):** नेन्टेस, पूसा यमदग्नि, पूसा केसर, पूसा मेघाली, चैन्टने आदि।

**खाद एवं उर्वरक (Manure and fertilizer): –** एक हेक्टेयर खेत में लगभग 20–25 टन गोबर की सड़ी खाद बुआई के 3–4 सप्ताह पूर्व डाल कर अच्छी तरह मिट्टी में मिला देते हैं । गोबर की खाद का अच्छा सड़ा हुआ होना आवश्यक है। कच्ची खाद उपयोग में लाने से जड़े दो मुँह वाली (Forking) हो जाती है इसके अलावा 60 किलो नत्रजन, 40 किलो फॉस्फोरस एवं 120 किलो पोटाश प्रति हेक्टेयर की भी आवश्यकता होती है। नत्रजन की आधी मात्रा खेत की तैयारी के समय व आधी मात्रा बुआई के 45 दिन बाद खड़ी फसल में देवें।

**सिंचाई (Irrigation):** यदि बुआई के समय भूमि में नमी की कमी हो तो बुआई के तुरन्त बाद सिंचाई करें । बाद में सिंचाइयाँ गर्म मौसम में सप्ताह में एक बार और जब ठण्ड पड़ने लगे तो 10–12 दिन में एक बार करते हैं । इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि खेत सूखने और सख्त होने न पाये नहीं तो जड़ों का समुचित विकास नहीं हो पाता । सिंचाई हमेशा हल्की करनी चाहिए ।

**निराई–गुड़ाई (Interculture operations):** फसल के बढ़ने के साथ ही निराई गुड़ाई करें व पौधों की छँटाई भी करें ताकि जड़े अच्छी बन सके। खरपतवारों की रोकथाम के लिए स्टोम्प नामक खरपतवारनाशी दवा की 3.5 लीटर मात्रा को 700–800 लीटर पानी में घोलकर बीजाई के तुरन्त बाद छिड़के।

**कार्यिकी विकार**

**स्प्लीटिंग (विभाजन)**

यह गाजर का महत्वपूर्ण विकार है, जिसमें गाजर की जड़ फट जाती है । यह विकार आनुवांशिक होता है । साथ ही कई पर्यावरणीय कारक भी है जैसे जड़ों के किनारों पर ज्यादा नत्रजन की मात्रा देना, मृदा में क्लोराइड आयन की कमी, दूरी अधिक रखना, जड़ का ज्यादा बढ़ना तथा सिंचाई में अनियमितता ।

इसके नियन्त्रण के लिए सहिष्णु किस्मों का चयन करें, पौधे में दूरी कम रखें । नत्रजन की सन्तुलित मात्रा दें तथा भूमि में समुचित जल की मात्रा रखें तथा जड़ों को सही अवस्था में उखाड़ लें ।

**प्रमुख कीट एवं व्याधियाँ (Important insect pests and diseases):–**

व्याधियाँ (Diseases) : **छाछ्या रोग :–** इस रोग से प्रभावित पौधे की पत्तियों व तनों पर सफेद छोटे–छोटे धब्बे पड़

जाते हैं तथा बाद में पूरे पौधे पर फैल जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए कैराथियान एल सी. 1 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी के हिसाब से छिड़कें।

**पत्ती धब्बा रोगः–** इस रोग से ग्रसित पत्तियों पर गोल पीले धब्बे पड़ जाते हैं व इसके कारण पत्तियाँ झुलस जाती हैं। इस फफूंद जनक रोग की रोकथाम के लिए मेन्कोजेब 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से पौधों पर छिड़के।

**तुड़ाई व उपज (Harvesting and Yield):** जब जड़ें पूर्ण आकार की हो जाती हैं तो उनकी खुदाई करते हैं । आमतौर पर गाजर की जड़ें 100 – 130 दिनों में खुदाई के लिए तैयार हो जाती हैं। खुदाई करने से पहले हल्की सिंचाई कर दें। खुदाई खुरपी या फावड़े से करें। औसत उपज लगभग 200–300 क्विंटल प्रति हेक्टेयर प्राप्त हो जाती है ।

## मूली (Radish)

**वानस्पतिक नाम : *रेफनस सेटाईवस एल.* (*Raphanus sativus* L.)**

**कुल : ब्रेसिकेसी (Brassicaceae)**

मूली ब्रेसिकेसी कुल की जड़ वाली सब्जी है । यह शीतलता प्रदान करने वाली (ठंडी तासीर), कब्ज दूर करने वाली, भूख बढ़ाने वाली सब्जी है, जिसका उपयोग सलाद, अचार तथा केण्डी बना कर किया जाता है । बवासीर, पीलिया और जिगर की बीमारी मे इसका उपयोग अत्यधिक लाभदायक है । मूली में विटामिन ''ए'' और ''सी'' तथा खनिज लवण, फस्फोरस प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं । यह शीघ्र तैयार होने वाली फसल है। इसकी जड़ो में गंधक, कैल्सियम तथा फॉस्फोरस मुख्य रूप से होता है।

**जलवायु (Climate) –** मूली मुख्य रूप से ठण्डे मौसम की फसल है परन्तु एशियाई किस्में यूरोपियन किस्मों की अपेक्षा अधिक गर्मी सहन कर सकती है । ज्यादा तापमान होने पर मूली की जड़ें कठोर तथा चरपरी हो जाती हैं। सर्वोत्तम गन्ध ा, स्वाद एवं संरचना के लिए 12–15 डिग्री से. तापमान उत्तम माना गया है ।

**मृदा एवं खेत की तैयारी (Soil and Field preparation):** मूली की सफल खेती के लिए जीवांश युक्त, अच्छे जल निकास वाली बलुई दोमट मिट्टी सर्वोत्तम होती है। भारी मिट्टी इसके लिए अनुपयुक्त मानी जाती है क्योंकि उसमें जड़ों का पूर्ण विकास नहीं हो पाता है।मूली के लिए भुरभुरी मिट्टी की आवश्यकता होती है। इसके लिए एक जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से तथा 2–3 जुताई देशी हल से करें। जुताई के बाद पाटा अवश्य लगाएं।

**बुआई, बीज की मात्रा एवं उपचार (Sowing, seed rate and seed treatment) –** उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों में एशियाई मूली बोने का मुख्य समय सितम्बर से फरवरी तथा यूरोपियन किस्मों की बुआई अक्टूबर से जनवरी तक करते हैं ।

एशियाई किस्मों की 6–8 किलोग्राम और यूरोपियन किस्मों की 8–10 किग्रा. प्रति हेक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है । बीज बोने से पूर्व उनका कैप्टान या थायरम 2 ग्राम प्रति किलो बीज दर से उपचार करें।

बुआई के समय खेत में नमी अच्छी प्रकार होनी चाहिए । खेत में नमी की कमी होने पर पलेवा करके खेत तैयार करते हैं । इसकी बुआई या तो छोटी–छोटी समतल क्यारियों में या 30–45 से.मी. की दूरी पर बनी मेड़ों पर करते हैं ।

**उन्नत किस्में (Improved varieties):**

यूरोपियन किस्में – व्हाइट इसीकिल, रेपिड रेड व्हाइट

एशियाई किस्में – जापानी व्हाइट, पूसा हिमानी, पूसा चेतकी, पूसा देशी, पूसा रेशमी, पंजाब सफेद, अर्का निशान्त ।

**खाद एवं उर्वरक (Manure and fertilizer):** – मूली शीघ्र तैयार होने वाली फसल है । भूमि में पर्याप्त मात्रा में खाद व उर्वरक होना चाहिए । अच्छी पैदावार के लिए एक हेक्टेयर खेत में 20–25 टन अच्छी प्रकार सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट बुआई से 25–30 दिन पूर्व प्रारम्भिक जुताई के समय खेत में मिला दें इसके अतिरिक्त 30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, **45** कि. ग्रा. फास्फोरस और **45** कि.ग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर की आवश्यकता पड़ती है । नत्रजन की आधी मात्रा व फॉस्फोरस और पोटाश की पूरी मात्रा बुआई के पहले खेत में डाल दें । शेष आधी नत्रजन की मात्रा बुआई के 20 दिन बाद शीतोष्ण किस्मों में और 25–30 दिन बाद एशियाई किस्मों में टॉप ड्रेसिंग के रूप में दें ।

**सिंचाई (Irrigation):** वर्षा ऋतु की फसल में सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती परन्तु गर्मी की फसल के 4–5 दिन

के अन्तर पर सिंचाई अवश्य करते रहना चाहिए । शरदकालीन फसल में 10–15 दिन के अन्तर पर सिंचाई करते हैं ।

**निराई–गुड़ाई (Interculture operations):** प्रभावी खरपतवार नियंत्रण के लिए मूली के खेत में 2–3 निराई गुड़ाई करें। जड़ बनते समय उन पर एक बार मिट्टी अवश्य चढ़ा दें।

**प्रमुख कीट एवं व्याधियाँ (Important insect pests and diseases):–** मूली की फसल को माहू, सरसों की आरा मक्खी तथा पत्ती काटने वाली सूंडी काफी हानि पहुँचाती है ।

मैलाथियान 50 ईसी को 1.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करना चाहिए ।

व्याधियाँ (Diseases) : **सफेद रोली** :– इस रोग से प्रभावित पत्तियों की निचली सतह पर धब्बे दिखने लगते हैं। इसकी रोकथाम हेतु मैन्कोजेब का 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

**खुदाई व उपज (Harvesting and Yield):** मूली को हमेशा नरम और मुलायम अवस्था में उखाड़ना या खोदना चाहिए । मूली की खुदाई एक तरफ से न करके तैयार जड़ों को छाँट कर करें । पूसा चेतकी किस्म की जड़ें 40 से 45 दिन में तैयार हो जाती है । उचित देखभाल में यूरोपियन किस्म की 80–100 क्विंटल तथा एशियाई किस्म की 200–250 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज प्राप्त हो जाती है ।

## पालक (Beetleaf)

**वानस्पतिक नाम : *बिटा वल्गेरिस किस्म बेन्गालेन्सिस* (*Beta vulgaris var.bengalensis Roxb*)**

**कुल : चीनोपोडिएसी (Chenopodiaceae)**

हरी पत्ते वाली सब्जियों मे पालक का एक महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें विटामिन ''ए'' व खनिज लवण प्रचुर मात्रा में पाए जाते है। इसके लगातार सेवन से रतौधीं रोग समाप्त हो जाता है। गृह वाटिका (Kitchen garden) के लिए यह सर्वोत्तम सब्जी है।

**जलवायु (Climate) :** कम तापमान वाले क्षेत्रों में पालक वर्ष भर सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है लेकिन शरद ऋतु में यह अच्छा पनपता है। इसलिए मुख्यतः इसकी खेती सर्दी में ही की जाती है।

**मृदा एवं खेत की तैयारी (Soil and Field preparation):** पालक की खेती सभी प्रकार की मृदाओं में की जा सकती है परन्तु अच्छे जल निकास वाली, जीवांश युक्त बलुई दोमट मिट्टी इसकी खेती के लिए सर्वोत्तम है। भूमि का पी.एच.मान 6–7 के लगभग उपयुक्त रहता है।

**बुआई, बीज की मात्रा एवं उपचार (Sowing, seed rate and seed treatment)** – बुआई से पूर्व पलेवा कर मिट्टी पलटने वाले हल से जुताई कर दो बार कल्टीवेटर से गहरी जुताई करें व प्रत्येक जुताई के बाद पाटा लगायें। 30–40 किलोग्राम बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त होता है। बीज बोने से पूर्व उनका कैप्टान या थायरम 2 ग्राम प्रति किलो बीज दर से उपचार करें।

**उन्नत किस्में (Improved varieties):** पूसा ज्योति, पूसा हरित, पन्त कम्पोजिट, आल ग्रीन, अर्ली ग्रीन, एस–23, अर्ली स्मूथ लीफ ।

**बुआई का समय व विधि (Sowing time and method) :** बीजों को प्रायः समतल खेत में छिड़कवा विधि से बोते है। परन्तु पंक्तियों में बोना अधिक लाभप्रद है। पंक्तियों की दूरी 20 से 25 से.मी. बाद में विरलीकरण द्वारा पंक्ति में पौधों में पौधों की दूरी 5 से 8 से.मी. रखते हैं तथा बीज को 2 से 3 से.मी. गहराई पर बोते हैं । पहली सिंचाई बीज जमने के बाद करते हैं और बाद में 8–10 दिन के अन्तर पर आवश्यकतानुसार सिंचाई करें । पौधे जब 15 से 20 दिन के हो जाएं तब पहली निराई व गुड़ाई करनी चाहिए ।

**खाद एवं उर्वरक (Manure and fertilizer):** – पालक की अधिक उपज प्राप्त करने के लिए बुआई से पहले 200–300 क्विंटल गोबर की खाद 100 किलो नत्रजन, 40 किलो फॉस्फोरस व 40 किलो पोटाश प्रति हैक्टर के हिसाब से भूमि में मिलावें। 25 किलो प्रति हेक्टेयर की दर से नाइट्रोजन हर कटाई के बाद खड़ी फसल में दें।

**सिंचाई (Irrigation):** बुआई के तुरन्त बाद सिंचाई करें। हरी पत्ती वाली सब्जी होने के कारण भूमि में पर्याप्त नमी बनी रहनी चाहिये। 5–6 दिन के अन्तराल पर आवश्यकतानुसार सिंचाई करते रहे।

**निराई–गुड़ाई (Interculture operations):** बुआई के 2–3 सप्ताह बाद प्रथम निराई– गुड़ाई की जानी चाहिए व इसी समय पौधों का अन्तराल भी ठीक करें।

**प्रमुख कीट एवं व्याधियाँ (Important insect pests and diseases):–**

कीट (Insect pests)

चेंपा (Aphid): यह पत्तियों का रस चूसकर फसल को नुकसान पहुँचाता है। इसके नियंत्रण हेतु मैलाथियान 5 प्रतिशत चूर्ण 20 से 25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से भुरकाव करें। भुरकाव के तुरन्त बाद कटाई न करें।

**व्याधियाँ (Diseases) :**

आर्द्रगलन व्याधियाँ (Damping off) – इस रोग से प्रभावित कोमल पौधों के तने भूमि के निकट से गलने लगते हैं।इसकी रोकथाम के लिए बुआई से पूर्व बीज को 3 ग्राम थायरम नामक दवा से प्रति किलो बीज दर से उपचारित करें।

पत्ती धब्बा (Leaf spot) – इस रोग के कारण पत्तियों पर भूरे धब्बे पड़ जाते हैं। इस रोग के नियंत्रण हेतु जाइनेब 2 ग्राम या मेंकोजेब 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें व 15 दिन के अन्तर पर फिर छिड़काव करें।

खुदाई व उपज (Harvesting and Yield): पत्तियों की कटाई उनकी कोमल एवं रसीली अवस्था में करनी चाहिए। पालक की औसतन 4–8 कटाई की जा सकती है एवं 100–150 क्विंटल प्रति हेक्टेयर औसत उपज प्राप्त की जा सकती है।

## प्याज (Onion)

**वानस्पतिक नाम – *एलियम सेपा एल.* *(Allium cepa L.)***

**कुल – एलिएसी (Alliaceae)**

प्याज *(एलियम सेपा )*, ऐलिएसी कुल की एक नगदी फसल है जो प्रायः सर्दियों में उगाई जाती है ।इसका उपयोग हरी अवस्था में सब्जी के रूप में तथा पकने पर कच्चे सलाद, सब्जी, अचार, मसाले, चटनी व दाल को फ्राई करने में किया जाता है । इसमें मुख्य रूप से फॉस्फोरस, कैल्सियम, विटामिन सी आदि प्रमुख पौष्टिक तत्व प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं । प्याज में एलाइल प्रोपाइल डाइसल्फाइड की वजह से इसमें रोचक सुगन्ध होती है । यह गर्मी में लू लग जाने तथा गुर्दे की बीमारी वाले रोगियों के लिए लाभदायक पाया जाता है ।

**जलवायु (Climate) –**

प्याज एक ठंडे मौसम की फसल है जो कि 13 – 24$^0$ सेल्सियस तापमान में अच्छा उत्पादन देती है । यह पाले को भी सहन करने की क्षमता रखती है । प्याज वृद्धि एवं उपज को तापमान एवं प्रकाशकाल बहुत अधिक प्रभावित करते है। अच्छा कन्द बनने के लिए लम्बा दिन तथा तापमान अधिक (35–40$^0$ सेल्सियस) होना अच्छा होता है ।

**मृदा एवं खेत की तैयारी (Soil and Field preparation):** प्याज सभी प्रकार की भूमि में उगायी जा सकती है लेकिन बलुई दोमट/दोमट जिसमें जीवांश खाद प्रचुर मात्रा में हो तथा जल निकास की उत्तम व्यवस्था हो उपयुक्त पायी गई है । भूमि अधिक क्षारीय व अम्लीय नहीं होनी चाहिए अन्यथा कन्दों की वृद्धि अच्छी नहीं हो पाती है । भूमि में गन्धक की कमी हो तो जिप्सम 400 ग्राम/हेक्टेयर बुआई के 15–20 दिन पहले मिट्टी में मिलाना चाहिए ।

**बुआई, बीज की मात्रा एवं उपचार (Sowing, seed rate and seed treatment) –**

बुआई – रबी की फसल के लिए बीज, मध्य अक्टूबर से लेकर मध्य नवम्बर तक बोये जा सकते हैं । प्याज को उसके बीज या कन्दों को बोकर उगाया जाता है । एक हेक्टेयर फसल के लिए 10 कि.ग्रा. बीज (रबी फसल) व 12–15 कि.ग्रा. (खरीफ फसल) पर्याप्त रहते हैं । पौध व कन्द तैयार करने के लिए बीज को 5–6 से.मी. की दूरी पर 0.5 से.मी. की गहराई पर बोएं व उन्हें घासफूस से ढक दें । उसके बाद झारे से पानी दें ।

रोपना – पौध लगभग 7–8 सप्ताह में रोपाई योग्य हो जाती है । जब पौधे 12–15 से.मी. लम्बाई के हो जाएं तो उन्हें 15 से.मी. कतार से कतार व 10 से.मी. पौधे से पौधे की दूरी पर क्यारियों में रोपण करें । पौध रोपण के समय पौधों को बाविस्टीन (2 ग्राम/ली.) के घोल में 15–20 मिनट डुबो कर रोपाई करें ताकि गुलाबी जड़ गलन रोग से फसल को बचाया जा सके । रबी फसल के लिए पौधरोपण का समय 15 दिसम्बर से 15 जनवरी तथा खरीफ फसल के लिए जुताई के अन्तिम सप्ताह से अगस्त तक है । इन फसलों में देरी या पहले करने से फूल निकल आते हैं।

**कन्दों की बुआई** – कन्दों की बुआई 45 से.मी. की दूरी पर बनी मेड़ों पर 10 से.मी. की दूरी पर दोनों तरफ करनी चाहिए । छोटे कन्दों के लिए (1.5 – 2.0 से.मी.) 10 क्विंटल/हेक्टेयर तथा बड़े कन्दों के लिए (2.0 – 2.5 से.मी.) 12–15 क्विंटल/हेक्टेयर की आवश्यकता पड़ती है । रोपाई या बुआई के तुरन्त बाद एवं उसके 3–4 दिन बाद हल्की सिंचाई अवश्य करें ।

**उन्नत किस्में (Improved varieties):**

**रबी फसल हेतु –**

लाल प्याज – पूसा रेड, एग्रीफाउण्ड डार्क रेड, पंजाब रेड राउण्ड, हिसार – 2, एन – 53, अर्का कल्याण

सफेद प्याज – पूसा व्हाइट फ्लेट, पूसा व्हाइट राऊण्ड, उदयपुर – 102, पंजाब 48

पीली प्याज – अर्का पीताम्बर, अर्ली ग्रेनो

**खरीफ फसल हेतु** –अर्का कल्याण, एन – 53

**खाद एवं उर्वरक (Manure and fertilizer):** – प्याज की खेती के लिए सड़ी हुई गोबर की खाद/वर्मी कम्पोस्ट 400 – 500 क्विंटल/हेक्टेयर खेत तैयार करते समय मिला दें । इसके अलावा 100 कि.ग्रा. नत्रजन, 50 कि.ग्रा. फास्फोस तथा 100 कि.ग्रा. पोटाश की आवश्यकता होती है । नत्रजन की आधी मात्रा तथा फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा रोपाई से पहले अन्तिम जुताई में मिला देनी चाहिए। नत्रजन की शेष मात्रा रोपाई के 45 दिन बाद खड़ी फसल में दें ।

**सिंचाई (Irrigation):** बीजों की बुआई अथवा पौध रोपाई के तुरन्त बाद हल्की सिंचाई आवश्यक है। कन्द बनते समय सिंचाई करना अति आवश्यक है। इस समय नमी की कमी से कन्द फटने लगते हैं एवं उपज घट जाती है। सर्दी में सिंचाई लगभग 10–15 दिनों बाद व ग्रीष्म में प्रति सप्ताह सिंचाई आवश्यक होती है। फसल तैयार होने पर शीर्ष पीले पड़कर गिरने लगे तब सिंचाई बन्द कर देनी चाहिए।

**निराई–गुड़ाई (Interculture operations):** प्याज की अधिक उपज के लिए खेत को खरपतवारों से मुक्त रखना चाहिए। यह एक उथली जड़ों वाली फसल है अतः गहरी निराई – गुड़ाई न करें अन्यथा जड़ों का क्षतिग्रस्त होने का भय रहता है। अच्छी फसल के लिए दो–तीन बार खरपतवार निकालना आवश्यक होता है।

**प्रमुख कीट एवं व्याधियाँ (Important insect pests and diseases):–**

पर्णजीवी (थ्रिप्स) – कीड़े छोटे और पीले रंग के होते हैं जो पत्तियों का रस चूसते हैं । पत्तियाँ कमजोर हो जाती है तथा पत्तियों पर सफेद चकते पड़ जाते हैं । नियन्त्रण हेतु थायोमिथाक्सिन 0.5 ग्राम/ली. पानी की दर से छिड़काव करें।

**व्याधियाँ (Diseases) :**

तुलासिता – इस रोग में पत्तियों की निचली सतह पर सफेद रुई जैसी फफूंद की वृद्धि दिखाई देती है । नियन्त्रण हेतु मैन्कोजेब 2 ग्राम/ली. पानी में घोल बनाकर छिड़कें ।

परपल ब्लाच – यह रोग *अल्टरनेरिया पोराई* नामक फफूंद से होता है। प्रभावित पत्तियों और तनों पर छोटे–छोटे गुलाबी धब्बे पड़ जाते हैं। प्याज की गाँठें भण्डारण में सड़ने लगती हैं। नियन्त्रण हेतु क्लोरोथेलोनिल 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल कर 10 दिन के अन्तर पर छिड़कें।

**खुदाई एवं उपज (Harvesting and Yield):** – बीजों से तैयार की गई फसल 140–150 दिन में तथा कन्दों से लगाई गई फसल 100 – 110 दिन में पक कर तैयार हो जाती है । रबी की फसल तैयार होने पर पत्तियों के शीर्ष पीले पड़ कर सूख जाते हैं तब सिंचाई रोक दें व इसके 10–15 दिन बाद खुदाई करें । खरीफ फसल में पत्तियाँ गिरती नहीं है । जब गाँठों का आकार 6–8 सेमी. व्यास का हो जाए तो पत्तियों को पैरों से जमीन पर गिरा दें ताकि पौधों की वृद्धि रूक जाए व गाँठें ठोस हो जाए । 15 दिन बाद खुदाई करें । रबी कन्दों की खुदाई के बाद इन्हें 3–5 दिन तक खरीफ कन्दों को 10–15 दिन तक पत्तों सहित छाया में रखें । फिर 2 – 2.5 से.मी. ऊँचाई कन्दों में छोड़ कर पत्तों की कटाई करें । इन्हें 5 – 7 दिन हवादार जगह में रखें । साधारणतया 250 – 300 क्विंटल/हेक्टेयर की दर से प्याज की पैदावार की जा सकती है ।

**भण्डारण** – प्याज के कन्दों को अच्छी तरह से छायादार स्थान पर सुखाने के बाद हवादार कमरों में फैला कर रखना चाहिए । भण्डारण से पूर्व कटे, सड़े, गले, रोगी कन्दों को निकाल देना चाहिए ।

## लहसुन (Garlic)

**वानस्पतिक नाम :** *एलियम सेटाइवम एल.* (***Allium sativum L.***)

**कुल : एलिएसी (Alliaceae)**

लहसुन (*एलियम सेटाइवम*), एलिएसी कुल की एक नगदी फसल है। मसाला के रूप में लहसुन की गाँठों एवं सूखी फाँके, लहसुन के चूर्ण व पेस्ट के रूप में, भोज्य पदार्थों का स्वाद बढ़ाने, चटनी, अचार, टमाटर केचप इत्यादि में किया जाता है । लहसुन में एलिसिन नामक सक्रिय तत्व पाया जाता है जो जैव प्रतिरोधी का काम करता है । इसका तेल लकवा व अल्सर आदि विकारों को दूर करने, कृमिनाशक व टॉनिक के रूप में होता है । लहसुन का उपयोग उच्च रक्तचाप में, धमनीय दाब कम करने में भी होता है । इसमें फास्फोरस, विटामिन सी व अन्य प्रमुख तत्व पाए जाते हैं ।

**जलवायु (Climate) –** लहसुन की खेती विभिन्न प्रकार की जलवायु में की जा सकती है । इसकी खेती मुख्यतः शरद ऋतु में की जाती है । इसकी फसल के लिए अत्यधिक गर्मी एवं ठंड अनुकूल नहीं होती है । फाकों के फुटाव के लिए 15 डिग्री सेल्सियस तापमान अतिउत्तम होता है ।

**मृदा एवं खेत की तैयारी (Soil and Field preparation):** लहसुन की खेती के लिए उपजाऊ दोमट या रेतीली दोमट पी.एच. मान 6.5 से 7.0 जीवांशयुक्त तथा उचित निकास वाली मृदा उपयुक्त रहती है । जबकि लहसुन की खेती लगभग सभी प्रकार की भूमि में की जा सकती है । खेत की तैयारी के लिए एक जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से तथा दो जुताई देशी हल से करने के बाद पाटा लगावें।

**बुआई, बीज की मात्रा एवं उपचार (Sowing, seed rate & seed treatment) –** लहसुन की बुआई के लिए गाँठों से जुड़ी हुई कलियों का प्रयोग करते हैं। 400 से 500 कि.ग्रा. कलियाँ/हेक्टेयर क्षेत्र के लिए आवश्यकता पड़ती है। उचित उपज के लिए 6–8 ग्राम भार की कलियाँ उपयुक्त रहती हैं । इसकी बुवाई का समय अक्टूबर से नवम्बर तक है । बुआई से पूर्व कलियों को डायथेन एम. –45 नाम की फफूंदनाशी दवा से उपचारित कर लें।

**उन्नत किस्में (Improved varieties):**

1. बड़ी गाँठों वाली किस्में– फावरी, सोलन, राजेलीगादी, जी–1, जी–50, जी–51, जी–282

**उतर भारत मे उगायी जाने वाली अन्य किस्मे:–**
हिसार स्थानीय, लाडवा, को 2, अगेती कुआंरी

**खाद एवं उर्वरक (Manure and fertilizer):** – अच्छा फसल उत्पादन प्राप्त करने के लिए खेत की तैयारी के समय 200 से 250 क्विंटल/हेक्टेयर की दर से गोबर की अच्छी सड़ी खाद खेत में अच्छी तरह मिला देते हैं । इसके अलावा नाइट्रोजन 100–125 कि.ग्रा., फॉस्फोरस 50 कि.ग्रा. और पोटाश 50 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से तत्व के रूप में देना चाहिए। नाइट्रोजन की एक तिहाई मात्रा और फॉस्फोरस तथा पोटाश की पूरी मात्रा बुआई से पहले तथा शेष नाइट्रोजन दो बराबर भागों में बाँट कर बुआई के 40 और 60 दिन बाद खड़ी फसल में टॉपड्रेसिंग के रूप में दें ।

**सिंचाई (Irrigation):** लहसुन की कलियों की रोपाई के बाद हल्की सिंचाई करें इसके पश्चात् 8–12 दिन के अन्तराल से सिंचाई करते रहे।

**निराई–गुड़ाई (Interculture operations):** बुआई के 20–25 दिन बाद पहली निराई गुड़ाई एवं दूसरी निराई गुड़ाई पहली निराई गुड़ाई के एक माह पश्चात् करनी चाहिए। फसल में गहरी गुड़ाई न करें।

**प्रमुख कीट एवं व्याधियाँ (Important insect pests and diseases):–** कीट एवं रोग नियंत्रण प्याज के समान।

**खुदाई एवं उपज (Harvesting and Yield): –** लहसुन की ऊपरी पत्तियाँ जब पीली पड़ कर गिरने लगे या सूख जाएं तब खुदाई करनी चाहिए । इस वक्त गाँठें भी जमीन के ऊपर दिखाई देने लगती हैं । लहसुन की फसल पकने में 5–6 माह का समय लगता है । गाँठों को पत्तियों सहित उखाड़ लिया जाता है । गाँठों को 3–4 दिन तक छाया में सुखाने में बाद पत्तियों को गर्दन से 2–3 से.मी. छोड़ कर काट देते हैं या 25–30 लहसुन की पत्तियों को बांध कर गुच्छियाँ बना लेते हैं । औसत उपज 80–100 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर प्राप्त होती है । लहसुन का भंडारण गुच्छियों के रूप में या कन्दों को टाट की बोरियों में रख कर कर सकते हैं । भंडारण शुष्क, हवादार व ठंडी जगह पर करना चाहिए । कलियों के अंकुरण को रोकने के लिए मैलिक हाइड्राजाइड नामक नियामक (600 ग्राम का 200 ली. पानी में घोल बना कर प्रति एकड़) के घोल का छिड़काव जब पत्तियाँ हरी रहती हैं, करते हैं ।

## कद्दू (कूष्माण्ड) वर्गीय सब्जियाँ
## Vegetables of Cucurbitaceae Family

कद्दू वर्गीय सब्जियाँ कुकुरबिटेसी कुल के अन्तर्गत आती हैं। सब्जियों में कद्दूवर्गीय सब्जियाँ अपना विशेष स्थान रखती हैं। इसकी उपलब्धता वर्ष में लगभग 9–10 महीने रहती है । आर्थिक दृष्टिकोण से इनकी महत्ता अधिक है । इनका उपयोग कच्चा सलाद (खीरा, ककड़ी), पका कर सब्जी के रूप में लौकी, नेनुआ, तोरई, करेला, काशीफल, परवल, कुंदरू, चिचिन्डा, छप्पन कद्दू, मीठे फल के रूप में तरबूज, खरबूज, मिठाई बनाने में पेठा, परवल, लौकी, अचार बनाने में करेला आदि का प्रयोग होता है । इस कुल की कई सब्जियों में औषधीय गुण भी पाये जाते हैं । लौकी व करेले का जूस क्रमशः मोटापे व मधुमेह दूर करने के लिए दिए जाते हैं ।

**वानस्पतिक नाम –**

***कूष्माण्ड कुल की कुछ महत्वपूर्ण सब्जियों के वानस्पतिक नाम –***

| | | |
|---|---|---|
| तरबूज | – | *सिट्रुलस लैनेटस (थन्ब)नेटसम एंड नकाई* |
| खरबूजा | – | *कुकुमिस मेलो एल.* |
| फूट | – | *कुकुमिस मेलो एल.* किस्म *मोमोरडिका* |
| ककड़ी | – | *कुकुनिस मेलो एल.* किस्म *यूटिलिसिमस* |
| टिण्डा | – | *सिट्रुलस लेनेटस एल.फिस्चुलोसस* |
| लौकी | – | *लेजिनेरिया सिसेरिया (मोल) स्टैंड्ल* |
| खीरा | – | *कुकुमिस सेटाइवस एल.* |
| आरा तोरी | – | *लूफा एक्यूटैंगला (एल.)राक्सब* |
| नेनुआ चिकनी तुरई | – | *लूफा सिलिन्ड्रिका एल.* |
| करेला | – | *मोमोर्डिका चरनेशिया एल.* |
| काशीफल | – | *कुकरबिटा मोस्चाटा (डच) पोइर* |
| छप्पन कद्दू | – | *कुकुरबिटा पेपो एल.* |
| पेठा | – | *बेनिनकासा हिस्पिडा (थम्ब) काग्न* |

उन्नत किस्में –

तरबूज – शुगर बेबी, आसाही यामेटो, दुर्गापुरा मीठा, दुर्गापुरा केसर, अर्काज्योति (संकर किस्म), मधु, आर डब्ल्यु 187–2, एनएस 295, सुरभि, खुशबू, सुगन्ध

खरबूजा – दुर्गापुरा मधु, पंजाब सुनहरी, पंजाब हाइब्रिड–1, अर्काजीत, हरा मधु, पूसा मधुरस, आरएम 43, आरएम 50, एमएचवाई 3, एमएचवाई 5, एनएल 7455

चिकनी तुरई – पूसा चिकनी (गलगल तुरई), सलेक्शन 99,

धारीदार तुरई – पूसा नसदार, सीओ 1

खीरा – बालम खीरा, पाइनसेट, पूसा संयोग (संकर किस्म), जापानी लांग ग्रीन, स्ट्रेट एट, चाइना

करेला – कोयम्बटूर लॉंग, पूसा दो मौसमी, प्रिया, अर्काहरित, पूसा विशेष, मटिको करेला, ग्रीन लोंग ।

टिण्डा – बीकानेरी ग्रीन, दिल पसन्द, टिण्डा लुधियाना (एस 48) हिसार सलेक्शन 1, अर्का टिण्डा

ककड़ी – लखनऊ अगेती, अर्का शीतल

लौकी – पूसा समर प्रोलोफिक लोंग, पूसा समर प्रोलोफिक राउण्ड, पूसा मंजरी पूसा मेघदूत, पूसा नवीन, अर्का बहार, थार समृद्धि

कद्दू (काशीफल) – पूसा विश्वास, पूसा अलंकार, अर्का चंदन

**मृदा एवं जलवायु (Soil & Climate)–** इन सब्जियों को सभी प्रकार की मृदाओं में उगाया जा सकता है फिर भी दोमट तथा बलुई दोमट मृदा विशेष रूप से उपयुक्त पायी गई है । मृदा में जैविक पदार्थ पर्याप्त मात्रा में होना चाहिए तथा जल निकास का समुचित प्रबन्ध होना चाहिए । इनकी खेती नदियों के किनारे भी की जाती है । मृदा का पीएच मान 6–8 के मध्य होना चाहिए। मुख्य रूप से कद्दू वर्गीय सब्जियां गर्म जलवायु की फसलें हैं । इनमें ज्यादा ठंड व पाला सहन करने की क्षमता नहीं होती है । इनकी खेती के लिए सर्वाधिक तापमन 40 डिग्री से. तथा न्यूनतम 20 डिग्री से. है । खीरा, लौकी तथा कद्दू के लिए उपयुक्त तापमान 20 – 25 डिग्री से. है जबकि खरबूज व तरबूज के लिए 40 डिग्री से. एवं इससे अधिक तापमान साथ ही तेज धूप तथा शुष्क मौसम फलों में मिठास बढ़ाने में सहायक सिद्ध होता है । तरबूज और खरबूज में फल पकते समय वर्षा होने पर स्वाद में फीके हो जाते हैं । टिण्डा, फूट, ककड़ी व लौकी बरसात के मौसम में भी लगाये जाते हैं ।

**बुआई का समय (Time of sowing)–** तरबूज, खरबूज व ककड़ी की बुआई फरवरी–मार्च में की जाती है । वहीं तुरई, खीरा, लौकी, कद्दू, करेला तथा टिण्डे की ग्रीष्मकालीन फसल के लिए बुआई फरवरी – मार्च में तथा वर्षाकालीन फसल के लिए जून–जुलाई में करना चाहिए । नदी तट पर बुआई का उत्तम समय नवम्बर से फरवरी के मध्य करते हैं । बीज को अंकुरण के लिए उपयुक्त तापमान पहुँचाने के लिए गोबर की खाद डाल कर तापमान में वृद्धि कराते हैं तथा पाले से बचाने के लिए पौधे के चारों तरफ कूचे की दीवार बनाई जाती है ।

**बीज दर व दूरी (Seed rate and distance)–**

| सब्जी | बीज दर किग्रा/हैक्टेयर | दूरी (कतार x पौध) |
|---|---|---|
| लौकी | 4 – 5 | 2.5–3 x 0.75 मी. |
| कद्दू | 4 – 5 | 3.4 x 1.25 मी. |
| करेला | 4 – 5 | 1.25 x 0.50 मी. |
| तरबूज | 4.5 – 5 | 2.5 x 1.00 मी. |
| खरबूज | 1.5 – 2 | 2.0 x 0.6 मी. |
| तुरई | 4 – 5 | 1.0 x 0.6 मी. |
| खीरा | 2 – 2.5 | 1.5 x 0.5 मी. |
| ककड़ी | 2 | 2.5 x 0.5 मी. |
| टिण्डा | 4.5 | 2.0 x 0.75 मी. |

**खाद एवं उर्वरक (Manure and fertilizer) –** गोबर की सड़ी खाद/वर्मी कम्पोस्ट 20–25 टन/हेक्टेयर खेत में बीज बोने के 3–4 सप्ताह पहले भूमि तैयार करते समय अच्छी तरह

मिला देते हैं । इसके अलावा 50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 30 कि.ग्रा. फॉस्फोरस और 30 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से आवश्यकता पड़ती है । देशी खाद, फॉस्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा तथा नत्रजन की 1/3 मात्रा अर्थात 30 कि.ग्रा. नत्रजन बुआई के समय भूमि में मिला कर देवें तथा शेष नत्रजन की मात्रा को दो बराबर भाग में बाँट कर टॉप ड्रेसिंग (खड़ी फसल में) के रूप में प्रथम बार बुआई के 25 से 30 दिन बाद व दूसरी बार फूल आने के समय देना चाहिए ।

**सिंचाई (Irrigation) : –** बीज की बुआई खेत में नमी की पर्याप्त मात्रा रहने पर ही करनी चाहिए । जिससे बीजों का अंकुरण एवं वृद्धि अच्छी प्रकार हो । वर्षाकालीन फसल के लिए सिंचाई की विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती । केवल लम्बे समय तक वर्षा न होने पर ही सिंचाई करनी चाहिए । औसतन गर्मी की फसल में 4–6 दिन के अन्तराल पर तथा जाड़े की फसल को 10 से 15 दिन पर पानी देना चाहिए । खरबूज और तरबूज की फसल में फलों की बढ़वार होने के बाद पानी देने की आवश्यकता नहीं पड़ती है ।

**पौधों को सहारा देना (Staking) –** ग्रीष्मकालीन कद्दू वर्गीय सब्जियों में साधारणतया सहारा देने की आवश्यकता नहीं पड़ती लेकिन वर्षाकालीन फसल में (लौकी, तुरई आदि), फलों को सड़ने से बचाने के लिए बेलों का किसी मचान या अन्य से सहारा देने पर उनकी बढ़वार और उपज पर बहुत अनुकूल प्रभाव पड़ता है ।

**प्रमुख कीट एवं व्याधियाँ (Important insect pests and diseases):–**

**लाल भृंग (Red pumpkin beetal) –** यह कीट लाल रंग का होता है तथा अंकुरित एवं नई पत्तियों को खा कर छलनी कर देता है । इसके प्रकोप से कई बार पूरी फसल नष्ट हो जाती है । नियन्त्रण हेतु कार्बोरिल 5 प्रतिशत चूर्ण का 20 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से भुरकाव करें या कार्बोरिल 50 प्रतिशता घुलनशील चूर्ण का दो कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें या एसीफेट 75 एसपी आधा ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से छिड़कें एवं 15 दिन के अन्तर पर दोहराएं ।

**फल मक्खी (Fruit fly)–** यह करेला, तुरई, टिण्डा, ककड़ी व खरबूजे आदि को अधिक नुकसान पहुँचाती है । इसके प्रकोप से फल काने हो जाते हैं । मादा मुलायम फलों के छिलके के अन्दर अण्डे दे देती है । अण्डों में से डिंभक निकलते हैं जो फल के गूदे को खा कर सड़ा देते हैं । फल विकृत व छोटे रह जाते हैं । नियन्त्रण के लिए प्रभावित फलों को लार्वा सहित नष्ट कर देना चाहिए पौधे के आस–पास की जमीन की खुदाई जनवरी–फरवरी में करने से मक्खी की संतति ऊपर आ जाती है और तेज धूप से नष्ट हो जाती है । मेलाथियान 50 ईसी या डाईमिथोएट 30 ईसी एक मि.ली. का प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें । आवश्यकतानुसार 10 से 15 दिन बाद छिड़काव को दोहराएं ।

**बरूथी (Mite)–** बरूथी पत्तियों की निचली सतह पर रह कर रस चूसती है। इससे पत्तियों पर प्रारम्भ में सफेद धब्बे बनते हैं। इसके नियन्त्रण हेतु इथियान 50 ईसी 0.6 मिली लीटर प्रति लीटर पानी में घोल कर जून के द्वितीय सप्ताह में छिड़कें ।

**चूर्णील आसिता (Powdery mildew) –** यह विशेष रूप से जाड़े वाली लौकी, कुम्हड़ा पर लगने वाला सामान्य रोग है । प्रथम लक्षण पत्तियों आर तनों की सतह पर सफेद या धुंधले धूसर धब्बों के रूप में दिखाई देता है । कुछ दिनों बाद ये धब्बे चूर्ण युक्त हो जाते हैं । उग्र आक्रमण के कारण पौधे का असमय निष्पत्रण हो जाता है । इसके कारण फलों का आकार छोटा रह जाता है । नियन्त्रण के लिए खेत को स्वच्छ रखें । रोगग्रस्त फसल के अवशेष एकत्र करके खेत मे ही जला देना चाहिए । बोने के लिए रोग रोधी किस्मों का चयन करें । फफूंदीनाशक दवा जैसे केलिक्सीन 0.05 प्रतिशत अर्थात 1/2 मि.ली. दवा एक लीटर पानी में घोल बना कर सात दिन के अन्तराल पर छिड़काव करें ।

**म्लानी रोग एवं जड़ विगलन रोग (Wilt & root rot)–** यह आमतौर पर खीरा, खरबूजा एवं लौकी में पाया जाता है । रोग ग्रसित पौधा मुरझा जाता है । पौधे की जड़ भी सड़ जाती है जिसके कारण पौधा धीरे–धीरे सूख जाता है । नियन्त्रण के लिए रोग ग्रसित पौधे को खेत से निकाल कर जला देना चाहिए। बीज को बाविस्टिन 2.5 ग्राम दवा प्रति कि.ग्रा. की दर से उपचारित करके बोना चाहिए एवं ट्राइकोडर्मा 3–5 कि.ग्रा./हे. की दर से खेत में डालें ।

**रूक्ष रोग (Anthracnose)–** पत्तियों पर भूरे अथवा हल्के रंग के धब्बे पाये जाते हैं । पत्तियाँ सिकुड़ कर सूख जाती है। ये धब्बे तने तथा फलों पर भी पाये जाते हैं । यह बीमारी खरीफ में अधिक आती है । बीजों को बाविस्टिन 2.5 ग्राम दवा प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करके बोना चाहिए । खेत में रोग के लक्षण शुरू होने पर बाविस्टिन 1 ग्राम प्रति लीटर पानी का घोल 10 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करना चाहिए । फसल अवशेष को जला दें ।

**खीरामोजैक वाइरस (Cucumber mosaic virus)–** यह रोग कई पत्तियों में चितकबरापन और सिकुड़न के रूप में प्रकट होता है । पत्तियाँ छोटी एवं हरी पीली हो जाती है और उनकी वृद्धि रूक जाती है । पुष्प गुच्छों में बदल जाते हैं । ग्रसित पौधा बौना रह जाता है । नियन्त्रण के लिए रोगग्रस्त पौधों को उखाड़ कर जला देना चाहिए । खेत के आस–पास से जंगली खीरा एवं इस कुल के अन्य खरपतवारों का उन्मूलन कर देना चाहिए । रोग वाहक कीटों से बचाव करने के लिए मैलाथियान 0.1 प्रतिशत का घोल बना कर दस दिन के अन्तराल में 2–3 छिड़काव करें ।

## अभ्यास प्रश्न

**बहुचयनात्मक प्रश्न–**

1. टमाटर की बीज दर कितनी है?
   (अ) 400 से 500 ग्राम/हे.
   (ब) 800 से 900 ग्राम प्रति/हे.
   (स) 1.5 से 2 किलोग्राम/हे.
   (द) 5 किलोग्राम/हे.
2. 'बुलनोज' किसकी किस्म है?
   (अ) लौकी (ब) शिमला मिर्च
   (स) गाजर (द) पत्तागोभी
3. करेला की मुख्य फसल कब लगायी जाती हैं?
   (अ) जनवरी (ब) फरवरी–मार्च
   (स) जून–जुलाई (द) सितम्बर–अक्टूबर
4. मटर की अगेती किस्म हैं :–
   (अ) अर्किल (ब) पूसा ज्योति
   (स) जवाहर मटर (द) सेलक्शन 17
5. हरभजन किस सब्जी की किस्म है?
   (अ) भिण्डी (ब) फूलगोभी
   (स) मूली (द) बैंगन
6. बैंगन की एक हेक्टेयर से उपज मिलती है :–
   (अ) 100 क्वि. (ब) 200–250 क्वि.
   (स) 500 क्वि. (द) 700 क्वि.
7. कौनसी शाक राजस्थान में वर्ष भर उगायी जा सकती है?
   (अ) मूली (ब) फूलगोभी
   (स) लहसुन (द) करेला
8. वर्षाकालीन भिण्डी की बीज दर है :–
   (अ) 8–10 किलोग्राम/हे.
   (ब)15–20 किलोग्राम/हे.
   (स) 40–50 किलोग्राम/हे.
   (द) 70–80 किलोग्राम/हे.
9. 'फ्रूट फ्लाई' को नियंत्रित किया जाता है :–
   (अ) मैलाथियान (ब) रोगोर
   (स) बोर्डो मिश्रण (द) मैन्कोजेब

**अतिलघूत्तरात्मक –**

10. टमाटर में लगने वाले कीट कौन से है? किन्हीं दो के नियत्रंण बताइए।
11. टमाटर का पर्णकुंचन रोग क्या है? लक्षण बताएं तथा इसका उपचार कैसे करेगें ?
12. फूलगोभी की तीन किस्में व उनके बोने का समय बताएं।
13. मटर के अगेती व पछेती किस्मों की बीज मात्रा व उन्नत किस्में लिखिए।

**लघूत्तरात्मक प्रश्न –**

14. मूली की तीन किस्में, बोने का समय कटाई का समय व उपज का विवरण दें।
15. प्याज की चार किस्में बोने का समय, कटाई का समय व उपज का विवरण दें।

**निबन्धात्मक प्रश्न –**

16. टमाटर की बीज दर लगाने की दूरी तथा पौध तैयार करने की विधि लिखिए।
17. लहसुन की खेती का वर्णन निम्न बिन्दुओं पर करें– बीज की मात्रा, खाद व उर्वरक, बुआई की विधि, कीट व व्याधियाँ तथा पैदावार।
18. पालक की खेती का विस्तार से वर्णन कीजिए।
19. भिण्डी की बीज दर, बोने की दूरी व उर्वरक की आवश्यकता का विवरण दें।
20. करेले में खाद व उर्वरक व उसकी बुआई का वर्णन करें।
21. तोरई की फसल की बुआई का पूर्ण विवरण दीजिए।

**उत्तरमाला–** 1. (अ) 2. (ब) 3. (ब) 4. (अ) 5. (अ) 6. (ब) 7. (अ) 8. (अ)

# अध्याय–11
# अलंकृत बागवानी
# (Ornamental Gardening)

उद्यान विज्ञान की वह शाखा जिसके अन्तर्गत सभी प्रकार के सजावटी और शोभाकारी पौधों, झाड़ियों, लताओं एवं फूल वाले मौसमी पौधों का अध्ययन किया जाता है, अलंकृत बागवानी के नाम से जानी जाती है। इसमें सजावट हेतु भवनों, गमलों में, टोकरियों में, उद्यानों में और शीशों के घरों आदि में सजावटी पौधे उगाने की वैज्ञानिक विधि का अध्ययन किया जाता है।

हमारे देश में वैदिक काल से ही छायादार वृक्षों, औषधीय एवं सुन्दर पुष्पीय पौधों की पूजा अनेक देवी–देवताओं के प्रतीक मानकर होती आ रही है, जैसे कदम्ब श्री कृष्ण से, सीता अशोक कामदेव से, कचनार लक्ष्मी जी से, पीपल शनिदेव से, वट वृक्ष ब्रहमाजी से तथा तुलसी व कमल विष्णु जी से सम्बन्धित माने जाते हैं।

भारत में मुगल शासकों के बाद ब्रिटिश शासकों ने उद्यान कला की लोकप्रियता बढ़ाने के प्रयास किये। इस समय में हरियाली (लॉन), हरबेशियस बॉर्डर (अलंकृत फूल वाले पौधों को लम्बी पट्टी में उगाना), शर्बरी बॉर्डर (झाड़ियों को लम्बी पट्टी में उगाना), आदि का प्रचलन प्रारम्भ हुआ।

अलंकृत बागवानी आदिकाल से मानव जीवन से जुड़ी रही है। मनुष्य के जन्म से मृत्युपर्यन्त तक के सभी कार्यों एवं संस्कारों में फूलों की विशिष्ट भूमिका रहती है। सफेद रंग के पुष्प शान्ति, लाल रंग के पुष्प हृदय के प्रेम एवं नारंगी रंग के पुष्प त्याग व समर्पण प्रदर्शित करने के उपयोग में आते रहे हैं।

अलंकृत बागवानी में फूलों की खेती करके, फूलों से सुगन्धित तेल, इत्र, गुलाब जल, गुलकन्द आदि का निर्माण करके बेचने से अधिक आय प्राप्त की जा सकती है अर्थात् अलंकृत बागवानी को रोजगार के रूप में अपनाया जा सकता है।

**अलंकृत बागवानी का महत्व (Importance of ornamental gardening):–** वनस्पति के बिना हम मानव जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। हमारे जीवन की प्रत्येक आवश्यकता की पूर्ति वनस्पति से ही होती है। अलंकृत वृक्षों, झाड़ियों, लताओं एवं पुष्पीय पौधों को विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु उगाया जा रहा है। अलंकृत बागवानी के महत्व को निम्न प्रकार जाना जा सकता है –

(1) सजावट के लिए (Decorative use)– आधुनिक युग में अनेक कारणों से गाँवों एंव शहरों का प्राकृतिक सौन्दर्य बिगड़ रहा है। अलंकृत पौधों द्वारा सार्वजनिक स्थलों–कार्यालय, अस्पताल, डाकघर, रेल्वे स्टेशन, विद्यालय, महाविद्यालय, सामुदायिक केन्द्र पंचायत घर, खेल मैदान आदि को सुन्दर व आकर्षक बनाया जा सकता है। निजी भवनों, बंगलों को सजावटी पौधे जैसे – गुलाब, गेंदा, चमेली, गुलदावदी, मनीप्लान्ट, क्रोटन, केली आदि का गमलों, क्यारियों अथवा खाली भूमि पर लगाकर सजाया जा सकता है। पर्याप्त स्थान होने पर हरियाली तथा फूल वाले वृक्ष व झाड़ियाँ भी लगायी जा सकती है। गाँवों के समीप तालाबों के किनारे, तथा सड़क के किनारों पर शोभाकारी वृक्ष जैसे– कचनार, अमलताश, गुलमोहर आदि लगाये जा सकते हैं। बड़े–बड़े हाइवे के डिवाइडर पर कनेर, बोगनविलिया, गुड़हल आदि लगाकर सजावट की जाती है।

(2) मनोरंजन का साधन (For Recreation):– आजकल मनुष्य मशीन की तरह दिन भर कार्य में व्यस्त रहता है, और जब घर लौटता है तो वह शारीरिक एवं मानसिक रूप से थका हुआ होता हैं। ऐसे समय उसे मनोरंजन की आवश्यकता होती है। इसके लिए घर पर बनी गृह पुष्प वाटिका सर्वाधिक उपयुक्त मानी गयी है। वहाँ के रंग बिरंगे फूलों की मन मोहक छटा उसकी दिन भर की थकान को दूर कर देती है। पार्कों में इस प्रकार मनोरंजन के लिए आने वाले व्यक्तियों की संख्या बढ़ रही है।

(3) आर्थिक महत्व (Economic importance):– आधुनिक युग भौतिक युग कहा जाता है, और अलंकृत पुष्प अब आय का

अच्छा साधन बन रहे हैं। फूलों की धार्मिक अवसरों, पूजन, स्वागत कार्यों, जन्मदिन, शादी जैसे उत्सवों पर मालाएँ, बुके, गजरे, बटन होल, कट फ्लावर, मण्डप सजाने आदि कार्यो के लिए अधिक माँग रहती है। इसके लिए विशेष रूप से गुलाब, चाँदनी, डहेलिया, गुलदावदी, गेंदा, एस्टर, फ्लाक्स, साल्विया आदि फूलों का उपयोग होता है। विभिन्न फूलों से सुगन्धित तेल व इत्र का निर्माण किया जाता हैं। भारत में गुलाब, चन्दन, चम्पा, चमेली, केवड़ा, यूकेलिप्टस, रजनीगंधा जैसे लगभग 1100 पौधे है जिनसे तेल निकालकर सुगन्ध और दवाओं में प्रयोग किया जाता है। इसके अलावा गुलाब जल, केवड़ा जल, गुलकन्द आदि बनाकर आय प्राप्त की जाती है। इन सभी से देश में लगभग दो लाख लोगों को रोजगार मिलता है और लगभग 20 करोड़ रूपये की आय प्रति वर्ष होती है।

(4) पर्यावरण की शुद्धता (Purification of environment):– विभिन्न कारणों जैसे बढ़ती जनसंख्या, औद्योगिकीकरण, मोटर वाहन आदि से वायुमण्डल में प्रदूषण बढ़ रहा है, जिसके कुप्रभाव मनुष्यों के स्वास्थ्य पर दिखायी पड़ रहे हैं। ऐसे समय में अलंकृत बागवानी में लगाये गये वृक्षों व पौधों से वातावरण को प्रदूषण रहित बनाया जा सकता है। पौधे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्वारा कार्बन डाई आक्साइड को ऑक्सीजन में बदलकर, वाष्पोत्सर्जन की क्रिया द्वारा वायुमण्डल के तापमान को नियन्त्रित करके, ध्वनि तरंगों को पत्तियों द्वारा कम (अवशोषित) करके एवं वर्षा को नियमित करके पर्यावरण की शुद्धता बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

(5) धार्मिक एवं आध्यात्मिक महत्व (Religious and Spiritual importance):– हमारे देश में अलंकृत पौधों का धार्मिक एवं आध्यात्मिक महत्व भी है, जैसे– कचनार के सफेद पुष्प का सम्बन्ध धन की देवी लक्ष्मी से, कदम्ब के वृक्ष का सम्बन्ध श्री कृष्ण से है और अमलताश के पुष्प व्यापार में समृद्धि बढ़ाने वाले माने जाते हैं। ताजा पुष्पों का उपयोग मंदिर, मजार, गुरूद्वारा एवं चर्च आदि पवित्र स्थानों पर किया जाता है। देवी देवताओं को पुष्प अर्पण करना एक प्राचीन परम्परा है, जो आज तक चली आ रही है। दक्षिण भारत में उगाये जाने वाले अधिकांश पुष्पों का प्रयोग पूजा अर्चना के लिए ही किया जाता है।

(6) औषधीय महत्व (Medicinal importance):– भारत में प्राचीन काल से आयुर्वेदिक पद्धति से रोगों का उपचार किया जाता है और जड़ी–बूटी औषधीय रूप में प्रयोग की जाती है। इसके कारण भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा 1972 में औषधीय एवं सुगन्धित पौधों पर अखिल भारतीय सुधार परियोजना चालू की गई जिसमें 8 मुख्य औषधीय फसलों – अफीम, ईसबगोल, सर्पगन्धा, सनाय, पायरेथ्रम, मुलहठी, फॉक्स ग्लोब व सदाबहार पर देश के विभिन्न भागों में अनुसंधान कार्य चल रहा है। नीम, तुलसी, गुग्गुल, सनाय आदि अनेक पौधों के भागों से आयुर्वेदिक, यूनानी, होम्योपेथिक तथा ऐलोपेथिक औषधियों का निर्माण किया जाता है।

(7) मृदा संरक्षण (Soil conservation):– पेड़–पौधों से आच्छादित भूमि पर जल एवं वायु द्वारा मृदा क्षरण कम होता है। खाली व रेगिस्तानी भूमि पर अलंकृत पौधे लगाकर भूमि के कटाव को रोका जा सकता है, हरसिंगार का पौधा इसके लिए विशेष उपयुक्त रहता है। पेड़–पौधों की जड़ें मिट्टी को बाँध कर रखती है और पत्तियाँ वर्षा की बूँदों का वेग कम करती है साथ ही भूमि पर गिरकर पलवार का काम भी करती है जिससे मृदा एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं जा पाती है।

**अलंकृत बागवानी का भविष्य (Scope of ornamental gardening)** :– भारत में विभिन्न प्रकार की जलवायु एवं भूमि पायी जाती है इस कारण वर्ष भर फूलों की खेती की जा सकती है। राजस्थान के जयपुर, अजमेर, उदयपुर, कोटा व अन्य शहरों के आस–पास फूलों की खेती की जा रही है, जिसमें गेंदा, गुलाब, गुलदावदी, रजनीगंधा, ग्लेडियोलस एवं मोगरा की खेती प्रमुख है। भारत व राजस्थान में अलंकृत बागवानी का उज्ज्वल भविष्य निम्नप्रकार दिखायी पड़ता है :–

(1) आजकल फूलमाला, बुके, कटफ्लावर आदि की माँग में तेजी से वृद्धि हो रही है।

(2) फूलों का उत्पादन वर्ष भर होते रहने से लगातार आय का साधन बन सकता है।

(3) अच्छी गुणवत्ता के फूलों के बीजों की माँग बढ़ रही है।

(4) खुशबू वाले फूल जैसे– मोगरा, चमेली, रजनीगंधा व गुलाब आदि।

(5) फूलों के अर्क का प्रयोग सौन्दर्य प्रसाधन, साबुन व क्रीम आदि बनाने में हो रहा है।

(6) घरों, होटलों व प्रतिष्ठानों आदि में बोनसाई (बौनेपोधे) की माँग बढ़ रही है।

(7) नये–नये कारखानों व नगरों का विकास हो रहा है जिनमें अलंकृत पौधों की माँग होना स्वाभाविक है।

(8) फूलों के निर्यात की प्रबल संभावनाएँ हैं, जिससे अधिक आय एवं विदेशी मुद्रा प्राप्त हो सकती है।

## उद्यान के प्रकार (Types of garden)

नये स्थान पर उद्यान स्थापित करने के लिए रेखांकनकर्ता एक कलाकार, सौन्दर्य पारखी, माली, शिल्पकार व वनस्पति विज्ञान का ज्ञाता होना चाहिए सुन्दरता एवं उपयोगिता का सम्मिश्रण एक अच्छे बगीचे में मिलना चाहिए। उपयोगिता के आधार पर उद्यानों के तीन प्रकार माने जाते हैं –

1. निजी उद्यान (Private garden)
2. सार्वजनिक उद्यान (Public garden)
3. शाला उद्यान (School garden)

**1. निजी उद्यान :– (Private Garden) :–** इस प्रकार के उद्यानों का निर्माण कोठियों, बंगलों आदि की सीमा के अन्दर वाले स्थानों में किया जाता है, जो क्षेत्रफल में सीमित होते हैं। इस प्रकार के उद्यान समतल भूमि पर बनाये जाते हैं। उद्यान में सभी अवयव संतुलित होते हैं। बगीचे की योजना में रेखाओं व कोणों को महत्व दिया जाता है। रास्ते और पगडण्डियों के दोनों ओर लगे पौधों और झाड़ियों में समरूपता रखी जाती है।

निजी उद्यानों में विशिष्ट वृक्षों, झाडियों व लताओं की संख्या सीमित रखी जाती है। मौसमी फूलों को अधिक महत्व दिया जाता है। छाया वाले स्थानों पर क्रोटन, फर्न, मोनेस्टेरा, कोलियस, पाम आदि रखकर सुन्दरता बढ़ाई जा सकती है। मकान के अन्दर खिड़कियों, बरामदे आदि में गमले व टोकरियाँ रखे जा सकते है। घर के सामने लॉन व उसके चारों तरफ फूलों की क्यारियाँ बनायी जाती है। कुछ वृक्ष व झाड़ियाँ जो रात्रि के समय अपनी सुगन्ध फैलाते हैं जैसे रात की रानी, गंधराज (*गार्डेनिया फ्लोरिडा*) को शयन कक्षों के दरवाजों और खिड़कियों के पास लगाया जा सकता है।

**निजी उद्यान योजना (Planning of Private garden) :–** निजी उद्यान घर का एक विशिष्ट भाग होता है जिसमें परिवारीजन अधिक समय तक रहते हैं और उसका समुचित उपयोग करते हैं। कुछ उद्यानविदों ने इसे बाहरी निवास (Out door living house) की संज्ञा दी है। जिस प्रकार भवन के अन्दर शयन कक्ष, बैठक कक्ष, स्नानघर, रसोईघर, शौचालय आदि का निर्माण किया जाता है, उसी प्रकार बाहरी निवास या निजी उद्यान का विभाजन निम्नलिखित तीन भागों में किया जाता है –

(i) जनहित भाग (Public area)
(ii) सेवाभाग (Service area)
(iii) व्यक्तिगत भाग (Private area)

**(i) जनहित भाग (Public area) –** इसका उपयोग विशेषकर इष्ट मित्रों, पारिवारिक सम्बन्धियों आदि के स्वागत हेतु किया जाता है। यह भाग भवन के ठीक सामने होता है। इसमें लॉन, फुहारा, अलंकृत वृक्ष व झाड़ियाँ लगायी जाती है।

**(ii) सेवा भाग (Service area) –** सामान्यतः यह भाग मकान के एक तरफ बनाया जाता है जिसमें पीछे का रास्ता व गैरेज आदि होते हैं। यहाँ दो छायादार वृक्ष लगाना उचित रहता है। कुछ खुला स्थान कपड़े आदि सुखाने के लिए रखा जाता है। सुन्दर झाड़ियाँ जैसे– बोगनविलिया, चाँदनी, रात की रानी आदि का उपयोग इस भाग को जनहित भाग से अलग करने के लिए किया जात है। पर्याप्त स्थान उपलब्ध होने पर इस भाग में बैडमिण्टन कोर्ट, किचन गार्डन आदि बनाये जा सकते हैं।

**(iii) व्यक्तिगत भाग (Private area) –** जिस प्रकार मकान में शयन कक्ष का उपयोग होता है, उसी प्रकार निजी उद्यान में व्यक्तिगत भाग का उपयोग होता है। परिवार के लिए उपयोगी इस भाग में टेनिस, बैडमिण्टन, मन्दिर, खेल मैदान, विभिन्न मौसमी फूलों की क्यारियाँ, तरणताल, एकान्त निवास कुंज, पहाड़ीनुमा बाग (Rockery), शेड हाउस आदि बनाये जा सकते हैं।

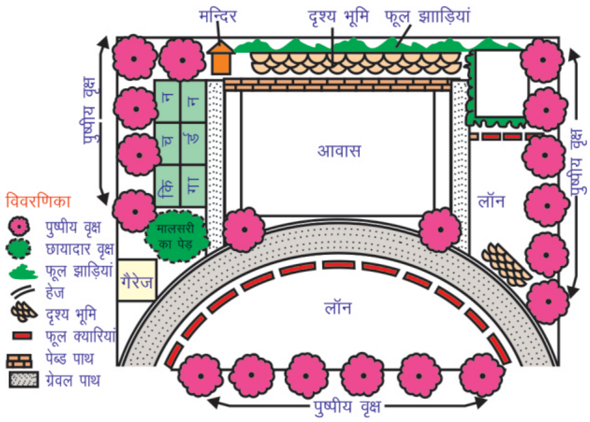


एक निजी उद्यान का रेखाचित्र
Layout Plan of Private Garden

**2. सार्वजनिक उद्यान (Public Garden) –** इस प्रकार के उद्यान शहरों में सार्वजनिक स्थानों जैसे– चिड़ियाघर, संग्रहालय, खेल मैदान अस्पताल परिसर आदि में बनाये जाते है। ये आकार में बड़े होते है। इन्हें नगर निगम, नगरपालिका या विकास

प्राधिकरणों के द्वारा बनाया जाता है। इनका उपयोग आम नागरिकों द्वारा किया जाता है। इसलिए इन्हें सार्वजनिक उद्यान कहते हैं। सार्वजनिक उद्यानों का निर्माण निम्नलिखित तीन शैलियों में किया जाता है –

(i) औपचारिक शैली उद्यान (Formal Style of Gardening)

(ii) अनौपचारिक शैली उद्यान (Informal Style of Gardening)

(iii) स्वतन्त्र शैली उद्यान (Free Style of Gardening)

**(1) औपचारिक शैली उद्यान (Formal Style of Gardening)** – इस विधि को ज्यामितीय (Geometrical) या सममित (Symmetrical) शैली भी कहते है। इन उद्यानों में प्रमुख रूप से दो तरफा संतुलन अपनाया जाता है। उद्यानों में लगभग बीचों बीच किसी प्रकार का भवन होता है जो मुख्य द्वार से एक पक्की सड़क द्वारा जुड़ा रहता है। यह सड़क सम्पूर्ण उद्यान को दो समान भागों में बाँटती है तथा सड़क के दोनों तरफ के भागों का निर्माण लगभग एक जैसा होता है। दोनों ओर एक सी सड़के, वृक्ष, झाडियाँ, क्यारियाँ, फुहारे, पानी की नाली आदि होते हैं। मुख्य सड़क पर खड़े होकर दोनों तरफ देखने पर दोनों भाग एक दूसरे के प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ते है। औपचारिक उद्यान में चारदीवारी, रास्ते, फुहारे, फूलों की क्यारियाँ, हरियाली (Lawn), मूर्तियाँ, सीटे, मण्डप, तोरण द्वार आदि होते हैं। इन उद्यानों की बनावट में भूमि की उपलब्धता विशेष महत्व रखती है। ताज गार्डन आगरा, शालीमार बाग कश्मीर, मुगल गार्डन दिल्ली इन उद्यानों के प्रमुख उदाहरण है।

**औपचारिक उद्यान शैली**

**(ii) अनौपचारिक शैली उद्यान (Informal Style of Gardening)** – अनौपचारिक उद्यानों में पौधों को प्राकृतिक रूप से उगाया जाता है और इनमें उद्यान का खाका अनौपचारिक होता है अर्थात् कोई दृढ़ नियम नहीं होता है। इन उद्यानों को प्राकृतिक रूप प्रदान करने के लिए पहाड़ियाँ, नदी, झरने, पुल, नाले, तालाब, टेड़े–मेड़े रास्ते या ऊँचे–नीचे स्थान बनाये जाते हैं। झील और तालाबों में जलीय जैसे कमल उगाकर सौन्दर्य बढ़ाया जाता है। अनौपचारिक उद्यानों में भूमि का तल एक सार नहीं होता, कहीं पर विशाल गड्ढे होते हैं तो कहीं रेत के ऊँचे–ऊँचे टीले व छोटी मोटी पहाड़ियाँ इन जगहों पर घास, वृक्ष फूल वाली झाड़ियाँ लगायी जाती है। ऐसे उद्यानों में जाने पर आगे आने वाले दृश्य का अनुमान लगाना कठिन होता है। इनमें आड़े–तिरछे रास्ते होते हैं और बैठने के लिए सीट्स नहीं लगायी जाती है। जापानी उद्यान इनके प्रमुख उदाहरण हैं।

अनौपचारिक उद्यान शैली

(iii) स्वतन्त्र शैली उद्यान (Free Style of Gardening)– इन उद्यानों को अपूर्व चित्र शैली या कलात्मक शैली उद्यान के नाम से भी जाना जाता है। इस प्रकार के उद्यानों में औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों शैलियों का मिश्रण पाया जाता है। औपचारिक उद्यान के अच्छे स्थलों व अनौपचारिक उद्यान के प्राकृतिक व आध्यात्मिक सौन्दर्य का मिश्रण करके इन्हें बनाया जाता है। इस प्रकार की शैली के उद्यानों का प्रचलन शहरों में धीरे–धीरे बढ़ता जा रहा है।

3. शाला उद्यान (School Garden) – शिक्षण संस्थाओं के चारों तरफ सुन्दर एवं स्वच्छ वातावरण का विशेष महत्व होता है। प्राचीन समय में गुरुकुल प्राकृतिक क्षेत्रों में शहरों से दूर स्थित होते

थे। इससे विद्यार्थियों में निरीक्षण की तीव्र शक्ति, धैर्य, एकाग्रता, विचारों का क्रम में व्यक्त करना रंग और रूप की समझ आदि मानसिक गुणों का विकास होता था। आज के समय में भी विद्यालय के लिए इसका विशेष महत्व है। वनस्पति शास्त्र एवं उद्यान विज्ञान जैसे विषयों की शिक्षा इन उद्यानों के बिना अपूर्ण व नीरस रहती है।

शाला उद्यानों में विद्यार्थियों के खेलने कूदने के लिए खुला स्थान रखा जाता है। चौड़े खुले स्थान के चारों तरफ मौसमी फूलों की क्यारियों, कुछ दूरी पर शर्बरी बार्डर, रोजरी, अलंकृत वृक्षों व झाडियों के समूह तथा फल वृक्षों की विभिन्न जातियाँ मिलकर एक उत्तम शाला उद्यान बनाते हैं। सार्वजनिक उद्यानों की किसी एक शैली को उपयुक्तता के अनुसार अपनाया जा सकता है। साधारणतया ये उद्यान औपचारिक शैली में बनाये जाते हैं।

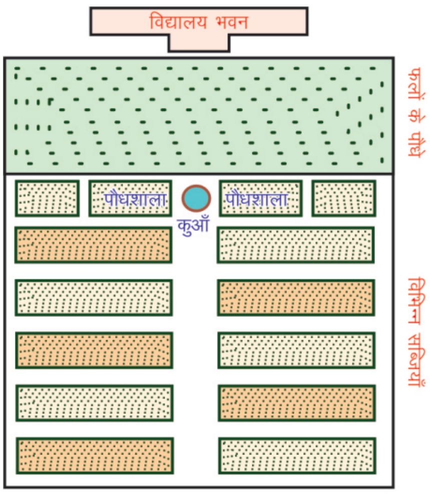

शाला उद्यान

अलंकृत पौधों का अध्ययन (Study of ornamental Plants)

अलंकृत वृक्ष (Ornamental Plant)

सम्राट अशोक के शासन काल से आज तक राजमार्गों, सड़कों आदि के किनारों पर वृक्षारोपण की परम्परा चली आ रही है। आजकल प्रत्येक गाँव, शहर, ऐतिहासिक इमारतों एवं मार्गों पर वृक्ष लगाये जा रहे हैं। इसके पीछे हमारा उद्देश्य इन स्थानों को सौन्दर्यपूर्ण बनाना है। साथ ही मनुष्य एवं प्रकृति को साथ लाना और ताजा एवं शुद्ध हवा प्रदान कराना है।

वर्तमान समय में एक तरफ जनसंख्या तीव्रगति से बढ़ रही है तो दूसरी ओर औद्योगिक विकास भी तीव्र गति से हो रहा है। बड़े–बड़े नगरों में दूषित वातावरण से छुटकारा दिलाने हेतु अब योजनाकारों ने इन क्षेत्रों में हरित पट्टियाँ, मनमोहक वाटिकाएँ और सड़कों के दोनों ओर वृक्षारोपण पर विशेष ध्यान देना प्रारम्भ कर दिया है। वृक्षों द्वारा कार्बन–डाइ–ऑक्साइड ग्रहण करके आक्सीजन प्रदान की जाती है जिससे $O_2$ व $CO_2$ का संतुलन बना रहता है। वृक्षों से छाया, लकड़ी की प्राप्ति के अलावा अनेक लाभ होते हैं। हमारे देश व राज्यों में विभिन्न प्रकार की मिट्टी एवं जलवायु पायी जाती है। अतः पौधों का चयन स्थान विशेष के अनुसार करना चाहिए। सजावटी/पुष्पदायी वृक्षों को प्रमुख रूप से निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है –

1. वृक्ष के आकार के अनुसार (Classification according to size of tree)–

(i) बड़े आकार के वृक्ष (Big Trees)

| सामान्य नाम | वानस्पतिक नाम |
|---|---|
| नीम | *Azadirachta indica* |
| सेमल | *Bombax malabaricum* |
| अशोक | *Polyalthea longifolia* |
| पिलखन | *Ficus infectoria* |
| बरगद | *Ficus benghalensis* |

(ii) मध्यम आकार के वृक्ष (Medium trees)

| सामान्य नाम | वानस्पतिक नाम |
|---|---|
| गुलमोहर | *Delonix regia* |
| गुलाबी कचनार | *Bauhinia purpuria* |
| जावा केशिया | *Cassia javanica* |
| पगूडा | *Erythrina indica* |

(iii) छोटे आकार के वृक्ष (Small trees)

| सामान्य नाम | वानस्पतिक नाम |
|---|---|
| कचनार सफेद | *Bauhinia variegata* |
| गुलाबी केशिया | *Cassia renigera* |
| चैतियन | *Alstonia scholaris* |
| चम्पा | *Plumeria alba* |
| आस्ट्रेलियन बबूल | *Acacia auriculifarmis* |

2. सुन्दरता के अनुसार

(i) फूलों के लिए –

| सामान्य नाम | वानस्पतिक नाम |
|---|---|
| नीला गुल मोहर | *Jacaranda mimosaefolia* |
| गुलाबी कचनार | *Bauhinia purpurea* |

| | |
|---|---|
| आकाश नीम | *Millingtonia hortensis* |
| जावा केशिया | *Cassia javanica* |
| महुआ | *Madhuca latifolia* |
| कदम्ब | *Anthocephalus cadamba* |
| सफेद चम्पा | *Plumeria rubra* |
| जरूल | *Lagerstroemia speciosa* |

(ii) पत्तियों की सुन्दरता के लिए–

| **सामान्य नाम** | **वानस्पतिक नाम** |
|---|---|
| पुत्रनजीवा | *Putranjiva roxburghii* |
| बोतल ब्रुश | *Callistemon lanceolatus* |
| सफेदा | *Eucalyptus citrodora* |
| अशोक | *Saraca indica* |
| पारस पीपल | *Thespesia populnea* |

3. वृक्ष लगाने के उद्देश्य के अनुसार (Classification according to objects)

(अ) सड़कों के किनारे के लिए –

| **सामान्य नाम** | **वानस्पतिक नाम** |
|---|---|
| सफेदा प्रजाति | *Eucalyptus sp* |
| पॉपुलर सफेद | *Populus alba* |
| कमरख | *Averrhoa carambola* |
| देवदार | *Cedrus deodara* |
| स्पेठोदिया | *Spathodia nilotica* |

(ब) समूह में लगाने के लिए –

| **सामान्य नाम** | **वानस्पतिक नाम** |
|---|---|
| अमलतास | *Cassia fistula* |
| अर्जुन | *Terminalia arjuna* |
| बरौना | *Crataeva nurvala* |
| बकैन नीम | *Melia azadirach* |
| गलगल गुनेरी | *Cochlospermum velegiosum* |

(स) नमूने के रूप में लगाने के लिए –

| **सामान्य नाम** | **वानस्पतिक नाम** |
|---|---|
| बेल | *Aegle marmelos* |
| गोरख इमली | *Adansonia digitata* |
| सेमल | *Bombax malabaricum* |
| बिगोनिया | *Bigonia crispa* |
| चाल्टा | *Dilenia indica* |

(द) नदी के किनारे के लिए –

| **सामान्य नाम** | **वानस्पतिक नाम** |
|---|---|

## एवेन्यू (Avenue)

" जब वृक्ष सीधी लाइन में सड़क के दोनों किनारों की ओर लगाये जाते हैं तो उन्हें मार्ग एवेन्यू (Roadside avenues) कहते हैं "

एवेन्यू को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है –

1. बगीचे के अन्दर एवेन्यू (Inside garden avenue)
2. राजमार्ग एवेन्यू (Highway avenue)

1. बगीचे के अन्दर एवेन्यू – इसमें अलंकृत वृक्ष बगीचे में सड़क के दोनों ओर बगीचे के अनुसार लगाये जाते हैं। अलग–अलग सड़क पर अलग–अलग प्रकार के पौधे लगाते हैं जो वर्ष में अलग–अलग समय पर फूल देकर सुन्दरता बढ़ाते हैं।

2. राजमार्ग एवेन्यू – इसमें बड़े छायादार, फूल व फल देने वाले वृक्षों को सड़क के दोनों तरफ दो या तीन लाइनों में लगाया जाता है। जिससे सड़क पर छाया मिलती है और सड़क की सुन्दरता बढ़ती है।

**राजमार्ग एवेन्यू**

महानगरों में स्थान विशेष की जलवायु को ध्यान में रखकर फूल आने के समय व रंग के अनुसार वृक्ष लगाये जाते है इसे रंग योजना (Colour Scheme) कहते हैं। कुछ रंग योजनाएँ निम्न प्रकार है।

योजना - I

| क्र.सं. | वृक्ष का नाम | वानस्पतिक नाम | फूल का रंग |
|---|---|---|---|
| 1 | अमलतास | *Cassia fistula* | पीला |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 2. | गुलमोहर | *Delonix regia* | स्कॉरलेट नारंगी |
| 3. | अमलतास | *Cassia fistula* | पीला |

योजना - II

| क्र.सं. | वृक्ष का नाम | वानस्पतिक नाम | फूल का रंग |
|---|---|---|---|
| 1 | नीला गुलमोहर | *Jacaranda mimosaefolia* | नीला |
| 2. | सिल्वर ओक | *Gravillea robusta* | पीला |
| 3. | नीला गुलमोहर | *Jacaranda mimosaefolia* | नीला |

योजना - III

| क्र.सं. | वृक्ष का नाम | वानस्पतिक नाम | फूल का रंग |
|---|---|---|---|
| 1 | गुलाबी कचनार | *Bauhinia purpurea* | हल्का गुलाबी |
| 2. | सफेद कचनार | *B. alba* | सफेद |
| 3. | पीला कचनार | *B. Krugii* | हल्का पीला |
| 4. | कचनार | *B. variegata* | बैंगनी नीला |

### एवेन्यू के लिए पौधे लगाना एवं देखभाल (Care and Planting of Avenue Trees)-

गड्ढे खोदना व पौधे रोपना – वृक्ष लगाने के लिए 1मी. x 3मी. x 1मी. आकार के गड्ढे खोदे जाते हैं। गड्ढों का आपसी अन्तर वृक्षों की ऊँचाई व आकर के अनुसार रखा जाता है। कम ऊँचाई वाले पौधों के लिए 1 से 3 मीटर, मध्यम ऊँचाई वाले पौधों के लिए 6–8 मीटर तथा अधिक ऊँचाई वाले पौधों के लिए 10–12 मीटर की दूरी पर गड्ढे खोदने चाहिए। इन गड्ढों को कम से कम एक सप्ताह तक खुला रख कर निकाली गई मिट्टी में एक भाग गोबर की सड़ी खाद, 1 भाग पत्ती की खाद, 1 भाग चिकनी मिट्टी व 50–75 ग्राम/गड्ढा मिथाइल पेराथियान चूर्ण मिलाकर भर देते हैं।

सदाबहार पौधों को रोपने का उपयुक्त समय जुलाई–अगस्त तथा पतझड़ वाले पौधों को रोपने का सही समय फरवरी–मार्च होता है। पौधे के पिण्ड के अनुसार तैयार गड्ढों के बीच में पौधा लगाकर तुरन्त हल्की सिचाई कर देनी चाहिए।

देखभाल – रास्तों पर मनुष्यों एवं पशुओं का आवागमन बना रहता है। अतः नये लगाये पौधों के बचाव हेतु ड्रमों या ईंटों की जाली अथवा लोहे की सरिया से निर्मित ट्री गार्ड्स लगाने चाहिए इसके अलावा समय–समय पर निराई गुड़ाई, खाद–उर्वरक, सिंचाई, काट छाँट, संधाई आदि का ध्यान रखना चाहिए।

## झाड़ियाँ (Shrubs)

ऐसे बहुवर्षीय पौधे जिनमे भूमि की सतह के समीप से अनेक स्थायी काष्ठीय तने निकलते हैं। झाड़ी कहलातें हैं। झाड़ियाँ 2 से 4 मीटर ऊँची, काष्ठीय, अर्द्ध–काष्ठीय या शाकीय व स्थायी प्रकृति की होती हैं।

### झाड़ियों के सामान्य उपयोग

झाड़ियों के सामान्यतया निम्नलिखित उपयोग होते है–

1. झाड़ियाँ उद्यान का प्रमुख अंग होती है। जब इन्हें ऊँचे वृक्षों की श्रृंखला में लगाया जाता है तो ये स्थान विशेष की सुन्दरता को बढ़ा देती है।
2. काट छाँट करके झाड़ियों से विभिन्न प्रकार की आकृतियों का निर्माण किया जाता है जिससे उद्यान अधिक सुन्दर दिखाई देता है।
3. बाड़ (Hedge) लगाकर सीमांकन एवं सुरक्षा के लिए झाड़ियों का उपयोग किया जाता है।
4. बड़े उद्यानों को सीमित करने, नौकरों के मकानों, गृह वाटिका, व खेल मैदानों को आड़ देने के लिए झाड़ियाँ उपयोगी होती है।
5. गर्मियों में गर्म एवं सर्दियों में सर्द हवाओं से बचाव के लिए इनका उपयोग किया जा सकता है।
6. अभद्र दृश्यों को छिपाने के लिए झाड़ियाँ उपयोगी होती है।
7. कुछ झाड़ियों जैसे चमेली आदि के सुन्दर पुष्पों से आय प्राप्त होती है।
8. सुनियोजित तरीके से झुरमुट (Shrubberies) तैयार करके मनोरम दृश्य बनाया जा सकता है।

ऊँचाई के आधार पर झाड़ियाँ निम्न प्रकार की होती हैं –

### झाड़ियाँ लगाने के सामान्य सिद्धान्त :–

1. झाड़ियों को बड़े छायादार वृक्षों और भवनों की छाया में नहीं लगाना चाहिए।
2. अच्छे प्रभाव के लिए झाड़ियों को पूर्व एवं दक्षिण दिशा में लगाना चाहिए।
3. झाड़ियों को सम्भवतया बड़े वृक्षों के समक्ष उगाना चाहिए जिससे ये देखने में सुन्दर दिखाई देती है।

## अधिक ऊँचाई वाली झाड़ियाँ

| क्र.सं. | झाड़ी का नाम | ऊँचाई (मी.) | फूल/पत्तियों का रंग | फूल आने का समय | प्रवर्धन की विधि |
|---|---|---|---|---|---|
| 1 | *हिबिस्कस रोजा साइनेन्सिस* | 2–2.5 | क्रीम लाल | नव.–दिसम्बर | बीज व कलम |
| 2 | *डुरैन्टा प्लयूमेराई* | 2–2.5 | नीला | अक्टू.–दिसम्बर | बीज व कलम |
| 3 | *मोराया ऐक्जोटिका* | 2.5–3.0 | सफेद | फर.–दिसम्बर | बीज,दाब |
| 4 | *थेवटिया नैरिफोलिया* | 2.5–3.0 | पीला | वर्ष भर | बीज, कलम |
| 5 | *हमेलिया पेटन्स* | 2.5–3.0 | नारंगी लाल | वर्ष भर | कलम |
| 6 | *पोइनशिया पुल्चरीमा* | 3–3.5 | पीला व लाल | दिस.–मार्च | कलम,दाब |
| 7 | *लेजिस्ट्रोमीया इंडिका* | 2–3.0 | गुलाबी | मई–अगस्त | बीज, कलम |
| 8 | *लेन्टाना केमरा* | 2–3.0 | लाल,पीला,नांरगी | वर्ष भर | कलम, बीज |
| 9 | *टिकोमा स्टेन्स* | 3–3.5 | पीला | वर्ष भर | बीज, कलम |
| 10 | *बुडेलिया मेडागास्करेन्सिस* | 2–3.0 | लाल, बैंगनीपन लिए | बसन्त ऋतु | कलम, दाब |

## मध्यम ऊँचाई वाली झाड़ियाँ

| क्र.सं. | झाड़ी का नाम | ऊँचाई (मी.) | फूल/पत्तियों का रंग | फूल आने का समय | प्रवर्धन की विधि |
|---|---|---|---|---|---|
| 1 | *एकेलिफा स्पी.* | 1.5–2.0 | किरमिजी, रंगबिरंगी पत्तियाँ | वर्ष भर | कलम |
| 2 | *बुडेलिया एशियाटिका* | 1.5–2.0 | सफेद फूल, चाँदी जैसी सफेद पत्तियाँ | शरद ऋतु | कलम, दाब |
| 3 | *जैसमिनम सेमबेक* | 1.5–2.0 | सफेद | जुलाई–अगस्त | दाब |
| 4 | *सेस्ट्रम ओरेन्टिकम* | 1.5–2.5 | पीले गुलाबी | वर्ष भर | दाब |
| 5 | *सेस्ट्रम नॉकटर्नम* | 1.5–2.25 | पीले, सफेद | फरवरी–सितम्बर | दाब |
| 6 | *क्रोटोन स्पी.* | 2.0–2.5 | सुनहरी, चित्तीदार पत्तियाँ | वर्ष भर | कलम |
| 7 | *केलन्ड्रा हाईब्रिडा* | 2.0–2.5 | लाल | फरवरी–सितम्बर | कलम |
| 8 | *अकेशिया बाइफ्लोरा* | 1.5–2.5 | पीला | वर्ष भर | बीज, कलम |
| 9 | *टिकोमा केपेन्सिस* | 1.2–1.5 | गुलाबी, लाल | वर्ष भर | दाब, कलम |
| 10 | *बुडेलिया डायवर्सिफोलिया* | 1.–1.5 | लाल,बैंगनीपन लिए हुए | बसन्त ऋतु | कलम, दाब |

## छोटी झाड़ियाँ

| क्र.सं. | झाड़ी का नाम | ऊँचाई (मी.) | फूल/पत्तियों का रंग | फूल आने का समय | प्रवर्धन की विधि |
|---|---|---|---|---|---|
| 1 | *एकेलिफा मेकाफिकाना* | 1.0–1.25 | लाल, ताँबे के रंग की पत्तियाँ | वर्ष भर | कलम |
| 2 | *बारलेरिया क्रिस्टाटा* | 0.6–1.2 | नीले, बैगनी | शरद ऋतु की समाप्ति और वर्षा ऋतु में | कलम |
| 3 | *डीडाला केन्थस स्पी.* | 1.0–1.2 | नीले फूल | शरद ऋतु की समाप्ति | बीज व कलम |
| 4 | *इरेन्थिमम स्पी.* | .5–1.0 | बैगनी फूल व पीले रंग की पत्तियाँ | वर्ष भर | कलम |
| 5 | *पेडलेन्थस स्पी.* | .5–1.0 | सफेद पीलापन लिए फूल व हरी पत्तियाँ | वर्ष भर | बीज व कलम |
| 6 | *लेन्टाना सेलोविना* | 1.0–1.5 | क्रीमी सफेद | वर्ष भर | बीज व कलम |
| 7 | *रूजेलिया जुन्सिया* | .5–1.0 | लाल | वर्ष भर | विभाजन द्वारा |
| 8 | *क्रोटोलेरिया* | 1.0–1.25 | पीला | अगस्त–सित. | कलम |

### लता वाली झाड़ियाँ

| क्र.सं. | झाड़ी का नाम | ऊँचाई (मी.) | फूल/पत्तियों का रंग | फूल आने का समय | प्रवर्धन की विधि |
|---|---|---|---|---|---|
| 1 | *बोगनविलिया स्पी.* | 1.25–3.0 | लाल, पीली, गुलाबी, विभिन्न रंग | नवम्बर–अप्रैल | कलम |
| 2 | *टिकोमा कैम्पनसिस* | 1.25–2.0 | नारंगी, लाल | वर्ष भर | बीज व कलम |
| 3 | *जैसमिनम ग्रान्डीफ्लोरम* | 1.0–1.5 | ऊपर सफेद, नीचे लाल | अप्रैल–सित. | कलम |

4. मकान के पास कम ऊँचाई वाली तथा दूर अधिक ऊँचाई वाली झाड़ियाँ लगानी चाहिए।

5. बड़े उद्यानों में सीमा विभाजन के लिए झाड़ियों को लगाना चाहिए।

6. झुरमुट में झाड़ियों की ऊँचाई के अनुसार चौड़ी क्यारियाँ बनानी चाहिए।

**झाड़ियाँ लगाने की प्रमुख कृषि क्रियाएँ –** झाड़ियाँ बनाने के लिए निम्नलिखित क्रियाएँ की जाती है –

1. भूमि का चयन :– झाड़ियाँ लगाने के लिए उचित जल निकास वाली, जीवांश युक्त, उर्वरता वाली भूमि उपयुक्त रहती है। भूमि में कठोर परत नहीं होनी चाहिए। झाड़ियाँ लगाने के स्थान पर पर्याप्त सूर्य का प्रकाश उपलब्ध रहना चाहिए।

2. स्थान की तैयार :– स्थान के चयन करने के पश्चात् झाड़ियाँ लगाने से 15–20 दिन पूर्व जिस स्थान पर पौधे लगाने हो वहाँ अधिक ऊँचाई वाली झाड़ियों के लिए 3–5 मी., मध्यम ऊँचाई वाली झाड़ियों के लिए 2 से 2.5 मी. तथा छोटी झाड़ियों के लिए 1–1.5 मी. की दूरी पर 45–60 सेमी आकार के गड्ढे खोदकर इनकी मिट्टी को कुछ दिन खुला छोड़ देते हैं। बाद में प्रत्येक गड्ढे में पर्याप्त मात्रा में गोबर की खाद या कम्पोस्ट खाद मिट्टी में मिलाकर भर देते हैं।

3. झाड़ियाँ लगाने का समय – झाड़ियाँ लगाने का सर्वोत्तम समय जुलाई से सितम्बर तक होता है। जहाँ पर पर्याप्त मात्रा में पानी की उपलब्धता हो वहाँ फरवरी मार्च में भी झाड़ियाँ लगायी जा सकती हैं।

4. झाड़ियाँ लगाने की विधि :– झाड़ियाँ लगाते समय पौधों की वृद्धि, फूलने का समय, फूलों का रंग पौधों की ऊँचाई व आकृति आदि को ध्यान में रखा जाता है। पतझड़ वाली झाड़ियाँ कभी भी घर के सामने नहीं लगानी चाहिए। पौधे लगाते समय मिट्टी का पिण्ड (earth ball) टूटना नहीं चाहिए। पौधे रोपने का सर्वोत्तम समय सांय काल होता है। तैयार किये गये गड्ढे में पौधे को रख कर आसपास की मिट्टी को भली भाँति दबा देना चाहिए। पौधे लगाने के पश्चात् हल्की सिंचाई कर देनी चाहिए।

5. उर्वरक देना – पौधों की उचित बढ़वार हेतु निम्न लिखित उर्वरकों का मिश्रण बनाकर 15 किग्रा/1000 वर्ग मीटर की दर से वर्ष में दो बार (मई एवं सितम्बर) डालना चाहिए।

यूरिया– 200 किग्रा

सिंगल सुपर फॉस्फेट– 500 किग्रा

म्यूरेट ऑफ पोटाश – 125 किग्रा

उर्वरक मिश्रण काट–छाँट के पश्चात् डालना चाहिए और उर्वरक डालने के बाद हल्की सिंचाई कर देनी चाहिए।

6. सिंचाई – सिंचाई भूमि की किस्म मौसम आदि कारकों पर निर्भर करती है। फिर भी ग्रीष्म ऋतु में 3–4 दिन के अन्तर पर तथा शीत ऋतु में 10–15 दिन के अन्तर पर सिंचाई करनी चाहिए। वर्षा ऋतु में यदि लम्बे अन्तराल तक वर्षा न हो तो सिंचाई करनी चाहिए।

7. निराई गुड़ाई – झाड़ियों की समुचित बढ़वार के लिए वर्ष में 4–5 बार निराई गुड़ाई करना पर्याप्त होता है। निराई गुड़ाई से खरपतवारों के नष्ट होने के साथ–साथ भूमि मे वायु संचार और जल शोषण क्षमता बढ़ती है।

8. कटाई छँटाई –झाड़ियों में काट–छाँट का विशेष महत्व होता है। यह कार्य पौधों को विशेष आकार एवं ऊँचाई देने के लिए किया जाता है। काट छाँट का कार्य सर्दियों के अन्त में करना चाहिए। जिससे बसन्त में नयी शाखाऐं विकसित हो जाती है। जिन झाड़ियों में फूल पुरानी शाखाओं पर आते हैं उनमें काट छाँट फूल खिलकर समाप्त होने पर करनी चाहिए। काट–छाँट का कार्य तेजधार वाले सिकेटियर अथवा प्रूनिंग चाकू से करना चाहिए।

## लताएँ (Climbers)

''लता अथवा बेल पौधों का वह समूह है जो किसी विशेष संरचनाओं के सहारे किसी दीवार, ढाँचे या वृक्षों पर ऊपर की ओर चढ़ते हैं।'' ये पौधे बिना किसी आधार के खड़े नहीं रह

पाते, ऊपर चढ़ने/फैलने के लिए जो विशेष संरचनाएँ पायी जाती हैं। उनमे प्रतान (Tendrils) परिवर्तित पर्णवृन्त (Modified leafstalks) वायुवीय अपस्थानिक जड़े (Rootlets) अथवा कंटक (Hook like thorns) प्रमुख है। कुछ लताएँ ऐसी होती है जो ऊपर नहीं चढ़ पाती और नीचे ही फैलती है इन्हें विसर्पी/बेल (Creepers) कहते हैं। कुछ बिना विशेष संरचनाओं के सहारे अथवा पौधों में लिपटकर चढ़ती है इन्हें वल्लरी/आरोही (Twinner) कहते हैं।

सामान्यतया लताओं को निम्नलिखित उपयोग में लिया जाता है –

1. मकान की दीवार, पार्किंग अथवा बड़े, छोटे हिस्से को विभक्त करने के लिए।

2. छाया करने के लिए छतर बनाने, लताकुंज को ढकने, या इनके द्वारा दरवाजे की शक्ल प्रदान करने के लिए।

3. वृक्ष या किसी ऊँचे नीचे स्थान पर खाली जगह को ढकने के लिए।

## लताओं के प्रकार

वृद्धि की आदत (Growth habit), आकृति (Appearance), उपयुक्तता (Suitability) एवं उपयोगिता (Utility) के आधार पर लताओं को अनेक समूहों में बाँटा जा सकता है। कुछ प्रमुख समूह निम्न प्रकार है–

1. एक वर्षीय लताएं (Annual climbers)– ऐसी लताएँ जो अपना जीवन चक्र (वृद्धि, विकास, पुष्पन एवं बीज आदि) एक वर्ष में पूरा कर लेती हैं एक वर्षीय लताएँ कहलाती हैं। ये मुख्य रूप से बीज बोकर तैयार की जाती हैं, और ये शीघ्रता से तैयार हो जाती हैं जैसे – स्वीट पी, मार्निंग ग्लोरी, नास्ट्रेशियम आदि।

2. पत्तियों वाली लताएँ – इस समूह में मुख्यतः सुन्दर पत्तियों के लिए उगाई जाने वाली लताएँ आती हैं। ये लताऐं छायादार स्थानों एवं अन्तः गृह उद्यानों के लिए सदैव उपयुक्त रहती हैं जैसे मनी प्लांट, मोनेस्टेरा, फिलोडेन्ड्रान, सतावर आदि।

3. सुन्दर पुष्पों वाली लताएँ – ये लताएँ मुख्य रूप से आकर्षक व रंग बिरंगे फूलों के लिए उगायी जाती हैं, जो एक वर्षीय, द्विवर्षीय या बहुवर्षीय हो सकती हैं जैसे बोगनविलिया, क्लोरोडेन्ड्रोन, बिगनोनिया, राखी बेल *(Passiflora edulis)*

4. सुगन्धित पुष्पों वाली लताएँ – इन लताओं के पुष्प सुगंधित होते हैं जिससे वातावरण सुगन्धित एवं आनन्ददायक बन जाता है। जैसे – गुलाब की किस्में, चमेली, रंगूनलता, क्लिमेटिस, बत्तखबेल आदि।

5. छायादार स्थान के लिए लताएँ – ऐसी लताऐं छायादार स्थानों पर अच्छी वृद्धि करती हैं। जैसे रेल्वे क्रीपर, क्लोरोडेन्ड्रोन, आइपोमिया, ऐसपेरागस, पोटेटोक्रीपर आदि।

6. बाड़ के रूप में लताएँ – इन लताओं को घरों बगीचों आदि में सुरक्षा हेतु बाड़ के रूप में लगाया जाता है जैसे बोगन विलिया, गुलाब, क्लोरोडेन्ड्रोन आदि।

7. गमलों के लिए लताएँ – इन लताओं को गमलों में लगाया जा सकता है। इन्हें विभिन्न मौसम में या घर में जगह बदल कर लगाया जा सकता है जैसे क्लाइटोरिया, एसपेरागस, पोथास (मनीप्लांट) आदि ।

लताओं का प्रसारण एवं देखभाल – अधिकांश लताओं को कलम एंव दाब विधि द्वारा वर्षा ऋतु में आसानी से तैयार किया जा सकता है। कुछ लताएँ जिनमें बीज बनते हैं। उनकी वर्षा ऋतु या शरद ऋतु में बीज बोकर पौधे तैयार करते हैं। तैयार पौधें को उखाड़कर वांछित स्थान पर लगा देते हैं। कलम द्वारा तैयार होने वाली लताओं में बोगनविलिया, विगनोनिया, क्लोरोडेन्ड्रोन, राखीबेल, बत्तख बेल आदि प्रमुख है। एन्टीगोनन, स्वीट पी, आइपोमिया, क्लाइटोरिया आदि बीज द्वारा तैयार की जाने वाली लताएँ है।

लताओं को मण्डप, गुंबजाकार या शिखराकार बनाया जा सकता है। घास के बड़े मैदानों अथवा फुटपाथ के दोनों तरफ लोहे की छतरियाँ बनाकर इन्हें काट–छाँटकर इस रूप में ढाला जा सकता है।

लताओं को प्रायः पानी की अधिक आवश्यकता रहती है इनकी कटाई–छँटाई फूल आने के मौसम से पहले करनी चाहिए, जिससे नई बढ़त अधिक होती है और फूल ज्यादा आते हैं कटाई–छँटाई के बाद उपयुक्त मात्रा में खाद उर्वरक देने से पौधों का स्वास्थ्य अच्छा रहता है। खाद के रूप में गोबर अथवा पत्तियों की सड़ी खाद का प्रयोग करना चाहिए साथ ही वर्ष दो बार मिथाइल पैराथियान चूर्ण 50 ग्राम/पौधा प्रयोग करना चाहिए जिससे दीमक आदि भूमिगत कीटों से बचाव होता रहता है।

## मौसमी पुष्पों का अध्ययन

ऐसे पौधे जो अपना जीवन चक्र एक वर्ष या एक मौसम में पूरा कर लेते हैं मौसमी फूल वाले या एक वर्षीय पौधे कहलाते

हैं। इनमें से अधिकांश अपना जीवन 3 से 6 माह में पूर्ण कर लेते हैं। इस सीमित समय में इनका अंकुरण, वृद्धि, फूल व अन्त में बीज बनकर पौधा समाप्त हो जाता है। इनमें विभिन्न रंग व आकार पाये जाते हैं। मौसमी पौधों को विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उगाया जाता है जिनमें निम्नलिखित उद्देश्य प्रमुख है –

1. क्यारियों में लगाने के लिए – इन्हें सामूहिक रूप से क्यारियों में उगाया जाता है जिससे सुन्दर दृश्य प्रस्तुत किया जा सके। कभी–2 बाजार में बिक्री अथवा बीज उत्पादन के लिए भी उगाया जाता है। एस्टर, बरवीना, डहेलिया, गेंदा, पेंजी, फ्लाक्स, कार्नेशन, नस्टरसियम, साल्विया, जीनिया, बालसम, गैलार्डिया, पोर्चुलाका आदि क्यारियों में उगाने के लिए उपयुक्त रहते हैं।

2. गमलों में उगाने के लिए – निम्नलिखित पौधों को गमलों में उगाया जाता है – एस्टर, गेंदा, पेंजी, कार्नेशन, एन्टीराइनम, पिटूनिया, बरवीना जीनिया, फ्लाक्स, काक्स कोम्ब आदि।

3. सड़क या रास्ते के किनारों पर लगाने के लिए – अजरेटम, कैण्डीटफ्ट, डहेलिया, फ्लाक्स, ब्राचीकोम, सूरजमुखी, पिटूनिया, स्वीटएलाइसम।

4. सुगन्ध के लिए – फ्लाक्स, नस्टरसियम, स्वीवट पी, स्वीट एलाइसम, स्वीट सुल्तान, स्टॉक, मिगनोनेट, कार्नेशन, बरबीना आदि।

5. शैल उद्यानों के लिए – बरवीना, नस्टरसियम, फ्लाक्स, जीनिया।

6. लटकती टोकरियों में लगाने के लिए– स्वीट एलाइसम, डैजी, बरवीना, नस्टरसियम, फ्लाक्स, पोर्चुलाका, टोरेन्सिया आदि।

7. ट्रेलिस को ढकने और स्तम्भों पर चढ़ाने के लिए– स्वीट पी, मार्निंग ग्लोरी, नस्टरसियम आदि।

8. भूमि ढकने के लिए – पेंजी, पोर्चुलाका, बरवीना, स्वीट एलाइसम आदि।

9. कटफ्लावर के लिए– कार्नेशन, एस्टर, स्वीट पी, स्वीट विलियम, हेलीक्राइसम, कार्नफ्लावर, स्वीट सुल्तान, डहेलिया, लार्कस्पर आदि।

10. खिले फूलों के लिए – सनफ्लावर, जीनिया, गैलार्डिया, क्राईसेन्थीमस, एस्टर, गेंदा आदि।

11. पत्तियों द्वारा सुन्दरता के लिए– अमरेन्थस, कोचिया, काक्सकोम्ब, एस्टर, गेंदा आदि।

12. छायादार क्षेत्र के लिए – साल्विया, सिनेरेरिया।

## एक वर्षीय फूलों की खेती

1. भूमि का चयन एंव तैयारी– एक वर्षीय पौधों के लिए ऐसी खेती दोमट, भूमि का चयन करना चाहिए जिसमें पर्याप्त मात्रा में जीवांश पदार्थ, सिचाई एंव जल निकास की समुचित व्यवस्था हो। भूमि के नीचे कठोर परत नहीं होनी चाहिए।

भूमि के चयन के पश्चात् उसमें 30 सेमी. गहराई तक खुदाई करके कंकड पत्थर व फसल अवशेषों को बाहर निकाल देना चाहिए। 25–30 क्विन्टल गोबर की खाद या कम्पोस्ट खाद प्रति 1000 वर्गमीटर की दर से भूमि में मिलाते हैं। और भूमि को समतल कर देते हैं।

2. पौध तैयार करना – पौध तैयार करने के लिए 3.2मी. X 0. 6मी. आकार की भूमि से 15सेमी. ऊँची उठी क्यारियाँ बनाते हैं। दो क्यारियों के मध्य 30 सेमी. चौड़ी नाली रखते हैं। इन क्यारियों में 5 से 6 सेमी. की दूरी पर 0.5 से 1.0 सेमी. गहराई में बीजों की बुआई के बाद मिट्टी की बारीक परत से ढक देते हैं और सुबह–शाम झारे से पानी का छिड़काव करते हैं। दो से तीन दिन में बीजों का अंकुरण हो जाता है और 4 से 5 सप्ताह में पौध रोपने योग्य हो जाती है। यदि पौध में रोग अथवा कीड़ों का प्रकोप दिखाई दे तो आवश्यकतानुसार फफूँदीनाशी/कीटनाशी दवा का छिड़काव करते हैं।

3. पौध रोपण – जब पौध रोपने योग्य हो जाते हैं। तो उन्हें क्यारियों, गमलों आदि में रोप दिया जाता है। क्यारियों में पौधों की रोपाई उनकी ऊँचाई के अनुसार करते हैं अधिक ऊँचाई वाले पौधों का 45–50 सेमी., मध्यम ऊँचाई वाले 35–45 सेमी. व बौने पौधे 15–30 सेमी. की दूरी पर रोपण करते हैं। पौधों की रोपाई शाम के समय करनी चाहिए और रोपाई के पश्चात् हल्की सिचाई कर देनी चाहिए।

4. सिंचाई – आमतौर पर सिंचाई भूमि की किस्म, जलवायु और उगाये जाने वाले पौधों की प्रकृति के आधार पर निर्भर करती है। ग्रीष्मकाल में 4–5 दिन के अन्तर पर शीतऋतु में 10–15 दिन के अन्तर पर सिंचाई करनी चाहिए। वर्षा ऋतु में प्रायः सिचाई की आवश्यकता नहीं रहती है। रेतीली भूमि में दोमट भूमि की अपेक्षा अधिक सिंचाईयाँ करनी चाहिए।

5. खरपतवार नियन्त्रण – खरपतवारों की रोकथाम करने के लिए समय–2 पर खुर्पी की सहायता से खरपतवार निकालते रहना चाहिए। खरपतवार निकालते समय खुर्पी अधिक गहराई तक नहीं चलातें अन्यथा जड़े कटने का भय रहता है।

6. खाद व उर्वरक– पौधों की उचित बढ़वार की दृष्टि से निम्नलिखित उर्वरकों का मिश्रण उपयुक्त रहता है –

यूरिया– 100 किग्रा

सिगल सुपर फास्फेट– 200 किग्रा

म्यूरेट ऑफ पोटाश – 75 किग्रा

उपरोक्त मिश्रण 10 किग्रा प्रति 1000 वर्गमीटर की दर से भूमि में मिला देना चाहिए उर्वरक मिलाते समय भूमि में पर्याप्त नमी होनी चाहिए।

7. पादप संरक्षण– एक वर्षीय पौधों में सामान्यतया विल्ट, फफूँदी, पत्ती धब्बा आदि रोग लगते है जिनकी रोकथाम के लिए डाइथेन एम–45 आदि कवकनाशी दवा का छिड़काव करना चाहिए। इन पौधों में बीविल, आरामक्खी, सफेदलट, आदि कीट हानि पहुँचाते हैं। इन कीटों की रोकथाम हेतु कीटनाशी दवाओं का छिड़काव करना चाहिए।

8. एक वर्षीय पौधों के बीज एकत्र करना– एक वर्षीय पौधों के बीज एकत्र करने के लिए फूल का चुनाव करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए–

(i) फूल का आकार बड़ा हो।

(ii) फूलों का रंग गहरा व चमकदार हो।

(iii) फूल स्वस्थ्य, रोग व कीट के प्रकोप से रहित होना चाहिए।

उपर्युक्त गुणों वाले फूलों का चुनाव करके टेग लगा देना चाहिए, और फूल पककर मुरझाने पर सावधानी से बीज निकालकर शीशे के वर्तन में सुरक्षित रख लेते हैं।

## एक वर्षीय पौधों का वर्गीकरण

एक वर्षीय पौधों को उनके फूल आने के समय के अनुसार निम्न लिखित तीन भागों में वर्गीकृत किया जाता है –

1. वर्षाकालीन एक वर्षीय पौधे – इनके बीजों की बुआई अप्रैल–मई में करके जून–जुलाई में पौध को क्यारियों में लगाया जाता ये अधिक वर्षा सहन कर सकते है और वर्षा ऋतु में इन पर फूल खिलते हैं।

वर्षाकालीन पौधे (Rainy Season Annuals)

| क्र.सं. | नाम | ऊँचाई(सेमी.में) | फूल/पत्ती का रंग |
|---|---|---|---|
| 1 | अमरेन्थस | 45–90 | लाल,पीली,बैगनी मिली हुई पत्तियाँ |
| 2 | हॉलीहॉक | 150–200 | सफेद,गुलाबी,पीले,लाल |
| 3 | कॉसमॉस | 60–120 | गुलाबी,लाल,सफेद,पीला,किरमिची |
| 4. | डहेलिया | 30–200 | सफेद,बैगनी,पीला,क्रीमी,ताँबिया |
| 5 | मुर्गकेश | 75–90 | लाल,पीले,नारंगी,गुलाबी |
| 6 | गेंदा | 20–90 | पीला,नारंगी,ताँबिश,लाल |
| 7 | जीनिया | 15–90 | पीला,सफेद,नारंगी,गुलाबी,बैगनी,क्रीमी,भूरा |
| 8. | सालविया | 60–90 | गुलाबी,सफेद,नीला |
| 9. | सूरजमुखी | 60–90 | सफेद,पीला,किरमिची |
| 10. | टोरेनिया | 25–30 | पीला, सफेद, नीला, गुलाबी |

ग्रीष्मकालीन पौधे (Summer Season Annuals)

| क्र.सं. | नाम | ऊँचाई(सेमी.में) | फूल/पत्ती का रंग |
|---|---|---|---|
| 1 | कोचिया | 60–90 | हरी और चमकीली पत्तियाँ |
| 2 | स्पाइडर पलांट | 120–150 | सफेद,गुलाबी |
| 3 | जीनिया | 15–90 | गुलाबी,सफेद,पीला,नारंगी, बैंगनी क्रीमी, भूरा |
| 4. | अमरेन्थस | 45–90 | लाल, पीली बैगनी मिली हुई पत्तियाँ |
| 5 | मुर्गकेश | 75–90 | लाल,पीले,नारंगी,गुलाबी |
| 6 | कॉसमॉस | 60–120 | पीला,लाल, सफेद, किरमिची |
| 7 | सूरजमुखी | 60–90 | पीला,सफेद,किरमिची |
| 8. | गॉमफ्रीना | 25–60 | बटन के समान गोल फूल |
| 9. | बालसम | 60–75 | गुलाबी, लाल, पीला |
| 10. | लोनिका | 15–20 | सफेद,पीला, गुलाबी, लाल |

2. शरदकालीन एक वर्षीय पौधे– इन पौधों के बीज अगस्त–सितम्बर में पौधशाला में बोये जाते हैं और अक्टूबर के अन्तिम सप्ताह में क्यारियों या गमलों में रोप दिये जाते हैं। इन पौधों में जनवरी से मार्च तक फूल खिलते हैं।

3. ग्रीष्मकालीन एक वर्षीय पौधे – इनके बीजों की बुआई दिसम्बर–जनवरी में की जाती है और तैयार पौधों की रोपाई फरवरी–मार्च में की जाती है। इन पौधों पर अप्रैल से जून तक फूल खिलते हैं।

उपर्युक्त तीनों प्रकार के पुष्पीय पौधों की जानकारी निम्न तालिका में दी गई है –

## पुष्पीय परिबन्ध/शाकीय किनारा (Herbaceous border)

''जब एक वर्षीय मौसमी फूलों को लॉन, सड़क, अथवा रास्तों के समान्तर बनायी गयी लम्बी क्यारियों में ऊँचाई के अनुसार एक

शरदकालीन पौधे ( Winter Season Annuals)

| क्र.सं. | नाम | ऊँचाई(सेमी.में) | फूल/पत्ती का रंग |
|---|---|---|---|
| 1 | अजेरेटम | 15–45 | नीला,पीला,सफेद |
| 2 | एन्टीराइनम | 15–75 | सफेद, पीला, लाल, मिश्रित |
| 3 | एस्टर | 15–90 | सफेद गुलाबी, गहरा लाल, नीला, मिश्रित |
| 4. | लार्कस्पर | 30–90 | सफेद, लाल, नीला, नारंगी |
| 5 | स्वीट सुल्तान | 45–90 | सफेद, गुलाबी, नीला, बैंगनी |
| 6 | स्वीट विलियम | 15–45 | सफेद, गुलाबी, लाल व उनके मिश्रण |
| 7 | एस्कोल्जिया पॉपी | 30–40 | लाल, पीला, नारंगी |
| 8. | कार्नेशन | 45–90 | लगभग सभी रंग व उनके मिश्रण |
| 9. | जिप्सोफिला | 30–40 | सफेद, बैंगनी, लाल |
| 10 | क्राइसेन्थीमम | 50–100 | पीला, क्रीमी, सफेद |
| 11 | कैण्डीटफ्ट | 25–40 | सफेद, बैंगनी |
| 12 | स्वीट पी | 30–40 | काले के अलावा सभी रंग |
| 13 | लाइनम | 45–60 | लाल व आसमानी |
| 14 | लुपिन | 25–75 | सफेद, नीला, लाल पीला |
| 15 | फ्लाक्स | 15–45 | काले के अलावा सभी रंग |
| 16 | कार्नफ्लावर | 45–60 | बैंगनी, पीला, लाल |
| 17 | पिटूनिया | 40–50 | पीला, नारंगी |
| 18 | बरवीना | 20–30 | सफेद, गुलाबी, नीला, पीला, बैंगनी, लाल |
| 19 | पैंजी | 20–30 | सफेद, गुलाबी, नीला, पीला, बैंगनी, लाल |
| 20 | क्लार्किया | 60–90 | सफेद, नारंगी |
| 21 | लाइनेरिया | 25–35 | सफेद, लाल, पीला, नारंगी |
| 22 | डेजी | 10–15 | सफेद, पीला, नारंगी, गुलाबी |
| 23 | सिनेरेरिया | 50–60 | काले व हरे के अलावा सभी रंग |
| 24 | निगेला | 45–60 | सफेद, नीला, बैंगनी |
| 25 | सपोनेरिया | 50–60 | लाल,पीला, बैंगनी |
| 26 | स्टॉक | 50–60 | सफेद, पीला, नीला, लाल |
| 27 | मिगनोनेट | 30–45 | सफेद, क्रीमी, लाल, बैंगनी |
| 28 | हैलीक्राइसम | 75–100 | सफेद, पीला, लाल |
| 29 | कैलेण्डुला | 30–40 | पीला, नारंगी, क्रीमी |

पट्टी के रूप में उगाया जाता है तो इस प्रकार बने किनारों को शाकीय किनारा कहते हैं''

शाकीय किनारा दो प्रकार का होता है –

1. एकल दिशा शाकीय किनारा (Single Fronted Herbaceous border)– यह शाकीय किनारा लॉन के किनारे या सड़क के किनारे–2 बनाया जाता है। इसमें लम्बे पौधे पीछे की ओर, मध्यम ऊँचाई वाले पौधे मध्य में तथा कम ऊँचाई वाले पौधे सामने की तरफ लगाये जाते है। इस प्रकार के बार्डर में एक दिशा से फूलों की सुन्दरता दिखाई देती है। इसलिए इसे एकल दिशा शाकीय किनारा कहते हैं।

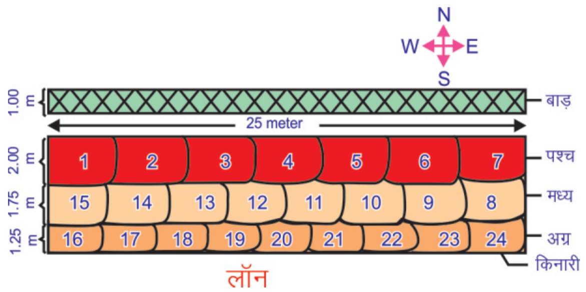


Layout of a Hervaceous Border

रेखाचित्र– एक दिशा शाकीय किनारा

2. दो दिशा शाकीय किनारा (Double fronted Herbaceous border)– यह शाकीय किनारा सामान्यतः लान के मध्य में बनाया जाता है। इसमें पौधे पाँच पंक्ति समूहों में लगाये जाते हैं। लम्बे पौधे मध्य में उनके दोनों ओर मध्यम ऊँचाई वाले पौधे तथा किनारों पर कम ऊँचाई वाले पौधे लगाये जाते हैं। ऐसे बार्डर में लगे पौधों में फूलों की सुन्दरता दोनों तरफ से दिखाई देती है।

**शाकीय किनारा बनाने के सिद्धान्त–**

1. शाकीय किनारा बनाने के लिए ऐसे स्थान का चयन करना चाहिए जहाँ सुबह की धूप आसानी से आती हो।
2. लॉन व सड़क के किनारे एक दिशा शाकीय किनारा तथा लान के मध्य में दो दिशा शाकीय किनारा बनाना चाहिए।
3. एक दिशा शाकीय किनारे के पीछे बाड़ या दीवार होनी चाहिए।
4. बार्डर के सामने की पंक्ति व रास्ते के बीच जीवित पौधों अथवा ईटों की किनारी (Edge) बनानी चाहिए।
5. बोर्डर में पीछे की क्यारियों की चौड़ाई अधिक, मध्यम क्यारियों की मध्यम तथा आगे की क्यारियों की चौड़ाई कम रखी जाती है।
6. क्यारियाँ एक दूसरे से सटी–हुई होनी चाहिए , जिससे उनमें लगे पौधे एक समूह में दिखाई दे सकें।
7. पौधों की उनकी ऊँचाई के क्रम में लगाना चाहिए। पीछे की क्यारियों में लम्बे, बीच की क्यारियों में मध्यम ऊँचाई वाले तथा सामने की क्यारियों में छोटे पौधे लगाने चाहिए।
8. एक समय पर फूलने वाले पौधे एक क्यारी में लगाने चाहिए।
9. पौधे हमेशा रंग योजना (Colour scheme) के अनुसार लगाने चाहिए।
10. देर से फूल देने वाले पौधे जल्दी तथा शीघ्र फूल देने वाले पौधे देर से लगाने चाहिए। जिससे सभी पौधों पर एक साथ फूल आ सकें।

## रंग योजना (Colour Scheme)

प्रकृति में प्रमुख रंग बैंगनी, नीला, आसमानी, हरा, पीला, नारंगी व लाल (VIBGYOR) हैं। अन्य रंग इन्हीं रंगों के आपसी संयोग से बनते है जिन्हे टरसियरी रंग कहते हैं। इन रगों के अनुसार पौधे लगाना रंग योजना कहलाता है। सामान्यतः तीन प्रकार की रंग योजना प्रचलित है–

1. एक रंगी योजना (Monochoromatic) – इस योजना में किसी एक रंग विशेष (जैसे केवल लाल या पीले य नीले रंग) के फूल वाले पौधों को लम्बाई के अनुसार शाकीय बार्डर में लगाया जाता है।

2. सम्बंधी रंग योजना (Related Colour Scheme)– इसमें दो या तीन नजदीकी रंगों को शामिल किया जाता है। जैसे– क्रीमी, क्रीमी पीले, हल्के पीले, व गहरे पीले रंग या नारंगी –पीला–हल्का पीला। यह रंग योजना मनभावन दिखाई पड़ती है। इसे हारमोनियस रंग योजना (Harmonious Colour scheme) भी कहते हैं।

3. विपरीत रंग योजना (Contrast Colour scheme)– इस योजना में पौधों की ऊँचाई के अनुसार विरोधी रंग के फूल वाले पौधे लगाये जाते है। जैसे– पीला और नारंगी, बैंगनी और पीला, लाल और हरा, सफेद एक दूसरे के विरोधी रंग है। इन रंगों को एक साथ लगाने से शाकीय बार्डर अधिक सुन्दर दिखायी देता है।

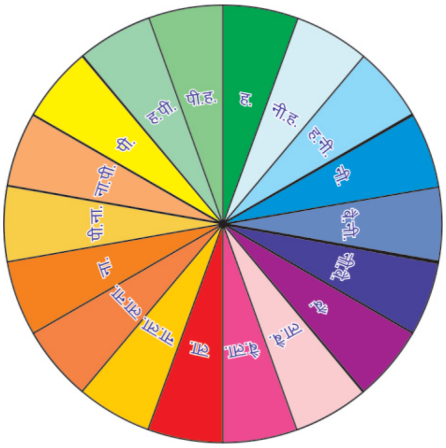

1—18 शेड वाला रंग चक्र

## अभ्यास प्रश्न

**बहुचयनात्मक प्रश्न—**

1. सुन्दर पुष्प वाली लता है —

(अ) सतावर (ब) मनीप्लान्ट

(स) रंगून लता (द) बोगनविलिया

2. शरद कालीन एक वर्षीय फूलवाले पौधों के बीजों की बुआई का उचित समय है —

(अ) अगस्त से सितम्बर (ब) जनवरी से मार्च

(स) अप्रेल से मई (द) दिसम्बर से जनवरी

3. अनौपचारिक शैली उद्यानों में रास्ते बनाये जाते हैं —

(अ) समतल (ब) सीधे

(स) चौड़े एवं सुव्यवस्थित (द) टेड़े मेड़े एवं ऊँचे नीचे

4. सुन्दर पत्तियों वाले झाड़ी है —

(अ) क्रोटोन स्पसीज

(ब) टिकोमा स्टेन्स

(स) जैसमिनम सेमवेक

(द) डुरैन्टा प्लयूमेराई

5. जब वृक्षों को सड़क के दोनों किनारों पर सीधी पंक्ति में लगाया जाता है तो उसे कहा जाता है —

(अ) झुरमुट (ब) पुष्पीय परिबन्ध

(स) लान (द) एवेन्यू

**अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न—**

6. सुन्दर फूल वाले किन्ही चार वृक्षों के नाम लिखिए।
7. लताओं से आप क्या समझते है ?
8. किन्ही पाँच शरदकालीन फूल वाले पौधों के नाम व फूलो के रंग लिखिए।
9. पुष्पीय परिबन्ध किसे कहते हैं ?

**लधूत्तरात्मक प्रष्न—**

10. अलंकृत बागवानी का आर्थिक महत्व लिखिए।
11. फूल आने के समय के अनुसार एक वर्षीय पौधों का वर्गीकरण कीजिए।
12. उपयोगिता के आधार पर उद्यानों के कौन—2 से प्रकार है?
13. निजी उद्यान के भागों का वर्णन कीजिए।
14. आपैचारिक शैली उद्यान एवं अनौपचारिक शैली उद्यान में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
15. अलंकृत बागवानी का पर्यावरण पर क्या प्रभाव पड़ता है?
16. झाड़ियाँ लगाने के सामान्य सिद्धान्त लिखिए।
17. एकल दिशा एवं दो दिशा शाकीय किनारा में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

**निबन्धात्मक प्रश्न—**

18. अलंकृत बागवानी का क्या भविष्य है? लिखिए।
19. एवेन्यू किसे कहते है ? राष्ट्रीय मार्ग एवेन्यू के बारे में लिखिए।
20. झाड़ी किसे कहते है ? झाड़ियों के सामान्य उपयोग लिखिए।
21. लताओं के प्रमुख प्रकार कौन से है ? प्रत्येक के दो—2 उदाहरण लिखिए।
22. एकवर्षीय फूलों की खेती के प्रमुख बिन्दुओं का वर्णन कीजिए।
23. शाकीय किनारा बन्दी क्या है ? इसे बनाने के सिद्धान्त लिखिए।
24. फूलवाले पौधे लगाने की रंग योजना के बारे में लिखिए।

**उत्तर माला —** 1. (स) 2. (अ) 3. (द) 4. (अ) 5. (द)

# अध्याय–12
# फूलों की खेती
# (Cultivation of flowers)

## गुलाब (Rose)

वानस्पतिक नाम– रोजा इण्डिका एल. (*Rosa indica L.*)

कुल रोजेसी (Rosaceae)

गुलाब अपनी सुन्दरता के कारण ही विश्वविख्यात नहीं है, अपितु सुगन्ध एवं व्यावसायिक उपयोग के कारण भी इसका आर्थिक एवं औद्योगिक महत्व है। यही कारण है कि गुलाब की खेती भारतवर्ष में प्रतिदिन बड़े पैमाने पर बढ़ती जा रही है। पुष्प जगत में गुलाब का एक विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण स्थान है। सुन्दरता एवं प्रेम के प्रतीक गुलाब पर आदि काल से ही विश्व भर के लेखकों ने इसकी सुन्दरता के बारे में अनेक काव्य लिखे हैं। सौन्दर्य एवं सुगन्ध में गुलाब के पुष्प का प्रथम स्थान होने के कारण इसे ''पुष्पराज'' की उपमा दी गयी है। अलंकृत उद्यान गुलाब के बिना पूर्ण नही समझा जाता है। भारत में गुलाब की खेती प्राचीन काल से ही होती चली आ रही है। गुलाब के इत्र की खोज का श्रेय बेगम नूरजहां को जाता है। उद्यान में गुलाब को सुन्दरता के लिए रोजरी बनाने, बेल के रूप में, परगोला बनाने, दीवार के सहारे लगाने, क्यारियों में, गमलों में एवं बाड़ आदि के रूप में क्यारियों में लगाया जाता है। गुलाब का उपयोग पूजा के अलावा गुलाब जल, गुलकन्द, गुलाब का शरबत व इत्र बनाने में किया जाता है। गुलाब के इत्र में चेती गुलाब का इत्र सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। गुलाब के सभी उत्पाद उत्तम गुणों वाले होते हैं तथा काफी महंगे दामों पर बिकते हैं। विदेशी मुद्रा भी अर्जित करने में इसका महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है। राजस्थान में चेती गुलाब की खेती उदयपुर क्षेत्र के नाथद्वारा और खमनोर (हल्दी घाटी) तहसीलों में की जाती है। साथ ही पुष्कर और जयपुर क्षेत्र में क्रमशः बारहमासी गुलाब (रोजा इन्डिका) एवं लाल गुलाब व्यावसायिक स्तर पर उगाए जाते हैं। पुष्कर में देशी गुलाब की व्यावसायिक खेती बड़े स्तर पर की जाती है। पुष्कर क्षेत्र के ताजा गुलाब मंदिर, मस्जिद में पूजा अर्चना के अतिरिक्त शादी विवाह, उत्सव, अतिथि स्वागत सत्कार, गुलकन्द, इत्र व गुलाब जल बनाने में उपयोग में लिए जाते हैं ।

### गुलाब के प्रकार (Types of Roses)

गुलाब को सामान्यतः दो भागों में विभाजित किया जाता है :–

1. जंगली गुलाब (Wild spp.)
2. खेती योग्य गुलाब (Cultivated spp.)

**1. जंगली गुलाब –** इस वर्ग की उत्पत्ति भारत में मानी जाती है। देश के विभिन्न भागों में इस वर्ग का गुलाब प्राकृतिक अवस्था में पाया जाता है। इस वर्ग की कुछ प्रमुख जातियाँ निम्न हैं :–

1. *रोजा मोस्चाटा* (*Rosa moschata*)
2. *रोजा फोयटीडा* (*Rosa foetida*)
3. *रोजा माइक्रोफिला* (*Rosa microphyla*)
4. *रोजा क्लीनोफिला* (*Rosa clinophylla*)

**2. खेती योग्य गुलाब –** इस वर्ग के गुलाब का उपयोग वर्तमान में गुलाब की खेती करने में किया जाता है। यह वर्ग गुलाब के जंगली जातियों के आपस में संकरण (Hybridization) करा कर उत्पन्न किये गये है। कुछ प्रमुख जातियाँ निम्न प्रकार हैं :–

1. *रोजा डेमेसिना* (*Rosa damascena*)
2. *रोजा मल्टीफ्लोरा* (*Rosa multiflora*)
3. *रोजा मोस्चाटा* (*Rosa moschata*)
4. *रोजा चाइनेन्सिस* (*Rosa chinensis*)
5. *रोजा फोयटीडा* (*Rosa foetida*)
6. *रोजा विचूरियाना* (*Rosa wichuraiana*)

बागों एवं खेतों में उगाये जाने वाले गुलाब को निम्नलिखित वर्गो में रखा जा सकता है :–

**1. हाइब्रिड टी. (Hybrid T.) –** इसके फूल बड़े, आकर्षक विभिन्न प्रकार के रंग एवं एक टहनी पर एक ही

फूल लगता है। यह संसार में सबसे प्रचलित गुलाब है। इस वर्ग की कुछ प्रमुख किस्में हैं – सुपर स्टार, ब्लू मून, फर्स्ट प्राइज, पैराडाइज, अर्जुन, अनुपमा, भीम, अपोलो आदि।

**2. फ्लोरीबन्डा (Floribunda)** – यह गुलाब पोलिएन्था एवं हाइब्रिड टी के संकरण से तैयार किया गया है। इसमें फूल अधिक व गुच्छो में लगते है। बहुत कम फ्लोरीबन्डा सुंगधित होते हैं। इस वर्ग की कुछ प्रमुख किस्में रेडगोल्ड, क्वीन एलिजाबेथ, हिमाग्नी, बंजारन, मधुरा, चितचोर, मोर्निंग सन, मोहनी, प्रिया, प्रेमा आदि हैं।

**3. पोलिएन्था (Poliantha)** – इस वर्ग के गुलाब के फूल आकार में छोटे होते हैं, लेकिन फूल गुच्छों में लगते हैं। एक ही गुच्छे में अनेक फूल होते हैं। इस वर्ग की प्रमुख किस्में है – अंजनी, प्रीति, नर्तकी, स्वाती, रश्मि, पिंक शावर्स आदि।

**4. मिनिएचर (Miniature)** – इस वर्ग के गुलाब को बेबी गुलाब या लघु गुलाब के नाम से जाना जाता है। इसके पौधे, पत्तियाँ एवं फूल छोटे आकार के होते हैं। इनको साधारणतया गमलों में उगाने में प्रयोग किया जाता है। इस वर्ग की प्रमुख किस्में हैं – लालीपॉप, मिक्सी, नटखट, गोल्ड स्टार, डार्क ब्यूटी, चन्द्रिका, रेनबो आदि।

**5. लता गुलाब (Climbing rose)** – फ्लोरीबन्डा एवं हाइब्रिड टी गुलाब की शाखाएँ लता की तरह वृद्धि करती हैं, जिसके कारण इनको लता गुलाब कहा जाता है। मार्शलनील, देहली पिंक पर्ल एवं व्हाइट पर्ल, लाल किला, पिन्च ऑफ गोल्ड आदि कुछ प्रमुख किस्में हैं।

**जलवायु (Climate)** – गुलाब का पौधा किस्म के अनुसार समशीतोष्ण जलवायु से लेकर उष्ण जलवायु तक, सफलता से उगाया जा सकता है। पौधे अधिक तापमान व लू को सहन नही कर सकते, इससे फूलों का रंग फीका होकर फूल बिखर जाते है। गुलाब की अच्छी खेती के लिए $15^0$ से $27^0$ सेंटिग्रेड तापमान उपयुक्त माना गया है।

**भूमि एवं उसकी तैयारी (Soil and its preparation) :** गुलाब की अच्छी पैदावार के लिए बलुई दोमट से हल्की चिकनी मिट्टी जिसमें अधिक मात्रा में जीवांश पदार्थ होते हैं, अधिक उपयोगी पाई गई है। साधारणतया गुलाब जैसे हाइब्रिड टी, फ्लोरीबण्डा तथा अन्य गुलाब मृदा पी. एच. मान 6.0 से 7.5 तक उगाए जा सकते हैं परन्तु चेती गुलाब 9.0 पी.एच.मान तक की भूमि में भी उगाया जा सकता है।

मई–जून माह में भूमि की गहरी जुताई कर 10–15 दिन के लिए धूप में खुला छोड़ा जाता है। इसके बाद 2–3 बार अच्छी जुताई कर 250–300 क्विण्टल गोबर की खाद एवं 20–25 क्विण्टल सिंगल सुपर फॉस्फेट मिट्टी में मिलाई जाती है।

**पौध प्रवर्धन (Propogation) :** गुलाब का प्रवर्धन प्रायः बीज, कलम, लेयरिंग तथा कलिकायन द्वारा किया जाता है। लेकिन कलम एवं कालिकायन इसके प्रवर्धन की व्यावसायिक विधियाँ हैं। चेती तथा देशी गुलाब दोनों का प्रवर्धन मुख्यतः कलमों एवं सकर्स द्वारा किया जाता है। कलमें 10–12 माह पुरानी परिपक्व तनों से ली जाती हैं। दिसम्बर माह में जब इन गुलाब की कटाई–छँटाई की जाती है तब ये कलमें काट ली जाती हैं। कलमों को पौधशाला की तैयार क्यारियों में 10 x 30 सेन्टीमीटर के फासले पर लगा देना चाहिए। कलमों को आई.बी.ए. 400 पी.पी.एम. सांद्रता के घोल से शोधित कर दिया जाए तो शीघ्र एवं अधिक संख्या में कलमों से जड़ें निकल आती हैं। सकर्स द्वारा रोपाई के लिए पूरे पौधे को उखाड़ लेते हैं और उसे 4–5 टुकड़ों में अलग कर लेते हैं। प्रत्येक टुकड़े में जड़े होती हैं ओर इन्हीं जड़ वाले टुकड़ों को (सकर्स) रोपाई के काम में लेते हैं। सकर्स द्वारा लगाए पौधों में दूसरे वर्ष फूल आने लगते हैं।

संकर गुलाब (Hybrid rose) के पौधे तैयार करने के लिए पहले कलम विधि द्वारा मूलवृन्त (Root stock) तैयार किया जाता है। मूलवृन्त तैयार करने के लिए गुलाब की *रोजा इंडिका, रोजा बोरबोनीआना, रोजा मल्टीफ्लोरा, रोजा चाइनेन्सिस* आदि जातियों का उपयोग किया जाता है। इन सबकी कलमें शीत काल में रोपाई कर तैयार की जाती है। एक वर्ष पुरानी कलमों पर फरवरी माह में भूमि से 4–5 इंच ऊपर ''टी'' व ''शील्ड'' कालिकायन करते है। कालिकायन के दो सप्ताह बाद कली अंकुरित हो कर पौधा तैयार होने लगता है।

**खाद एवं उर्वरक (Manure and fertilizers)** – गुलाब एक उपजाऊ भूमि की फसल है तथा बहुवर्षीय होने के कारण इसे वर्ष भर खाद एवं उर्वरकों द्वारा पोषण पहुँचाना अत्यन्त आवश्यक है। गुलाब में कटाई–छँटाई, पादप वृद्धि, पुष्पन के समय पोषण का विशेष ध्यान रखना चाहिए। इसके लिए गोबर की खाद 25 से 30 टन प्रति हेक्टेयर खेत की तैयारी के समय खेत में मिलानी चाहिए तत्पश्चात् कटाई–छँटाई के समय 8–10 किलोग्राम गोबर की खाद/पौधा की दर से देनी चाहिए।

साथ ही कटाई–छँटाई के समय 50 ग्राम/पौधे की दर से नीम खली भी देनी चाहिए। उर्वरकों द्वारा 200 किलोग्राम नत्रजन एवं 30 किलोग्राम फॉस्फोरस देना चाहिए। इसके लिए जुताई के समय नत्रजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस की पूरी मात्रा दें तथा 30 दिन पश्चात् नत्रजन की बाकी की आधी मात्रा भी डाल दें।

साथ ही उर्वरक मिश्रण जिसमें एक भाग यूरिया, तीन भाग सुपर फॉस्फेट तथा दो भाग पोटैशियम सल्फेट का हो, तैयार करें। इस मिश्रण का 40 ग्राम/पौधे की दर से कटाई–छँटाई के बाद 15 दिन के अंतराल से तीन बार दें।

पर्ण छिड़काव द्वारा भी उर्वरक दिए जा सकते हैं। इसके लिए 1. 25 ग्राम यूरिया तथा 1.25 ग्राम पोटैशियम डाइ हाइड्रोजन फॉस्फेट एक लीटर पानी में, का छिड़काव कटाई के बाद किया जा सकता है। उर्वरकों के साथ–साथ छिड़काव के घोल में कीटनाशक जैसे मैलाथियान या रोगोर भी डाले जा सकते हैं। सूक्ष्म तत्वों के पर्ण छिड़काव भी गुलाब में करने चाहिए। इसके लिए फेरस सल्फेट 2 ग्राम तथा बुझा चूना 1 ग्राम, एक लीटर पानी में, मैग्नीशियम सल्फेट 2–3 ग्राम प्रति लीटर पानी मैंगनीज सल्फेट 2 ग्राम तथा 1 ग्राम बुझा चूना प्रति लीटर की दर से, इन सभी सूक्ष्म तत्वों का अलग–अलग छिड़काव कर सूक्ष्म तत्वों की कमी आसानी से दूर की जा सकती है।

**सिंचाई (Irrigation) :** गुलाब में अधिक एवं नियमित पुष्प उत्पादन के लिए सिंचाई महत्वपूर्ण है। गर्मी के मौसम में सप्ताह में एक–दो बार तथा शीतकाल में 15–20 दिन के अन्तर पर सिंचाई करते हैं। कटाई–छँटाई के समय पौधो को आराम देने के लिए सिंचाई बन्द कर देनी चाहिए। ताकि उसमें नई वृद्धि नही हो सके।

**कटाई–छँटाई –** कृन्तन गुलाब की खेती में एक अति आवश्यक क्रिया है। पौधों से अच्छे, स्वस्थ, आकर्षक व अधिक मात्रा में फूल प्राप्त करने के लिए वर्ष में एक बार अक्टूबर से जनवरी माह में गुलाब में कृन्तन की क्रिया की जाती है। गुलाब में जाति के अनुसार कटाई–छँटाई का समय तथा उसकी मात्रा निर्धारित की जाती है। कटाई–छँटाई में रोगग्रस्त, सूखी, उलझी हुयी शाखाऐं सबसे पहले काटी जाती हैं, इसके बाद उसकी जाति के अनुसार कृन्तन की क्रिया की जाती है। कृन्तन के सामान्य नियम निम्नांकित है :–

1. सूखी, मरी हुई व रोगग्रस्त शाखा को काट देना चाहिए।
2. जो शाखाएँ एक–दूसरे में उलझ कर पौधे को सघन बनाती है, उनको भी काट कर निकाल देना चाहिए।
3. मूलवृन्त (Rootstock) के किसी भाग से कोई शाखा निकल रही है तो उसको काट देना चाहिए।
4. स्वस्थ व सुन्दर शाखाओं को जमीन से 30 सेमी. ऊँचाई तक रखकर शेष भाग को काट देना चाहिए।
5. कृन्तन के स्थान पर कली बाहर की तरफ रहनी चाहिए।
6. कटाई–छँटाई के तुरन्त बाद कटे भाग पर ब्लाइटोक्स या बोर्डो पेस्ट का लेप करना चाहिए।

हाईब्रिड 'T' व फ्लोरीबण्डा के लिए कटाई–छँटाई का उपयुक्त समय सितम्बर से मध्य अक्टूबर रहता है। कटाई–छँटाई के लिए पौधे पर से सभी कमजोर व रोगग्रस्त भाग हटा देने चाहिए। पौधे के केन्द्र में से अत्यधिक घनी शाखाओं को काट देना चाहिए। हाईब्रिड 'T' गुलाब को 5–6 आँख तक काटना चाहिए। फ्लोरीबण्डा व पोलीएन्था में केवल मृत एवं रोगग्रस्त शाखाओं को हटाया जाता है।

चेती गुलाब की कटाई–छँटाई 15 दिसम्बर से जनवरी के प्रथम सप्ताह तक पूरी कर लेनी चाहिए। इससे पहले या बाद में काटने से उपज बहुत कम होगी। चेती गुलाब के पौधों की कटाई–छँटाई भूमि की सतह से 45 सें.मी. की अधिक ऊँचाई रख कर की जावे जिससे प्रति इकाई अधिक उपज मिलती है।

**कलियों को निकालना (Disbudding) –** गुलाब की संकर किस्मे कलियाँ, गुच्छों में उत्पन्न करती हैं। यदि इन सबको फूल बनने दिया जावे तो फूलों का आकार छोटा रह जाता है। इसलिए सजावट, प्रदर्शनी व सुन्दरता के लिए आकर्षक बड़े आकार के फूल प्राप्त करने के लिए गुच्छे के मध्य की कली को छोड़कर शेष अन्य कलियों को तोड़ देना चाहिए। यह कली बड़े तथा आकर्षक फूल पैदा करती है।

**विंटरिंग (Wintering) –** विंटरिंग के द्वारा कमजोर शाखाओ को स्वस्थ बनाना तथा बड़े आकार के फूल प्राप्त करना है। इस क्रिया में पौधे को कृत्रिम रूप से आराम दिया जाता है। इसमें पौधे के स्वास्थ्य एवं धूप की तीव्रता के अनुसार 10–15 दिन के लिए पानी रोक दिया जाता है तथा जड़ो के आस–पास से मिट्टी हटाकर उन्हे 3–4 दिन के लिए खुला रखा जाता है। इस क्रिया से पौधों की पत्तियाँ गिर जाती है। इसके पश्चात् मिट्टी एवं खाद का मिश्रण भर कर सिंचाई कर दी जाती है।

**कीट एवं रोग (Insect pests and disease):**

**शल्क कीट (स्केल) –** यह कीट तने तथा टहनियों पर बहुत अधिक मात्रा में चिपके रहते हैं, इससे पौधा कमजोर होकर सूख जाता है। नियन्त्रण हेतु पौधों का कृन्तन कर कीटग्रस्त भाग को इकट्ठा करके नष्ट कर देवें। मोनोक्रोटोफॉस 36 एस.एल. 1.5 मिलीलीटर या डाइजिनान या मिथाइल डिमेटान एक मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

**मोयला –** यह कीट कोमल टहनियों, पत्तियों, कलियों से रस चूसता है, जिससे पौधों की वृद्धि रूक जाती है एवं फूल की गुणवत्ता प्रभावित होती है। नियन्त्रण हेतु मैलाथियान 50 ईसी अथवा डाइमिथोएट 30 ईसी एक मिलीलीटर पानी की दर से छिड़कें। नीम या करंज तेल का 2 प्रतिशत का छिड़काव करें।

**तनाछेदक मक्खी –** मैलाथियान 50 ईसी अथवा डाइमिथोएट 30 ईसी एक मिलीलीटर की दर से छिड़काव करें।

**थ्रिप्स –** यह कीट पत्तियों एवं पुष्प की पंखुडियों से रस चूस कर नुकसान करता है। नियन्त्रण हेतु मिथाइल ऑक्सीडेमेटान या डाइमिथोएट या एसीफेट या इमिडाक्लोरोपिड 5 मिलीलीटर प्रति दस लीटर पानी की दर से 2 या 3 बार 15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करें।

**स्पाइडर माईट** – नियन्त्रण हेतु क्षतिग्रस्त हिस्सों को काटकर जला दें तथा पौधे पर माइटेक या इथियान 5 मिलीलीटर प्रति दस लीटर पानी के घोल का 2–3 बार 15 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करें।

## व्याधियाँ (Diseases) :

**चूर्णीफंफूद (पाउडरी मिल्ड्यू)** – यह रोग पत्तियों एवं कलियों पर सफेद चूर्ण के धब्बे के रूप में आक्रमण करता है। इससे पत्तियाँ पीली पड़कर झड़ जाती है। नियन्त्रण हेतु कैराथेन एल. सी. 1 मिलीलीटर या कैलेक्सिन 1 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी के घोल का 10 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करें।

**सूखा रोग (डाई बैक)** – गुलाब के पौधों में कृन्तन के बाद इस रोग से प्रभावित टहनियाँ ऊपर से नीचे की ओर सूखने लगती हैं तथा धीरे–धीरे पूरा पौधा सूख जाता है। नियन्त्रण हेतु सूखे भाग को काट–छाँट करके हटा दें तथा इसमें बोर्डो मिश्रण या गुलाब पेस्ट (कॉपर कार्बोनेट + रेड लेड + अलसी का तेल 4:4:5 के अनुपात में) कटी टहनियों के सिरे पर लगा दें।

**एन्थ्रेक्नोज** – इस रोग से प्रभावित पत्तियों पर गहरे भूरे रंग के धब्बे बन जाते है और ग्रसित भाग मुरझाकर सूखने लगता है। इसकी रोकथाम हेतु मैन्कोजेब 2 ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल का छिड़काव करना चाहिए।

## तुड़ाई व उपज (Harvesting and Yield):

फूलों की कटाई–तुड़ाई – चेती गुलाब के फूलों की तुड़ाई सूर्योदय होते ही चालू कर देनी चाहिए तथा आठ बजे से पूर्व सम्पूर्ण कर लेनी चाहिए क्योंकि सूर्य निकलने के बाद जैसे–जैसे ताप बढ़ता है फूलों में तेल की मात्रा कम हो जाती है और तेल की मात्रा कम होने से फूलों का गुण कम होता है। तोड़े गए फूलों का शीघ्र ही आसवन या अन्य उपयोग कर लेना चाहिए। हाइब्रिड 'T' व फ्लोरीबण्डा फूलों, जिनसे हमें कट फ्लावर बनाने हों, की कटाई कली अवस्था पर ही की जाती है। कली अवस्था में जब पुष्प में रंग पूर्ण रूप से विकसित हो गया हो तथा बाहरी 1 या 2 पंखुड़ियाँ बाहर की तरफ मुड़ना शुरू हो गई हों उस समय तुड़ाई सबसे उपयुक्त रहती है। फूलों को हमेशा 10–45 सें.मी. की शाखा के साथ ही काटा जाता है।

**फूलों का रखरखाव** – कट फ्लावर के लिए फ्लोरीबण्डा व हाइब्रिड 'T' के पुष्पों को कटाई के तुरन्त बाद प्लास्टिक की बाल्टी में जिसमें पानी, निर्जर्मीकारक व परिरक्षक (सिल्वर थायोसल्फेट) मिला हो; रखना चाहिए। फिर बाल्टी को पूर्वशीतलन कक्ष में या छायादार छप्पर की झोपड़ी में रखना चाहिए। छप्पर की छत व दीवारों पर पानी छिड़कते रहने से छप्पर के अन्दर तापमान कम व आर्द्रता अधिक बनी रहती है।

चेती गुलाब के फूलों को तोड़ने के बाद टोकरियों में हल्के से रखना चाहिए। फूलों को इस तरह से रखना चाहिए कि ये टूटने न पाएं। टूटी हुई पंखुड़ियों को छोड़ देना चाहिए। यदि फूलों की मात्रा अधिक है और शीघ्र ही आसवन सम्भव नहीं है तो फूलों को सीमेन्ट से बने टैंकों में जिनमें ठण्डा पानी भरा हो, रखना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो आसवन यन्त्रों को खेतों के नजदीक रखना चाहिए जिससे फूलों के रखरखाव में अधिक फूल व समय नष्ट न हो।

**उपज** – औसत उपजाऊ भूमि से प्रति हेक्टेयर औसतन 2500–3000 किलोग्राम फूल प्राप्त होते हैं। फूलों में तेल की मात्रा 0.03 से 0.045 प्रतिशत तक होती है। एक बार पौधा लगाने के बाद इसकी उपज 10–12 साल तक मिलती है।

**फूलों का व्यावसायिक उपयोग** – गुलाब जल का प्राचीन काल से ही बहुत महत्व रहा है और इसे औषधियों तथा सौन्दर्य पदार्थों के निर्माण में उपयोग किया जाता है। आजकल इसका उपयोग आई लोशन तथा आई ड्राप्स में भी किया जाने लगा है। फूलों के जल आसवन से गुलाब जल तैयार होता है। आसवन पात्र में एक किलोग्राम फूलों में तीन लीटर पानी (1:3) के हिसाब से मिलाकर आसवन पात्र को 2 से ढाई घण्टे तक बिजली, रसोई गैस या कोयले की भट्टी पर गर्म करके उबाला जाता है और आसित जल, जो वाष्प के रूप में निकलता है कन्डेन्सर से ठंडा करके इकट्ठा कर लिया जाता है और इसको 2–3 माह तक सुरक्षित रख दिया जाता है जिससे इसकी सुगन्ध परिपक्व हो जाए। इसके बाद इसे काम में लिया जा सकता है।

**सुगन्ध तेल** – गुलाब का तेल सीधे प्राप्त नहीं किया जाता है बल्कि आसवन क्रिया के पश्चात् प्राप्त गुलाब जल को एक बर्तन में रात में शीतल स्थान पर खुला रख दिया जाता है। धूल तथा मिट्टी आदि से बचाने के लिए इसे साफ मुलायम कपड़े से ढक दिया जाता है। प्रातःकाल गुलाब जल पर मक्खन की तरह से इसका सुगन्धित तेल उपरी सतह पर आकर तैरने लगता है। इसे शीशे के बर्तनों में एकत्र कर लेते हैं। जब तापक्रम बढ़ जाता है तो यह पिघल कर द्रव अवस्था में आ जाता है। यह तेल हल्का पीला रंग लिए हुए होता है।

**गुलकन्द** – यह एक परिरक्षित पदार्थ है। इसे गुलाब की पंखुड़ियों से डेढ़ गुनी चीनी मिलाकर तैयार किया जाता है। पंखुडियों को फूलों से अलग कर शक्कर के साथ मसलते हैं या लकड़ी के हथौड़ों से कूटते हैं जिससे पंखुड़ियाँ लुगदी की तरह शक्कर के साथ मिल जाती हैं। इसे फिर शीशे के या स्टेनलेस स्टील के पात्र में भर कर खुली धूप में रख देते हैं। समय–समय पर इसे हिलाते रहते हैं। यह एक महीने बाद उपयोग करने लायक हो जाता है। गुलकन्द पौष्टिक होता है।

पंखुड़ी – गुलाब के फूलों को सुखाकर सूखी पंखुडियाँ तैयार करते हैं जो कई प्रकार के पकवानों में व मृदुपेय पदार्थों में मिलाई जाती है।

**गुलाब का शर्बत** – गर्मियों में गुलाब का शर्बत एक ताजगीदायक मृदुपेय है। यह कई विधियों द्वारा बनाया जाता है। उद्यान विभाग की प्रयोगशाला में जो विधि विकसित की गई है वह इस प्रकार है :– शक्कर 9 किलोग्राम, पानी 4 लीटर, गुलाब का रस 900 ग्राम, नींबू का सत 35 ग्राम, रसभरी लाल रंग 25 मिलीलीटर, गुलाब एसेन्स 25 मिलीलीटर

**विधि** – गुलाब की पंखुड़ियों को फूलों से अलग करके मशीन से पंखुडियों का रस निकाल लें और मलमल के कपड़े से छान लें।

शक्कर में पानी मिलाकर गरम करें और नींबू का सत मिला देवें। शक्कर घुलने पर चाशनी को मलमल के कपड़े से छान लें और ठंडा करें। जब चाशनी ठण्डी हो जाए, तब गुलाब का रस, रंग व एसेन्स मिलाकर साफ धुली हुई और सुखाई हुई बोतलों में भरकर ढक्कन लगा कर रखें तथा आवश्यकतानुसार काम में लेवें।

## गेंदा (Marigold)

**वानस्पतिक नाम** *टेजेटिस इरेक्टा (Tagetes erecta L.)*
*टेजेटिस पटूला (Tagetes Patula L.)*

**कुल** एसटिरेसी (Asteraceae)
**उत्पत्ति** मेक्सिको

गेंदा या हजारा एक महत्वपूर्ण व्यावसायिक मौसमी फूल है। इसकी सुन्दरता एवं टिकाऊपन के कारण पुष्प व्यापार में गुलाब के बाद सर्वाधिक बिकने वाला पुष्प है। इसके फूल विभिन्न आकार एवं रंगों में वर्ष भर उपलब्ध रहते है। गेंदा का विभिन्न रूपों जैसे माला, वेणी, झालर, घर की सजावट, पूजा, गुलदस्ता बनाने जैसे अन्य कार्यो में उपयोग व्यापक रूप से किया जाता है। बौने किस्म का गेंदा, गृहवाटिका, अलंकृत उद्यान, रॉकरी, लटकन टोकरी आदि के लिए उपयुक्त है। गेंदा के फूल पौधों पर लम्बे समय तक खिलते रहते हैं साथ ही इनकी संग्रहण क्षमता अधिक होने के कारण आसानी से कुछ दिनों तक रखे जा सकते हैं। टमाटर, बैंगन, मिर्च आदि सब्जियाँ जिनमें सूत्रकृमि (Nematode) का प्रकोप अधिक होता है, गेंदे को मिश्रित खेती के रूप में लगाकर इसका नियंत्रण किया जा सकता है।

**जलवायु** – गेंदा को साल भर तीनों ही ऋतुओं में आसानी से उगाया जा सकता है। इसकी अच्छी पैदावार के लिए शरद ऋतु उपयुक्त पाई गई है।पौधों में अच्छी बढ़वार व अधिक पुष्पन के लिए नम जलवायु की आवश्यकता होती है। अधिक तापमान पौधे की वृद्धि एवं पुष्पन को प्रभावित करता है। अधिक ठण्ड एवं पाला भी पौधों को नुकसान करता है तथा फूलों पर कालापन भी दिखायी देता है।

**भूमि व तैयारी**– गेंदा विभिन्न प्रकार की भूमियों में लगाया जा सकता है, परन्तु अच्छे जल निकास वाली बलुई दोमट भूमि इसकी खेती के लिए सबसे उपयुक्त रहती है। अधिक क्षारीय व अम्लीय भूमि पौधों की वृद्धि व पुष्प उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है।खेती की पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करके, भूमि को तेज धूप में कुछ समय के लिए खुला छोड़ देते हैं। बाद में देशी हल से जुताई कर खेत को समतल बनाकर सुविधानुसार क्यारियाँ बना ली जाती हैं।

जातियाँ :– गेंदा मुख्यतः दो प्रकार का होता है :–

**(1) अफ्रीकन गेंदा (*Tagetes erecta*)** – यह बड़े फूल वाली जाति है, जिसके पौधे अधिक ऊँचे व फूलों का रंग पीला व नारंगी होता है। यह किस्म व्यावसायिक खेती के लिए महत्वपूर्ण है। इस जाति की मुख्य किस्में क्राउन ऑफ गोल्ड (पीला), जॉइन्ट–सनसेट (नारंगी), स्पन येलो (पीली), स्पन गोल्ड, येलो फलकी, येलो स्टोन, गोल्डन एज, ओरेन्ज हवाई आदि है।

**(2) फ्रेन्च गेंदा (*Tagetes patula*)** – इसके पौधे अधिकतर छोटे, बौने तथा छोटे पुष्प जो कि पीले, नारंगी, सुनहरी लाल एवं मिश्रित रंग के होते हैं। इसकी किस्में रेड ब्राकेट, बटर स्कॉच, गोल्डी रस्टी रेड, लेमन जेम, स्कारलेट ग्लो, लेमन ड्रॉप, रेड चेरी, बोनन्जा फ्लेम, येलो बॉय, गोल्डन बॉय, हनी काम्ब, स्कारलेट, सोफिया, क्वीन सोफिया आदि है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली द्वारा अफ्रीकी गेंदे की दो किस्में पूसा नारंगी एवं पूसा बसन्ती विकसित की है, जिनके फूल काफी आकर्षक होते हैं।

**प्रवर्धन** – आमतौर पर गेंदा को बीज द्वारा ही उगाया जाता है। बीजों को पौधशाला में ऊँची उठी हुई क्यारियों में समान रूप से बिखेर कर बुवाई करें। 3 से 4 सप्ताह बाद पौध रोपाई के लिए तैयार हो जाती है। एक हेक्टेयर की बुवाई के लिए लगभग सवा किलोग्राम बीज की आवश्यकता होती है। इसके बीजों की अंकुरण क्षमता वर्ष भर तक अधिक रहती है तथा इससे अधिक

पुराना बीज नहीं बोना चाहिए क्योंकि उसकी अंकुरण क्षमता घट जाती है।

रोपाई – गेंदें की रोपाई क्यारियों में करें। अफ्रीकन गेंदे की रोपाई कतार से कतार 45 से 60 सेन्टीमीटर व पौध से पौध 30 से 45 सें.मी. की दूरी पर करें।

**सिंचाई एवं निराई गुड़ाई :–** गेंदे को कम पानी की आवश्यकता रहती है। अतः गर्मियों में 7 दिन व सर्दी में 12–15 दिन के अन्तर पर सिंचाई करना चाहिए। रोपाई के 25 दिन बाद खेत में एक हल्की निराई गुड़ाई भी करनी चाहिए। गुड़ाई करते समय पौधों के पास मिट्टी चढ़ाना चाहिए। अफ्रीकन गेंदे के पौधे हवा से जमीन पर नही गिरे, इसके लिए लकड़ी का सहारा भी लगाया जा सकता है। फूलों की अच्छी पैदावार के लिए 200–300 पी. पी.एम. जिब्रेलिक एसिड का पौधों पर फूल आने से पहले छिड़काव करना चाहिए।

गेंदा में पौध रोपण के 40 दिन बाद पिंचिंग करने से पौधे में शाखाएँ जल्दी व अधिक संख्या में बनती हैं, जिससे फूल भी अधिक प्राप्त होते हैं।

**प्रमुख कीट –**

मोयला, सफेद मक्खी, हरा तेला – ये कीट पौधों की पत्तियों एवं कोमल शाखाओं से रस चूस कर कमजोर कर देते हैं। इससे उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसके नियन्त्रण हेतु मिथाइल डिमेटोन 25 ई.सी. अथवा डाइमिथोएट 30 ई.सी. एक मिलीलीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

**प्रमुख व्याधियाँ –**

चूर्णिल आसिता – इस रोग के प्रकोप से पत्तियों एवं कलियों पर सफेद चूर्णी धब्बे दिखाई देते हैं। नियन्त्रण हेतु कैराथियान /केलक्सिन 1 मिली प्रति लीटर पानी के घोल का छिड़काव 15 दिन के अन्तराल पर करें।

**फूलों की तुड़ाई एवं उपज –** पौध रोपाई के 60–75 दिन बाद फूल तोड़ने लायक हो जाते हैं और औसतन 2 से 3 महीने तक खिलते रहते हैं। फूलों की औसतन उपज 80–100 क्विंटल प्रति हेक्टेयर मिलती है जबकि अफ्रीकन गेंदे की उपज 180–200 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक मिल सकती है।

## गुलदाउदी (Chrysanthemum)

| | |
|---|---|
| **वानस्पतिक नाम** | *क्राइसेन्थिमम स्पीशीज ( Chrysanthemum spp.)* |
| **कुल** | एसटिरेसी (Asteraceae) |
| **उत्पत्ति** | चीन |

अलंकृत बागवानी के पुष्पीय पौधों में गुलदाउदी का विशिष्ट स्थान है। इसके फूल उस समय प्राप्त होते हैं जब अन्य फूल बहुत कम मात्रा में मिलते हैं। राजस्थान में इसकी खेती व्यावसायिक तौर पर सफलतापूर्वक की जाती है।

अधिकांश देशों में इसके पुष्पों का रंग, बनावट व सुन्दरता के कारण गुलाब के बाद यह अति लोकप्रिय फूल है। यह उद्यान मे क्यारियों एवं गमलों दोनो में ही आसानी से उगायी जा सकती है। गुलदाउदी का पुष्पक्रम (Infloresence) हेड या केपीचुलम प्रकार का होता है। प्रत्येक हेड को हम एक फूल कहते है, जो वास्तव में कई छोटे–छोटे फूलों का गुच्छा होता है। वर्तमान में गुलदाउदी की अनेक किस्में प्रचलित हैं, जिनके फूल आकर्षक रंग व आकार के कारण पुष्प सज्जा में माला, वेणी, गजरा, गुलदस्ता, पूजा–अर्चना व अन्य सजावटी कार्यों में उपयोग किये जाते हैं। गुलदाउदी को फूलों की रानी कहा जाता है। प्रकृति एवं कला प्रेमी जापानी खासतौर से इस फूल को महत्व एवं सम्मान देते हैं, इसीलिए यह जापान का राष्ट्रीय पुष्प है।

**जलवायु –** यह शरद ऋतु का पौधा है। ग्रीष्म तथा वर्षा ऋतु में इसके पौधे का विकास अच्छा नहीं होता है। इसकी वृद्धि एवं फूलों के विकास में सूर्य का प्रकाश एवं वायुमण्डल का विशेष महत्व है। इसके फूलों के रंगों के विकास एवं उत्पादन में छोटे दिन वाला शीतकाल का मौसम उपयुक्त रहता है। अच्छे पुष्पन के लिए 8–16 डिग्री सेल्सियस तापमान उपयुक्त पाया जाता है।

**भूमि व उसकी तैयारी –** गुलदाउदी में अधिक पुष्प उत्पादन के लिए जल निकास युक्त बलुई दोमट या दोमट मिट्टी अच्छी मानी जाती है। मिट्टी में जीवांश पदार्थ की प्रचुर मात्रा, उत्तम रहती है। पौधों व पुष्पों के अच्छे विकास के लिए धूप वाली जगह उपयुक्त मानी गयी है।

खेत की तैयारी में पहली ग्रीष्मकालीन जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करते है, इसके बाद 3–4 जुताई देशी हल से करके खेत

को समतल बनाकर सुविधानुसार क्यारियों में विभाजित करते हैं। अंतिम जुताई के साथ 25–30 टन प्रति हेक्टेयर गोबर की खाद भी मिला देते हैं।

**प्रवर्धन –** एकवर्षीय गुलदाउदी बीजों द्वारा उगाई जाती है। इसके बीज नर्सरी में अक्टूबर माह में बोते हैं। बीज बोने से 4–6 सप्ताह बाद तैयार पौध की खेत में रोपाई की जाती है। बहुवर्षीय गुलदाउदी का प्रसारण दो प्रकार से किया जाता है।

**(i) कलम द्वारा –** इस विधि में कलमें जून के अन्त में सीधे बढ़ने वाले कोमल तनों के ऊपरी भाग से 10 सेन्टीमीटर लम्बी काट कर लगाते हैं। प्रत्येक कलम की नीचे की पत्तियाँ हटा कर रेत की बनी क्यारियों में लगाते हैं तथा लगाने के तुरन्त बाद पानी देते हैं। कलमों में जल्दी जड़ों के फुटाव के लिए, उनके निचले सिरे को सेरेडेक्स पाउडर या इन्डोल ब्यूटाइरिक एसिड रसायन 5 ग्राम प्रतिलीटर पानी में घोल बना कर, उपचारित कर रोपाई करना चाहिए।

**(ii) अन्तःभूस्तारियों द्वारा –** पुष्प उत्पादन समाप्ति के बाद पौधों को भूमि की सतह के पास से पौधे के आधार का कुछ भाग छोड़ कर पौधों को काट दिया जाता है एवं बाद में पौधों के चारों तरफ गुड़ाई करके एवं खाद डालकर सिंचाई कर दी जाती है। इन कटे हुए भाग से कुछ समय बाद अन्तः भूस्तारियाँ निकलती हैं जिनको अलग–अलग काट कर निकाल कर लगा दिया जाता है। ये नए पौधे को जन्म देती है।

**उन्नत किस्में –**

(अ) एक वर्षीय – स्थानीय किस्में, सफेद, पीली व बहुरंगीय रोमियों, येलोस्टोन, ग्लोरिया, बलान्का, इस्साबेल

(ब) बहुवर्षीय – बसन्तिका, मीरा, शारदा, कुन्दन, बीरबल साहनी, नानाको, बग्गी, सलेक्शन–5, सलेक्शन–4, रेड गोल्ड इत्यादि।

उद्यानकर्त्ता, किसानों तथा पुष्प सज्जा के लिए उपयोग के आधार पर गुलदाउदी को दो प्रमुख भागों में बाँटा जा सकता है।

**(i) छोटे फूल वाली –** इनमें फूलों का आकार छोटा होता है जो कि मालाएँ व आभूषण बनाने में उपयोगी रहते है। इसके प्रमुख वर्ग है :– पोम्पन, कोरियन, केसकेड, मारगुरेट, सिलेरेरिया, बटन, एनीमोन व क्विल्ड।

**(ii) बड़े फूल वाली –** इस वर्ग की गुलदाउदी के पुष्प बड़े आकार के होते है, जिनका उपयोग कटफ्लावर्स के रूप में तथा प्रदर्शनी आदि के लिए किया जाता है, इस वर्ग में इनकर्वड, इन्कर्विंग, रिफ्लेक्स्ड, इर्रेगुलर, सिन्गिल, एनीमोन, डेकोरेटिव, बॉल, क्विल्ड आदि हैं।

**रोपाई –** गुलदाउदी के स्वस्थ पौधों को व्यावसायिक स्तर पर खेत में, अलंकृत बागवानी में सजावट के लिए गमलों, क्यारियों में रोपण किया जाता है। खेत में पौधों की रोपाई करते समय पौधे से पौधे व कतार से कतार की दूरी छोटे फूल वाली किस्मों में 25 सेन्टीमीटर तथा बड़े फूलों वाली किस्मों में यह दूरी 30 सेन्टीमीटर रखें।

**खाद व उर्वरक –** गुलदाउदी के पौधों की अच्छी वृद्धि एवं अधिक पुष्पन के लिए भूमि में पोषक तत्वों की उपयुक्त मात्रा का होना आवश्यक है। भूमि की तैयारी के समय दी गयी खाद एवं उर्वरक की मात्रा के अलावा पौध की रोपाई से पहले 100 किलो यूरिया, 450 किलो सुपर फास्फेट तथा 100 किलो म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति हेक्टेयर भूमि में ठीक प्रकार से मिलाना चाहिए। पौधों की रोपाई के 2 माह तक नाईट्रोजन तत्व की अधिक आवश्यकता रहती है। अतः 50 किलो यूरिया रोपाई के चार सप्ताह बाद एवं इतनी ही मात्रा आठ सप्ताह बाद खड़ी फसल में अच्छी प्रकार देकर सिंचाई करना चाहिए।

**सिंचाई –** वर्षा ऋतु में सिंचाई की आवश्यकता नहीं रहती है परन्तु लम्बे अन्तराल में सिंचाई करना आवश्यक है। वर्षा के बाद कलियाँ बनते समय व फूल खिलते समय सिंचाई की अधिक आवश्यकता होती है अतः सप्ताह में एक बार सिंचाई अवश्य कर देनी चाहिए।

**देखभाल –** गुलदाउदी से अधिक व आकर्षक फूल प्राप्त करने के लिए निश्कलिकायन (Disbudding) तथा चुटाई या शाखाओं को नोचना (Pinching) की क्रिया की जाती है। जब पौधे की लम्बाई अधिक हो जाती है तो प्रमुख शाखाओं को शीर्ष पर से नोच देना लाभकारी होता है। इससे पौधा झाड़ीनुमा होकर फूल अधिक मात्रा में उत्पादित करता है। यह क्रिया प्रथम बार 4 सप्ताह बाद व एक बार पुनः 7 सप्ताह बाद करनी चाहिए।

पुष्प प्रदर्शनी के लिए बड़े आकार व अच्छी आकृति के फूल प्राप्त करने के लिए गुलदाउदी में निश्कलिकायन की क्रिया की जाती है। इसके लिए एक पौधे या एक शाखा पर निश्चित संख्या में पुष्पकलिकाऐं रखकर (प्रति शाखा एक) शेष कलियों को निकाल दिया जाता है।

**रोग व कीट –**

**मोयला (Aphids), पर्णजीवी (Thrips) कीट –** ये छोटे आकार के कीट है, जो कोमल शाखाओं व पत्तियों से रस चूसकर नुकसान पहुँचाते हैं। इनके नियंत्रण के लिए मैलाथियान 1मि.ली. प्रति लीटर का छिड़काव करना चाहिए।

**सनफ्लावर लेस विंग बग –** चमकदार पारदर्शी कीट है जो कोमल पत्तियाँ खाता है। इसके नियंत्रण के लिए डाइमिथोएट 30 ईसी 1 मिली प्रति लीटर पानी का घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

**चूर्णी फंफूद रोग (Powdery mildew) –** यह फंफूद जनित रोग है, जिससे पत्तियों पर सफेद चूर्ण जमा हो जाता है। इसके नियंत्रण के लिए कैराथेन ई.सी. का 1 मिली प्रति लीटर का छिड़काव करना चाहिए।

**पत्ती धब्बा रोग (Leaf spot)** – इसके नियंत्रण के लिए बाविस्टीन 0.1 प्रतिशत के घोल का छिड़काव 10 दिन के अन्तर में करना चाहिए।

**फूलों की तुड़ाई व उपज –**

गुलदाउदी के फूलने के लिए दिन छोटा और रात लम्बी होना आवश्यक है। प्राकृतिक रूप से ये स्थिति नवम्बर माह में शुरू होती है। फूलों के पूरे खिल जाने पर नियमित रूप से फूलों की तुड़ाई करते रहना चाहिए ताकि पौधों पर नई कलियाँ निरन्तर आती रहें और अधिक उपज प्राप्त हो सके। प्रति हेक्टेयर 100–150 क्विंटल फूलों की उपज प्राप्त होती है। कटफ्लावर की उम्र फूलदान में अधिक बढ़ाने के लिए 1.5 प्रतिशत सुक्रोज 200 पीपीएम हाइड्रोक्सी क्वीनोलिन के घोल में रखें।

## ग्लेडियोलस (Gladiolus)

**वानस्पतिक नाम** – *ग्लेडियोलस स्पीशीज (Gladiolus spp.)*

**कुल** इरीडेसी (Iridaceae)

**उत्पत्ति** अफ्रीका

ग्लेडियोलस को मुख्य रूप से कट फ्लावर के रूप में उपयोग में लाते हैं। कन्दीय पुष्पों में इसका विभिन्न रंगों, गुणवत्ता और आकर्षक के कारण अलग ही महत्व है। जिसकी बड़े होटलों व अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में बहुत माँग है। इसे बुके बनाने के काम में लिया जाताहै। साथ ही साथ हर्बेशियस बार्डर एवं गमले में भी इसे लगाते हैं। ग्लेडियोलस का फूल जिसको कणिश (स्पाइक) कहा जाता है 50 से 100 सेमी लम्बा होता है, इस पर 10–20 फूल होते हैं जो कि रजनीगंधा की भांति 8–10 दिन तक खिलते रहते हैं। आजकल ग्लेडियोलस के फूलों की बाजार में काफी माँग है।

**जलवायु** – ग्लेडियोलस वैसे शीतोष्ण जलवायु का पौधा है किन्तु इसकी कई ऐसी किस्में हैं जिन्हें गर्म जलवायु में उगाया जा सकता है। राजस्थान प्रदेश में इसके फूल अक्टूबर से मार्च तक उपलब्ध किए जा सकते हैं। इसके पुष्प व पुष्प डण्डिका (स्पाइक) तापमान, प्रकाश एवं भूमि में नमी से प्रभावित होते हैं, जिससे गुणवत्ता पर प्रभाव पड़ता है यह 15 से 45 डिग्री सेल्सियस तक तापमान सहन कर सकता है। खुली धूप पुष्पन के लिए अच्छी मानी जाती है।

**भूमि व तैयारी** – इसकी खेती के लिए जल निकास युक्त हल्की भुरभुरी (हल्की दोमट) मिट्टी उपयुक्त मानी जाती है। भारी मिट्टियों में उचित जल निकास के अभाव में पौधों की बढ़वार एवं पुष्पन ठीक नही हो पाता। खेत की 2–3 बार जुताई करके मिट्टी को बारीक कर लेना चाहिए। इसमें 25 टन गोबर की सड़ी खाद, 100 किग्रा फॉस्फोरस तथा 100 किग्रा पोटाश प्रति हेक्टेयर की दर से मिला देना चाहिए।

**प्रवर्धन** – ग्लेडियोलस का व्यावसायिक प्रवर्धन घनकन्दों (corm) द्वारा किया जाता है। एक घनकन्द से एक वर्ष में 1–3 तक घनकन्दक तैयार हो जाते है। इनका भी प्रयोग, प्रवर्धन के रूप में किया जाता है। बीज द्वारा प्रवर्धन का तरीका नयी किस्म के विकसित करने में किया जाता है। सामान्यतः एक घनकन्द से 4–5 बार फसल ली जा सकती है। इसके बाद इसकी गुणवत्ता नष्ट हो जाती है।

**घनकन्द रोपाई** – ग्लेडियोलस के घनकन्दों की रोपाई मुख्य रूप से राजस्थान में सितम्बर–अक्टूबर माह में की जाती है किन्तु फूल की उपलब्धता को लम्बे समय बनाए रखने के लिए अगस्त माह से लेकर नवम्बर तक भी रोपाई की जा सकती है। घनकन्दों की रोपाई से पूर्व 0.2 प्रतिशत बाविस्टीन के घोल से उपचारित कर लेना अति आवश्यक है क्योंकि इसमें फ्यूजेरियम नाम की बीमारी लगती है। रोपाई कतार से कतार की दूरी 30 सेन्टीमीटर, पौधे से पौधे की दूरी 20 सेन्टीमीटर रखते हुए करें। घनकन्दों को भूमि में 5.5 से 6.5 सेंमी गहरा लगाना चाहिए। गमलों में एक घनकन्द प्रति गमला की दर से रोपाई करनी चाहिए। घनकन्दों के आकार का फूलों की डंडी पर प्रभाव पड़ता है अतः 4–5 सेमी व्यास का घनकन्द रोपाई के लिए उपयुक्त रहता है। एक हेक्टेयर में कुल घनकन्द 1.5 लाख लग जाते हैं।

**उन्नत किस्में –**

ग्लेडियोलस की पुष्प के रंग के आधार पर कुछ प्रमुख किस्में निम्न है :–

**गुलाबी** – रोज, फ्रेन्डशिप, सुचित्रा, पीटर, पीयर, स्पिक एण्ड स्पैन ।

**पीला** – जेस्टर गोल्ड, अपोलो, यलो स्टोन, ट्रू येलो, नोवा लक्स, मनोहर, मुक्ता, पूनम ।

**लाल** – यूरोविजन, हटिंग शॉंग, सिलविया, ऑस्कर, मैसेगनी, रोज सुप्रीम, ट्रेडर, अग्निरेखा ।

**सफेद** – स्नो प्रिन्सेज, एम स्टरडम व्हाइट, व्हाइट फ्रेन्डशिप, सेन्सरी, व्हाइट गाडैस, मनीषा, मीरा ।

**नीला** – हाई स्टाइल, फिडेलिया, विंड सांग, मयूर, ब्लू स्काई, केमेलिया ।

**क्रीम** – विन्कस ग्लोरी ।

**सिंचाई** – घनकन्दों के लगाने के 3–4 दिन बाद पहली सिंचाई करना चाहिए। इसके बाद गर्मियों में 5–7 दिन के अन्तर पर तथा सर्दियों में 10–12 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करना चाहिए।

**खाद एवं उर्वरक** – आवश्यकता पड़ने पर कमी के लक्षण प्रतीत होने पर भूमि की जाँच कराकर इसमें उर्वरक दिए जा सकते हैं। सामान्यतः लोहे तथा जस्ते की कमी के लक्षण दिखाई देते हैं। इसके लिए फेरस सल्फेट 0.2 प्रतिशत तथा जिंक सल्फेट 0.3 प्रतिशत का छिड़काव करें। 3 पत्ती तथा 6 पत्ती अवस्था में नत्रजन 100 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर की दर से दें।

**निराई–गुड़ाई** – घनकन्दों के लगाने के 1.5–2 माह बाद इन पर मिट्टी चढ़ाने से पौधों के गिरने का भय नही रहता तथा पौधों की वृद्धि भी अच्छी होती है। ग्लेडियोलस में सामान्यतः 4 से 5 निराई–गुड़ाई की आवश्यकता रहती है। लम्बे बढ़ते पौधों को सहारा देना भी लाभदायक रहता है।

**फूलों की कटाई** –कट फ्लावर्स के लिए उगाए गए पौधों पर पुष्प डंडी पूरी विकसित हो जाने के बाद जब सबसे नीचे वाली कली के फूल का रंग दिखने लगे तब डंडी को सुबह या शाम के समय तेज धार वाले चाकू से काट कर पानी से भरी प्लास्टिक की बाल्टी में एकत्रित कर लेना चाहिए। पुष्प डंडी को गमले में अधिक दिनों तक रखने के लिए इसमें 20 प्रतिशत सुक्रोज तथा 200 पी.पी.एम. हाइड्रोक्सी क्वीनोलीन के घोल में 24 घंटे तक पड़ा रहने दें। इस उपचार से पुष्प डंडी दो सप्ताह तक 1 से 2 डिग्री सेंटिग्रेड तापमान पर ताजा बनी रहेगी।

**घनकन्दों की खुदाई** – जब पौधा पीला पड़ने लगे तब सिंचाई बन्द कर देना चाहिए एवं जब पौधा पूरी तरह सूख जाए तब खुदाई करके घनकन्द एवं कार्मल्स निकाल कर मिट्टी साफ करके 0.2 प्रतिशत बाविस्टीन के घोल में 30 मिनट तक उपचारित कर ठंडी एवं सूखी जगह पर संग्रहीत कर लेना चाहिए। व्यावसायिक स्तर पर इन घनकन्दों को बोरी में भरकर शीतगृह में $3^0$ से $4^0$ से. तापक्रम तथा 90 प्रतिशत आर्द्रता पर रख देना चाहिए।

**कीट व रोग** – ग्लोडियोलस के पौधों को कटवर्म तथा सेमीलूपर नामक कीट नुकसान पहुँचाते हैं। इनके नियंत्रण के लिए नुवान 1.5 मिली का एक लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए। घनकन्दों को उपचारित करके रोपाई करने से प्रायः घनकन्द विगलन रोग का प्रकोप नही होता है।

## अभ्यास प्रश्न

### बहुचयनात्मक प्रश्न–

1. पुष्पराज की उपाधि निम्न में से किस पुष्प को दी गयी है?
   (अ) ग्लेडियोलस (ब) गुलदाउदी
   (स) गुलाब (द) गेंदा
2. चेती व देशी गुलाब का प्रवर्धन मुख्यतः किस विधि से किया जाता है?
   (अ) कलम (ब) कलिकायन
   (स) गूटी (द) बीज
3. गेंदा का प्रवर्धन किस विधि से किया जाता है?
   (अ) कलम (ब) कलिकायन
   (स) गूटी (द) बीज
4. सूत्रकृमि प्रभावित मृदाओं में किस फसल की खेती की सिफारिश की जाती है?
   (अ) ग्लेडियोलस (ब) गुलदाउदी
   (स) गुलाब (द) गेंदा
5. गुलदाउदी की उत्पति किस देश में हुई है?
   (अ) जापान (ब) चीन
   (स) अफ्रीका (द) भारत
6. ग्लेडियोलस का प्रवर्धन किस विधि से होता है?
   (अ) बीज (ब) कन्द
   (स) घनकन्द (द) कलम
7. आकर्षक पुष्प प्राप्त करने के लिये निश्कलिकायन व चुटाई की क्रिया किस पुष्प फसल में की जाती है?
   (अ) ग्लेडियोलस (ब) गुलदाउदी
   (स) गुलाब (द) गेंदा

### अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

8. राज्य में गुलाब की खेती कहाँ–कहाँ होती है ?
9. गुलाब के व्यावसायिक उत्पादों के नाम लिखिए।
10. गुलाब के प्रवर्धन की व्यावसायिक विधि का वर्णन कीजिए।

### लघूत्तरात्मक प्रश्न–

11. खेती योग्य गुलाबों का वर्णन करिए।
12. गुलाब में कृन्तन का महत्व लिखिए।
13. गुलाब में खाद उर्वरक प्रबन्धन का वर्णन कीजिए।

14. देशी गुलाब की खेती का वर्णन निम्न शीर्षकों में कीजिए –

(i) जलवायु (ii) भूमि व तैयारी

(iii) पौध रोपण (iv) खाद उर्वरक (v) कृन्तन

15. गेंदा की किस्मों का वर्गीकरण कीजिए।

16. गेंदा की पौध तैयार करने की विधि लिखिए।

17. गेंदा में उर्वरक एवं खाद प्रबन्धन लिखिए।

18. गेंदा की देखभाल में किन–किन बातों का ध्यान रखतें हैं ?

19. गेंदा की खेती का निम्न शीर्षकों में वर्णन कीजिए –

(i) जलवायु (ii) भूमि

(iii) किस्में (iv) बीज की मात्रा व पौध तैयार करना

(v) पौध रोपण (vi) फूलों की तुड़ाई व उपज

20. ग्लेडियोलस का महत्व लिखिए।

21. ग्लेडियोलस की खेती के लिए भूमि व उसकी तैयारी के बारे में बताइए।

22. ग्लेडियोलस का प्रवर्धन किस तरह किया जाता है ?

23. ग्लेडियोलस के घनकन्दों की रोपाई किस तरह की जाती है ?

24. ग्लेडियोलस की खेती में खाद उर्वरक प्रबंधन का वर्णन कीजिए।

25. ग्लेडियोलस की पुष्प रंग के अनुसार जातियाँ बताइए।

**उत्तर माला –** 1. (स) 2. (अ) 3. (द) 4. (द) 5. (ब) 6. (स) 7. (ब)

# अध्याय–13
# औषधीय पौधों की सामान्य जानकारी एवं उपयोगिता
# (Medicinal Plants : General Description & Uses)

### 1. तुलसी (Ocimum)

प्रचलित नाम (Common Name) : तुलसी, तुलसा, तुलीन
वानस्पतिक नाम (Botanical Name) : *ओसीमम* प्रजाति (*Ocimum* species)
कुल (Family) : लेमिएसी (Lamiaceae)

तुलसी औषधीय गुणों की दृष्टि से एक 'अमृत बूटी' है। भारत में ही नहीं, अपितु विश्व में व्यापक रूप से तुलसी पाई जाती है। तुलसी का जन्म स्थान एशिया के उत्तरी पूर्वी क्षेत्र माने जाते हैं। तुलसी के पौधे आज भी जंगली अवस्था में विश्व के अनेक क्षेत्रों में पाये जाते हैं। हिन्दू समाज में तुलसी की पूजा की जाती हैं और उनके द्वारा प्रतिदिन पौधे का जल चढ़ाना एक पुनीत कार्य माना जाता है, जिसका वर्णन पुराने ग्रन्थों में मिलता हैं। तुलसी एक ऐसा पौधा है जिसके सेवन से कई स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं का समाधान होता है। इसकी हरी पत्तियों का सेवन उपयुक्त है, लेकिन औषधियों के लिए इसके तेल का उपयोग किया जाता है। इसके तेल की विदेशों में भारी माँग है, जिसके निर्यात से विदेशी मुद्रा अर्जित की जाती है।

तुलसी अनेक सुगंधित तेलों का अच्छा स्रोत है जो हल्के हरे रंग का होता हैं। इसके तेल में कपूर (कैम्फर), सिट्रॉल, जिरोनीओल, निनाइल ऐसीटेट, मिथाइल, चार्वीकॉल, यूजीनॉल, और प्रसाधन सामग्री बनाने में किया जाता हैं। डेंटल क्रीम, माउथवाश, बेकरी, सूप, सलाद, सॉस, जैम, मुरब्बे और औषधीय रूप में इसके विभिन्न अंगों का उपयोग किया जाता है। तुलसी के रस को शहद के साथ लेना कैंसर रोग के उपचार में उपयोगी है। तुलसी स्वाद में चटपटी, कड़वी हल्की रुखी, पचने पर कूट एवं गर्म स्वभाव की होती हैं। यह विभिन्न रोगों का नाश करने वाली दिव्य औषध है। यह मलेरिया, श्वाँस, कफ, खाँसी, उल्टी, महिलाओं में होने वाले रोग, गठिया, सनायु, गुर्दा की खराबी से उत्पन्न शोथ, पथरी, सफेद दाग, रक्त में कोलस्ट्रोल की मात्रा बढ़ जाना आदि में नियमित रूप से सेवन करने से लाभ होता है। तुलसी में औषधीय गुणों के अतिरिक्त अनेक ऐसे भी गुण हैं जो जीवन एवं स्वास्थ्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं। तुलसी का नियमित सेवन हृदय को शक्ति प्रदान करता है।

### 2. सफेद मूसली

प्रचलित नाम (Common Name) : सफेद मूसली
वानस्पतिक नाम(Botanical Name) : *क्लोरोफाइटम बोरिविलिएनम* एल (*Chlorophytum borivilianum L.*)
कुल (Family) : लिलिएसी (Liliaceae)

#### भारतीय भाषाओं में नाम

| | |
|---|---|
| गुजराती | – धोली मूसली |
| मराठी | – सफेद अथवा सुफेला मूसली |
| मलयालम | – शैदेबेली |
| तमिल | – तानिवितांग |

मूसली को मानव मात्र के लिए प्रकृति द्वारा प्रदत्त बहुमूल्य उपहार कहा जाये तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। इसका उत्पत्ति स्थान उष्ण व उपोष्ण कटिबंधीय अफ्रीका है। और वहीं से यह पूरे विश्व में फैली है। विश्व में 300 से अधिक प्रजातियाँ हैं, जिनमें से 85 प्रतिशत आज भी अफ्रीका में पाई जाती हैं। इसका उपयोग आयुर्वेदिक, एलोपैथिक, यूनानी दवाइयों के निर्माण हेतु प्रयुक्त होने वाली यह दिव्य जड़ी बूटी है। सामान्यतः यह पौधा प्राकृतिक रूप से जंगलों में पाया जाता है, परन्तु जंगलों की अंधांधुध कटाई एवं अपरिपक्व दोहन के फलस्वरूप अब यह पौधा लुप्त होने के कगार पर है और यही कारण है कि अब इसकी विधिवत खेती की ओर पर्याप्त ध्यान दिया जाने लगा है।

सफेद मूसली एक कंदयुक्त पौधा होता है, जिसकी अधिकतम ऊँचाई 45 सेमी तक होती है। इसकी कंदिल जड़ें जिन्हें कंद अथवा फिंगर्स की संज्ञा दी जाती है। जंगलों में यह वर्षा ऋतु में स्वयं उग आती है। ग्रामीण व आदिवासी इसे उखाड़कर सस्ती दरों पर बेच देते हैं। इस स्थिति में मूसली, पूर्णतया तैयार नहीं हो पाती है, जिसके कारण औषधीय गुण भी विकसित नहीं हो पाता है। उच्च्य गुणवत्ता वाली सफेद मूसली का बाजार मुल्य 1800–2000 रुपये प्रति किलोग्राम है, जबकि विदेशी मुद्रा में इसका बाजार भाव 3000 रुपये प्रति किलोग्राम तक है।

**औषधीय उपयोग** – सफेद मूसली शक्तिवर्धक, मेधावर्धक, प्रसवोपरान्त शारीरिक क्षतिपूर्ति, हृदय दुर्बलता, टॉनिक स्वरूप, बुढ़ापे में कमजोरी दूर करने वाली प्रसिद्ध औषध, प्रजनन क्षमता में वृद्धि के लिए उपयोगी, माताओं में दूध बढ़ाने के लिए भी उपयोगी है। सफेद मूसली को दूसरी शिलाजीत की संज्ञा दी जाती है। चीन, उत्तरी अमेरिका में पाये जाने वाले पौधे जिन्सेंग (पेनेक्स) का विकल्प माना गया है। विदेशों में इसे कैलाग जैसे फ्लेक्स बनाये जाते हैं जिनका पौष्टिक नाश्ते के रूप में उपयोग किया जाता हैं।

## 3. सनाय (Indian Senna)

सामान्य नाम (Common Name) : सोनामुखी, सनायमकी
वानस्पतिक नाम (Botanical Name) : *केसिया अंगस्टीफोलिया* वहल (*Cassia angustifolia Vahl.*)
कुल (Family) : फैबेसी (Fabaceae)

सनाय (*केसिया अंगस्टीफोलिया*), कुल फैबेसी व उपकुल सिजलपिनाइडी का पौधा है। अरब और सोमालिया में सनाय (स्वर्ण पत्ती) के पौधे जंगली रूप में मिलते हैं। एक अन्य प्रजाति भारत में पाई जाती है। जिसका नाम है *केसिया एक्यूटिफोलिया* विभिन्न भाषाओं में इसके अलग–अलग नाम हैं, जैसे– संस्कृत में मार्कण्डी, मार्कण्डिका(अभिनव) हिन्दी में सनाय, सनायमकी (मुखी), बंगाली में सोनामुखी, गुजराती में मीठी आवल सोनामुखी, कोंकणी में सेनामक्की, अंग्रेजी में इंडियन सेन्ना आदि।

दक्षिण भारत के तिन्नेवेली, मदुराई एवं त्रिचरापल्लि आदि में बड़े पैमाने पर इसकी खेती की जाती है। तिन्नेवली में होने वाली सनाय अरबी की अपेक्षा श्रेष्ठ होती है। भारत में प्रतिवर्ष 20 करोड़ रुपये की सनाय की पत्तियों का निर्यात किया जाता है। राजस्थान के जोधपुर, बाड़मेर, जैसलमेर, बीकानेर व नागौर जिलों की शुष्क जलवायु सनाय के लिए विश्व में सर्वाधिक उपयुक्त है।

**औषधीय उपयोग (Medicinal Uses)** – सनाय मुख्यतः एक रेचक (Laxative) का कार्य करता है। इसकी पत्तियों एवं फलियों मे सेनोसाइड पाए जाते हैं। जिनका उपयोग औषध निर्माण के लिए किया जाता है। वर्तमान में अनेकों आयुर्वेदिक, एलोपैथिक, यूनानी, एवं होम्योपैथिक औषधियों के निर्माता इसकी पत्तियों का उपयोग विभिन्न औषधियों के निर्माण हेतु कर रहे हैं। उदाहरण के लिए कई कब्जनाशक चूर्ण में सनाय की पत्तियाँ ही होती हैं। इस पौधे से प्राप्त रॉल (Resin) का **'इजिफल असाकदुस'** यूनानी दवा बनाने हेतु उपयोग किया जाता है, जिसका मस्तिष्क और पेट से लसीले पदार्थ निकालने के लिए उपयोग किया जाता हैं।

इसके जूस व पाउडर को कैन्सर व टयूमर के लिए उपयोग किया जाता है। सनाय बीजों को अमलतास के साथ दही में पीस कर त्वचा पर उपस्थित रिंग वॉर्म (Ring-worm) के उपचार हेतु उपयोग किया जाता हैं।

यद्यपि सनाय की पत्तियों का उपयोग प्रमुख पेट की बीमारियों से सम्बन्धित औषध निर्माण के लिए किया जाता है परन्तु इसके साथ–साथ अन्य रोगों की रोकथाम के लिए अन्य औषधियाँ भी बनाई जा रही हैं जैसे पीलिया, अस्थमा, मलेरिया बुखार, अपच आदि।

सनाय का सेवन करने के उपरान्त 6–10 घंटे के अन्दर रेचन क्रिया पूरी हो जाती है। आदती कब्ज के रोगियों में कोष्ठ शुद्धि के लिए सनाय उपयुक्त औषध है। विकृत दोषों के निर्हरण के लिए यह एक उत्कृष्ट औषध है। इसी कारण तृतीयक, चातुर्थिक आदि पर्यायज्वर, पित्तज एवं सोदाजन्य आमवात (संधिवात) एवं कटिशूल, गंधसी, वातरक्त एवं कुपचन के कारण मल शुद्धि न होने से शरीर में मल संचय होने पर अमलताश आदि अन्य उपयुक्त औषधियों के साथ इसका सेवन करने से दूषित पित्त आदि और व्याधिजनक विषों का शरीर से निर्हरण होता है और नवीन शुद्ध पित्तादि उत्पन्न होते है और औषध अपना कार्य भली–भाँति करती है। शोषणोपरान्त सनाय का शरीर से निस्सरण मूत्र, स्तन्य आदि सभी शारीरिक स्रावों से होता है। अतएव स्तनपान कराने वाली स्त्रियों में सनाय का सेवन करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए क्योंकि माता के सनाय सेवन करने पर स्तनन्धय –शिशु पर भी उसका प्रभाव पड़ सकता हैं। ऐसे शिशुओं में रेचन कराने के लिए सनाय के इस गुण का उपयोग भी किया जाता है।

## 4. गिलोय

प्रचलित नाम (Common Name) : गुडुची, गिलोय
वानस्पतिक नाम (Botanical Name) : *टीनोसपोरा कार्डीफोलिया* एल. (*Tinospora cordifolia L.*)
कुल (Family) : मेनिसपर्मिएसी (Menispermaceae)

आयुर्वेद शास्त्र में गिलोय को ज्वर की एक उपयोगी औषध मानकर जीवन्ती नाम दिया गया है तथा अमृत के समान गुणकारी होने से इसे अमृता नाम से जाना जाता है। यह समस्त भारत में विशेषकर गरम प्रान्तों में अधिक होती है। हिन्दी में इसे गिलोय,अंग्रेजी में टिनोस्पोरा तथा लेटिन में टिनोस्पोरा कार्डिफोलिया कहते हैं। गिलोय की बहुवर्षीय, चिकनी एवं मांसल लता बहुत विस्तार में वृक्षों पर फैल जाती है। शाखाओं से डोरे के समान शोरियाँ निकलकर भूमि की ओर लटकती हैं। इसके पत्ते पान के समान, 2–4 इंच के घेरे में गोलाकार नुकीले, चिकने, पतले, सात से नौ शिराओं युक्त एवं 1–3 इंच लम्बे पर्णवृन्त से युक्त होते हैं। प्रायः वसन्त ऋतु में इसके पुराने पत्ते पीले होकर गिर जाते हैं और ज्येष्ठ माह तक नवीन पत्ते निकल आते हैं। उसी समय हरापन युक्त पीले रंग के अथवा केवल पीले रंग के फूलों के गुच्छे आते

हैं। इसके फल मटर के समान होते हैं और पकने पर लाल हो जाते हैं तथा बीज कुछ टेढ़े और चिकने होते हैं।

गिलोय के मूल तथा तने का उपयोग औषध के लिये किया जाता है। ताजी अवस्था में तने की छाल हरी तथा मांसल रहती है तथा उस पर पतली भूरे रंग की बाह्य त्वचा रहती है, जिसकी पपड़ी निकलती रहती है। इस पर छोटे–छोटे गड्ढे होते हैं। इसको काटने से अन्दर का भाग चक्राकार दिखाई देता है। ताजी एवं हरी गिलोय अधिक लाभप्रद होती है। गर्मी में मई माह के अन्त में इसका संग्रह करना चाहिए। प्रयोग के पूर्व इसके ऊपर की छाल खुरचकर निकाल दी जाती हैं। इसमें गन्ध नहीं होती, किन्तु स्वाद कड़वा होता है।

### उपयोग

आयुर्वेदिक मतानुसार गिलोय कटु, तिक्त तथा कषाय रस युक्त एवं विपाक में मधुर रस युक्त रसायन, संग्राही, उष्णवीर्य, लघु बलकारक, अग्निदीपक, तथा त्रिदोष, आम, तृषा, दाह, प्रमेह, कास, पाण्डुरोग, कामला, कुष्ठ, वातरक्त, ज्वर और वमि को दूर करती है। यह श्वास, कास, अर्श, मूत्रकृच्छ, हृद्रोग और वात इन सब का नाश करने वाली होती हैं।

गिलोय पत्र आग्नेय, सर्वप्रकार के ज्वर को दूर करने वाले, लघु, कषाय, कटु तथा तिक्त रस युक्त, विपाक में मधुर रस युक्त, रसायन, बलकारक, उष्ण, ग्राही एवं त्रिदोष, तृषा, दाह, प्रमेह, वात, रक्तविकार–वातरक्त, कामला, कुष्ठ तथा पाण्डुरोग को दूर करने वाले होते हैं।

आचार्य चरक ने गिलोय को मुख्यतः वातहर माना है, जबकि बाद के कई आचार्य इसे त्रिदोष हर, रक्तशोधक, प्रतिसंकरामक मानते हैं। विभिन्न अनुपानों के प्रयोग से यह सभी दोषों का शमन कर रक्त शुद्धि करती है, ऐसा माना जाता है। आचार्य सुश्रुत ने गिलोय को तिक्त रस युक्त तथा पित्त, कफ शामक कहा है तथा आचार्य वाग्भट्ट के अनुसार यह प्रमेह, मधुमेह की तथा सुजाक की परम औषध है एवं चक्रदत्त के अनुसार यह ज्वर, कुष्ठ व श्लीपद की श्रेष्ठ औषध है।

नवीन अनुसंधानों से गिलोय का व्याधि प्रतिकारक गुण व्यापक रूप से प्रमाणित हुआ है। जीर्ण पूर्ति केन्द्र जनित विकार, जीर्ण विषम ज्वर तथा यकृत की हीन कार्यता आदि में कुछ काल तक गिलोय का प्रयोग करते रहने से लाभ होता है।

## 5. ईसबगोल (Psyllium)

सामान्य नाम (Common Name) : ईसबगोल

वानस्पतिक नाम (Botanical Name) :

*प्लांटैगो ओवेटा* फार्स्क *(Plantago ovata* Forsk)

कुल (Family) : प्लांटैजिनेसी (Plantagineceae)

ईसबगोल एक महत्वपूर्ण औषधीय फसल है। इसका मूल उत्पत्ति स्थान पश्चिम एशिया है। भारत इसका सर्वाधिक उत्पादक एवं निर्यातक देश है। भारत में मुख्य रूप से गुजरात एवं राजस्थान में उगाया जाता है। गुजरात के मेहसाणा और साबरकांठा जनपदों में लगभग 50,000 हेक्टेयर क्षेत्र में इसकी खेती की जा रही है जबकि राजस्थान के जालौर, पाली, जोधपुर, बाड़मेर, नागौर और सिरोही जनपदों में लगभग 5000 हेक्टेयर क्षेत्र में उगाया जा रहा है। विगत कुछ वर्षों में मध्यप्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों, जैसे – मंदसौर जनपद की मल्हार गढ़, मनासा, नीमच, एवं मंदसौर तहसीलों में भी लगभग 5000 हेक्टेयर क्षेत्र में इसका उत्पादन किया जा रहा है। ईसबगोल उत्पादन की सरल प्रक्रिया थोड़े समय में अधिकाधिक लाभ दिलाने वाली एवं इसके उत्पादन की बिक्री हेतु पर्याप्त निर्यात बाजार के साथ–साथ शासकीय मंडी जैसी उत्तम व्यवस्था के कारण इस औषधीय फसल को भारतीय कृषकों ने सहर्ष स्वीकार किया है। उल्लेखनीय बात यह है कि वर्तमान में भारत से निर्यात होने वाली औषधीय फसलों में ईबगोल का प्रथम स्थान है। कुल भारतीय उत्पादन का 90 प्रतिशत भाग विदेशों को निर्यात किया जाता है। जिससे विदेशी मुद्रा अर्जित होती है। यदि इसे एक बहुउपयोगी एवं निर्यातोन्तमुखी फसल की संज्ञा दी जाए तो अतिश्योक्ति नहीं होगी।

### औषधीय उपयोग (Medicinal Uses)

ईसबगोल के बीज एवं भूसी का विभिन्न प्रकार से औषध निर्माण में उपयोग किया जाता है, ईसबगोल पर आधारित अनेकों औषधियों और पाउडर एवं भूसी भारतीय और अर्न्तराष्ट्रीय बाजारों में प्रचलित है।

– ईसबगोल की भूसी पुराने कब्ज, अतिसार, पेट की सफाई, बवासीर मूत्र संस्थान, आँव–पेचिश जैसी शारीरिक रोगों को दूर करने हेतु आयुर्वेदिक औषधियों में मुख्य रूप से प्रयुक्त की जाती है।

– ईसबगोल का काढ़ा सर्दी जुकाम में पिया जाता है।

– इसका सौन्दर्य प्रसांधन में उपयोग किया जता है।

– ईसबगोल का डाईंग, केलिको प्रिंटिंग, खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों, जैसे– आइसक्रीम निर्माण और रंग रोगन के काम में भी प्रयोग किया जाता है।

– ईसबगोल का बचा छिलका प्रोटीन का मुख्य स्त्रोत होता है जिसे मुर्गियों के आहार के रूप में उपयोग किया जाता है।

### 6. रतनजोत

वानस्पतिक नाम – *जेट्रोफा कर्कस*एल. (*Jatropha quercus L.*)

कुल – यूफोरबियेसी

उत्पत्ति – उत्तर–पश्चिम व मध्य भारत

उपयोगी भाग – बीज

रतनजोत या जंगली अरण्ड एक झाड़ीनुमा 2–7 फीट ऊँचा वन औषधीय पौधा है, जो भारत के सभी प्रान्तों में पाया जाता है। यह साधारणतया पड़त भूमि एवं कृषि भूमि के चारों ओर बाड़ के रूप में पाया जाता है। राजस्थान में यह दक्षिणी अरावली पर्वतमाला के जनजाति बाहुल्य क्षेत्र में पाया जाता है। इसका औषधीय उपयोग अधिक होने के कारण यह अतिमहत्व का हो गया है। इसमें पाया जाने वाला तत्व कैंसर प्रतिरोधक क्षमता वाला होता है। अतः कैंसर सम्बन्धी औषधियों में इसका उपयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त बीजों द्वारा प्राप्त तेल का उपयोग दाद, खुजली, गठिया, लकवां आदि बीमारियों में किया जाता है। इसके पत्तों के स्वरस का उपयोग बवासीर तथा उदर सम्बन्धी रोगों में किया जाता है।

औषधीय उपयोग के अतिरिक्त रतनजोत औद्योगिक दृष्टि से भी एक महत्वपूर्ण पौधा है। इसे सौन्दर्य प्रसाधन, साबुन बनाने, रंगाई में, पशु आहार, कुक्कुट आहार, कीटनाशक आदि बनाने के कच्चे पदार्थ के रूप में भी उपयोग किया जाता है। रतनजोत के बीजों के तेल का जैविक ईंधन (बायो डीजल) के रूप में भी काम ले सकते हैं। ऐसा माना जा रहा है कि आने वाले समय में यह ईंधन के रूप में मील का पत्थर साबित होगा।

## अभ्यास प्रश्न

### बहुचयनात्मक प्रश्न–

1. तुलसी का वानस्पतिक नाम है –
   (अ) *क्लोरोफाइटम*
   (ब) *टीनोसपोरा कार्डीफोलिया*
   (स) *ओसीमम प्रजाति*
   (द) *जेट्रोफा कर्कस*

2. हिन्दू धर्म में किस पौधे की पूजा कर जल अर्पित करते है?
   (अ) सोनामुखी (सनाय) (ब) गिलोय
   (स) ईसबगोल (द) तुलसी

3. किस औषधीय पौधे का उपयोग रेचक (Laxative) के रूप में होता है?
   (अ) सनाय (ब) तुलसी
   (स) सफेद मूसली (द) गिलोय

4. किस पौधे के बीजों का तेल (बायोडीजल) जैविक ईंधन के रूप में उपयोगी है?
   (अ) ईसबगोल (ब) तुलसी
   (स) रतनजोत (द) सफेद मूसली

5. सफेद मूसली का भारतीय बाजार में मूल्य औसतन होता है –
   (अ) 1800–2000 रू/किलो
   (ब) 500 रू/किलो
   (स) 4000 रू/किलो
   (द) 200 रू./किलो

6. भारत से सर्वाधिक निर्यात किये जाने वाली औषधीय फसल है –
   (अ) तुलसी (ब) गिलोय
   (स) ईसबगोल (द) सफेद मूसली

### अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

7. औषधीय गुणों की दृष्टि से कौनसा पौधा 'अमृता' कहलाता है ?
8. सफेद मूसली का वानस्पतिक नाम क्या है ?
9. किस पौधे में रोग प्रतिकारक गुण पाया जाता है ?
10. ईसबगोल की भूसी का प्रयोग करने से किस रोग में सर्वाधिक लाभ होता है ?
11. ज्वर व रक्तविकार को दूर करने में किस औषधीय पौधे का उपयोग होता है ?
12. सौंदर्य प्रसाधन व साबुन बनाने में किस पौधे का उपयोग होता है ?

### लघूत्तरात्मक प्रश्न–

13. तुलसी के रस व तेल में कौन से रसायन पाये जाते हैं ?

14. सफेद मूसली में औषधीय गुण कौन से हैं ? केवल चार बताइए।

15. रिंग वार्म के उपचार हेतु किस औषधीय पौधे का उपयोग किया जाता है ?

16. ईसबगोल का कुल (Family) व वानस्पतिक नाम बताइए।

17. रतनजोत का औद्योगिक महत्व बताइए।

## निबंधात्मक प्रश्न–

18. तुलसी के पौधों के उपयोगिता का वर्णन कीजिए।

19. सफेद मूसली की पहचान उपयोग व औषधीय महत्व का सविस्तार वर्णन कीजिए।

20. गिलोय की पहचान, उपयोग व औषधीय महत्व सविस्तार बताइए।

21. ईसबगोल की खेती का प्रसारण, निर्यात व औषधीय महत्व बताइए।

## उत्तरमाला–

(1.) स (2.) द (3.) अ

(4.) स (5.) अ (6.) स

# अध्याय 14
# भारतीय अर्थव्यवस्था में पशुधन का महत्व
# (Importance of Livestock in Indian Economy)

देश की 69–70 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है एवं कृषि से सम्बन्धित धन्धों पर आश्रित है। पशुधन कृषि व्यवसाय में एक महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करता है। पशुधन से प्राप्त आय, घरेलू, पोषण, सुरक्षा एवं गरीबी उन्मूलन में महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान करती है। भारत का पशुधन क्षेत्र विश्व में सबसे बड़ा है। 19वीं पशुधन गणना, 2012 के अनुसार भारत में कुल 5120.57 लाख पशुधन एवं 7292.09 लाख कुक्कुट सम्पदा है। 92.5 मिलियन भैंस (मादा) 16.2 मिलियन भैंस (नर), 122.9 मिलियन गायें (मादा) 68.0 मिलियन गायें (नर) तथा 729.2 मिलियन मुर्गियां है (तालिका 14.1)। वर्ष 2014–15 के दौरान पशुधन क्षेत्र (Livestock Sector) से 145.73 मिलियन टन दूध (66.42 मिलियन टन दूध गायों से 74.71 मिलियन टन दूध भैंसों से एवं 5.18 मिलियन टन दूध बकरियों से), 48.5 मिलियन टन ऊन, 6.73 मिलियन टन मांस तथा 78484 मिलियन अण्डों का उत्पादन हुआ। दूध उत्पादन में भारत का विश्व में प्रथम स्थान है।

वर्ष 2012–13 में कुल राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पाद (GDP) का 4.11 प्रतिशत और कृषि से प्राप्त सकल घरेलू उत्पाद का 25.6 प्रतिशत पशुधन क्षेत्र से प्राप्त हुआ।

**राजस्थान की अर्थव्यवस्था में पशुधन का महत्व (Importance of Livestock in Economy of Rajasthan )**

क्षेत्रफल की दृष्टि से राजस्थान का देश में प्रथम स्थान है। राजस्थान का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 3,42,239 वर्ग कि.मी. है। इसका पश्चिमी तथा उत्तर पश्चिमी भाग मरू या अर्द्धमरूस्थलीय है। जो वृहद् भारतीय थार का रेगिस्तान के नाम से जाना जाता है। यह थार का रेगिस्तान राजस्थान के 12 जिलों में फैला है और कुल भू–भाग का 61.11 प्रतिशत है। राज्य के कुछ भाग पर अरावली की पहाड़िया बिखरी हुई है। राज्य में सिंचाई जल की अनुपलब्धता, सिंचाई के साधनों का अभाव, समय पर वर्षा का न होना, जोतों का आकार छोटा आदि ऐसे कारण है जिसकी वजह से ग्रामीण क्षेत्रों की जनता को कृषि उत्पादन के साथ–साथ पशुपालन को एक महत्वपूर्ण व्यवसाय के रूप में अपनाया जाता है। 19वीं पशुगणना, 2012 के अनुसार राज्य में कुल 577.32 लाख पशुधन तथा 80.24 लाख कुक्कुट सम्पदा है। जिसे नीचे तालिका 14.1 में दर्शाया गया है।

**तालिका 14.1 पशुधन सम्पदा (2012)**

| क्रसं | पशु की जाति | भारत (मिलियन में) | राजस्थान (लाखों में) |
|---|---|---|---|
| 1 | गौवंश | 190.90 | 133.24 |
| 2 | भैंस | 108.70 | 129.76 |
| 3 | भेड़ | 65.06 | 90.71 |
| 4 | बकरी | 135.17 | 216.66 |
| 5 | ऊँट | 0.4 | 3.26 |
| 6 | सुअर | 10.29 | 2.38 |
| 7 | अन्य | 1.51 | 1.23 |
| 8 | मुर्गी | 729.2 | 80.24 |

राजस्थान राज्य में कुछ जिले ऐसे है, जिसकी पशुधन घनत्व के रूप में विशेष पहचान है। जिन्हें तालिका 14.2 में दिया गया है।

**तालिका 14.2 राजस्थान में पशुधन घनत्व (पशुगणना, 2012 के अनुसार)**

| क्र.स. | जिले का नाम | क्षेत्र (वर्ग कि.मी.) | पशु घनत्व (प्रतिवर्ग किमी) |
|---|---|---|---|
| 1 | अजमेर | 8481 | 232 |
| 2 | अलवर | 8380 | 206 |
| 3 | बांसवाड़ा | 5037 | 277 |
| 4 | बारां | 6992 | 115 |
| 5 | बाड़मेर | 28387 | 189 |
| 6 | भरतपुर | 5066 | 251 |
| 7 | भीलवाड़ा | 10455 | 234 |
| 8 | बीकानेर | 27244 | 102 |

* 10 लाख (10,00,000) = एक मिलियन

| | | | |
|---|---|---|---|
| 9 | बूंदी | 5776 | 167 |
| 10 | चित्तौड़गढ़ | 10856 | 127 |
| 11 | चूरू | 16830 | 110 |
| 12 | दौसा | 3432 | 292 |
| 13 | धौलपुर | 3033 | 174 |
| 14 | डूंगरपुर | 3770 | 289 |
| 15 | गंगानगर | 10978 | 144 |
| 16 | हनुमानगढ़ | 9656 | 138 |
| 17 | जयपुर | 11143 | 252 |
| 18 | जैसलमेर | 38401 | 83 |
| 19 | जालौर | 10640 | 153 |
| 20 | झालावाड़ | 6219 | 165 |
| 21 | झुन्झुनूं | 5928 | 217 |
| 22 | जोधपुर | 22850 | 157 |
| 23 | करौली | 5524 | 169 |
| 24 | कोटा | 5217 | 124 |
| 25 | नागौर | 17718 | 178 |
| 26 | पाली | 12387 | 186 |
| 27 | प्रतापगढ़ | – | – |
| 28 | राजसमन्द | 386 | 292 |
| 29 | सवाईमाधोपुर | 4498 | 179 |
| 30 | सीकर | 7732 | 274 |
| 31 | सिरोही | 5136 | 175 |
| 32 | टोंक | 7194 | 168 |
| 33 | उदयपुर | 13419 | 207 |
| | | कुल –342239 | |

* राज्य में सर्वाधिक पशुधन वाला जिला बाड़मेर, जबकि कम पशुधन वाला जिला धौलपुर है।

* पशु घनत्व की दृष्टि से सर्वाधिक पशुघनत्व वाले जिले दौसा एवं राजसंमद तथा सबसे कम पशुधन घनत्व वाला जिला जैसलमेर है।

पशुधन से जो पशु उत्पादन प्राप्त होते है, उनका राज्य की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान है, जिनका वर्णन नीचे दिया गया है।

**1. दूध उत्पादन –** राज्य में वर्ष 2014–15 में कुल 16934 हजार टन दूध का उत्पादन हुआ, उसमें से 6126 हजार टन गायों से, 8985 हजार टन भैंसों से तथा 1823 हजार टन बकरियों से प्राप्त हुआ। दूध उत्पादन में राज्य का भारत में द्वितीय स्थान है।

**2. मांस उत्पादन –** राज्य में वर्ष 2014–15 में कुल 181 हजार टन मांस का उत्पादन हुआ। बकरे के मांस को (Chevon), भेड़ के मांस को (Mutton), सुअर के मांस को (Pork) तथा गाय के मांस को (Beef) कहते है मांस उत्पादन में राज्य का भारत में बारहवां स्थान है।

**3. अण्डा उत्पादन –** राज्य में सर्वाधिक अण्डा उत्पादन अजमेर जिले में होता है। इसलिये यहां 1988 में राजकीय कुक्कुट प्रशिक्षण संस्थान की स्थापना की गई। कुक्कुट पालन में राजस्थान का देश में चौदहवां स्थान है। जहां देशी मुर्गी प्रतिवर्ष 120 अण्डे देती है। वहीं उन्नत नस्ल की मुर्गी प्रतिवर्ष 252 अण्डे देती है वर्ष 2014–15 में राज्य में कुल अण्डा उत्पादन 1320 मिलियन था। अण्डा उत्पादन में राज्य का भारत में चौदहवां स्थान है।

**4. ऊन उत्पादन –** पशुधन निदेशालय, राजस्थान सरकार, जयपुर के अनुसार वर्ष 2014–15 में 90.7 लाख भेंड़े है। जिनसे कुल 14463 मीट्रिक टन ऊन का उत्पादन प्राप्त हुआ। ऊन उत्पादन में राज्य का भारत में प्रथम स्थान है।

**5. बाल –** ऊँट तथा बकरी की कुछ नस्लों से बाल प्राप्त होते हैं, जिनका उपयोग थैले, दरियाँ, ब्रश निम्न श्रेणी के कम्बल आदि बनाये जाते हैं।

**6. चमड़ा –** चमड़ा मृत एवं मांस के लिये पाले जाने वाले पशुओं से प्राप्त होता है। जो आय का एक अतिरिक्त स्रोत है। भारत ने 2013–14 में चमड़े तथा उनके उत्पादों के निर्यात करने से 36000 करोड़ रूपये की आय प्राप्त की।

**7. सींग, खुर, हड्डी –** सींग और खुरों से कई प्रकार के सजावटी सामान तथा बटन, कंघी आदि भी बनाये जाते है। जबकि हड्डी के चूरे को निर्जमीकृत करके मुर्गी आहार में काम में लिया जाता है। तथा खेती में खाद के रूप में भी प्रयोग किया जाता है।

**8. अन्य –** पशुओं का उपयोग परिवहन में बैंलगाड़ी, घोड़ागाड़ी, ऊँटगाड़ी, सवारी ऊँट आदि में होता है। साथ ही पर्यटक स्थल एवं मेलों में ऊँट एवं घोड़ों की दौड़ एवं उनके नाचने से मनोरंजन होता है। पशुओं से गोबर की प्राप्ति होती है जिसे खाद एवं छाने (उपले) बनाने में प्रयोग होता है। अतः पशुधन का राज्य की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान है।

## पशुधन का कृषि में महत्व
## (Importance of livestock in agriculture)

भारत एक कृषि प्रधान देश है। जहाँ की 69–70 प्रतिशत जनसंख्या कृषि एवं उससे सम्बन्धित कार्यों पर निर्भर करती है। प्राचीनकाल से ही पशुओं का कृषि में

महत्व रहा है। पशुपालन कृषि का अभिन्न अंग है तथा यह एक–दूसरे के पूरक है। आज देश में जनसंख्या के साथ–साथ पशु संख्या भी बढ़ती जा रही है। अधिकतर किसानों के पास खेती के लिए जमीन के छोटे टुकड़े हैं जहाँ ट्रेक्टर द्वारा खेती करना लाभदायक नहीं है। अतः छोटे किसान कृषि कार्यों में पशुओं का ही उपयोग करते हैं। अतः निम्नलिखित तथ्यों के आधार पर कह सकते हैं कि पशुधन का कृषि में बहुत महत्व है।

### 1. कृषि क्रियाओं में महत्व

भारत में यांत्रिक कृषि केवल बड़े–बड़े फार्मो पर की जाती है परन्तु अधिकतर किसानों के पास खेत की छोटी–छोटी जोते हैं, जहां ट्रेक्टर द्वारा खेती करना संभव नहीं है। अतः किसान निम्नलिखित कृषि क्रियाओं को पशुओं की सहायता से ही करते हैं।

#### 1.1 जुताई करना

अधिकांशतः किसानों की छोटी–छोटी जोतें होने के कारण आज भी जुताई पशुओं (बैल,पाडे,ऊँट) द्वारा ही की जाती है। बैलों से चलित देशी हल के फार की गहराई ट्रेक्टर चलित फार से अधिक होती है।

#### 1.2 भूमि को समतल करना

भूमि के असमतल होने पर करहे द्वारा समतल करते है। इस करहे को खीचने के लिए बैल की आवश्यकता होती है। बैल के स्थान पर पाडे या ऊँट का भी उपयोग कर सकते हैं।

#### 1.3 पाटा चलाना

जुताई के पश्चात् भूमि को समतल बनाने के लिए तथा मिट्टी के ढेलों को तोड़ने के लिए लकड़ी का भारी पाटा चलाया जाता है। इसे खींचने के लिए बैलों की आवश्यकता होती है।

#### 1.4 बुआई करना

बुआई के लिए देशी हल के पीछे नायला बाँधकर बीज की बुआई की जाती है। यह कार्य भी बैलों व ऊँटों द्वारा किया जाता है।

#### 1.5 मेंड़ व क्यारियाँ तैयार करना

इस कार्य में रिजमेकर आदि यंत्र काम में लेते है जिन्हें बैल आदि पशुओं से खींचा जाता है।

#### 1.6 सिंचाई

कृषि के लिए जल सींचन का बड़ा महत्व है। भारत में जल सींचन अधिकतर कुँओं से किया जाता है। जिनसे पानी निकालने के लिए बैलों आदि का ही प्रयोग किया जाता है।

#### 1.7 निराई–गुड़ाई

खेतों से खरपतवार निकालने के लिए कलपा यंत्र काम में ही लिया जाता है जिसे बैल आदि पशुओं द्वारा खींचा जाता है।

#### 1.8 गहाई

छोटे किसान अधिकतर गहाई का कार्य भी बैलों द्वारा ही करते हैं।

### 2. यातायात के साधन

किसान अपना उत्पादन खलिहान से घर तक तथा घर से कृषि उपज मण्डी तक बैल गाड़ियों द्वारा ले जाते है। ऊँट, घोड़ा, खच्चर आदि भी कृषि उपज इधर उधर ले जाने के काम आते हैं। दुर्गम स्थानों, पहाड़ों, रेगिस्तानों में अन्य सुविधाओं के अभाव में पशु यातायात ही प्रमुख साधन है।

### 3. खलिहान की सुरक्षा

खलिहान की सुरक्षा मुख्यतः पालतू कुत्ते द्वारा की जाती है।

### 4. कार्बनिक खाद

खाद उपज हेतु एक पौष्टिक पदार्थ है। भूमि की उर्वरता बढ़ाती है। गोबर एवं मूत्र पशुओं से ही प्राप्त होते हैं, जो खाद का कार्य करते हैं।

### 5. अकार्बनिक खाद

पशुओं के मरने के बाद उनकी हड्डियों से सुपर फॉस्फेट खाद बनाई जाती है। यह खाद फलों वाले पौधों व अलंकृत बागवानी के पौधों के लिए आवश्यक होती है।

### 6. ऊर्जा उत्पादन में योगदान

पशुओं से प्राप्त गोबर का उपयोग ईंधन के रूप में किया जाता है। गोबर के उपले बनाकर उनसे भोजन बनाने के काम लिया जाता है। गोबर का प्रयोग गोबर गैस संयंत्र में करके उससे गोबर गैस प्राप्त की जाती है। इस गैस का उपयोग भोजन बनाने, गैस की बत्ती से रोशनी उत्पन्न करने, विद्युत उत्पन्न करने आदि अनेकों कार्यों में किया जाता है। गोबर गैस बनाने के बाद प्राप्त स्लरी खाद के रूप में खेतों में प्रयोग की जाती है।

### 7. कृषकों को पूर्ण रोजगार

छोटे एवं सीमान्त किसानों को पशुपालन से वर्ष भर रोजगार प्राप्त होता है। खेती करने के बाद शेष समय में किसान पशु

पालन व्यवसाय कर पूर्ण रोजगार को प्राप्त करता है तथा उसकी आर्थिक स्थिति में सुधार भी होता है। एक उन्नत नस्ल की गाय एक परिवार को रोजगार प्रदान करने में सक्षम है।

### 8. कृषकों को पौष्टिक आहार का स्रोत

पशुपालन से दूध, मांस, अण्डा आदि प्राप्त होते हैं, जो पौष्टिक आहार के महत्वपूर्ण स्रोत हैं। दूध लगभग व पूर्ण भोजन है। मानव जाति के लिए दूध, दही, घी, मांस अण्डा आदि पदार्थ भोजन के रूप में उपयोगी हैं। इस देश में जहाँ काफी लोग शाकाहारी हैं, पशु प्रोटीन, दूध के रूप में ली जाती है। प्रोटीन के अतिरिक्त वसा, शर्करा,विटामिन, लवण आदि आवश्यक तत्व भी दूध में विद्यमान होते हैं।

### 9. आर्थिक स्थिति में सुधार

हमारे देश में राष्ट्र की कुल कृषि आय का लगभग 20 प्रतिशत केवल पशुधन से ही प्राप्त होता है। पशुओं से जो आय प्राप्त होती है। इस आय का उपयोग कृषि के लिए खाद, बीज एवं यंत्र खरीदने में किया जा सकता है।

### 10. कृषि में उपजे फसल अवशेष एवं खाद्य उपजात का सर्वोत्तम उपयोग

फसलों से प्राप्त उपजात जैसे कड़वी, भूसा आदि पशुओं को खिलाकर उनसे दूध, ऊन, मांस आदि प्राप्त किये जाते हैं। बैलों के द्वारा कृषि कार्य सम्पादित किया जाता है। यदि पशु न हो तो यह फसल उपजात व्यर्थ नष्ट हो जायेंगे क्योंकि ये मानव के उपयोग के बाहर पदार्थ हैं। मानव केवल इनको ईंधन के रूप में उपयोग ले सकता है। इस प्रकार पशुओं का कृषि में महत्वपूर्ण योगदान है। बिना पशुओं के भारत में खेती करना कठिन कार्य है। पशुओं की उपयोगिता खेती में भविष्य में भी बनी रहेगी।

## महत्वपूर्ण बिन्दु

1. भारत में विश्व की 57 प्रतिशत भैंसे तथा 12.5 प्रतिशत गायें हैं।
2. दुग्ध उत्पादन में भारत का विश्व में प्रथम स्थान है।
3. राजस्थान के अजमेर जिले में सर्वाधिक मुर्गियों की संख्या है।
4. राजस्थान के भौगोलिक क्षेत्रफल का 61.11 प्रतिशत रेगिस्तान है।
5. वर्ष 2012 की पशुगणना के अनुसार राजस्थान में 577.32 लाख पशुधन तथा 80.24 लाख मुर्गियाँ हैं।
6. वर्ष 2012 की पशु गणना के अनुसार सर्वाधिक पशु घनत्व वाले जिले दौसा एवं राजसमंद तथा सबसे कम घनत्व वाला जिला जैसलमेर है।
7. प्रत्येक भेड़ से प्रतिवर्ष औसतन 1.365 किलोग्राम ऊन प्राप्त होती है।
8. भारत कृषि प्रधान देश है।
9. खेतों का आकार छोटा होने के कारण कृषि कार्यों में मशीनों की अपेक्षा पशुधन अधिक उपयोगी है।
10. यातायात के लिए ऊँट, घोड़ा, खच्चर आदि को काम में लेते हैं।
11. फसलों की कटाई के बाद ग्रामीण क्षेत्रों में पशुधन से रोजगार मिलता रहता है।

## अभ्यास प्रश्न

### बहुचयनात्मक प्रश्न–

1. विश्व में दुग्ध उत्पादन में भारत का कौनसा स्थान है?
   (अ) पहला (ब) दूसरा
   (स) तीसरा (द) चौथा
2. वर्ष 2012 की पशुगणना के अनुसार राजस्थान में कुल पशुधन कितना है?
   (अ) 577.32 लाख (ब) 621.42 लाख
   (स) 534.49 लाख (द) उपरोक्त में से कोई नहीं
3. भारत की जनसंख्या कृषि पर निर्भर है–
   (अ) 40 प्रतिशत (ब) 69–70 प्रतिशत
   (स) 50 प्रतिशत (द) 55 प्रतिशत।

### अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

4. कुल राष्ट्रीय सकल घरेलू उत्पाद में पशुधन का हिस्सा कितना है?
5. पशुगणना 2012 के अनुसार प्रतिवर्ग किलोमीटर सबसे कम पशु राजस्थान के किस जिले में पाये जाते हैं?
6. यातायात में उपयोगी पशुओं के नाम लिखिए।

### लघूत्तरात्मक प्रश्न–

7. वर्ष 2012 की पशुगणना के अनुसार सर्वाधिक पशु संख्या एवं सबसे कम पशु संख्या वाले जिलों के नाम लिखिए।

### निबन्धात्मक प्रश्न–

8. राजस्थान की अर्थव्यवस्था मे पशु उत्पादों के महत्व की विस्तृत जानकारी दीजिए।
9. राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में पशुधन का क्या महत्व है? बताइए।

### उत्तरमाला

1. (अ) 2. (ब) 3. (ब)

# अध्याय 15
# पशुओं की आयु एवं भार ज्ञात करना
# (Determination of Age & Weight of Animals)

**(i) आयु ज्ञात करना (Determination of Age) –** पशुओं की आयु एवं आयु ज्ञात करने के तरीकों की जानकारी, पशु अनुसंधान, पशुपालन व्यवसाय, पशुपालन एवं पशु चिकित्सा विज्ञान के विद्यार्थियों एवं कृषकों को अपने–अपने स्तर पर होनी आवश्यक है। जिससे वे अपने–अपने कार्य क्षेत्रों में सफलतापूर्वक कार्य कर सकें। पशुपालन व्यवसाय में अच्छा लाभ प्राप्त करने एवं नया पशु खरीदते समय पशु की उत्पादक उम्र की जानकारी होनी चाहिए।

गाय, भैंसों की औसत आयु 20 से 23 वर्ष होती है। इन गाय, भैंसों का उत्पादन पहले से तीसरे व्यांत तक बढ़ता हैं, तीसरे से पाँचवें व्यांत तक लगभग स्थिर रहता है और उसके बाद उत्पादन में गिरावट आती है।

पशु अनुसंधान केन्द्र एवं संगठित डेयरी फार्मो को छोड़कर सामान्यतः पशुओं के जन्म की तिथि का कोई अभिलेख (Record) नहीं रखा जाता है। जिसके अभाव में पशुओं की आयु अन्य तरीकों से ज्ञात करते हैं जो निम्न प्रकार है।

1. पशु की शारीरिक दशा देखकर
2. खुर देखकर
3. सीगों द्वारा
4. दाँतों द्वारा

**1. पशु की शारीरिक दशा देखकर (Determination of Age on the basis of Physical Condition):** पशु की शारीरिक दशा देखकर आगे तालिका – 15.1 के आधार पर उसकी आयु का अनुमान ही लगाया जा सकता है कि पशु कम उम्र का है या अधिक उम्र का है।

**तालिका – 15.1 पशु की शारीरिक दशा देखकर आयु का निर्धारण करना**

| क्र. स. | शरीर के अंग | शारीरिक दशा | |
|---|---|---|---|
| | | कम उम्र में | अधिक उम्र में |
| 1. | आंखे (Eyes) | चमकीली, चपल | चमक रहित, निदालू, आंखों के चारों तरफ झुर्रियाँ। |
| 2. | सींग (Horns) | छोटे, चमकीलें | बड़े भद्दे (चमक रहित) |
| 3. | त्वचा (Skin) | खींची हुई, चमकदार | ढीली झुर्रीदार, खुरदरी |
| 4. | पीठ (Back) | सीधी | झुकी हुई |
| 5. | पेट (Barrel) | सामान्य | लटका हुआ (नस्ल के अनुसार) |
| 6. | अयन (Udder) | सुगठित, आगे और पीछे की तरफ फैला हुआ शरीर से चिपका हुआ | ढीला, लटका हुआ |
| 7. | थन (Teats) | सुगठित, मध्यम आकारके | ढीले लटके हुए। |
| 8. | थूथन (Muzzle) | चमकीला | झुर्रीदार |
| 9. | स्वभाव | फुर्तीला, क्रियाशील (Active) | सुस्त, हताश (Nervous) |

**2. खुर देखकर (Hoof Examination):** पशुओं की उम्र का अनुमान उसके खुरों को देखकर भी लगाया जाता है। कम उम्र में पशुओं के खुर छोटे आकार के चमकीले होते हैं, लेकिन उम्र के बढ़ने के साथ–साथ खुरों का स्वरूप भी बदल जाता है। खुरों का आकार बढ़ जाता है, लेकिन चमक कम होती है। काम की अधिकता खुले चारागाहों में चरने की समयावधि, स्थानीय भूमि (रेतीली, पथरीली, दलदली) आदि खुरों के स्वरूप को प्रभावित करते हैं। जिसके कारण खुरों द्वारा आयु का निर्धारण सही नहीं हो पाता है। कई पशु विक्रेता खुरों को काट–छाँटकर एवं रेगमाल से घिसकर खुरों को चमकीला बना देते हैं। जिससे पशु कम उम्र का दिखाई देता है।

**3. सींगों द्वारा (Horn Examination):** इस तरीके से केवल सींगों वाले पशुओं की ही आयु ज्ञात की जा सकती है। अगर आप पशु के सींगों की बनावट देखें तो उन पर छल्ले दिखाई देते हैं जो भैसों में स्पष्ट तथा गायों में कम स्पष्ट दिखाई देते हैं।

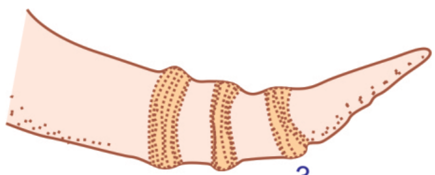


**चित्र 15.1 तीन छल्लों युक्त सींग**

ये छल्ले पशु की तीन वर्ष की उम्र पर बनना प्रारम्भ होते हैं। अतः तीन वर्ष की उम्र पर पहला छल्ला बनता है। उसके बाद हर वर्ष एक नया छल्ला बनता रहता है। अतः पशु के सींग पर छल्लों की संख्या के आधार पर उसकी उम्र का निर्धारण किया जाता है। कई बार पशु विक्रेता पशु के सींग के छल्ले को रेती से घिस देता है, जिससे पशु की आयु वास्तविक आयु से कम निर्धारित होती है। पशु की आयु की गणना निम्न सूत्र द्वारा की जाती है।

**पशु की उम्र (वर्षों में) =2+ पशु के सीगों पर छल्लों की संख्या**

**4. दाँतों द्वारा (Teeth Examination):** अन्य तरीकों की अपेक्षा पशुओं की आयु ज्ञात करने का यह तरीका अच्छा है। इसमें पशुओं के दाँतों की दशा देखकर एवं दाँतों की संख्या गिनकर उसकी आयु का अनुमान लगाया जाता है। इस तरीके से उम्र का सही निर्धारण होता है, लेकिन इसमें भी छः माह तक का अन्तर आ सकता है। दाँतों द्वारा आयु केवल अनुभवी व्यक्ति ही ज्ञात कर सकता है जिसे पशुओं की आयु के अनुसार दाँतों की स्थिति की जानकारी हो। दाँतो द्वारा आयु ज्ञात करने से पूर्व दाँतों की स्थिति की जानकारी हो। दाँतों द्वारा आयु ज्ञात करने से पूर्व दाँतों से सम्बन्धित कुछ जानकारी की आवश्यकता है, जो निम्न प्रकार है :–

**(i) कर्तन दाँत (Incisor Teeth) :** गाय, भैंस में ये सामने वाले होंठों से ढके रहते है। गाय, भैंस, भेड़, बकरी (चारों जुगाली करने वाले) के नीचे वाले जबड़े में ये दाँत पाये जाते हैं। इनकी कुल संख्या चार जोड़ी यानि 8 होती है। ये पहले अस्थायी तथा बाद में स्थायी निकलते हैं। इन्हें काटने वाले दाँत कहते हैं। इन्हें प्रायः पहला केन्द्रीय (Central), दूसरा मध्य (Middle), तीसरा पार्श्व (Lateral), तथा चौथा कोने की (Corner) जोड़ी कहा जाता है। पशुओं की आयु मुख्यतः इन्हीं दाँतों द्वारा आंकी जाती है।

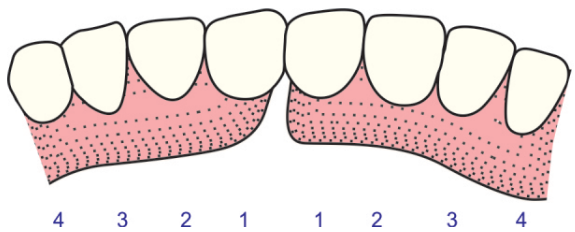


**चित्र सं. 15.2 गाय के कर्तन दाँत**

1. प्रथम (केन्द्रीय) जोड़ी 2 द्वितीय (मध्य) जोड़ी 3 तीसरी (पार्श्व) जोड़ी तथा 4 चौथी (कोने की) जोड़ी

**(ii ) अग्रचर्वण एवं चर्वण दाँत (Premolar and Molar Teeth) :** पशु के मुख में दोनों (दांयी एवं बांयी) ओर के जबड़ो में ऊपर तथा नीचे चौड़ी सतह वाले छः–छः दाढ़ पाये जाते हैं, जिन्हें संयुक्त रूप से कपोल (Cheek Teeth) दाँत कहते हैं। इनमें से पहले तीन दाढ़ों को अग्रचर्वण (Premolar) तथा शेष तीन को चर्वण (molar) कहते हैं। आगे वाले दाढ़ छोटे तथा पीछे वाले बड़े होते चले जाते हैं। अर्थात् पहला अग्रचर्वण सबसे छोटा तथा अन्तिम चर्वण सबसे बड़ा होगा। अग्रचर्वण की कुल संख्या 12 तथा चर्वण दाँतों की भी कुल संख्या 12 ही होती है।

**(iii ) कील दाँत (Canine Teeth) :** ऊपर, नीचे के दोनों जबड़ों में दोनों (दांयी एवं बांयी) ओर अग्रचर्वण दाँतों से पहले एवं कर्तन दाँतों के पश्चात् एक–एक कील दाँत पाया जाता है। जो नुकीला होता है। कील दाँतों की कुल संख्या चार होती है। ये दाँत सूअर, कुत्ता, बिल्ली में पाये जाते हैं,

लेकिन जुगाली करने वाले जानवरों जैसे– गाय, भैंस, भेड़, बकरी में नहीं पाये जाते।

**(iv) दन्त्यू पूर (Dental Pad)** जुगाली करने वाले पशुओं के ऊपरी जबड़े में कर्तन दन्त न होकर ऊतकों (Tissues) की एक मोटी एवं कठोर सतह होती है, जिसे दन्त्यू पूर कहते है। यह कर्तन दन्त चारा काटने में सहायता करता है।

**(v) अस्थायी दाँत (Temporary Teeth) :-** इन्हें दूध के दाँत (Milk Teeth)भी कहते हैं। ये दाँत जन्म के समय या जन्म से एक माह के अन्दर निकल आते हैं, बाद में ये दाँत गिर जाते हैं और इनके स्थान पर नये स्थायी दाँत निकल आते हैं।

**(vi) स्थायी दाँत (PermanentTeeth) :-** ये दाँत अस्थायी दाँतों के गिरने के बाद उनके स्थान पर उगते हैं, लेकिन इनमें चर्वण (Molar)दाँत स्थायी ही उगते हैं।

**(vii) भरा मुख (Full Mouth) :-** जब पशु के मुख में सभी स्थायी दाँत निकल आते है। उस अवस्था को भरा मुख कहते हैं।

**(viii) टूटा मुख (Broken Mouthed) :-** अधिक उम्र का वह पशु जिसका एक या एक से अधिक स्थायी दाँत गिर गये हों।

**(ix) पोपला (Gummer) :-** अधिक उम्र का वह पशु जिसके सभी स्थायी दाँत गिर गये हों।

**(x) दन्त सूत्र (Dental Formula) :-** यह पशु के मुख में सभी प्रकार के दाँतों को बताने का तरीका है। इस दन्त सूत्र से मुख में दांयी या बांयी एक तरफ के दाँतों को ही दर्शाते है। इस संख्या को दुगुना करने पर मुख में कुल दाँतों की संख्या ज्ञात हो जाती है।

दन्त सूत्र = $\frac{I}{I} + \frac{C}{C} + \frac{PM}{PM} + \frac{M}{M}$

यहाँ I= इन्साइजर (कर्तन दाँत)

C= कैनाइन (कील दाँत)

PM= प्रीमोलर (अग्रचर्वण)

M= मोलर (चर्वण)

साधारण भिन्न के रूप में लिखे दन्त– सूत्र में अंश ऊपरी जबड़े में दाँतों को दर्शाते हैं, जबकि हर निचले जबड़े में दाँतों को दर्शाते हैं।

**(x) दन्त विन्यास :** गाय, भैंस, भेड़, बकरी के मुख में अस्थायी तथा स्थायी दाँतों का व्यवस्थापन निम्न प्रकार होता है –

(अ) अस्थायी दन्त विन्यास = $\frac{0}{4} \; \frac{0}{0} \; \frac{3}{3} \; \frac{0}{0}$

(ब) स्थायी दन्त विन्यास = $\frac{0}{4} \; \frac{0}{0} \; \frac{3}{3} \; \frac{3}{3}$

नोट : यह दन्त विन्यास ऊपर एवं नीचे के जबड़े में एक तरफ (दाँये या बाँये) के दाँतों को दर्शाते हैं। इतने ही दाँत दूसरी तरफ होते हैं।

## दाँतों का विकास निरीक्षण तथा आयु आंकना

जन्म के समय बछड़े के मुख में, निचले जबड़े में दो दाँत दिखाई दे सकते हैं। जन्म से एक माह के अन्दर आठों अस्थायी काटने वाले दाँत (Incisors) निचले जबड़े में निकल आते हैं। जन्म से एक महीने के अन्दर ही सभी 12 अग्रचर्वण (Premolar) भी निकल आते हैं। लेकिन चर्वण दाँत (Molar) नहीं निकलते हैं। ये चर्वण दांत स्थायी ही निकलते हैं। स्थायी चर्वण दाँतों का पहला, दूसरा एवं तीसरा जोड़ा अर्थात् कपोल दाँतों (Cheek Teeth)का चौथा, पाँचवां और छठा जोड़ा क्रमशः 6 माह 1 वर्ष तथा 2 वर्ष की आयु में निकलता है। जब चर्वण दाँतों का तीसरा जोड़ा यानि कपोल दाँतों का छठा जोड़ा 2 वर्ष की उम्र में निकलता है, तब तक सभी अस्थायी कर्तन दन्त गिर जाते हैं।

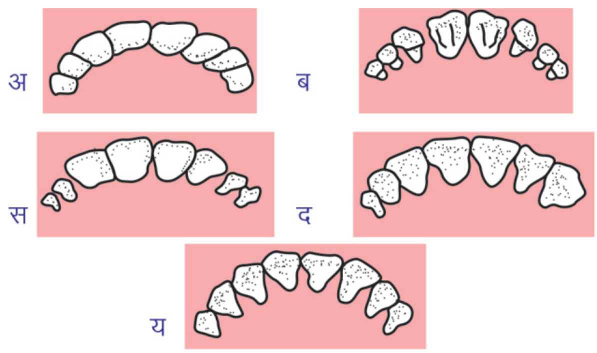


**चित्र 15.3 कर्तन दाँतों को देखकर गाय, भैंसो की आयु ज्ञात करना**

## तालिका 15.2
## गाय, भैसों के विभिन्न दाँत तथा उनके निकलने का समय

| निकलने का समय | काटने वाले दाँत | अग्रचर्वण एवं चर्वण दाँत |
|---|---|---|
| जन्म से प्रथम सप्ताह | अस्थायी प्रथम जोड़ी | |
| दूसरा सप्ताह | अस्थायी दूसरी जोड़ी | |
| तीसरा सप्ताह | अस्थायी तीसरी जोड़ी | |
| चौथा सप्ताह | अस्थायी चौथी जोड़ी | |
| एक माह | | |
| 6 माह तक | | सभी अस्थायी अग्रचर्वण चर्वण दाँत का पहला स्थायी जोड़ा अर्थात कपोल दाँतों का चौथा स्थायी जोड़ा |
| 1½ वर्ष | | चर्वण दाँत का दूसरा स्थायी जोड़ा |
| 2–2½ वर्ष | स्थायी प्रथम जोड़ी | चर्वण दाँत का तीसरा जोड़ा |
| 2¼– 2½ वर्ष | – – | अग्रचर्वण दाँतों का पहला एवं दूसरा जोड़ा स्थायी |
| 2½–3 वर्ष | स्थायी दूसरी जोड़ी | – – |
| 3–3½ वर्ष | स्थायी तीसरी जोड़ी | अग्रचर्वण दाँतों का तीसरा जोड़ा स्थायी |
| 4–4½ वर्ष | स्थायी चौथी जोड़ी | – – |

राजस्थान की अर्थव्यवस्था में भेड़, बकरी पालन व्यवसाय का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इसलिये गाय, भैसों के साथ भेड, बकरियों की आयु के निर्धारण की जानकारी भी आवश्यक है। भेड़ बकरियों का दन्त सूत्र एवं दन्त विन्यास भी गाय, भैंस के दन्त सूत्र एवं दन्त विन्यास के समान ही होता है तथा इनमें दाँतों की कुल संख्या 32 भी गाय, भैंसों के समान ही होती है। लेकिन इनके निकलने, घिसने एवं गिरने का समय, गाय, भैंसों से भिन्न होता है जो आगे तालिका नं0 15.3 में दिया गया है।

## तालिका 15.3 भेड़ों के दाँत निकलने की आयु

| संभावित आयु (महीनों में) | कर्तन दाँतों की स्थिति |
|---|---|
| जन्म के समय | 0 से 2 जोड़ी अस्थायी |
| 6–10 | सभी अस्थायी निकल आते हैं। |
| 14–20 | प्रथम (केन्द्रिय) जोड़ी स्थायी |
| 21–25 | द्वितीय (मध्य) जोड़ी स्थायी |
| 26–30 | तृतीय (पार्श्व) जोड़ी स्थायी |
| 30–36 | चौथी (कोने वाली) जोड़ी स्थायी |

भेड़ बकरियों को पाँच वर्ष की आयु में प्रौढ़ माना जाता है। बकरियों में एक वर्ष की आयु में सभी अस्थायी कर्तन दाँत निकल आते हैं। चौदह माह की उम्र में प्रथम (केन्द्रीय) जोड़ी अस्थायी दाँत गिर जाते हैं और उनके स्थान पर प्रथम (केन्द्रीय) जोड़ी स्थायी दाँत निकल आते हैं, इसके बाद द्वितीय (मध्य) जोड़ी, तृतीय (पार्श्व) जोड़ी तथा चौथी (कोने वाली) जोड़ी, अस्थायी दाँत गिर कर उनके स्थान पर क्रमशः तीसरे, चौथे तथा पाँचवें वर्ष की आयु में स्थायी दाँत निकल आते हैं। पाँच वर्ष की उम्र के बाद ये स्थायी दाँत घिसने शुरू हो जाते है और बकरी में तेजी से बुढ़ापा आने लगता है।

## 15.2 भार ज्ञात करना (Weight Determination)

पालतू पशुओं के उत्तम प्रजनन, पोषण, प्रबन्धन एवं स्वास्थ्य की रक्षा से सम्बन्धित कार्यों सफलतापूर्वक क्रियान्वयन हेतु शरीर भार ज्ञात होना आवश्यक है। अनुभवी पशु व्यवसायी एवं कसाई पशु को देखकर ही उसके शरीर भार का अनुमान लगा सकते हैं। लेकिन यह कार्य सामान्य पशुपालक के लिए कठिन है। पशुपालकों को विभिन्न उद्देश्यों हेतु पशुओं का वास्तविक शरीर भार ज्ञात करना पड़ता है।

### पशुओं का शरीर भार ज्ञात करने के उद्देश्य :

1. वयस्क कटिया/बछिया (Heifer)का प्रजनन योग्य होना उसकी आयु की अपेक्षा उसके शरीर भार पर निर्भर करता है। अतः समय पर प्रजनन कराने हेतु उसका शरीर भार ज्ञात किया जाता है। जैसे कटिया (Buffalo Heifer) का शरीर भार 250–270 किलोग्राम होने पर वह प्रजनन योग्य हो जाती है।

2. सन्तुलित आहार के निर्धारण हेतु शरीर भार का ज्ञात होना आवश्यक है।

3. वृद्धि करने वाले पशुओं में नियमित वृद्धि की जानकारी हेतु एवं उनकी वृद्धि दर ज्ञात करना। एक बछड़ी का शरीर भार प्रतिदिन औसतन 400–500 ग्राम बढ़ता है।

4. भेड़, बकरी, सूअर को कट्टी घर (Slaughter House) भेजने से पूर्व शरीर का भार ज्ञात करना।

5. शरीर का भार ज्ञात कर पशु के स्वास्थ्य के बारे में जानकारी हो जाती है। यदि पशु का शरीर भार कम हो रहा है तो परजीवियों के संक्रमण, आहार में पोषक तत्वों की कमी या शरीर भार कम करने वाली बीमारियों जैसे–जोहंसन रोग,टी.बी आदि की सम्भावना का अनुमान होता है।

6. अनुसंधान कार्यों हेतु शरीर का भार ज्ञात करना।

7. शरीर भार के आधार पर दवाई की मात्रा निर्धारित की जाती है।

**1. सूत्र द्वारा भार ज्ञात करना** :– पशुओ का शरीर भार उस पशु के शरीर की विभिन्न मापों जैसे लम्बाई, ऊँचाई,

उदर घेरा, हृतघेरा (Chest Girth) पर निर्भर करता है। इन शारीरिक मापों के आधार पर विभिन्न वैज्ञानिकों एवं संस्थानों ने शरीर भार ज्ञात करने के लिये विभिन्न सूत्र बनाये हैं, जिनके द्वारा पशुओं के शरीर का अनुमानित भार ज्ञात कर लिया जाता है। सूत्र द्वारा भार ज्ञात करने से पूर्व भार ज्ञात करने वाले को पशु शरीर की विभिन्न मापें कैसे ली जाये यह जानकारी होनी चाहिये। ये मापें निम्न प्रकार ली जाती हैं:–

**लम्बाई (Length)**: कंधे के अग्रिम बिन्दु(Point of Shoulder) से अपलास्थि बिन्दु (Point of Pine bone) तक पशु की लम्बाई। यह लम्बाई फीता द्वारा माप ली जाती है।

**हृतघेरा (Chest Girth):** सीने के चारों ओर की परिधि हृतघेरा या हृदय गर्त कहलाती है, जिसे फीते (Tape) द्वारा माप लिया जाता है।

**उदर घेरा (Abdominal Girth):** जांघ के जोड़ (Stiffle Joint) के आगे से पेट के चारों ओर का घेरा उदर घेरा होता है, इसे भी (Tape) द्वारा माप लिया जाता है।

(i) **शेफर का सूत्र (Shaeffer's Formula):** गाय एवं भैंस का शरीर भार इस सूत्र द्वारा ज्ञात किया जाता है।

$$\textbf{पशु का भार (पौण्ड में)} = \frac{(\text{लम्बाई इन्चों में}) \times (\text{हृतघेरा इन्चों में})^2}{300}$$

## महत्वपूर्ण बिन्दू

1. पशुओं की आयु ज्ञात करने के चार तरीके हैं– पशु की शारीरिक दशा देखकर, खुर देखकर, सीगों द्वारा तथा दाँतों द्वारा।
2. गाय, भैंसों के सींगो में पहला छल्ला तीन साल की उम्र पर बनता है।
3. दाँतों द्वारा पशुओं की आयु ज्ञात करने हेतु मुख्यतः कर्तन दाँतों का ही निरीक्षण किया जाता है।
4. गाय, भैंस, भेड़, बकरी में कुल 32 दाँत होते हैं।
5. कंधे के अग्रिम बिन्दु से अपलास्थि बिन्दु के बीच की दूरी, पशु की लम्बाई कहलाती है।

## अभ्यास प्रश्न

### बहुचयनात्मक प्रश्न–

1. पशुओं की आयु ज्ञात करने का सबसे अच्छा तरीका है
   (अ) शारीरिक दशा देखकर
   (ब) खुर देखकर
   (स) सींगो द्वारा
   (द) दाँतों द्वारा
2. बछड़े में सभी अस्थायी अग्रचर्वण दाँत निकल आते है
   (अ) 7 दिन में (ब) 14 दिन में
   (स) 21 दिन में (द) एक माह में

### अति लघूत्तरात्मक प्रश्न–

3. गाय, भैंस की औसत आयु कितनी होती है?
4. कील दाँत किन पशुओं में पाये जाते हैं?
5. दन्त्यू पूर की परिभाषा दीजिए।

### लघूत्तरात्मक प्रश्न–

6. भेड़ में कौन–कौन से दाँत पाये जाते हैं?
7. पशु का शरीर भार ज्ञात करने के लिए शेफर सूत्र लिखिए।

### निबन्धात्मक प्रश्न–

8. सींगो द्वारा भैंस की आयु कैसे निर्धारित करते हैं? वर्णन कीजिए।
9. पशुओं का शरीर भार ज्ञात करने के उद्देश्य बताइए।

### उत्तरमाला–

1. (द) 2. (द)

# अध्याय 16
# सामान्य प्रबंध (General Management)

## पशुओं की सामान्य देखभाल (General Care of Animals)

भारत कृषि प्रधान देश है। यहाँ लगभग 60 प्रतिशत कार्य पशुओं द्वारा किया जाता है। परन्तु आजकल पशुओं की दशा बहुत ही सोचनीय है, इसका कारण पशुओं को उचित मात्रा में चारा दाना न मिलना और उनकी भली प्रकार से देखभाल न होना है। इससे पशुओं का स्वास्थ्य गिर जाता है, और उनकी उत्पादन क्षमता में भी कमी आ जाती है। उत्पादन में वृद्धि करने के लिए आवश्यक है कि पशुओं की अच्छी प्रकार से देखभाल की जाए।

## दुग्ध–दोहन के सिद्धान्त (Principles of milking)–

पशु के अयन में दूध का बनना एक निरन्तर प्रक्रिया है। अयन में दूध एकत्र करने वाले सभी भागों में दूध भरने के बाद वह क्रिया बहुत धीरे पड़ जाती है। अतः अयन को खाली करना आवश्यक हो जाता है।

गाय के चार थन होते हैं। प्रत्येक थन में एक थन नलिका और एक थन सिस्टर्न (Teat cistern) होता है। थन के भीतर थन सिस्टर्न, ग्रन्थि सिस्टर्न (Gland Cistern) में खुलता है। ग्रन्थि सिस्टर्न गोल या अण्डाकार अथवा अनियमित आकार का रिक्त स्थान होता है। एक ग्रन्थि सिस्टर्न में 500 से 600 ग्राम दूध एकत्रित करने की क्षमता होती है। प्रत्येक ग्रन्थि सिस्टर्न में 12 से 50 तक दूध नलिकाएँ आकर खुलती हैं। प्रत्येक दुग्ध नलिका छोटी–छोटी बहुत सी नलिकाओं में विभाजित होती है। इन छोटी नलिकाओं के सिरे पर एक लोब्यूल (Lobule) होता है। जिस लोब्यूल में बहुत सी एलब्योलाई (Alveoli) होती हैं, जिनमें दूध बनता है।

## 16.1 दुग्ध दोहन की विधियां (Methods of milking)

दुधारू पशुओं का दूध निकालना एक प्रकार की कला है। इस कला में अनभुवी व्यक्ति शीघ्र ही पूर्ण दूध निकाल सकता है। अनुभवहीन व्यक्ति पशु का पूरा दूध नहीं निकाल सकता है।
"गाय के अयन में एकत्रित दूध को थनों द्वारा बाहर निकालने की क्रिया को ही दुग्ध–दोहन कहते हैं"

दोहन दो प्रकार से किया जाता है –

1. मशीन द्वारा
2. हाथों द्वारा

### 1. मशीन द्वारा

ज्यादातर पश्चिमी देशों में दोहन का कार्य मशीनों द्वारा किया जाता है। पिछले कुछ वर्षो से भारत में भी मशीन द्वारा दुग्ध दोहन का प्रचलन बढ़ा है। परन्तु यह केवल राजकीय फार्म या बड़े व्यावसायिक डेयरी फार्म तक ही सीमित है। संकर गायों की बढ़ती संख्या के साथ ही मशीन द्वारा दुग्ध निकालने को प्रोत्साहित करना होगा। जहाँ मशीन द्वारा दूध निकाला जाता है। वहाँ विद्युत आपूर्ति निरन्तर होना आवश्यक है।

**चित्र 16.1 मशीन द्वारा दूध दोहन**

**मशीन द्वारा दुग्ध निकालने के निम्न लाभ है –**

1. स्वच्छ दूध उत्पादन में सहायता मिलती है।
2. श्रमिकों की आवश्यकता कम पड़ती है।
3. पशुओं की संख्या अधिक होने पर दूध शीघ्रता से निकाला जा सकता है।
4. अधिक दूध देने वाले पशुओं में इस विधि द्वारा दूध दोहन में सुविधा होती है।

### दोष

इस विधि का मुख्य दोष है कि यदि पूर्ण दूध निकालने के बाद, मशीन समय पर बंद न हुई तो खून भी निकल सकता है।

**2. हाथों द्वारा**

इस विधि में थन का अंगूठा और प्रथम अंगुली के मध्य मजबूती से पकड़ा जाता है। इसके बाद थन को उसी स्थिति में नीचे की ओर खींचते हुए एवं ऊपर से नीचे तक हाथ खिसकाते हुए दूध की धार निकालते हैं। इस क्रिया को शीघ्रता से तब तक दोहराते हैं, जब तक थन का सम्पूर्ण दूध न निकल जावे। इस विधि का उपयोग छोटे थन वाली गाय एवं भेड़ों का दूध निकालते समय या अंत में जब थनों में थोड़ा सा दूध शेष रह जाये उसे निकालने के लिए करना चाहिए।

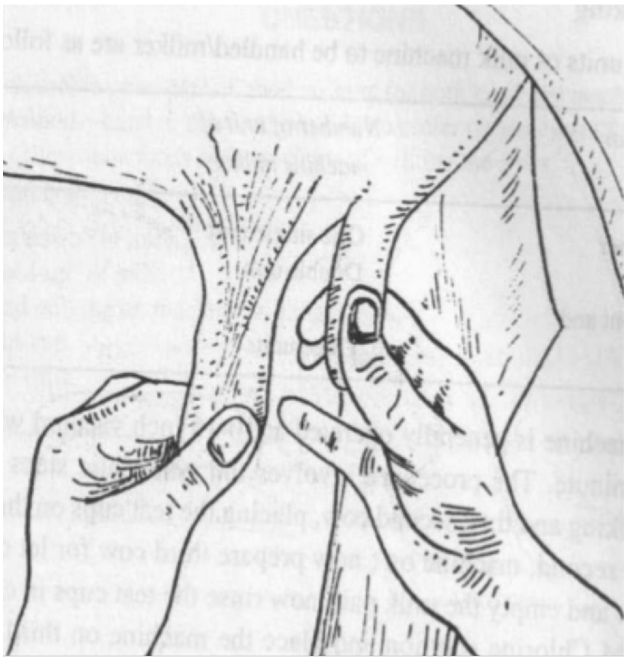

**चित्र सं. 16.2 चुटकी विधि द्वारा दुग्ध दोहन**

**दोष**

इस विधि से पशु को दूध दोहते समय कष्ट होता है।

**2. अंगूठा दबाकर –** इस विधि में चारों अंगुलियों को थन के चारों ओर लगाकर अंगूठा बीच में दबाकर दूध निकाला जा सकता है। इस विधि से दूध निकालते समय पशु को कष्ट होता है। जिससे पशु पूरा दूध नहीं उतारता है। कई बार अंगूठे दबाव के कारण थन को भी क्षति पहुँचती है। इस विधि द्वारा लगातार दूध निकालने से थन खराब होने की संभावना रहती है। कभी–कभी थन में गाँठ पड़ जाती है। इस विधि द्वारा पशु को नही दोहना चाहिए।


**चित्र 16.3 अंगूठा दबाकर दूध निकालना**

**3. पूर्ण हस्त दोहन विधि –** इस विधि में हथेली एवं चारों अंगुलियों के बीच में थन दबाकर दूध निकाला जात है। अन्य विधियों की अपेक्षा इस विधि में दूध अधिक तेजी से दुहा जाता है। यह विधि मध्यम व बड़े वाले पशुओं के लिये उपयुक्त है।

**चित्र 16.4 पूर्ण हस्त दोहन विधि द्वारा दूध निकालना**

1. इस विधि से पशुओं को किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता है।
2. थनों में गाँठ पड़ने का भय नही रहता है।

### 16.2 मदकाल की पहचान, जननांगों की जानकारी, प्रजनन विधियाँ (प्राकृतिक एवं कृत्रिम)

प्रजनन प्रबन्ध, पशुधन प्रबन्ध का महत्त्वपूर्ण अंग है। सामान्यतः फार्म पशुओं की प्रजनन सम्बन्धित जानकारी के लिए निम्नलिखित शब्दावली का प्रयोग किया जाता है :–

**यौवनारम्भ (Puberty)** – मादा जनन अंगों में जब अण्डाशय (Ovary) पूर्णतः विकसित हो जाती है और उसमें अण्डाणुओं के बनने की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है, तो मादा का यौवन आरम्भ हो जाता है, इस यौवनावस्था को प्यूबर्टी (Puberty) कहते हैं। इस अवस्था में मादा गर्भधारण योग्य हो जाती है।

यह अवस्था भारतीय गायों में लगभग 24 माह, संकर गायों में 18 माह, भैंसों में 30 माह, बकरियों में 12 माह एवं भेड़ों में 10 माह होती है। **मद चक्र** (Estrus Cycle) – दो मदकालों के मध्य की शारीरिक क्रियात्मक घटनाओं को मदचक्र कहते हैं। यह वह अवधि है जिसमें पशु गर्भधारण कर भ्रूण विकास के लिए अपने शरीर में सुरक्षित वातारण प्रदान करते हैं। विभिन्न पशुओं का मदचक्र तालिका 16.2.1 मे दिया गया है।

**मद काल (Estrus Period)** – यह वह अवधि है जिसमें मादा पशु नर के साथ सम्भोग की इच्छुक होती है। मद को ताव, गर्मी या पाली में आना भी कहते हैं। विभिन्न पशुओं का मदकाल तालिका 16.2.1 में दिया गया है। पशु के मदकाल को पहचानने के लिए प्रातः काल या सांयकाल या दोनों समय निरीक्षण करना चाहिए। झुण्ड में रहने वाले पशुओं के लिए नसबन्दी किए सांड का प्रयोग किया जा सकता है, जिसे टीजर बुल कहते हैं। अन्यथा फार्म पर पाले जा रहे पशुओं का निम्न लक्षणों द्वारा मदकाल में पहचाना जा सकता है।

**तालिका 16.2.1 – मादा पशुओं की प्रजनन संबन्धित जानकारी**

| पशु | प्रथम बार प्रजनन की आयु | मदचक्र की अवधि | मदकाल की अवधि | प्रजनन का उचित समय | गर्भकाल दिन |
|---|---|---|---|---|---|
| गाय | भारतीय नस्लें 36–40 माह संकर 22 माह | 21 दिन | 10–24 घंटे | मदकाल के अंतिम 8घंटे | 281 दिन |
| भैंस | 36–42 माह | 21 दिन | 12–36 घंटे | मदकाल के अंतिम 8घंटे | 310 दिन |
| बकरी | 15–19 माह | 21 दिन | 1–2 दिन | मदकाल के अंतिम 8घंटे | 151 दिन |
| भेड़ | 12–18 माह | 16½ दिन | 1–1½ दिन | मदकाल के अंतिम 18घंटे बाद | 147 दिन |

### (i) मदकाल की पहचान (Indentification of Estrous Period)

1. पशु बेचैन एवं उत्तेजित होता है।
2. गाय, खाना, पीना छोड़ देती है।
3. गाय बार–बार थोड़ा–थोड़ा पेशाब करती है।
4. मादा नर पशुओं पर चढ़ने लगती है।
5. मादा पशु मुड़–मुड़कर पीछे देखती है।
6. पशु रम्भाता या आवाज करता है।
7. योनि से तरल पदार्थ निकालती है।
8. पूँछ को ऊपर को उठाती है।
9. गुप्तांग (भग) थोड़ा सा फूल जाता है।
10. आँखों में विशेष चमक होती है।
11. एक स्थान पर नहीं ठहरती है।
12. गर्भाशय का द्वार खुला रहता है।
13. दुग्ध उत्पादन कम हो जाता है।
14. बच्चे को पास नहीं आने देती है।

### (ii) जननांगों की जानकारी (Introduction of Genital Organs) –

**नर जनन तंत्र (Male Reproductive System)**

इस तंत्र के द्वारा शुक्राणुओं का उत्पादन होता है। जिन्हें मादा के जनन पथ में एकत्र कर दिया जाता है। अध्ययन की दृष्टि से सम्पूर्ण जनन तंत्र को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है:–

**1. प्राथमिक अंग (Primary Organs)** – जैसे वृषण (Testis)

**2. द्वितीयक अंग (Secondary Organs)** – अधिवृषण (Epididymis), शुक्रवाहिनी (Vasdeferens), मूत्राशय (Urethra), शिश्न (Penis)

**3. सहायक लैंगिक अंग–** शुक्राशय (Seminal Vesicle) पुरःस्थ ग्रन्थि (Prostate gland), कन्द मूलिपथ ग्रन्थि (Cowper"s gland or Bulbo Urethral gland)

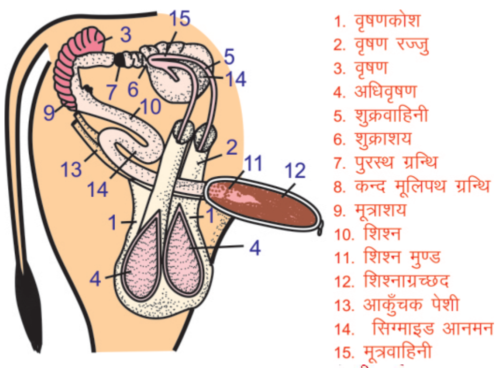


चित्र 16.2.1 नर जनन तंत्र

**मादा जनन तंत्र (Female Reproductive System)-** है क्योंकि इसमें अण्डाणु बनने के अतिरिक्त बच्चे के पालन पोषण व बढ़ने के लिए भी स्थान होता है। इस तंत्र को अध्ययन की दृष्टि से निम्नलिखित दो भागों में बाँटा जा सकता है:–

**1. प्राथमिक अंग (Primary Organs)** – अण्डाशय अथवा डिम्ब ग्रन्थियाँ (Ovaries)।

**2. द्वितीयक अंग (Secondary Organs)** – डिम्ब वाहिनी (Oviduct), गर्भाशय (Uterus), गर्भाशय ग्रीवा(cervix), योनि (Vagina), भग (Vulva)।

**1. डिम्ब ग्रन्थियाँ (Ovaries)** – स्तनधारी मादा पशुओं में प्रायः दो अण्डाशय पाये जाते हैं। यह मादा जननांग का मुख्य अंग है। क्योंकि इनमें डिम्ब व अण्डे (Ova) उत्पन्न होते हैं।इस्ट्रोजन व प्रोजेस्ट्रान नामक हार्मोन का निमार्ण होता है। इनमें सैकड़ों अण्ड कोशिकाएँ होती हैं जो प्रत्येक क्रमशः परिपक्व होकर प्रजनन चक्र के समय बाहर निकलती हैं। परिपक्व डिम्ब के बाहर निकलने की क्रिया को डिम्बाणु क्षरण (Ovulation) कहते हैं।

16.2.1

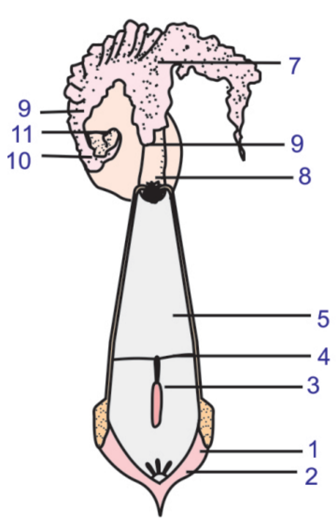


**चित्र 16.2.2 मादा जनन तंत्र**

**2. डिम्ब वाहिनियाँ (Oviducts)** - ये डिम्ब ग्रन्थि और गर्भाशय के बीच संपर्क का कार्य करती है इसके सिरों पर पंखों की आकृति की कीप (Infundibulum) होती है। जब डिम्ब ग्रन्थि से डिम्ब निकलता है तो कीप द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है। गाय में शुक्राणु और अण्डे का मिलन या निषेचन (Fertilization) पुटन नलिका (Ampulla of Oviduct) में होता है तथा निषेचित डिम्ब (Zygote) धीरे–धीरे गर्भाशय में पहुँचता है। भ्रूण यहीं पर विकसित होता है।

**3. गर्भाशय (Uterus)–** गर्भाशय के ऊपर से दो मुड़े सृंग (Horn) होते हैं। अंदर वाली परत में से गर्भावस्था (Pregnancy) के समय गर्भाशय ग्रथियाँ निकलती है जिनके द्वारा भ्रूण के आरंभ काल के पोषण के लिए एक प्रकार का द्रव निकलता है जिसे गर्भाशय दुग्ध (uterine milk) कहते हैं।

**4. गर्भाशय ग्रीवा (Cervix)** - गर्भाशय का सबसे नीचे वाला भाग ग्रीवा कहलाता है और गर्भाशय तथा योनि के मध्य में रहता है। गाय जब गर्मी (Heat) में हो या बच्चा देने के समय में गर्भाशय ग्रीवा का मुँह खुल जाता है, अन्यथा बंद रहता है। गाय में ग्रीवा की लम्बाई 4" और व्यास 1" होता है और इसके द्वारा शुक्राणु (Sperms) गर्भाशय में पहुँचते है।

**5. योनि (Vagina)** – यह एक नलिकाकार अंग है जो गर्भाशय को भग से जोड़ती है फार्म पर पाये जाने वाले पशुओं में यह मलद्वार के नीचे स्थित होती है। साँड द्वारा मैथुन के समय वीर्य इसमें छोड़ा जाता है। इसके अतिरिक्त प्रसव के समय बच्चा इसी मार्ग से बाहर आता है।

**6. भग (Vulva)**- भग मादा जनन पथ का सबसे बाहर खुलने वाला भाग है।

## (iii) प्रजनन विधियाँ (Methods of breeding)

पशुओं को गर्भित करने की दो विधियाँ प्रचलित है–

1 प्राकृतिक प्रजनन विधि

2. कृत्रिम प्रजनन या कृत्रिम गर्भाधान विधि

**1. प्राकृतिक प्रजनन विधि (Natural Breeding)–** जैसा कि नाम से स्पष्ट है प्राकृतिक विधि, प्रकृति द्वारा बनाई गई है। इसमें प्रकृति, नर एवं मादा पशुओं को योग्य बनाती एवं चेतना उत्पन्न करती है कि ये दोनों आपस में समागम $exual contact) करके नये जीव उत्पन्न कर सकें। पशु प्रजनन का सबसे सरल तरीका प्रकृति द्वारा बनाया गया है। इस विधि के द्वारा सभी श्रेणी के पशु प्रजनन करते हैं।

**2. कृत्रिम प्रजनन या कृत्रिम गर्भाधान विधि (Artificial Breeding)** – नर पशु का वीर्य प्राप्त करके मादा के ऋतुकाल (Heat Period) में आने पर एक विशेष प्रकार की पिचकारी के द्वारा वीर्य को मादा की जननेन्द्रिय में पहुँचाना कृत्रिम गर्भाधान कहलाता है।

भारतवर्ष में इस विधि का प्रचलन स्वतंत्रता के पश्चात् प्रारम्भ हुआ। आज भी इस विधि का उपयोग जितना होना चाहिए था उतना नहीं हो पा रहा है। इसके मुख्य कारण हैं– उन्नत साँडों का अभाव साधनों का अभाव, किसानों को इस विधि की सही व पूरी जानकारी न होना, सुनियोजित प्रजनन कार्यक्रम न होना आदि।

प्राकृतिक गर्भाधान की तुलना में कृत्रिम गर्भाधान विधि के अनेक लाभ हैं, जो नीचे दिये जा रहे हैं –

1. प्राकृतिक प्रजनन द्वारा एक वर्ष में एक साँड द्वारा 60–100 गायें गर्भित कर सकता है। जबकि कृत्रिम गर्भधान द्वारा 1000 या अधिक गायें गर्भित कराई जा सकती है।
2. वीर्य एक स्थान से दूसरे स्थान पर सुगमता से ले जाया जा सकता है।
3. उत्तम नस्ल के साँड के उपलब्ध न होने पर वहाँ उनके वीर्य का उपयोग किया जा सकता है।
4. कृत्रिम ढंग से पशु सुधार करने पर थोड़े ही साँडों द्वारा काम चल जायेगा।
5. इस विधि से प्रशिक्षित साँडों का प्रयोग होने के कारण मादाओं को जननेन्द्रिय रोग होने की आशंका नहीं होती है।
6. कृत्रिम गर्भाधान विधि से बड़े साँडों का वीर्य छोटी गाय पर प्रयोग में लाया जा सकता है।
7. इस प्रणाली में जो गाय लूली, लंगड़ी या चोट इत्यादि लग जाने से प्राकृतिक संभोग के लिए अयोग्य होती है, उन्हें भी गर्भित करके बच्चे लिए जा सकते हैं।
8. इस विधि द्वारा प्रजनन सम्बन्धित पूर्ण लेखा जोखा रखा जा सकता है।
9. विदेशों से भी श्रेष्ठ एवं चयनित साँडों का वीर्य आयात कर प्रयोग में लिया जा सकता है।
10. पशु पालक को इस विधि में साँड रखने की आवश्यकता नहीं होती है। इस विधि में निम्न दोष या कमियाँ हैं–

1. इसमें प्रशिक्षित एवं अनुभवी व्यक्ति चाहिए।
2. इस विधि से पशु को गर्भित कराने में समय एवं साधन अधिक चाहिए।
3. कृत्रिम योनि मूल्यवान होती है।

कृत्रिम गर्भाधान द्वारा पशुओं को गर्भित करने की विधि का अध्ययन हम निम्न चरणों में करते हैं –

1. वीर्य को एकत्रित करना।
2. वीर्य का परीक्षण।
3. वीर्य का तनुकरण।
4. वीर्य का भण्डारण।
5. मादा में वीर्य सेंचन।

लेकिन इस पुस्तक में केवल मादा में वीर्य सेंचन का ही अध्ययन करेंगे।

**(iv) मादा में वीर्य का सेंचन (Insemination in Female) –** गाय एवं भैंस को गर्भित करने के रेक्टोवेजाइनल विधि का अधिक प्रयोग करते हैं। इसमें एक हाथ मलद्वार में डालकर गर्भाशय ग्रीवा को बाहर से पकड़ लेते हैं तथा दूसरे हाथ से जीवाणु रहित प्लास्टिक की पिपेट योनि में धीरे–धीरे डालते है। पिपेट का एक सिरा गर्भाशय ग्रीवा तक पहुँचना चाहिए। तथा उसके बाहरी सिरे से 0.5–2 मिली. वीर्य को पिचकारी द्वारा अंदर पहुँचा देते हैं। इस प्रकार पशु को कृत्रिम विधि से गर्भित किया जाता है। भेड़ बकरी के लिए वेजाईनल स्पेकुलम विधि प्रयोग में ली जाती है।

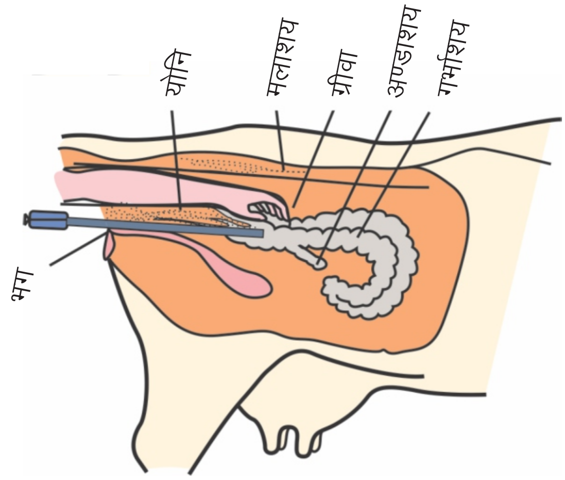


**चित्र सं. 16.2.3 गाय को गर्भित करने की रेक्टोवेजाइनल विधि**

**गर्भाधान का उचित समय –**

गर्भाधान का उचित समय मालूम कर लेना बहुत महत्वपूर्ण कार्य है। इसको मालूम करने के लिए निम्नाकिंत बातों का पूर्ण ज्ञान होना जरूरी है।

1. गाय के जनन अंग में अण्डाणु (ovum) के जीवित रहने की अवधि 120 घंटे मानी गई है।
2. गाय के जनन अंग में शुक्राणु की जीवन अवधि 24 से 30 घंटे।
3. गाय के जनन अंग में शुक्राणु की विकास अवधि 6 घंटे।
4. ऋतुकाल अवधि प्रारंभ, बीच में या अंतिम पशुओं के गर्भाधान करने का समय प्रायः सभी पशुओं में एक समान नहीं है। गाय के ऋतुमयी होने के 4–8 घंटे बाद गर्भित करने से उत्तम परिणाम प्राप्त हुए है। वैसे 8 से 20 घंटे बाद तक गर्भित कराने से भी परिणाम मिले हैं। मदकाल के प्रारंभ होने के 12 घंटे पश्चात् ही पशु को गर्भित करावें, क्योंकि इस अवधि में पशु के गर्भ ठहरने की संभावनाएँ अधिक रहती है। इसलिए जो पशु मदकाल के प्रथम लक्षण यदि सायंकाल दृष्टिगत हो तो मद में आये पशु को प्रातःकाल कराने के बजाय 12 घंटे के अंदर से दो बार गर्भाधान कराने से गर्भ ठहरने की संभावनाएँ कहीं अधिक बढ़ जाती हैं। गाय में मदकाल के लक्षण प्रकट होते ही उसे तुरन्त निकटवर्ती कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र पर ले जाकर गर्भित कराना चाहिए। गाय, भैंस को ब्याने के बाद 3 महीने के भीतर गर्भ धारण करा देना चाहिए।

**16.3 गर्भावस्था का सामान्य परीक्षण (General Diagnosis of Pregnancy) –** गर्भधारण की पहचान करना अत्यन्त आवश्यक है, अन्यथा दुग्ध उत्पादन में कमी हो सकती है। इसलिये गर्भधारण के पश्चात् पशु में निम्न लक्षण प्रकट होने लगते हैं–

1. गाय 21 दिन के बाद दुबारा ऋतुमयी नहीं होती है।
2. गाय का शरीर तथा अयन समय के साथ बढ़ता है।

3. गाय शांत स्वभाव रहती है व साँड के पास नहीं जाती है।
4. 3–4 महीने की गर्भावस्था में पेट में बच्चा हिलता अनुभव होता है।

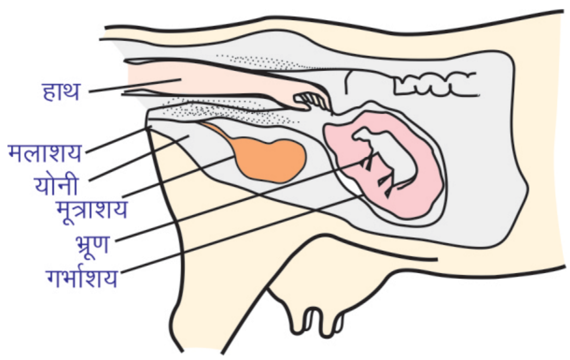


**चित्र सं. 16.3.1 गर्भ परीक्षण की रेक्टल पाल्पेशन विधि**

साधारणतः यदि मादा गर्भाधान के 19–21 दिन पश्चात् वापस मद में नहीं आती है। तब गर्भ ठहरने की संभावना बनती है। इसकी पुष्टि के लिए पशु के गर्भाधान के 60 दिन पश्चात् गर्भधारण की जांच की जाती है। इसके लिए रेक्टम पाल्पेशन विधि प्रचलित है। इस विधि द्वारा एक हाथ मे रबर का दस्ताना पहनकर तथा साबुन लगाकर पशु के रेक्टम में हाथ डालकर गर्भाशय को छूते हैं। यदि गर्भाशय में एक छोटी सी वस्तु का आभास हो तो समझना चाहिए कि पशु ग्याभिन है।

**16.4 गर्भावस्था एवं प्रसव के समय पशु की देखभाल (Care of Animals During Pregnancy and parturition)** – मादा पशुओं (गाय, भैंस) में मदचक्र का बंद हो जाना, पेट का आकार बढ़ना, शरीर का भार बढ़ना, अयन के आकार का बढ़ना, शरीर में शिथिलता आना थनों का फूल जाना एवं दुग्ध उत्पादन घटना व बंद होना आदि पशु के गर्भावस्था के लक्षण है।

जब पशुपालक को यह पता चल जाये कि गाय गर्भवती हो गई है तो उस समय गाय (मादा) की देखभाल करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना चाहिए–

1. गार्य के ब्याने के 7–9 सप्ताह पूर्व दूध निकालना बंद कर देना चाहिए। ताकि पशु का दूध सूख जाये।
2. गर्भवती गाय से उदारता का व्यवहार करना चाहिए।
3. गर्भकाल के अंतिम तीन माह में लगभग एक किलो ग्राम अतिरिक्त दाना देना चाहिए।
4. गाय को भगाना नहीं चाहिए और न ही अधिक परिश्रम कराना चाहिए।
5. गर्भ के विकास व गाय के स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए सन्तुलित आहार देना चाहिए।
6. खनिज लवण उचित मात्रा में देना चाहिए।
7. पाचनशील भोजन देना चाहिए।
8. गर्भवती गाय को अन्य गायों से अलग कर देना चाहिए।
9. गाय को प्रसव के दिन से 15–20 दिन पूर्व बाहर चरने भेजना बंद कर देना चाहिए।
10. चिकने फर्श पर घास, फूस आदि बिछाकर रखना चाहिए।
11. गाय को गर्म वस्तुएँ नहीं खिलानी चाहिए।
12. गाय को गर्मी–सर्दी से बचाना चाहिए।
13. ब्याने के लगभग एक सप्ताह पूर्व 50–100 ग्राम अजवायन प्रतिदिन खाने के तेल के साथ देना चाहिए।

**प्रसव के लक्षण**

गाय, भैंस के ब्याने की पहचान हर पशु पालक के लिए आवश्यक है। ब्याने से पूर्व निम्न लक्षण प्रकट होते हैं –

1. गाय बार–बार उठती और बैठती है।
2. गाय के थन एवं अयन फूल जाते हैं तथा भग पर झुर्रिया पड़ जाती हैं।
3. गाय बार–बार मूत्र त्याग करती है एवं गोबर पतली अवस्था में करती है।
4. गाय चारा दाना खाना बंद कर देती है।
5. प्रसव के पूर्व योनि से चिकना तथा लार के समान लिसलिसा पदार्थ निकलना प्रारम्भ हो जाता है।
6. गाय बार–बार लात झटकती है।
7. पशु के पुट्ठे ढीले पड़कर धंस से जाते हैं।
8. अयन पूर्ण रूप से विकसित हो जाता है तथा उसमें खीस भर जाता है।
9. प्रसव के समय सर्वप्रथम जब थैली दिखाई पड़ती है, इसी के साथ प्रसव क्रिया शुरू हो जाती है।

**प्रसव के समय देखभाल**

1. प्रसव के समय सफाई पर विशेष ध्यान देना चाहिए।
2. गाय के नीचे पुआल या रेत बिछा देनी चाहिए।
3. पशु की हर समय निगरानी रखनी चाहिए व प्रसव के लक्षण प्रकट होने पर सहायतार्थ तैयार रहना चाहिए।
4. प्रसव के समय पशु को अनावश्यक रूप से न छेड़े अपितु उसे स्वाभाविक रूप से ब्याने देना चाहिए।
5. जब थैली दिखने के एक घण्टा पश्चात् तक यदि बच्चा बाहर न आवे तो बच्चे को निकालने में पशु की सहायता करें या पशु चिकित्सक की सहायता लेनी चाहिए।
6. जिन पशुओं में बच्चे को स्तनपान नहीं करने देना है उसके बच्चे को पैदा होते ही माँ से अलग कर देना चाहिए तथा उसकी माँ की आंखों पर पट्टी या कपड़ा बाँध दिया जाता है जिससे माँ उसे देख न सके, नहीं तो दूध देने में परेशान करेगी। ऐसे बच्चे को अलग से दूध पिलाकर पाला जाता है।
7. ब्याने के ठीक पश्चात् गाय और बछड़े को सर्दी से बचाना

चाहिए।

8. पशु के अयन के तनाव को कम करने के लिए थोड़ी देर बाद दुह लेना चाहिए।

9. प्रसव उपरान्त जेर (Placenta) के गिरने का पूरा ध्यान रखिये और जब तक यह अपने आप न गिर जाये पशु को खाने के लिए कुछ मत दीजिए। सामान्यतः जेर निश्कासन में 2 घंटे का समय लगता है। जेर के न गिरने पर पशु चिकित्सक की सहायता लेनी चाहिए।

10. जेर के गिर जाने पर उसे हटा देवें। उसे पशु न खा जावे अन्यथा उसका दूध उत्पादन कम पड़ जायेगा। उसे दूर स्थान पर गड्ढा खोदकर गाड़ देना चाहिए।

11. प्रसव के पश्चात् जननांगों के बाहरी भाग और पूँछ को गुनगुने पानी से जिसमें पोटैशियम परमैंग्नेट (लाल दवा) के कुछ दाने पड़े हो धोना चाहिए।

12. प्रसव के तुरंत बाद गाय को गुड़, अजवायन, सौंठ और मेथी पानी में उबालकर देनी चाहिए।

## महत्वपूर्ण बिन्दु

1. गाय के अयन में एकत्रित दूध को थनों द्वारा बाहर निकालने की क्रिया को ही गौ दोहन कहते हैं।

2. दूग्ध दोहन कार्य शीघ्र (औसतन 5 मिनट) में पूर्ण कर लेना चाहिए।

3. हाथों द्वारा दूध निकालने की तीन विधियाँ – 1 चुटकी द्वारा 2 अंगूठा दबाकर 3 पूर्ण हस्त दोहन विधि।

4. मादा पशुओं में मदचक्र का बंद हो जाना, पेट का आकार बढ़ना, शरीर में शिथिलता आना, शरीर का भार बढ़ना, अयन के आकार बढ़ना, थनों का फूल जाना एवं दूध उत्पादन घटना व बन्द होना आदि पशु में गर्भावस्था के लक्षण हैं–

5. प्रसव के निम्न लक्षण होते हैं–

प्रसव के पूर्व योनि से चिकना तथा लार के समान लिसलिसा पदार्थ निकलना प्रारम्भ हो जाता है, बेचैनी के कारण कभी उठना कभी बैठना शुरू हो जाता है, पशु के पुट्ठे ढीले पड़कर धस से जाते हैं।

6. प्रसव के पश्चात् जननांगों के बाहरी भाग और पूँछ को गुनगुने पानी से जिसमें पोटैशियम परमैंग्नेट (लाल दवा) के कुछ दाने पड़े हों, धोना चाहिए।

7. गाय को ब्याने के 60 से 90 दिन के भीतर ही गर्भधारण कर लेना चाहिए। ऐसा नहीं होता है तो इसके लिए उचित उपाय किये जाने चाहिए।

8. यौवनारम्भ (Puberty) वह अवस्था है, जिसमें पशु लैंगिक दृष्टि से प्रौढ़ हो जाता है और उसमें द्वितीय लैंगिक लक्षण आ जाते हैं। यहाँ लैंगिक प्रौढ़ता का अर्थ पशु का प्रजनन योग्य होने से है। इस अवस्था में प्रजनन अंगों का आकार बढ़ जाता है।

9. यौवनावस्था भारतीय गायों में 24 माह, संकर गायों में 18 माह, भैंसों में 30 माह, बकरियों में 12 माह एवं भेंड़ों में 10 माह होती है।

10. दो मदकालों के मध्य की शरीरिक क्रियात्मक घटनाओं को मदचक्र कहते हैं।

11. जब मादा पशु नर पशु के साथ संभोग की इच्छुक होती है, तब इस अवधि को मदकाल कहते हैं। मदकाल को गर्मी, ताव या पाली में आना कहते हैं।

12. वृषण (Testis) नर पशु का प्रमुख प्रजनन अंग हैं। इसमें शुक्राणुओं एवं नर हार्मोन टेस्टोस्टेरॉन का निर्माण होता है। इस हार्मोन द्वारा नर में लैंगिक गुण विकसित होता है।

13. पशुओं को गर्भित करने की दो विधियाँ प्रचलित हैं–

1. प्राकृतिक प्रजनन विधि
2. कृत्रिम प्रजनन या कृत्रिम गर्भाधान विधि

14. गर्भाधान के लिए मादा पशु के मदकाल के प्रारम्भ होने के 12 घंटे पश्चात् ही पशु को गर्भित करायें क्योंकि इस अवधि में पशु के गर्भ ठहरने की संभावनाएँ अधिक रहती है।

## अभ्यास प्रश्न

### बहुचयनात्मक प्रश्न–

1. भारतीय गायों में यौवनावस्था होती है।

(अ) 8 माह (ब) 16 माह
(स) 24 माह (द) 32 माह

2. मादा पशु (गाय/भैंस) के मदकाल के प्रारंभ होने के कितने घंटे बाद गर्भित करावें ?

(अ) 6 घंटे (ब) 12 घंटे
(स) 18 घंटे (द) 24 घंटे

3. गाय को ब्याने के कितने दिनों के भीतर ही गर्भधारण कर लेना चाहिए ?

(अ) 40–50 दिन (ब) 50–60 दिन
(स) 60–90 दिन (द) 100–110 दिन

4. हाथों द्वारा दूध दोहन की सर्वोत्तम विधि है।

(अ) चुटकी द्वारा (ब) पूर्ण हस्त दोहन विधि
(स) अंगूठा दबाकर (द) उपरोक्त में से कोई नही

### अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

5. नर पशु का प्रमुख प्रजनन अंग होता है।

6. पशुओं को गर्भित कराने की सर्वोत्तम विधि है।

7. भारतीय गायों का गर्भकाल कितने दिनों का होता है?

8. भैंसों का गर्भकाल कितने दिनों का होता है?

### लघूत्तरात्मक प्रश्न–

9. गर्भाधान का उचित समय क्या है?

10. गर्भाधान का परीक्षण क्यों और किस प्रकार करते है?

11. गाय में प्रसव के लक्षण लिखिए।

### निबंधात्मक प्रश्न–

12. मदकाल से आप क्या समझते हैं? मदकाल के लक्षणों का वर्णन कीजिए।

13. नर प्रजनन तंत्र का रेखाकिंत चित्र बनाकर उसके विभिन्न अंगों को दर्शाते हुए उनका संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

14. मादा प्रजनन तंत्र का रेखाकिंत चित्र बनाकर उसके विभिन्न अंगों को दर्शाते हुए उनका संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

15. कृत्रिम गर्भाधान से आप क्या समझते हैं? इसके लाभ लिखो। इसके विभिन्न चरणों (Steps) के नाम लिखिए।

16. गर्भवती गाय की देखभाल करते समय किन–किन बातों को ध्यान में रखते हैं? गर्भवती गाय के क्या लक्षण होते हैं? वर्णन कीजिए।

17. प्रसव के समय एवं प्रसव के बाद गाय की देखभाल के लिए किन–किन बातों को ध्यान में रखना चाहिए?

18. निम्नलिखित में अंतर बताओं –

1. मदचक्र और मदकाल

2. प्राकृतिक गर्भाधान और कृत्रिम गर्भाधान

19. हस्त दोहन की विभिन्न विधियों का वर्णन करो। कौनसी विधि उत्तम है ओर क्यों ?

20. गौ दोहन के सिद्धान्त का वर्णन कीजिए।

### उत्तरमाला–

1. (स) 2. (ब) 3. (स) 4. (ब)

# अध्याय 17
# पशु पोषण (Animal Nutrition)

**17.1 पशुओं को खिलाने के सामान्य सिद्धान्त (General Principles of animal feeding)-** पशुओं को आहार इस तरह से खिलाया जाना चाहिए कि पशु के लिए सभी आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति हो जाए एवं उपलब्ध अवयव भी पूर्ण रूप से उपयोग में आ जाए। अतः हमें चारा व दाना इस तरह से तैयार करके देना चाहिए कि पशु की उम्र व आवश्यकता के अनुसार उसकी पूर्ति हो जाए एवं आर्थिक रूप से महँगा भी न पड़े।

**पशुओं को आहार देने से पूर्व निम्नलिखित जानकारियां आवश्यक है:–**

**1. आहार –** पशु को 24 घंटे में जो भी कुछ खाने को दिया जाता है वह आहार कहलाता है।

**2. भोज्य पदार्थ –** वे सभी चारे व दानें जो पशु को खिलाये जाते हैं। आहार के किसी एक अवयव को भोज्य पदार्थ कहते हैं।

**3. पोषक तत्व –** आहार में पाये जाने वाले वे सभी अवयव जो पशु के जीवन के लिये आवश्यक होते हैं। जैसे–कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, खनिज लवण, विटामिन एवं पानी।

**4. सन्तुलित आहार –** ऐसा आहार जिसमें सभी पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में एवं सही अनुपात में विद्यमान होते हैं जिनकी आवश्यकता पशुओं को अपने जीवन निर्वाह व उत्पादन के लिये प्रतिदिन होती है।

**5. जीवन निर्वाह आहार –** आहार की वह मात्रा जिसे पशुओं को स्वस्थ व शरीर के तापक्रम व भार को यथावत बनाये रखने हेतु दी जाती है।

**6. उत्पादन आहार–** आहार की वह मात्रा जो पशु को जीवन निर्वाह के अतिरिक्त उत्पादन कार्यों के लिए दी जाती है उदाहरण दूध उत्पादन हेतु आहार, माँस उत्पादन हेतु दिया जाने वाला आहार, प्रजनन, वृद्धि, ऊन उत्पादन, अण्डा उत्पादन व अन्य कार्यों के लिए दिया जाने वाला आहार।

**आहार को तैयार करना (Preparation of feeds for feeding)-** पशुओं को आहार खिलाने के कई तरीके हैं। पशु को कितना चारा व कितना दाना उसकी आवश्यकता के अनुसार खिलाना है यह निश्चित करके पशु की नाँद में अच्छी तरह मिलाकर डाला जाता है। आहार जितना बारीक होगा उतना ही अच्छा होगा। आहार खिलाने की परिस्थिति व समय के अनुसार आहार को पशु की नाँद में डाला जाता है जिसे पशु आसानी से मन से खा सके। आहार तैयार करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि वह आसानी से उपलब्ध हो एवं आर्थिक रूप से आहार तैयार करना मँहगा भी नहीं हो।

**चारे की कुट्टी बनाना–** रोमांथी पशुओं को जब हरा चारा मक्का व ज्वार के चारे को खिलाया जाए तो कुट्टी कर लेना अच्छा रहता है। जिससे तने व डंठलो का सद–उपयोग हो जाता है। सूखी कड़वी को भी कुट्टी बनाकर हरे चारे की कुट्टी के साथ मिलाकर खिलाना चाहिये। ज्यादा बारीक कुट्टी बूढ़े व घिसे दाँत वाले पशुओं को ही खिलाना चाहिए।

**दानों का दलिया बनाना–** कुछ बीज रूप दानों की ऊपरी परत इतनी कठोर होती है कि वह आसानी से पच नहीं पाती है अतः इनको सीधे खिलाने पर गोबर में वैसे ही निकल जाते है। अनाजों का दलिया बनाकर भिगोकर देना चाहिए। मध्यम आकार का दलिया खिलाना लाभदायक रहता है।

**आहार की टिकियाँ या गोलियाँ बनाकर पशुओं को खिलाना :–**'हे' को गोलियों (Pelletes) के रूप में खिलाने से पशु चाव से खाता है एवं 'हे' को संग्रहण के लिए अधिक स्थान की भी आवश्यकता नहीं रहती। गोलियाँ बनाते समय 'हे' व दाने के बारिक मिश्रण को मिलाकर इन्हें तैयार किया जाता है, इससे पशु आहार ज्यादा खाता है पशु शरीर की वृद्धि भी होती है।

**आहार को पकाना:–** पशुओं को चारा सीधे काट कर खिलाना अच्छा होता है जबकि दाना सीधे नहीं खिलाना चाहिए इसे रातभर भिगोकर या गर्म कर खिलाने से अधिक

लाभ प्राप्त होता है। सोयाबीन को पकाकर खिलाना अच्छा होता है।

"बिनौले की खली में गोसीपाल (Gossypol)नामक टॉक्सीन होता है। इसमें आयरन सल्फेट मिलाने पर घातकता को रोका जा सकता है।"

**पशु को आहार देने सम्बन्धित जानकारियाँः—**

1. पशु के साथ स्नेह व दयालुतापूर्ण व्यवहार (Kindness in handling and feeding)करना चाहिए व उदारता पूर्वक आहार देना चाहिए।

2. पशुओं को नियमित व सन्तुलित आहार देना चाहिए (Regularity in balanced feeding)

3. लगभग 10 घंटे के अन्तराल पर दिन भर में केवल दो बार भोजन दें ताकि पाचन क्रिया ठीक रहे। निश्चित समय पर ही पशुओं को भोजन दिया जाए।

4. पशुओं को वर्षभर पर्याप्त हरा चारा उपलब्ध कराया जाये।

5. प्रत्येक श्रेणी के पशुओं को अलग—अलग आहार उपलब्ध कराया जाये।

6. पशुओं को चारा—दाना रोजाना नियमित अन्तराल पर ही दिया जाये।

7. पशुओं के आहार में हरा चारा, भूसा, दाना तथा खनिज आदि सभी मिला हो ताकि सभी आवश्यक अवयव उपलब्ध हो सकें।

8. पशुओं को आहार में पोषक तत्व उनकी शरीर की आवश्यकताओं के अनुसार ही दिये जाने चाहिए, आवश्यकता से कम या अधिक खिलाना दोनों ही स्वास्थ्य के लिये हानिकारक हैं।

9. चारा वाली नाँद या द्रोण (Trough) आहार देने से पहले पूर्णतः साफ कर लेनी चाहिए ताकि उसमें बची गंदगी साफ हो जाये।

10. पशुओं का आहार एक आदर्श आहार हो जो संतुष्टि प्रदान करने वाला उचित मात्रा में पोषक तत्व, पाचक, स्वास्थ्यवर्धक, दूध में उत्तम सुगन्ध पैदा करने वाला, विभिन्न खाद्य पदार्थों सहित, स्थूल (Bulky) सन्तुलित तथा सस्ता हो।

11. चारे में परिवर्तन या आहार के प्रकार में परिवर्तन धीरे—धीरे करे। एकदम आहार में बदलाव (Sudden Change) हानिकारक है।

12. प्रति गाय व भैंस को प्रतिदिन हरे चारे की मात्रा 15 से 20 कि.ग्रा चारे की किस्म, रसीलापन, पाचकता तथा पशु की आवश्यकतानुसार दी जा सकती है।

13. पशुओं को कभी भी खाली पेट केवल फलीदार(Legumes) हरे चारे न खिलाये जायें इससे आफरा होने का भय रहता है अतः इनके साथ सूखा चारा भी खिलाया जाना चाहिए।

14. पशु की आवश्यकता पूर्ति के लिए चारा कम करके दाना अधिक नहीं खिलाना चाहिये क्योंकि यह आर्थिक रूप से सही नहीं है, ज्यादा चारा व कम दाना एक अच्छा सस्ता उपाय है।

15. 'हे' या पुआल या भूसा जैसे धूलमय (Dusty) चारे दूध निकालते समय नहीं खिलायें, इससे बाड़े में धूलमय वातावरण होने के कारण दूध के अंदर जीवाणु की संख्या बढ़ने से दूध की किस्म खराब होने का भय रहता है।

16. ज्यादातर पशुपालक गायों को दूध निकालते समय खाना खिलाना पंसद करते है। इससे दूध अयन में जल्दी उतर आता है (Stimuls to let down of milk)।

**अच्छे आहार के गुण—**

1. आहार सन्तुलित हो अर्थात पशु की आवश्यकता के अनुसार सभी अवयव कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा खनिज लवण व विटामिन समुचित मात्रा में आहार में हो।

2. आहार स्वादिष्ट हो एवं संतुष्टि प्रदान करने वाला हो जिससे पशु इच्छा से खा सके। इसके लिए पशु आहार में हरे चारे दाने व सूखे चारे को सम्मिलित करना चाहिए।

3. आहार सुपाच्य होना चाहिए। इसके लिए हरे चारों को पशु आहार में सम्मिलित किया जाना चाहिए। इसमें पशु को सुपाच्य आहार के साथ उचित पोषक तत्व भी मिल सकेंगें।

4. आहार में समुचित रेशे की मात्रा होनी चाहिए। जिसमें पशु के पेट भरने का आभास होता है।

5. आहार सस्ता व सुगमता से उपलब्ध होने वाला होना चाहिए। जिससे पशु के आहार की लागत कम हो सके एवं आहार में हरे चारे व दानों को सम्मिलित कर कम मूल्य में अधिक पोषक तत्व प्राप्त कर सकते है।

6. आहार में विभिन्नता होनी चाहिए। पशु की पसन्द व मौसम के अनुसार आहार बदलते रहना चाहिए।

7. आहार विरेचक होना चाहिए। साइलेज, हरे चारे व गेहूँ का चोकर विरेचक के रूप में जाने जाते हैं।

8. भोजन में पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन होनी चाहिए।

9. आहार में खनिज लवणों को विशेष महत्व देना चाहिए। दूध देने वाली गाय को कैल्सियम प्रचुर मात्रा में मिलता रहना चाहिए।

10. पशु को साफ पानी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध करवाना चाहिए।

## 17.2 विभिन्न पशुओं का आहार निर्धारण– गर्भवती गाय, दुधारू गाय एवं बैल।
## (Determination of ration for different animals-pregnant, milking cow and bullock)

पशुओं की समुचित वृद्धि, प्रजनन एवं उनसे पर्याप्त उत्पादन तथा कार्य लेने हेतु सन्तुलित आहार देना अतिआवश्यक है। गर्भवती गाय, दुधारू गाय एवं बैल के लिए सन्तुलित आहार निर्धारण प्रमुख आहारों में पाये जाने वाले तत्वों के आधार पर करना चाहिए। सन्तुलित आहार निर्धारण के नियम– प्रत्येक वर्ग के पशु का सन्तुलित आहार ज्ञात करने के लिए कुछ निश्चित नियमों का पालन करना चाहिए, जो कि निम्न प्रकार है।

**1. शुष्क पदार्थ की मात्रा (Amount of Dry Matter)** – गाय, बैल, बछिया, बछड़े तथा सॉंड को 100 किलोग्राम के शरीर भार पर 2.5 किलोग्राम तथा भैंस को 3.0 किग्रा. शुष्क पदार्थ दिया जाना चाहिए।

**2. दाने के मिश्रण की मात्रा (Amount of Concentrate Matter)**

**(अ) जीवन निर्वाह दाना** – जीवित रहने के लिए गाय, भैंस , बैल एवं सॉंड को 1.5–2.0 किलोग्राम दाना प्रतिदिन देना चाहिए। यदि पशु को हरी बरसीम, रिजका, दोदालीय 'हे' खिलाई जा रही हो तो जीवन निर्वाह दाना देने की आवश्यकता नहीं होती है।

**(ब) उत्पादन दाना–**

1. दूध उत्पादन के लिए 3 लीटर गाय के दूध पर तथा 2.5 लीटर भैंस के दूध पर 1 किलोग्राम दाना देना चाहिए। गाय की अपेक्षा भैंस के दूध में वसा की मात्रा अधिक होती है।

2. कार्य करने वाले बैलों को प्रतिदिन 1.5 किलोग्राम दाना सामान्य कार्य तथा 2.0 किलोग्राम भारी कार्य के लिए, जीवन निर्वाह में अतिरिक्त दाना देना चाहिए।

3. प्रजनन करने वाले सॉंडो को 2 किलोग्राम तथा 6 माह या इससे अधिक अवधि की गर्भवती गाय को गर्भ रक्षा हेतु 1.0–1.5 किलोग्राम दाना अतिरिक्त देना चाहिए। जीवन निर्वाह एवं उत्पादन दाना इसमें सम्मिलित नहीं है।

**3. चारा मात्रा (Amount of Roughages) -** पशुओं को खिलाये जाने वाले चारों में सूखे चारे जैसे भूसा, कड़वी, हे (90% शुष्क पदार्थ) तथा रसीले चारे, जैसे बरसीम, रिजका, मटर, ग्वार एवं जड़े, जैसे गाजर, शकरकन्द आदि (20–25% शुष्क पदार्थ) सम्मिलित हैं। सूखे चारे तथा हरे चारे की मात्रा में लगभग 1 और 3 का अनुपात तथा सूखे चारे और रसीले चारे खिलाने पर 1 और 4 या 5 का अनुपात रखना चाहिए। शुष्क पदार्थ दोनों में बराबर–बराबर देना चाहिए।

**4. खनिज लवण (Mineral Matter)** – खाद्य पदार्थों से सभी लवण पर्याप्त मात्रा में पशु को नहीं मिल पाते हैं। अतः इन्हें लवण मिश्रण के रूप में दिया जाता है। दूध वाले पशु एवं वृद्धि करने वाले पशुओं के लिए इनका महत्व अधिक है। बाजार में खनिज मिश्रण मेन्डिक, सुद्धिमिडिक, कैटिलमिन आदि नामों से उपलब्ध है। प्रतिदिन 20–25 ग्राम देना चाहिए साथ ही सादा नमक 30 ग्राम प्रति पशु देना चाहिए।

सन्तुलित आहार की गणना के लिए विभिन्न चारा दानों में शुष्क पदार्थ की निम्नलिखित प्रतिशत मानी जाती है। वैसे मौसम तथा फसल की स्थिति के अनुसार घट–बढ़ सकती है।

| क्र.सं. | चारे का नाम | शुष्क पदार्थ (प्रतिशत) |
|---|---|---|
| 1. | सूखी कड़वी, भूसा, हे, पुआल | 90 |
| 2. | हरी ज्वार, मक्का, बाजरा, जई, सरसों, साइलेज, हरी घासें | 30 |
| 3. | बरसीम (दिसम्बर से फरवरी तक) | 20 |
| 4. | बरसीम, रिजका (मार्च, अप्रेल तक) मटर, ग्वार, लोबिया | 25 |
| 5. | गाजर, गोभी, पत्ते | 20 |
| 6. | अनाज, खलें, चोकर, चूनी, छिलका | 85–90 |

**1. गर्भवती गाय का आहार – (Ration of Pregnant Cow)** –गर्भवती गाय को पाँच माह के गर्भकाल के बाद भरपेट अच्छी किस्म का हे घास अथवा अन्य चारा तथा 10 किग्रा हरा चारा प्रतिदिन खिलावें। इन चारों के अतिरिक्त 1 किग्रा दाना खिलावें। गर्भकाल के सातवें माह में दाना बढ़ाकर 1.5 कि.ग्रा आठवें में 2 कि.ग्रा तथा अन्तिम माह में 2.5–3.0 कि.ग्रा प्रतिदिन कर देना चाहिए। सूखी या गर्भवती गायें अपने शरीर भार का 2–2.5 प्रतिशत शुष्क पदार्थ चारे–दाने के रूप में खा लेती है। निर्वाह आहार के अतिरिक्त 50% अलग से पोषक तत्व उपलब्ध करवाने चाहिए। 1–2 कि.ग्रा दाने का मिश्रण अलग से प्रतिदिन दें।

**2. दुधारू गाय का आहार – (Ration of Milking Cow) -** दूध देने वाली गाय के लिए हरा चारा अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इससे दुग्ध उत्पादन बढ़ता है साथ ही दाने की मात्रा में कटौती कर व्यय कम किया जा सकता है। 15 किग्रा दूध देने वाली गाय को 2/3 भाग अदलहनी व 1/3 भाग दलहनी हरा चारा खिलाना चाहिये। दूध देने वाली गाय के आहार निर्धारण करते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखा जाता है–

1. कम लागत पर अधिक दूध पैदा करने के लिए ऋतु अनुसार साल भर अधिक से अधिक हरे चारे का उपयोग करना चाहिए।

2. दानें की लागत मूल्य क्रय करने के लिए अधिक अनुपात में अच्छी किस्म में खाद्य उपजातों जैसे खनिज, चावल की पॉलिश, ग्वार की चूरी, चापड़, दालों की चूरी, मोलासिस, कॉर्न ग्लूटन मील आदि खाद्य अवयवों का उपयोग करें।

3. बहुतायत में उपलब्ध हरे चारे का हे अथवा साइलेज बनावें तथा उन्हें हरे चारों की कमी के समय खिलावें

4. दानें के अवयवों को अलग–अलग दलकर मिलावें, उन्हे पीसें नहीं।

5. पाँच किलोग्राम तक दूध देने वाले दुधारू गाय को भरपेट (40–50 किलोग्राम) मिश्रित फलीदार व बेफलीदार, हरा चारा खिलावें तथा 2 किलोग्राम सूखा चारा साथ में दें।

6. पाँच किलोग्राम से अधिक दूध देने वाली गाय को पेटभर हरा चारा खिलाने के अतिरिक्त 14–15 प्रतिशत प्रोटीन युक्त दाना खिलावें।

**3. बैल का आहार (Ration of Bullock)** –बैल का आहार उसके जीवन निर्वाह तथा उसके द्वारा किए जाने वाले कार्य पर निर्भर करता है। साामान्यतः बैल को जीवन निर्वाह हेतु पेटभर सूखा चारा खिलाए तथा सीमित मात्रा में हरा चारा भी दें तथा उसके चरने का प्रबन्ध करें। बैल से लिए जाने वाले कार्य के अनुसार उसे निम्न प्रकार दाना खिलाएं।

| | | |
|---|---|---|
| हल्का कार्य | – | 1 से 1.5 किलोग्राम प्रतिदिन |
| मध्यम कार्य | – | 2 से 2.5 किलोग्राम प्रतिदिन |
| भारी कार्य | – | 3 से 4.0 किलोग्राम प्रतिदिन |

**17.3 चारा संरक्षण (Fodder Conservation)** – पशुओं को स्वस्थ्य बनाये रखने व अधिक उत्पादन के लिए यह आवश्यक है कि उन्हें वर्षभर निरन्तर हरी घास उपलब्ध होती रहे, परन्तु यह हमेशा नहीं हो सकती। वर्षा के साथ ही हरी घास बढ़ती है और जमीन को नमी की कमी व हवा में गर्मी के कारण वह सूख जाती है। इस कमी की पूर्ति के लिए साधनों की उपलब्धता के अनुसार हरा चारा उगाया जाता है, परन्तु अनेक कारणों से वार्षिक चारों की फसलें साल भर उत्पादन नहीं दे सकती हैं। ऋतुओं के अनुसार उन्हें बोया जाता है और उनकी लाभदायक पैदावार विशेष समयावधि में हो पाती है। कमी के समय ही काम आवें, इस कारण हरे चारों व घास का संरक्षण किया जाता है। यह कमी का समय सामान्यतः अक्टूबर से नवम्बर तक अप्रेल से जून माह विशेष रूप से होते हैं। हरे चारों को संरक्षित करने की दो विधियाँ हैं–

1. साइलेज बनान (Silage Making)
2. 'हे' बनाना (Hay Making)

**1. साइलेज बनाना (Silage Making)–**

पशुओं के आहार में हरे चारे का अपना एक विशिष्ट स्थान है। विशेषकर दूध देने वाले पशुओं के आहार में हरे चारे की उपयुक्त मात्रा होनी चाहिए ताकि उनका भोजन स्वादिष्ट और कोमल बना रहे। पशुपालकों के समक्ष यह समस्या प्रायः अधिक समय तक बनी रहती है कि पशुओं को पूरे वर्ष हरा चारा किस प्रकार उपलब्ध कराया जाए, क्योंकि गर्मी के दिनों में हरा चारा बहुत ही कम मिल पाता है साथ ही उसे उगाने में अधिक व्यय भी होता है। भारत में साइलेज केवल मिलिट्री डेरी फार्म, राजकीय फार्म अथवा किन्हीं एक दो व्यक्तिगत डेरी फार्मो पर बनाया जाता है। एक औसत श्रेणी का पशु पालक भी चारों को सुरक्षित करके प्रयोग नहीं करता है। इसके निम्नलिखित कारण है–

1. पशुपालकों को साइलेज के लाभों का ज्ञान नहीं है।
2. चारों की प्रायः कमी हर समय बनी रहती है।
3. मौसम भी प्रायः प्रतिकूल रहता है।
4. यहाँ का कृषक कृषि कार्य में अधिक व्यस्त रहता है।

साइलेज की परिभाषा हम इस प्रकार कर सकते है कि यह वह दबा हुआ चारा है जिसमें हरे चारें के सभी तत्व मौजूद हों, इसमें किसी प्रकार की सड़न अथवा बुरी गन्ध उत्पादित न हुई हो तथा इसमें रसीलापन हो।

साइलेज बनाने की इस क्रिया को ''साइलोइंग अथवा इन्साइलिंग (Siloing or Ensiling) कहते हैं।

**साइलेज बनाने के लाभ–**

1. साइलेज के रूप में हरी फसलों को कोमल एवं रसीली अवस्था में काफी समय तक रखा जा सकता है तथा हरे चारे के अभाव में समय कम खर्च में साइलेज से वह कमी पूर्ण की जा सकती है।

2. साइलेज के रूप में फसलों को सुरक्षित करके किसी सीमा तक पोषक तत्वों की मात्रा को नष्ट हो जाने से बचाया जा सकता है, क्योंकि भूसा या कड़वी बनाने से ये तत्व अधिक मात्रा में समाप्त हो जाते हैं।

3. वर्षा ऋतु में जब हरी फसलों या घासों से 'हे' बनाना कठिन होता है, साइलेज बनाया जा सकता है।

4. साइलेज के लिए कटी फसल के साथ खरपतवार भी काट लिए जाते हैं। अतः खरपतवारों का विनाश स्वतः (Weed Control) होता है।

5. किसी क्षेत्र की पक्की फसल को कड़वी के रूप में इकट्ठा करने के लिए अधिक स्थान की आवश्यकता होती है। जबकि

साइलेज थोड़े स्थान में तैयार कर सुरक्षित रखा जाता है।
6. साइलेज के लिए फसल फूलने की अवस्था पर (Flowering stage) में काट ली जाती है। अतः खेत आगे की फसल बोने के लिए शीघ्र तैयार हो जाता है।
7. फसल तैयार होने से पहले काट लेने पर कीड़े–मकोड़े जो अभी अपनी पूर्ण अवस्था को नहीं प्राप्त हुए हैं, नष्ट हो जाते हैं।
8. साइलेज पशुओं को साल भर खिलाया जा सकता है। यह उत्तम गुणकारक होता है। पशु इसे चाव से खाते हैं।
9. फसलों को सुखाकर संग्रह करने से आग लग जाने या वर्षा से सड़ने का भय बना रहता है परन्तु साइलेज के संग्रह में ऐसी आपत्ति नहीं आती है।

जिन गड्ढों, नालियों अथवा बुर्ज में हरा चारा दबाकर भरा जाता है उन्हें साइलो (Silo) कहते हैं। साइलो कई प्रकार के होते हैं। इनका चलन उस स्थान जलवायु कृषक की आर्थिक दशा तथा पानी के तल के ऊपर निर्भर रहते हैं। साइलो निम्न प्रकार के होते हैं–

(1) साइलो बुर्ज (Silo tower) जमीन के ऊपर बनाये जाते हैं।
(2) साइलो खाई (Silo trench) भूमि के नीचे बनाये जाते हैं।
(3) साइलो गर्त (Silo pit) गोल या चौकोर गड्ढा होता है।

साइलो गर्त तथा खाई जमीन के नीचे तथा साइलो बुर्ज जमीन से ऊपर बनाये जाते हैं। साइलो गर्त तथा खाइयाँ कच्ची अथवा पक्की दोनों प्रकार की बनायी जाती है। भूमि के ऊपर बुर्ज, लकड़ी, ईंट व सीमेंट से बनाये जाते हैं। इसमें हवा का प्रवेश नहीं होना चाहिए। इसमें बीच–बीच में दरवाजे बनाये जाते है तथा ऊपर छप्पर बनाया जाता है।

भारतवर्ष में प्रायः भूमि के नीचे साइलो गर्त व खाइयाँ बनाई जाती हैं। इसकी लम्बाई, चौड़ाई व गहराई पशुओं की संख्या, खिलाने का समय एवं साइलेज की आवश्यक मात्रा के अनुसार रखा जाता है। गहराई उस स्थान के पानी के स्तर का ध्यान रखकर रखी जाती है, जिन स्थानों पर पानी बहुत कम गहराई पर ही होता है वहाँ बुर्ज बनाये जाते हैं।

साइलो पिट प्रायः 8′ X 5′X 4′ के बनाये जाते हैं तथा साइलो बुर्ज 8′–10′ व्यास वाले 20′–22′ ऊँचें बनाये जाते हैं। खाइयाँ प्रायः 8′ गहरी 7′–8′ चौंड़ी बनाई जाती हैं।

**साइलेज बनाने से पहले कुछ आवश्यक बातें**

(1) साइलेज उन फसलों में उत्तम बनेगा जिनमें कार्बोहाइड्रेड की मात्रा अधिक होती है अन्यथा चारा सड़ जायेगा; जैसे– ज्वार, मक्का, जई उत्तम हैं।
(2) साइलेज बनाने वाली फसलों में शुष्क पदार्थ की मात्रा (D.M%) 30–40% से अधिक नहीं होनी चाहिए।
(3) फसल को भरते समय खूब दबाया जाए ताकि बीच में वायु न रहे अन्यथा फसल सड़ जायेगी।
(4) जिन गड्ढों अथवा बुर्ज में फसल को दबाना है उनमें कहीं छेद न हो।
(5) फसल में पर्याप्त नमी तथा कोमलता की भी आवश्यकता है। अतः फसल फूलने की अवस्था में काट ली जाए।

**गड्ढों का भरना (Filling of Silo Pits)** – अपने देश में साइलेज गड्ढों में ही बनाया जाता है। अतः गड्ढों का वर्षा से बचाव रखा जाता है। फसल को फूल आने की अवस्था में काटा जाता है। अधिक बढ़ जाने पर रेशा की मात्रा बढ़ जाती है। और पाचक तत्व घट जाते हैं। फसल को सुबह काटकर पूरे दिन खेत में छोड़ देते हैं ताकि नमी अधिक मात्रा में कम हो जाए। फसल के गठ्र बनाकर इन्हें गड्ढे में बिछाया जाता है। सबसे नीचे कुछ घास बिछा देते हैं। फसल को मशीन से काट–काट कर भरना उत्तम रहता है।

गड्ढों में फसल को भरते समय खूब दबाया जाता है ताकि बीच–बीच में हवा न रह जाए। चारे को जमीन की सतह से 5′–6′ ऊँचा भरना चाहिए, क्योंकि बाद में इसका स्तर कम हो जाता है। अन्त में ऊपर से कुछ घास डालकर इसे मिट्टी से लीपकर बन्द कर दिया जाता है। जिससे कि कहीं से वायु एवं जल का प्रवेश न हो सके।

जब हरी फसल को काटकर गड्ढों में दबाया जाता है तो पौधों की जीवित कोशिकाएँ श्वासोच्छवास क्रिया करती हैं। वे गड्ढे में बची ऑक्सीजन का प्रयोग कर कार्बन–डाइ–ऑक्साइड विसर्जित करती हैं। इस प्रकार 5 घंटे में जब ऑक्सीजन काम आ जाती है और गड्ढे में लगभग 70–80 प्रतिशत कार्बन–डाइ–ऑक्साइड की उपस्थिति होने पर फफूँदी (Mould) उत्पन्न नहीं होती है। यदि गड्ढों अथवा बुर्ज में कहीं से वायु प्रवेश कर जाती है तो फफूँदी उत्पन्न होकर चारा सड़ा देती है।

वायु की अनुपस्थिति में बढ़ने वाले जीवाणु (Anaerobic Bacteria) अपनी संख्या में बढ़ते है। ये पौधों में मौजूदा शर्करा (Carbohydrates) पर क्रिया कर कार्बनिक अम्ल मुख्यतः दुग्धाम्ल (Lactic acid) उत्पन्न करते है, इसके अतिरिक्त ऐसिटिक अम्ल व इथाल एल्कोहल भी उत्पन्न होते हैं। इन अम्लों के उत्पन्न होने से सड़न पैदा करने वाले जीवाणु अपनी वृद्धि नहीं कर पाते हैं। जिन चारों में शर्करा कम होते हैं। उनमें अम्ल कम बनने से सड़न वाले जीवाणु अपनी वृद्धि कर जाते हैं। यदि शर्करा अधिक होता है तो साइलेज अधिक खट्टा बनता है। कुछ समय बाद इन अम्लों का बनना रुक जाता है, क्योंकि अम्ल बनाने वाले शुक्राणु अधिक अम्ल बन जाने पर स्वयं वृद्धि करना बन्द कर देते हैं। साइलेज में रासायनिक परिवर्तन बन्द हो जाते हैं। यदि इस समय भी हवा अन्दर चली जाती है तो साइलेज सड़ जाता है अन्यथा काफी समय तक सुरक्षित बना रहता है। अम्ल का उत्पादन पौधों में शर्करा की मात्रा साइलेज बनाने के लिए

उपयुक्त होती है।

**साइलेज का वर्गीकरण (Classificiation of Silage)**

स्वाद के आधार पर निम्न वर्गीकरण किया जा सकता है–

**(1) मीठी साइलेज (Sweet Silage)** :– इसमें दुग्धाम्ल की मात्रा अधिक होती है। यह लाभप्रद होता है तथा अम्लीय कम होता है।

**(2) अम्लीय साइलेज (Acidic Silage)** – इसमें एसिटिक एसिड अधिक मात्रा में उत्पन्न होता है तथा दुग्धाम्ल की मात्रा कम होती है।

साइलेज को रंग तथा स्वाद के आधार पर निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है–

(1) बदामी गहरी, मीठी साइलेज (Dark Brown sweet Silage)

(2) अम्लीय, कम बादामी वाली साइलेज ( Light Brown Acidic Silage)

(3) हरी साइलेज (Green Silage)

(4) अधिक खट्‌टी साइलेज (More Sour Silage)

(5) फफूँदीयुक्त साइलेज (Mouldy Silage)

## (2) 'हे' बनाना (Hay Making)

यह एक ऐसा सूखा चारा है जिनमें पानी की मात्रा कम होती है तथा पोषक तत्वों की मात्रा उस फसल की अपेक्षा अधिक होती है। जिससे यह तैयार की गई। एक उत्तम प्रकार की 'हे' रंग की हरी, पत्तियों युक्त मुलायम तथा उत्तम गन्धयुक्त होती है। उदाहरणार्थ, एक ही घास और उसी की बनी 'हे' का रासायनिक संगठन इस प्रकार होगा।

**तालिका 17.3.1 : हरी घास तथा 'हे' का संगठन (प्रतिशत)**

| हे का प्रकार | जल | कच्ची प्रोटीन | ईथर निष्कर्ष | शर्करा पदार्थ | दुष्पचती तन्तु | लवण |
|---|---|---|---|---|---|---|
| सूडान, हरी घास | 76.3 | 2.0 | 0.4 | 10.5 | 8.5 | 2.3 |
| सूडान 'हे' | 11.0 | 8.5 | 0.5 | 41.5 | 30.7 | 6.8 |

## 'हे' के प्रकार (Kinds of Hay)

जिस प्रकार की फसलों से 'हे' तैयार की जाती उसे उसी प्रकार की 'हे' कहते हैं। 'हे' निम्नलिखित प्रकार की मानी जा सकती है–

**(1) फलीदार फसल वाली 'हे' (Legume Hay)** यह प्रायः फलीदार फसलों; जैसे – मटर, लोबिया, बरसीम, रिजका आदि से बनायी जाती है। यह एक उत्तम प्रकार का पशु भोजन है। क्योंकि इनमें निम्न उत्तम गुण पाये जाते हैं।

(अ) इनमें पाचक तत्वों की मात्रा अन्य प्रकार की 'हे' से अधिक होती है।

(ब) पाचक तत्वों में पाच्य प्रोटीन अधिक मात्रा में होती है तथा इस प्रकार की 'हे' की पाच्य प्रोटीन भी उत्तम गुणों की होती है।

(स) उत्तम प्रकार से तैयार की गई इस प्रकार की 'हे' मेंVit. 'A' की मात्रा अधिक होती है। साथ ही अन्य विटामिन्स डी और ई भी पर्याप्त मात्रा में होते हैं।

(द) फलीदार हे प्रायः खनिज लवणों विशेषकर कैल्सियम में उत्तम होती है। फॉस्फोरस भी मध्यम मात्रा में होता है।

(य) इस प्रकार की 'हे' अधिक स्वादिष्ट एवं पाचक होती है। ये पाचन प्रणाली पर उत्तम प्रभाव डालती हैं।

(र) फलीदार 'हे' की फसलें शीघ्र और आसानी से उगाई जा सकती हैं। ये भूमि के कटाव को भी रोकती हैं।

**(2) फलरहित फसल वाली 'हे' (Non-legume Hay)** – इस प्रकार की 'हे' प्रायः विभिन्न हरी घासें जैसे– दूब, नैपियर, सूडान तथा चारे की फसलों; जैसे– ज्वार आदि से तैयार की जाती है। ये फलीदार 'हे' के समान उत्तम ही होती है, परन्तु ये कम स्वादिष्ट होती है। पाच्य प्रोटीन की मात्रा कम तथा खनिज लवण और विटामिन्स भी प्रथम प्रकार की 'हे' से कम पाई जाती है। फिर भी यदि इन फसलों को जल्दी काटकर उत्तम ढंग से 'हे' बनायी जाए तो तत्वों की मात्रा अधिक मिल जाती है। इस प्रकार की 'हे' बनाने में हानि कम होती है।

**(3) मिश्रित 'हे' (Mixed Hay)**– जब फलीदार और बिना फलीदार फसलों को मिलाकर 'हे' बनाई जाती हैं तो उसे मिश्रित 'हे' कहते हैं। मिश्रित 'हे' फलीरहित 'हे' से उत्तम होती है। इसकी उत्तमता फलीदार फसल की मात्रा पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए – सोयाबीन और सूडान घास, जई और मटर इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार के भी मिश्रण लेकर 'हे' बनायी जाती है। इन 'हे' को बनाने के लिए फसल को जल्दी काट लेना चाहिए ताकि प्रोटीन की मात्रा अधिक मिल सके।

**(4) अनाज वाली फसल की 'हे' (Grain Hay)** – अनाज वाली फसलों से भी 'हे' तैयार की जा सकती है। उदाहरणार्थ – जौं, जई, बाजरा, गेहूँ आदि इन फसलों से उत्तम जाति की 'हे' प्राप्त करने के लिए इन्हें दानों में दूध पड़ने (Milking stage) में काट लेना चाहिए। ये अच्छी गुण वाली होती हैं।

**उत्तम 'हे' के गुण (Qualities of Good Hay)**

1. इनमें पत्तियाँ अधिक होनी चाहिए क्योंकि पत्तियों वाले भाग में ही पाच्य तत्वों की मात्रा, लवण और विटामिन्स मिलते हैं। (It should be Leafy)।

2. इनका रंग हरा होना चाहिए (It should be green in colors)।

3. ये मुलायम और स्वादिष्ट होनी चाहिए (It should be succulent and palatable)।

4. ये फफूँदी अथवा सड़नरहित हों (It should be free from

moulds)।

5. इनमें खरपवार नहीं होना चाहिए (It should be free from weeds)।

6. धूल अथवा मिट्टी रहित हो (It should be free from dust and soil)।

## 'हे' बनाना तथा सुखाना (Method of Curing Hay)

### (अ) खेत में 'हे' बनना (Curing of Hay in field)

**(1) समतल भूमि पर तैयार करना** – 'हे' बनाने के लिए फसल को जब इस पर फूल आ रहा हो सुबह के समय ओस हट जाने के बाद काटकर खेत में फैला देना चाहिए। फसल को 9"–12" मोटी तह के रूप में सम्पूर्ण खेत में फैलाते हैं। समय–समय पर इसे पटकते रहना चाहिए। जब जल की मात्रा लगभग 14 प्रतिशत हो तो इसे ऐसे स्थान पर इकट्ठा करना चाहिए जहाँ वर्षा का बचाव हो।

**(2) शोष पंक्तियों को तैयार करना (Windrows method)** फसल को खेत में एक दिन तक समतल पड़ी रहने के बाद से पूरे क्षेत्र में छोटी–छोटी ढेरियों के रूप में इकट्ठा करते है समय–समय पर उलटते रहना चाहिए।

**(3) तिपाई विधि (Tripod method)**–तराई वाले क्षेत्रों में जहाँ वर्षा अधिक होती है वहाँ फसल को तिपाये गाढ़कर उन पर फैला देते हैं। इस प्रकार ये हवा और धूप से सूख जाती हैं।

### (ब) शस्यागार शोषण विधि (Barn drying method)

– मौसम की प्रतिकूलता होने के परिणामस्वरूप जहाँ 'हे' खेतों में नहीं तैयार की जा सकती वहाँ 'हे' निर्माण कार्य के लिए शस्यागार शोषण विधि अपनायी जाती है। यह शोषण की कृत्रिम विधि है जिसमें यांत्रिक सहायता लेनी पड़ती है। शस्यागार के फर्श में नालियाँ बनी होती है जिनके द्वारा गर्म वायु का अन्दर प्रवेश कराया जाता है। यह बिजली द्वारा अथवा तेलीय ईंधन से चालू किया जा सकता है। पहले फसल को थोड़े समय तक खेत में ही सुखाया जाता है ताकि जल की मात्रा 25 प्रतिशत शस्यागार में आते समय हो क्योंकि इस विधि में अधिक खर्च होगा। इस विधि से तैयार की गई 'हे' में विटामिन ए. की मात्रा अधिक रहती है। परन्तु किण्वीकरण द्वारा पोषक तत्वों की हानि अधिक हो जाती है।

**चित्र 17.3.1 'हे' बनाने की विधि**

## भारत में 'हे' बनाने में बाधाएँ (Limitations in Hay Making in India)

1. यहाँ का औसतन कृषक निर्धन है। वह अपना धन अधिक समय तक नहीं लगा सकता है।
2. भूमि की कमी होने के कारण पशुओं के चारे बहुत कम क्षेत्र में उगाये जाते हैं। अधिकतर अनाज की फसलें बोई जाती हैं।
3. घासें अधिकतर वर्षा ऋतु में तैयार होती हैं जबकि 'हे' बनाना इस मौसम में कठिन है।
4. सिंचाई साधन अपर्याप्त हैं।

## महत्वपूर्ण बिन्दु

1. पशु का आहार, पशु की उम्र व आवश्यकता के अनुसार होना चाहिए।
2. आहार में आवश्यक पदार्थ जैसे कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा खनिज लवण, विटामिन व पानी होते हैं।
3. दानों का दलिया बनाकर खिलाना ठीक रहता है।
4. आहार सुपाच्य होना चाहिए। अतः हरा चारा पशु को अवश्य देना चाहिए।
5. दूध निकालते समय धूलमय चारे नहीं खिलाने चाहिए।
6. पशुओं की उनकी उम्र के अनुसार आहार देना चाहिए।
7. गर्भवती गाय को अलग से दाना देने से गर्भ का समुचित विकास होता है।
8. दुधारू पशु को चारे के साथ दाना (बांटा) देकर दूध की मात्रा बढ़ायी जा सकती है।
9. दूध देने वाले पशुओं को पर्याप्त हरा चारा खिलावें।
10. दाने का 1 प्रतिशत खनिज लवण पशुओं को दें।
11. प्रत्येक पशु के आहार में खनिज मिश्रण अवश्य मिलायें।

## अभ्यास प्रश्न

### बहुचयनात्मक प्रश्न–

1. साइलेज के लिए उपयुक्त फसल है।
   (अ) मटर (ब) ज्वार
   (स) लोबिया (द) बरसीम
2. साइलेज बनाने के लिए ज्वार फसल काटने की अवस्था होती है।
   (अ) फूल आने पर (ब) दाना बन जाने पर
   (स) फसल पक जाने पर (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं
3. मीठी साइलेज में किस अम्ल की मात्रा अधिक होती है?
   (अ) लैक्टिक अम्ल (ब) एसिटिक अम्ल
   (स) एस्कॉर्बिक अम्ल (द) टारटरिक अम्ल
4. बिनौले में टाक्सीन होता है।
   (अ) गॉसीपाल. (ब) हाइड्रोसायनीक अम्ल
   (स) लेथीरोजन (द) हेमोग्लूटीनीन

5. हरे चारे में होती है।
   (अ) सुपाच्यता (ब) विरेचकता
   (स) स्वादिष्टता (द) सभी

6. दूध देने वाली गाय को खनिज की आवश्यकता होती है।
   (अ) लौह तत्व (ब) कॉपर तत्व
   (स) कैल्सियम (द) गंधक

7. गायों को प्रति 3 किग्रा दूध पर दाना दिया जाता है।
   (अ) 1 किग्रा. (ब) 2 किग्रा.
   (स) 3 किग्रा (द) 4 किग्रा.

**अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–**

8. 'हे' बनाने के लिए फली रहित घासों के नाम लिखिए।
9. साइलेज बनाने के लिए ज्वार की फसल काटने की अवस्था लिखिए।
10. पशु को 24 घंटे में जो कुछ खिलाया जाता है उसे क्या कहते है?
11. आहार के मुख्य अवयव कौन–कौन से हैं?
12. गर्भवती गाय को कितना दाना देना चाहिए।
13. साइलेज में शुष्क पदार्थ कितने प्रतिशत होता है?

**लघूत्तरात्मक प्रश्न–**

14. मिश्रित 'हे' का महत्त्व लिखिए।
15. 'हे' बनाने के लिए फली एवं फली रहित घासों के नाम लिखिए।
16. सन्तुलित आहार की परिभाषा लिखो।
17. जीवन निर्वाह आहार क्या होता है?
18. बैलों से मध्यम कार्य लेने हेतु कितना दाना देना उपयुक्त रहता है?
19. गाय के जीवन निर्वाह हेतु कितना दाना देना उपयुक्त रहता है।

**निबन्धात्मक प्रश्न–**

20. साइलेज किसे कहते हैं? इसके लाभ, हानि एवं इसके लिए उपयुक्त फसल का वर्णन कीजिए।
21. 'हे' बनाने के लिए कौन–कौन सी फसलें प्रयोग की जा सकती हैं? उत्तम 'हे' के गुणों का वर्णन कीजिए।
22. आहार के मुख्य कार्य बताइए।
23. दुधारू गाय के आहार का वर्णन करो।
24. दानों के विभिन्न मिश्रण तालिका दर्शायें।
25. खनिज मिश्रण के महत्व व पूर्ति हेतु क्या करना चाहिए?

**उत्तरमाला–**

1. (ब) 2. (अ) 3. (अ) 4. (अ) 5. (द)
6. (स) 7. (अ)

# अध्याय 18
# पशु स्वास्थ्य (Animal Health)

### 18.1 स्वस्थ एवं रोगी पशु की पहचान (Indentification of Healthy and Diseased Animal)

**(i) स्वस्थ एवं रोगी पशु के लक्षण :–** विभिन्न रोगों के कारण प्रतिवर्ष हजारों पशु मर जाते हैं। जो पशु बीमार होने के बाद ठीक हो जोते हैं, उनकी शारीरिक वृद्धि कम हो जाती है। बीमार दुधारू पशुओं का दुग्ध उत्पादन कम हो जाता है।

**स्वस्थ –** पशु की वह अवस्था है जिसमें पशु के शरीर के सभी तंत्र एवं अंग उसकी आयु, लिंग, कार्य एवं उत्पादन के अनुसार सुचारू रूप से कार्य करते हो एवं पशु के शरीर का तापमान, सांस की गति, नाड़ी की गति साधारण हो। दूसरे शब्दों में स्वस्थ बीमारी से मुक्ति है।

**बीमारी –** स्वस्थ दशा से विचलित होने की अवस्था को बीमारी या रोग कहते हैं।

**स्वस्थ पशुओ के लक्षण :–** पशु द्वारा प्रदर्शित किये गये बाह्य लक्षणों के अनुसार यह पता लगा सकते हैं कि पशु स्वस्थ है या बीमार। इसके लिए यह आवश्यक है कि एक पशुपालक या फार्म प्रबन्धक को प्रतिदिन अपने पशुओं को निकट से निरीक्षण कराना चाहिए जिससे शीघ्र उपचार कर सके। इसके लिए यह जरूरी है कि उसे एक स्वस्थ या बीमार पशु के लक्षणों की जानकारी हो। स्वस्थ एवं रोगी पशुओं के लक्षण तालिका में निम्नांकित हैं–

यह आवश्यक नहीं है कि तालिका 18.1.1 में वर्णित लक्षण सभी रोगों में प्रकट हो क्योंकि अलग–अलग बीमारियों के विशेष लक्षण होते हैं। जिनसे उन्हें पहचानकर रोग का निदान किया जा सकता है। अतः एक पशुपालक पशुओं के सभी क्रियाकलापों से परिचित हो। उसे स्वस्थ एवं रोगी पशुओं के लक्षणों की जानकारी होनी चाहिए। जिससे रोग ग्रसित पशु का शीघ्र से शीघ्र उपचार कराया जा सके एवं आर्थिक हानि से बचा जा सके। यदि उपचार में विलम्ब किया गया तो अधिक हानि होगी।

**(ii) पशुओं का शारीरिक ताप :–** साधारणतया पशुओं के शरीर का तापमान डॉक्टरी थर्मामीटर को पशुओं के मलाशय (रैक्टम) में रखकर लिया जाता है। लेकिन जब ऐसा करना किसी कारण से असम्भव हो तो योनि (वेजाइना) में थर्मामीटर डालकर तापमान मालूम किया जाता है। तापमान नापने से पहले थर्मामीटर के पारे को अच्छी तरह उतार लेना चाहिए। पारे को साधारणतया हाथ से झटका देकर उतारा जाता है, मगर इस प्रकार पारा शीघ्र न उतरे तो थर्मामीटर के बल्ब को ठण्डे पानी में 2–3 मिनट डालकर फिर झटका देने से पारा उतर जाता है। झटका देते समय बल्ब हाथ में नहीं पकड़ना चाहिए वरन् उसका उल्टा सिरा पकड़ना चाहिए। थर्मामीटर को मलाशय में अंदर डालने के पहले बल्ब वाले सिरे को ग्लिसरीन या वैसलीन की सहायता से चिकना कर लेना चाहिए जिससे वह आसानी से अंदर प्रवेश कर सके। सीधे डालने के बजाय अगर थोड़ा घुमा–घुमा कर डाला जाए तो थर्मामीटर अधिक सुविधा से अंदर प्रवेश कर जाता है। यदि रैक्टम में कड़ा गोबर हो तो उँगली के सहारे से थर्मामीटर को रैक्टम की श्लेष्मिक झिल्ली से लगा देना चाहिए। भेड़ व बकरी में तापमान लेते समय थर्मामीटर को तिरछा कर दिया जाता है, जिससे वह श्लेष्मिक झिल्ली से लग जाए। सही तापमान के लिए यह आवश्यक है कि थर्मामीटर रैक्टम की श्लेष्मिक झिल्ली से सम्पर्क में रहे। केवल थर्मामीटर का बल्ब ही अंदर नहीं डालना चाहिए बल्कि उसका लगभग आधा भाग अंदर डालना चाहिए। यदि तापमान मींगणी करने या गोबर करने के तुरंत बाद लिया गया है अथवा निर्धारित समय से कम समय तक अंदर रखा गया हो तो थर्मामीटर के तापमान का पठन वास्तविक शारीरिक तापमान से कम होगा। यदि थर्मामीटर के पठन में कुछ संदेह हो तो तापमान दोबारा लेना चाहिए। थर्मामीटर एक मिनट या डेढ़ मिनट तक अंदर रखना चाहिए। दो–चार मील चलकर आये हुए पशु का तापमान कम से कम आधा घण्टा आराम

तालिका 18.1.1 स्वस्थ एवं रोगी पशुओं के लक्षण

| क्र.सं. | स्वस्थ पशुओं के लक्षण | रोगी पशुओं के लक्षण |
|---|---|---|
| 1. | स्वस्थ पशु रेवड़ में रहता है। | बीमार पशु रेवड़ से अलग हो जाता है एवं मुरझाई सी अवस्था में रहता है। |
| 2. | पशु ध्वनि और गति के प्रति उचित संवेदन शीलता दर्शाता है। | बाह्य संवेदक के प्रति पूरी तरह संवेदनशील नहीं रहता। |
| 3. | पशु की त्वचामुलायम, चमकदार, लचीली एवं Pliable होती है। इसकी पहचान गर्दन की चमड़ी को पकड़कर की जा सकती है। | पशु की त्वचा सूखी, मोटी, कम लचीली, चमकहीन व रोंगटे खड़े रहते हैं, त्वचा को हाथ से पकड़ने पर रोए हाथ पर चिपक जाते हैं। |
| 4. | पशु के नथुने नम होते हैं नासारन्ध्र से किसी प्रकार का स्राव नहीं निकलता है। | नथुने शुष्क होते हैं। नासारन्ध्र से पानी जैसा गाढ़ा या खून निकल सकता है। |
| 5. | आंखे चमकदार एवं सचेत होती हैं। | आंखों में कम चमक होती है एवं कुछ बीमारियों में पानी या तरल गाढ़ा पदार्थ निकलता है। |
| 6. | आहार पुरी तरह से खाता है। | आहार खाने में कोई रूचि नहीं लेता। |
| 7. | पशु जुगाली करता रहता है। | जुगाली नहीं करता या कम करता है या लार गिरती है। |
| 8. | पशु ठीक तरह से गोबर करता है गाय भैंस का गोबर अपेक्षकृत ढीला होता है एवं रंग गहरे हरे से गहरा भूरा होता है। गोबर में किसी प्रकार का बुलबुला या खून नहीं होता एवं किसी प्रकार की दुर्गंध नहीं आती। | पशु के गोबर के रंग, मात्रा, गाढ़ापन व गन्ध में परिवर्तन आ जाता है। गोबर सूखा या पतला करता है या कब्जी हो जाती है। |
| 9. | पशु के पेशाब का रंग हल्का पीला या पानी जैसा होता है। सामान्य रूप से पेशाब करता है एवं किसी प्रकार की दुर्गंध नहीं आती। | पेशाब का रंग गहरे पीले रंग का या लाल रंग जैसा होता है। पेशाब में दुर्गंध आती है। पेशाब करने में तकलीफ, पेशाब की ज्यादा या कम मात्रा। |
| 10. | दुधारू पशुओं का दुग्ध उत्पादन सामान्य रहता है एवं दुग्ध की गुणवत्ता सामान्य रहती है। | दुग्ध उत्पादन कम हो जाता है। दुग्ध की गुणवत्ता में गिरावट आती है। दुग्ध पानी जैसा या मवाद या खून आता है। |
| 11. | श्वसन क्रिया एवं श्वसन गति सामान्य होती है। | श्वास लेने में कठिनाई, खांसी या दुर्गंध युक्त श्वास आती है। |
| 12. | शरीर का तापमान सामान्य रहता है। | तापमान सामान्य से अधिक या कम हो सकता है। |
| 13. | नाड़ी की गति सामान्य होती है। | नाड़ी की गति सामान्य से अधिक या कम हो जाती है। |
| 14. | पशु के उठने–बैठने, चलने व चरने की क्रिया सामान्य होती है। | उठने–बैठने में तकलीफ होती है। पशु लंगड़ाता है। |
| 15. | पशु की आवाज सामान्य रहती है। | आवाज में परिवर्तन आ जाता है। |
| 16. | पशु कान, पूंछ तथा सिर हिलाते रहते हैं एवं सिर ऊँचा उठाये रखते हैं। | कान, पूँछ तथा सिर कम हिलाते हैं या बिल्कुल नहीं हिलाते। सिर नीचे की ओर होता है। |
| 17. | प्राकृतिक द्वार (Natural orifies) जैसे जननेन्द्रियों से किसी प्रकार का स्राव नहीं आता। परन्तु मादा पशु के पाले (Heat) में आने पर स्राव आता है। | जननेन्द्रियों में मवाद जैसा स्राव या खून आता है। |
| 18. | पशु के स्वभाव में सामान्य से भिन्नता नहीं होती। | पशु का स्वभाव सामान्य नहीं रहता। |

देकर लेना चाहिए वरना उस पशु का शारीरिक तापमान बढ़ा हुआ मिलेगा।

सांसर्गिक व संक्रामक रोगों में शरीर का तापमान बढ़ जाता है। गर्भावस्था एवं तरूण अवस्था में शरीर का तापमान सामान्य से एक डिग्री फॉरेनहाइट ऊपर चला जाता है। कमजोर व थके हुए पशुओं का तापमान सामान्य से कम होता है। विभिन्न पशुओं का सामान्य औसत तापमान का रेंज औसत वातावरणीय तापमान पर निम्नांकित है।

**तालिका 18.1.2**

**पशुओं का शारीरिक तापमान**

| पशु की जाति | औसत तापमान | क्रिटिकल तापमान |
|---|---|---|
| घोड़ा | 38.0°C (100.5°F) | 39.0°C (102.0°F) |
| गाय व भैंस | 38.5°C (101.5°F) | 39.5°C (103.5°F) |
| सूअर | 39.5°C (103°F) | 40.0°C (104°F) |
| भेड़ | 39.0°C (102°F) | 40.0°C (104.0°F) |

उपरोक्त तालिका में विश्राम की दशा में विभिन्न पशुओं का तापमान और क्रिटिकल पॉइंट यानि जिसके ऊपर तापमान बढ़ा हुआ माना जाता है। दिखाया गया है। शरीर के तापमान में सामान्य रूप से थोड़ा बहुत परिवर्तन होता है, परन्तु इसे बीमारी का लक्षण नहीं मानना चाहिए। वातावरण में अत्यधिक आर्द्रता और वातावरण के तापमान तथा कठोर शारीरिक परिश्रम के कारण शरीर का तापमान बढ़ जाता है। अत्यधिक वातावरणीय तापमान के कारण शारीरिक तापमान में 3° F की बढ़ोतरी हो जाती है। रेस के घोड़े का उसके 2 घंटे तक विश्राम देने के बाद तापमान लिया जाता है। अगर कोई पशु ठण्डे वातावरण से लाया जाकर अंदर किसी गर्म वातावरण में रखा जाये तो उसके शरीर का तापमान 2–4 घंटे में क्रिटिकल तापमान से ऊपर चला जायेगा।

### नाड़ी (Pulse)–

गाय और भैंस में नाड़ी दर पूँछ के अधर भाग पर धड़क रही मध्य काक्सीजियल धमनी से ज्ञात की जाती है। इसके लिए पूँछ को पृष्ठ भाग हाथ से पकड़ना चाहिए ताकि उँगलियाँ अधर तल में धमनियों को स्पर्श करती हुई लगी रहे। घोड़े में नाड़ी दर चेहरे पर स्थित फेसियल धमनी से ज्ञात की जाती है। भेड़ व बकरी में टांग के ठीक बीच में अंदर की तरफ स्थित फेमोरल धमनी से नाड़ी दर मालूम किया जाता है। सूअर की नाड़ी दर को आसानी से ज्ञात नहीं किया जा सकता है। नाड़ी दर मालूम करते समय नाड़ी सपिंडनीयता (रिद्॑म) अवधि, संख्या, गुण व नियमितता देखनी चाहिए। केवल अनुभव से ही व्यक्ति नाड़ी दर को पूर्ण व्याख्या कर सकता है। नाड़ी दर हृदय गति की दर को परिलक्षित करती है तथा नहीं भी करती है। विश्राम की अवस्था में विभिन्न पशुओं में पाई गई नाड़ी निम्न प्रकार है :–

**तालिका 18.1.3**

**पशुओं की नाड़ी गति**

| क्रमांक | पशु की प्रजाति | नाड़ी गति प्रतिमिनट |
|---|---|---|
| 1. | गौ वंशीय पशु | 40–50 |
| 2. | महिष (भैंस)वंशीय पशु | 40–45 |
| 3. | भेड़ | 70–80 |
| 4. | बकरी | 70–80 |
| 5. | ऊँट | 28–32 |
| 6. | घोड़ा | 32–40 |
| 7. | सूअर | 60–80 |
| 8. | कुक्कुट | 200–400 |

### श्वसन (Respiration)–

श्वसन वक्र के तीन भाग होते हैं और इन तीन भागों की अवधि बराबर होती है। ये तीन भाग हैं :–

1. उच्छवास, 2. निष्वास तथा 3. विश्राम। इनमें से किसी भी एक भाग की अवधि में अगर परिवर्तन हो जाता है तो सभी भागों की सपिंडनीयता (रिद्॑म) में असमानता आ जाती है। उच्छवास के समय में बढ़ोत्तरी फेफड़े के ठीक से न सिकुड़ने का लक्षण है। लगभग सभी फेफड़ों की बीमारियों में श्वसन चक्र से विश्राम का भाग अनुपस्थित रहता है, जिसमें श्वसन दर बढ़ जाती है, अत्यधिक परिश्रम, दौड़ इत्यादि में भी श्वसन दर बढ़ जाती है।

श्वसन को नापने के लिए हथेली को नाक के सामने रखकर श्वसन दर मापी जाती है। दर मापने के लिए उच्छवासों को गिना जाता है।

श्वसन नापने की दूसरी विधि यह है कि श्वसन दर पशु की कोख को उठने और गिरने को गिन कर बताई जाती है। इसमें भी कोख (Flank) का उठना गिनते हैं या गिरना गिनते हैं।

तालिका 18.1.4

| क्रमांक | पशुओं की जाति | श्वसन गति प्रतिमिनट |
|---|---|---|
| 1. | गौ वंशीय पशु | 20–25 |
| 2. | महिष (भैंस) वंशीय पशु | 16–18 |
| 3. | भेड़ | 12–20 |
| 4. | बकरी | 12–20 |
| 5. | ऊँट | 05–07 (दोपहर में तेज) |
| 6. | घोड़ा | 08–16 |
| 7. | सूअर | 08–18 |
| 8. | कुक्कुट | 15–30 |

## 18.2 सामान्य व्याधियों की पहचान एवं उपचार

### (i) बीमारियों का वर्गीकरण

पशुओं में जो विभिन्न प्रकार की बीमारियाँ होती हैं उनमें से कुछ बीमारियों को पशु के खानपान एवं अन्य बातों पर नियन्त्रण करके रोका जा सकता है या ठीक किया जा सकता है। जैसे – बदहजमी, जुकाम इत्यादि। लेकिन कुछ रोग ऐसे होते हैं जो पशुओं में अचानक होते हैं और इनका प्रकोप भी अधिक भयानक होता है, जैसे– ऐन्थ्रेक्स, गलघोटू, चेचक इत्यादि।

पशुओं में होने वाली बीमारियों को निम्न आधार पर वर्गीकृत किया गया है :–

**(अ) रोग के कारक के आधार पर।**

**(ब) रोग से पीड़ित अंगों के आधार पर।**

**(स) रोग प्रकोप एवं अवधि के आधार पर।**

**(द) रोग विभाजन के आधार पर।**

**(य) रोग आरम्भ होने के आधार पर।**

**(अ) रोग के कारक के आधार पर** – इस वर्ग में वे सभी रोग आते हैं, जिनका कारक निश्चित होता है। इनको तीन भागों में बाँटा गया है।

**(1) संसर्ग रोग (Contagious Disease)** – इन्हें छूत की बीमारी भी कहते है। इस वर्ग में वे सभी रोग आते हैं, जो रोग ग्रस्त पशु के स्वस्थ पशु के सम्पर्क में आने से स्वस्थ पशुओं में भी फैल जाता है। जैसे–पशु प्लेग, गलघोटू इत्यादि। छूत से फैलने वाले (संसर्ग रोग) सभी रोग संक्रामक होते हैं, लेकिन सभी संक्रामक रोग छूत से फैलने वाले नहीं होते हैं।

**(2) संक्रामक रोग (Infectious Disease)** – इस वर्ग के रोग जीवाणु (Bacteria), वायरस (Virus), परजीवी (Parasites) तथा प्रोटोजोआ (Protozoa) द्वारा फैलते हैं। यह रोग, रोगग्रस्त पशुओं के सम्पर्क में रहने वाली वस्तुओं के द्वारा भी स्वस्थ पशुओं में पहुँच जाते हैं।

**(3) अन्य रोग (Others)** – अन्य रोगों में पोषक तत्वों की कमी से (जैसे–कैल्सियम की कमी से अस्थि वक्रता) होने वाले रोग, चयापचय जन्य रोग (जैसे– कीटोसिस तथा दुग्ध ज्वर) एलर्जिक रोग (जैसे चर्मरोग) तथा विषाक्तता (सायनाइड विषाक्तता) आदि रोग आते हैं।

**(ब) रोग से पीड़ित अंगों के आधार पर** – इस वर्ग के रोगों को दो वर्गों में बाँटा गया है :–

**(1) स्थानीय रोग (Local Desease)** – वे रोग जो एक समय में पशु के एक खास भाग को ही प्रभावित करते हैं। जैसे– होर्निया, थनैला, फोड़ा इत्यादि।

**(2) साधारण रोग (General Disease)** – इस वर्ग के रोग पशु शरीर के विभिन्न भागों तथ कभी–कभी पूर्ण शरीर को ही प्रभावित करते हैं। जैसे–इन्फ्लूएंजा बुखार।

(स) रोग प्रकोप एवं अवधि के आधार पर – इस वर्ग के रोगों को चार भागों में बाँटा गया है :–

**(1) अति उग्र रोग (Per Acute Disease)** : ऐसे रोग जो पशुओं पर अचानक आक्रमण करते हैं इनके लक्षण भी भली प्रकार प्रकट नहीं हो पाते और पशु यकायक मरने लगते हैं। जैसे भेड़ों में ऐन्थ्रेक्स रोग।

**(2) उग्र रोग (Acute Disease)** : ऐसे रोग जो अचानक अधिक तेजी से आते हैं और थोड़ी देर में समाप्त हो जाते हैं। जैसे गलघोटू, लंगड़ी रोग।

**(3) उप उग्ररोग (Sub Acute Disease)** : इनमें वे सभी रोग आते हैं जो अचनानक तेजी से आते हैं और इनकी अवधि अधिक लम्बी होती है। जैसे खुरपका रोग।

**(4) चिरकालीन रोग (Chronic Disease)** : इनमें वे रोग आते हैं जो पशु शरीर में धीरे–धीरे दिखाई देते हैं तथा अधिक समय में समाप्त होते हैं। जैसे क्षय रोग इत्यादि।

**(द) रोग विभाजन के आधार पर** – इस वर्ग के रोगों को 6 भागों में बाँटा गया है :–

**(1) पशु महामारी (Epizootic)** : इस प्रकार के रोग एक साथ बड़े क्षेत्र में पशुओं में फैलते हैं और इनके लक्षण भी सभी पशुओं में एक समान ही होते हैं।

**(2) स्थानिक मारी रोग (Enzootic)** : इस प्रकार के रोग वे माने जाते हैं जो पशुओं की कुछ विशेष नस्लों अथवा

जातियों को ही प्रभावित करते हैं।

**(3) विदेशज रोग (Exotic)** : ऐसे रोग जो विदेशी नस्ल खरीदते समय इनके साथ देश में आ जाते है। जैसे दक्षिण अफ्रीकी अश्व रोग।

**(4) विकीर्ण रोग (Sporadic)** : यह रोग यंत्र–तांत्रिक रोग भी कहलाता है। यह रोग कभी–कभी पशुओं में दिखाई देता है, जैसे–पागलपन (Rabies)।

**(5) पैन्जूटिक रोग (Penzootic)** : इस प्रकार के रोग प्रायः वह होते हैं, जो एक साथ किसी राष्ट्र में पशुओं की विभिन्न जातियों को प्रभावित करते हैं।

**(6) देशी रोग (Indigenous)** : इस प्रकार के रोग एक राष्ट्र के जन्मजात रोग होते हैं, ये आरम्भ से ही पशुओं में होते हैं।

**(य) रोग आरम्भ होने के आधार पर** : इस वर्ग को तीन भागों में बाँटा गया है।

**(1) पैतृक रोग (Hereditary)** : वे रोग जो जो माता–पिता से संतान में आते हैं, जैसे मिर्गी तथा हिमोफीलिया।

**(2) जन्मजात रोग (Congenital)** : वे रोग जो बच्चों में गर्भकाल से ही माँ से लग जाते हैं। जैसे क्षय रोग।

**(3) अर्जित रोग (Acquired)** : वह रोग जो बच्चों में जन्म लेने के बाद उनके जीवनकाल में वातावरण से लग जाते हैं।

### (ii) सामान्य व्याधियाँ

पशुओं में कई प्रकार की व्याधियाँ होती हैं। कुछ ऐसी व्याधियाँ हैं जैसे – घाव, मोच, दाह, कब्ज, आफरा, अतिसार, खुजली एवं भोजन विषाक्तता आदि जिसका पशुपालक स्वयं इनके लक्षणों को पहचानकर प्राथमिक उपचार कर सकता है।

#### 1. घाव (Wound)

घाव को निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया जाता है:–

**i) खरोंच (Abration) :–** यह किसी वस्तु से रगड़ खाने, टकराने, कटीली झाड़ियों से तारबंदी से रगड़ खाने से या गिरने से होते हैं। इसमें त्वचा की सूक्ष्म रक्तवाहिनियाँ फट जाती हैं। खरोंच घाव बहुत ही दर्द युक्त होता है एवं कई बार ऊत्तकों के बीच द्रव्य इकट्ठा हो जाता है जिसमें घाव में सूजन पैदा हो जाती है।

**उपचार (Treatment) :–** यदि घाव मामूली सी खरोंच की स्थिति में हो तो 0.1% लाल दवा (पोटैशियम परमैंग्नेट) से बने पानी के घोल से यो 1% फिनायल युक्त पानी में रुई भिगोकर घाव को धोवें उसके बाद टिंचर आयोडिन को रुई में भिगोकर घाव पर लगावें।

**ii) खुले घाव (Open wound) :–** शरीर के किसी भाग पर चोट लगने से ऊत्तक नष्ट हो जाने एवं रक्त वाहिनियों के फट जाने से होता है। इस प्रकार के घाव दुर्घटना से, तेज धारदार या नुकीले औजार से, किसी पदार्थ से टकराने से हो जाता है। ताजे घाव से खून निकलता है यदि इस प्रकार के घाव की ठीक तरह से देखभाल न की जाए तो घाव सड़ जाता है। घाव पर मक्खियाँ बैठने पर उसमें कीड़े (maggot) भी पड़ जाते हैं। अतः ताजे घाव का शीघ्र उपचार करने पर जल्द भर जाता है।

**उपचार (Treatment) :–** सर्वप्रथम घाव के आस–पास के बाल काट दें। लाल दवा एक प्रतिशत के घोल से धोकर साफ कर लेना चाहिए। यदि घाव से खून निकल रहा हो तो टिंक्चर बेन्जाइन का रुई का फाहा रखकर पट्टी बांध देनी चाहिए। यदि घाव ऐसे स्थान पर हो जहाँ पट्टी बाँधना सम्भव न हो तो वहाँ कोई एन्टीसैप्टिक मल्हम घाव के ऊपर लगा देना चाहिए।

**iii) पुराना घाव (Old wound) :–**यदि ताजे घाव का समय पर उपचार नहीं किया जाये तो घाव सड़ने लगता है। इस प्रकार का घाव पुराना घाव कहलाता है। इस प्रकार के घाव में मवाद (Pus) पड़ जाती है एवं घाव से दुर्गंध आती है। मक्खियों के बैठने से घाव में कीड़े पड़ जाते हैं।

**उपचार (Treatment) :–** इस प्रकार के घाव को लाल दवा के एक प्रतिशत घोल से अच्छी तरह से साफ करना चाहिए। रूई के फोहे से अच्छी तरह से साफ करना चाहिए। रूई के फोहे से घाव में पड़ी मवाद, मृत ऊत्तक आदि को घाव से निकाल दें। यदि घाव में कीड़े पड़ गए हों तो तारपिन तेल का रूई का फाहा 5–10 मिनट तक लगाकर रखें जिससे घाव के भीतर घुसे कीड़े घाव की सतह पर आ जायें उसके बाद रूई की फाहा हटाकर बाहर निकाल देवें। घाव पर एन्टिसैप्टिक मल्हम या टिंक्चर आयोडीन लगावें। जब तक घाव पूरी तरह न भरे नियमित रूप ये घाव पर दवा लगाएं एवं पट्टी बाँधें जिससे घाव को धूल एवं मक्खियों से बचाया जा सके।

शरीर के कई ऐसे नाजुक भाग हैं जैसे आंख, कान, थन, योनि, गुदा द्वार आदि के घावों का उपचार ऊपर वर्णित उपचार विधि से करने पर लाभ की जगह नुकसान

होगा। नाजुक भागों के घावों के उपचार हेतु एक्रीफ्लेवीन लोशन, मरक्यूरोक्रोम आदि दवा लगानी चाहिए।

### 2. दाह (Burn)

पशु आवास में आग लग जाने से गर्म पानी से या रासायनिक घोल (तेजाब) से जल जाता है। जिससे फफोले पड़ जाते हैं एवं फफोलों के फूटने पर उसमें से द्रव्य निकलता है एवं घाव हो जाता है।

**उपचार (Treatment) :–** जले हुए भाग पर चूने का पानी, अलसी का तेल (यदि अलसी का तेल उपलबध नहीं हो तो मीठा तेल) बराबर मात्रा में मिलाकर लगाने से काफी आराम मिलता है। यदि घाव में मवाद या तरल सा पदार्थ निकलता हो तो लाल दवा के हल्के गर्म घोल से साफ करके जिंक ऑक्साइड दिन में दो–तीन बार लगाना चाहिए। सिरका, शहद या पैराफीन लगाने से भी दर्द कम होता है। तेजाब से जल जाने पर एक प्रतिशत कपड़े धोने का सोडे का घोल लगाएं। यदि पशु के शरीर का काफी भाग जल गया हो तो तुरंत पशु चिकित्सक से इलाज कराएं।

### 3. मोच (Sprain)

यह आमतौर पर पशु के फिसलने से, कूदने से, पशु के आपस में लड़ने पर चोट लगने से मोच आती है। मोच साधारणतया शरीर के जोड़ों पर विशेषकर टांग में आती है। इसमें मांसपेशियाँ, स्नायु (Ligaments) या टेन्डन (Tandens) पर चोट आती है या ये अपने स्थान पर से हट जाते हैं। मोच के स्थान पर सूजन आती है जो गर्म एवं दर्द युक्त होती है। यदि मोच पशु के टागों में है तो पशु लंगड़ाकर चलता है।

**उपचार (Treatment) :–** यदि मोच ताजी एवं गर्म है तो उस जगह पर ठंडा पानी डालें या बर्फ से सेक करें। पुरानी मोच में नमक या बोरिक एसिड मिले गुनगुने पानी से सेक करें। पशु को सूजन एवं दर्द कम करने वाली (Anti inflamatory and Analgesic) दवा लगाएं।

## 4. पेचिस (Dysentery)

### पर्यायवाची (Synonyms)

### खूनी दस्त, खूनीपेचिस, लाल पेचिस

यह रोग एक प्रजीवा (Protozoa) द्वारा फैलने वाली रोग है, जो कि गर्मी के दिनों में अधिकतर फैलता है। इस रोग का जीवाणु बड़ी आँत में रहता है और पशु में दस्त उत्पन्न करता है। रोगी पशु के दस्त में अण्डे की तरह की छोटी–छोटी कोकसीडिया (Coccidia) निकलती हैं, जोकि बिना सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखी जा सकती हे। यह रोग पशुओं तथा कुक्कुट में छोटे बच्चों में ज्यादा सघन जनसंख्या हो फैलता है। बड़े पशुओं में इसका आक्रमण नहीं होता हैं यह बीमारी गाय, भैंस तथा कुक्कुट के छोटे बच्चों में फैलती है।

### बीमारी का कारण (Etiology)

यह प्राजीव परजीवी– *कोकसीडियम जरनाई* या *इमेरिया जरनाई* (Protozoan parasite- *coccidium zerni* or *Emeria zerni*) के द्वारा फैलता है। यह परजीवी गोबर में पाया जाता है, जो कि बड़ी आँत पर आक्रमण करता है। इन जीवाणुओं की स्पोरोजोइट (Sporozoite) अवस्था छूत फैलाने का कार्य करती है।

### लक्षण (Symptoms)

बीमारी की प्रारम्भिक अवस्था में बहुत पतला गोबर होता है, जिसमें रक्त मिला होता है। एक दो दिन बाद और अधिक खून आने लगता है। बहुत जोर लगाने पर ऐंठन के साथ दस्त होता है। कभी–कभी जोर लगाने से रैक्टम भी बाहर आ जाता है। पशु में बेचैनी एवं प्यास बढ़ जाती है, भूख कम हो जाती है परन्तु इसमें तापक्रम नहीं बढ़ता है। इसमें रोगी 5–15 % मर जाते हैं।

### निदान (Diagnosis)

**(1) लक्षणानुसार :** बीमारी के उपरोक्त लक्षण देखकर निदान (Diagnosis) की जा सकती है।

**(2) सूक्ष्मदर्शी द्वारा (Microscopic) :** गोबर का स्मीयर बनाकर परीक्षण करने पर जीवाणु देखे जा सकते हैं।

**(3) पोस्टमार्टम :** मरे हुए शव की चीर फाड़ करने से आँतें सूजी हुई कई गुना मोटी दिखाई देती हैं। आँतों की श्लेष्म झिल्लियों पर रक्त के धब्बे मिलते हैं। गुदा की श्लेष्म झिल्ली (Mucous membrane) पीली पड़ जाती है।

### चिकित्सा (Treatment)

(1) सौंफ, जीरा, बेलगिरी सबकी एक–एक तोला मात्रा लेकर चावल के एक किलो मांड में देनी चाहिए।

(2) क्लोरोडीन 5 ग्राम, फिनोल 750 मिलीग्राम, दलिया 400 ग्राम सबको मिलाकर दिन में 2–3 बार देना चाहिए।

(3) सल्फा ड्रग्स जैसे सल्फागोनेडीन, सल्फामैजेथीन की गोलियाँ या सल्फामैजाथीन सोडियम 33.3% के घोल की इन्ट्रावेनस सुई लगाने से लाभ होता है।

(4) ऐंठन तथा दर्द को कम करने के लिए गुदा में 1% फिटकरी का घोल पिचकारी द्वारा चढ़ाना चाहिए।

(5) दस्तों के कारण पशु के शरीर से काफी पानी निकल जाता है, अतः पशु का डीहाइड्रेशन रोकने के लिए 1000–2000 सैलाइन घोल जिसमें ग्लूकोज हो इन्ट्रावेनस सुई देनी चाहिए।

(6) नक्सवोम 30 – गोबर कम उसके साथ आंव अधिक होने पर दें।

(7) एलोज 30 – पेट में गड़गड़ाहट, आधो–वायु के साथ मल त्याग उसमें आँव तथा खून का परिमाण अधिक होनेपर दें।

(8) मर्क्यूरिसकार 200 – काले, मटमैले, आँवयुक्त कोलतार जैसे दस्त हों तो इस औषधि को दें।

(9) मर्क सोल 200 – खून का भाग कम हो, पेट में मरोड़ अधिक हो तब इस दवाई का प्रयोग करें।

### रोकथाम (Prevention and Control)

पशु गृह तथा अन्य जगह से कोकसीडिया नष्ट करने के लिए अमोनिया घोल का छिड़काव करना चाहिए। इसके अतिरिक्त वे सब उपचार जोकि संक्रामक रोगों के बचाव के लिए बताए गए हैं, अपनाने चाहिए।

## 5. आफरा (Tympanites)

### पर्यायवाची (Synonyms)

**आफरा, पेट फूलना, अफरा (Bloat, Tympany)**

पेट की बीमारियों में यह रोग अधिकतर होता है। गीला हरा चारा, सड़ी गली चीजें खाने से पशु के पेट में गैस भर जाती है, जिससे कि पशु का पेटफूल जाता है और बांई कोख पर अंगुली मारने पर ढोल की सी आवाज होती है। यह रोग पशु को एक दम या धीरे–धीरे भी होता है। पेट में गैस भरने के कारण फेफड़ों पर भारीदबाव पड़ता है, जिससे कि सांस लेने में इतनी कठिनाई होती है कभी–कभी तो पशु मर भी जाता है।

### कारण (Causes)

पशुओं को सड़ी–गली चीजें, बदबूदार पानी देने, वर्षा में नए उगे हुए जहरीले चारों का खाना, गर्मी एवं वर्षा में ज्यादा देर तक भीगे दाने खाना, पाचन क्रिया का खराब होना, खाने की नली में रोक होना, पशु को चारा एवं पानी पिलाकर काम लेना या भगाना और एक ही करवट से काफी देर तकलेटे रहना आदि–आदि इस बीमारी के कारण हैं।

### लक्षण (Symptoms)

रोग का मुख्य लक्षण पशु की पेट में गैस का भरना है। जिसके कारण बांयी कोख अधिक दांयी कम फूलती है। कोख को यदि दबाया जावे तो वह दबती और पीटने पर ढोल की तरह आवाज करती है। पशु बहुत ही बैचेन हो जाता है। जल्दी–जल्दी उठता–बैठता है। उसके मुँह से लार गिरती है, जीभ बाहर निकल आती है। सांस लेने में बहुत कठिनाई होती है। मुँह को आगे को करके सांस लेता है। बाद में सांस मुँह से लेने लगता है। गोबर एवं पेशाब बन्द हो जाता है। अन्त में पशु जमीन पर बैठकर लम्बी सांस लेता है और पशु मर जाता है।

### निदान (Diagnosis)

(1) उपरोक्त लक्षण को देखकर रोग की पहचान आसानी से की जा सकती है।

### चिकित्सा (Treatment)

(1) पशु को तुरन्त, हींग 11.5 ग्राम, तारपीन का तेल 58 ग्राम, मीठा या अलसी का तेल 650 ग्राम।

इन सबको मिलाकर पिलाओ और पशुओ ंको टहलाओं। दोनों कोखों पर दोनों तरफ आगे पीछे एवं नीचे की तरफ मालिश करें।

(2) काला नमक 23 ग्राम, अजवायन 23 ग्राम, मदार के पत्ते 58 ग्राम। सबको पीसकर पानी के साथ दो।

(3) उसके बाद एक जुलाब दो जिसमें, नमक 200 ग्राम, एलवा 18 ग्राम, सौंठ 23 ग्प्रम, शीरा 220 ग्राम। इन सबको एक किलो पानी में दें।

(4) इसके बाद, चिरायता 11.5 ग्राम, काला नमक 23 ग्राम, नौसादर 11.5 ग्राम, सौंठ 11.5 ग्राम। इन सबको आधा किलो पानी में दें।

(5) जब किसी भी तरह लाभ नजर न आवे तो अन्त में बांयी कोख के बीचों बीच ट्रोकार कैनुला घुसा कर कैनुला की मदद से गैस निकालनी चाहिए।

(6) किण्वीकरण रोकने के लिए तारपीन का तेल कैनुला के छिद्र से ही रियुमन में डाल देना चाहिए। ऐसा करने से गैस बनना बन्द हो जाती है।

(7) **लाइकोपोडियम 200** – पशु के दांयी तरफ के आफरे की यह उत्तम दवा है, इसमें पेट में बहुत वायु बनती है, खाने के थोड़ी देर बाद पेट फूलने लगता है।

(8) **चाइना 200** – यदि पूरे पेट में आफरा है, पशु कमजोर है तो इसका प्रयोग करें।

(9) **नक्सवोम 30** – पशु बार–बार गोबर करने का प्रयास करता हो तो इसका प्रयोग करें।

## 6. कब्ज (Constipation)

यह भी पशुओं का आम रोग है। इसमें पशु का चारा ठीक प्रकार से नहीं पचता है व उसे कब्ज हो जाता है। पशु को गोबर नहीं आता और जो आता है वह सख्त बहुत होता है।

### कारण (Causes)

सूखा भूसा या चारा देकर काफी देर तक पानी न पिलाना, पहले (रूमेन) एवं तीसरे पेट (ओमेजम) में चारे का फंस जाना और काम न लिया जाना आदि, कारणों से यह रोग हो जाता है।

### लक्षण (Symptoms)

पशु को बहुत सख्त गोबर होना, गोबर थोड़ा–थोड़ा एवं आँव लिपटा होना, भूख का कम होना, पेशाब का ज्यादा होना, मुंह में काटों का बढ़ना और पशु का सुस्त रहना आदि रोग के लक्षण हैं।

### निदान (Diagnosis)

लक्षणों को देखकर रोग की पहचान हो जाती है।

### चिकित्सा (Treatment)

अलसी, अरण्डी और तिल का तेल बराबर–बराबर मात्रा में मिलाकर 600 ग्राम की मात्रा तैयार करके उसमें 80/80 ग्राम सौंठ मिलाकर पशु को एक खुराक में दें।

**अथवा**

खाने का नमक 150 ग्राम, नौसादर 20 ग्राम, सौंठ 40 ग्राम, शीरा 150 ग्राम, गंधक 20 ग्राम, ऐल्वा 23 ग्राम, गर्म पानी 1 किलो में सबको मिलाकर पिलाओं। इसके बाद अगले दिन से काला नमक 23 ग्राम, सौंफ 23 ग्राम, अजवायन 11.5 ग्राम, चिरायता 11.5 ग्राम, कुचला 100 मिलीग्राम, पान 320 ग्राम, सबको मिलाकर सुबह पिलाओ। खाने में भीगी हुई चोकर हरी–हरी घास और दूध पिलाओ।

लक्षणों के अनुसार नक्सवोम 30, प्लमबम 200, एल्यूमीना एवं पल्स आदि औषधियों का प्रयोग करें।

## 7. अतिसार (Diarrhoea)

### पर्यायवाची (Synonyms)

**अतिसार, दस्त, पेट चलना,**

इस बीमारी में पशु पानी की तरह पतला गोबर करता है। दस्त लगने के कारण पशु कमजोर हो जाता है। यदि चिकित्सा सही समय पर न की जाये तो मर भी सकता है।

### कारण (Causes)

खराब चारे, दाने एवं पानी का देना, आँतों में खरास का होना, सूखे चारे के बाद कच्चे हरे चारों का देना, पेट में कीड़ों का होना, ज्यादा गर्मी एवं सर्दी का लगना आदि। इसके अतिरिक्त अन्य संक्रामक रोगों के जीवाणुओं के प्रकोप के कारण भी यह रोग उत्पन्न हो सकता है।

### लक्षण (Symptoms)

पशु सुस्त हो जाता है, जुगाली कम या बिल्कुल बन्द कर देता है। खाना पीना बन्द कर देता है। गोबर बहुत पतला आता है, जिससे कि पिछले पैर गोबर में सने रहते हैं। प्यास बहुत बढ़ जाती है। पशु बहुत ही कमजोर होने लगता है। त्वचा सूखी प्रतीत होती है। बाँधने के स्थान पर गोबर के छींटे दूर–दूर तक पड़े मिलते हैं।

### निदान (Diagnosis)

उपरोक्त लक्षणों को देखकर ही रोग का निदान किया जा सकता है।

### चिकित्सा (Treatment)

पहले बीमारी के कारण को जानकर दूर करो। यदि रोग किसी संक्रामक बीमारी के कारण हो तो पहले उसकी चिकित्सा करनी चाहिए। यदि रोग खराब चारे या आंतों में खरास होने के कारण हो तो पशु को अलसी या तिल या अरण्डी का तेल 160–220 ग्राम और उसमें 300 मिलीग्राम अफीम मिलाकर पिलाना चाहिए। इससे आँतों की खरास खत्म हो जावेगी। पानी के बजाय चावलों के माँड में नमक मिलाकर पिलाओ।

(1) इसके बाद अगले दिन दस्त रोकने के लिए खड़िया मिट्टी 58 ग्राम, कत्था23 ग्राम, अंफीम 300 मिलीग्राम, सौंठ 15 ग्राम, चावल का माँड 750 ग्राम में सबको मिलाकर दिन में दो बार पिलाओ।

(2) पकी प्याज 40 ग्राम, कत्था 23 ग्राम, अफीम 300 मिलीग्राम, चावल का माँड 500 ग्राम।

(3) जामन का अर्क 80 ग्राम, सौंफ 15 ग्राम, गोंद बबूल 80/80 ग्राम, अफीम 300 मिलीग्राम, चावल का माँड 320 ग्राम।

(4) आम की गुठली 40 ग्राम, सौंफ 20 ग्राम, दाल चीनी 11.50 ग्राम, बेल गिरी 40 ग्राम, चावल का माँड 320 ग्राम।

(5) अजवायन 23 ग्राम, कत्था 23 ग्राम, सौंफ 35 ग्राम, मांड 320 ग्राम।

अगर इनसे भी आराम न हो तो पशु को अल्फागोनाडीन या सल्फामैजाथीन की गोली दी जा सकती है।

(6) **पोडाफाइलम 200**– पशु पतले दस्त बिना जोर लगाए करता हो।

(7) **सल्फर**– केवल दिन के समय छेरा लगता हो।

(8) **नक्स 30**– यदि बार–बार छेरा लगता हो।

### 8. खुजली (Mange)

यह बीमारी एक छूतदार है जो कि एक पशु से दूसरे पशु में शीघ्रतापूर्वक पहुँचती है। यह रोग खुजली के कीटाणु (Mange Mites) द्वारा फैलता है। यह रोग सभी पशुओं तथा मनुष्यों में फैलता है। इस रोग के परजीवी (Parasite) त्वचा में 1/8''–1/2'' के फांसले पर छेद बना देते हैं और इनमें अण्डे दे देते हैं। रोग उत्पन्न होने पर इन स्थानों पर फुंसी बन जाती है। इसके बाद इन भागों में तेज खुजली होती है। खुजाने पर इनमें मवाद पड़ जाती है।

#### कारण (Causes)

यह चार प्रकार के कीटाणुओं द्वारा फैलता है, जो निम्न है:–

(1) *Psoroptie communis*

(2) *Chorioptes symbiotes*

(3) *Demodex folliculorum.*

(4) *Sarcoptes scabie.*

इनमें सबसे अन्तिम (*Sarcoptes scabie*) कम बीमारी फैलती है, परन्तु फैलने पर सबसे भयंकर होती है, क्योंकि इस बीमारी के कीटाणु त्वचा में घुस जाते हैं, अतः इन बाहरी दवाओं का प्रभाव नहीं होता है।

#### लक्षण (Symptoms)

सभी पशुओं में इस बीमारी के लक्षण एक ही समान होते हैं। यह बीमारी चेहरे, होंठ और पैरों से आरम्भ होती है और सिर गर्दन और टांट (Hump) तक पहुँच जाती है। पूँछ की जड़ पर भी यह रोग खूब होता है। इस बीमारी में पशु को खाज बहुत जोर से होती है। खुरों से सिर को खुजलाता है। आस–पास के पेड़ या दीवार से गर्दन को या दूसरे रोग ग्रस्त भाग को जोर से रगड़ता है। रोग ग्रस्त भाग के बाल गिर जाते हैं, त्वचा सूज कर मोटी होने लगती है। खुजली दिन की अपेक्षा रात को ज्यादा होती है। खुजली के अधिक होने पर उस स्थान पर खुरंड बन जाती है और फिर खुजाने पर उस स्थान से पीप सा निकलने लगता है। गीली खुजली में छाले पड़–पड़ कर फूट जाते हैं और पशु को बहुत दर्द होता है।

#### निदान (Diagnosis)

(1) उपरोक्त लक्षणों को देखकर रोग का निदान किया जा सकता है।

(2) सूक्ष्मदर्शी द्वारा– सूक्ष्मदर्शी द्वारा इसके बैक्टीरिया देखे जा सकते हैं।

#### कारण (Causes)

खुजली वाले भाग को गर्म पानी एवं साबुन से धोकर 400 ग्राम पानी में 5 ग्राम दारचिकना मिलाकर लगाना चाहिए। जब घाव सूख जाये तो गन्धक 40 ग्राम, जवाखार 23 ग्राम, शीशम की लकड़ी का तेल 23 ग्राम, बकरे की चर्बी या कड़वा तेल या नीम का तेल 250 ग्राम में मिलाकर तीसरे दिन लगाओ।

मिट्टी का तेल 1 भाग, 5 भाग दूध में मिलाकर लगाने से भी लाभ होता है।

खाने में गन्धक 11.50 ग्राम, भुना हुआ सुहागा 11.50 ग्राम मिलाकर देना चाहिए या मैगसल्फ तथा गन्धक मिलाकर खिलाने चाहिए।

#### इसके अतिरिक्त लगाने वाली दवायें :–

गन्धक 28 ग्राम, तारपीन का तेल 28 ग्राम, पोटाशवाईकार्व 7 ग्राम सरसों का तेल 220 ग्राम। सबको मिलाकर खुजली वाले भाग पर लगाओ।

ऐसकेवयोल इमलशन का प्रयोग भी कर सकते हैं।

**सल्फर 200** – यदि अधिक खुजली लगती हो, छाले के बाहर लाल रिंग हो तो इसका प्रयोग करें।

**सीपिया 200** – यदि पूरे छाले पीलापन लिये हों, बहुत खुजली लगती हो और पशु बार–बार पूँछ चलाता हो तो इसका सेवन करायें।

**रसटक्स 200** – यदि जले हुए के समान बड़े–बड़े छाले हों और बहुत खुजली लगती हो तो इसका प्रयोग करें।

### 9. भोजन विषाक्तता

प्रायः सभी पशु आहारों में लाभदायक तत्व पाये जाते हैं, लेकिन इन पशु आहारों में कुछ हानिकारक पदार्थ भी पाये जाते हैं। जिससे पशु आहार विषैला हो जाता है। जिनके प्रमुख उदाहरण यहाँ दिये गये हैं:–

**1. सायनोजेनेटिक ग्लूकोसाइड (Cyanogenetic Glucosides)** : ये कुछ ऐसे पदार्थ हैं। जैसे – ज्वार में धुरीन (Dhurrin) जिनका कुछ इन्जाइम द्वारा हाड्रोलायसिस होने पर हाइड्रोसायनिक अम्ल बनता है। यह हाइड्रोसायनिक अम्ल सूक्ष्म मात्रा में ही बहुत हानिकारक होता है। अगर हरी ज्वार में धुरीन हो तो आहार में ज्वार की मात्रा 3 % से अधिक नहीं होनी चाहिए।

**2. गोसीपोल (Gossipol)** : यह बिनौले (Cotton Seed) या बिनौले की खल में पाया जाता है। यह ऐरोमेटिक एल्डीहाइड होता है। मुर्गियों के आहार में 0.015 प्रतिशत मात्रा भी हानिकारक होती है। बिनौले को उबालने पर इसका जहरीला प्रभाव कम हो जाता है।

**3. अफ्लाटोक्सिन (Aflatoxin) :** कुछ पशु आहार जैसे मूँगफली की खल (Groundnut Cake) आदि में *Aspergillus flavis* जैसी फफूँदी (Moulds) के लगने से सड़ने लगती है, जिससे कुछ टोक्सिन (Toxin) जैसे अफ्लाटोक्सिन बन जाते हैं। जो पशुओं के लिए विषैले सिद्ध होते हैं।

**4. कीटनाशी (Insectisides) :** विभिन्न फसलों पर कीट नियंत्रण हेतु कई कीटनाशी (जैसे–मिथाइल पैराथियान, इण्डोसल्फान) छिड़के जाते हैं। जिनका प्रभाव फसल की कटाई के बाद भी बना रहता है। जब पशु इस चारे को खाते हैं तो ये कीटनाशी उन्हें हानिकारक सिद्ध होते हैं।

## 18.3 परजीवी – जूं एवं किलनी (Parasite- Lice & Tick) –

परजीवी विज्ञान जीव विज्ञान की एक मुख्य शाखा है जिसके अन्तर्गत ऐसे जन्तुओं का अध्ययन किया जाता है जो अपने से बड़े आकार के तथा भिन्न समुदाय के जन्तुओं एवं पशुओं पर चयापचयी रूप से आश्रित रहते हैं तथा उनके शरीर के अन्दर विभिन्न भागों एवं तन्तुओं में या शरीर के ऊपर त्वचा पर अपने जीवन की पूर्ण या अपूर्ण अवधि तक रहकर निर्वाह करते हैं तथा विकसित होते हैं। व्यापक तौर पर परजीवी शब्द की परिभाषा के अन्तर्गत जन्तु ही नहीं वरन कुछ वनस्पति जीव भी आते हैं। साधारणतया प्रकृति में विभिन्न प्रकार के जन्तु या तो पृथ्वी पर या पानी में या हवा में या मिश्रित रूप से इन वातावरण में रहते हैं। इसके विपरीत कुछ जन्तु अन्य जन्तुओं पर आश्रित जीवन व्यतीत करते हैं जिन्हें 'परजीवी' (Parasite) कहते हैं। इसी प्रकार विभिन्न प्रकार के जन्तु एक–दूसरे के साथ, परजीवी न होते हुए भी, भिन्न–भिन्न प्रकार के सहचर्य में देख सकते हैं।

### फीताकृमि (Tape worm) –

ये पर्णकृमि के समान चपटे होते हैं। परन्तु खण्डीय व फीते के समान विभिन्न लम्बाई के होते हैं। इनकी जनन क्रिया उभयलिंगी (Hermaphrodite) है तथा नर व मादा के जनन अंग प्रत्येक खंड में होते हैं। प्रत्येक फीता कृमि के आरम्भ में एक सिर होता है जिसे स्कोलेक्स (Scolex) कहते हैं। यह अंग लगभग गोल होता है। साधारणतया इस पर चार चूशण (Suckers) होते हैं या इनका कई प्रकार का रूपान्तर होता है। (कुछ फीताकृमि के चूशण पर कांटे लगे रहते हैं (Armed suckers) स्कोलेक्स का आगे का कुछ भाग निकला रहता है जिसे रोस्टलेम (Rostellum) कहते हैं।) स्कोलेक्स के पीछे एक छोटा सा अखंडीय भाग होता है जिसे गर्दन (Neck) कहते हैं जिसके पीछे खंड आरम्भ हो जाते हैं जो पहले अपरिपक्व अवस्था में फिर परिपक्व अवस्था में होते हैं। पीछे के कुछ खंडों में पाचन क्रिया के बाद बने अण्डे होते हैं। ये खण्ड टूट–टूट कर मल के साथ बाहर आ जाते हैं। अण्डों को संक्रामक अवस्था में पहुँचाने के लिए साधारणतया मध्यस्थ पोषक की आवश्यकता पड़ती है। अतः विभिन्न वंशों के फीताकृमियों की लारवा अवस्था स्पष्ट रूप से भिन्न होती है जो अनेक प्रकार के मध्यस्थ पोषक में पनपती है।

### उपचार –

कृमि नाशक औषधियों का प्रयोग करें।

अलवैण्डाजोल संस्पैशन भैंस, बैल व घोड़े के लिए 20 मि. ली. प्रति 100 किलो शरीर भार तथा भेड़, बकरी के लिए 5 मि.ली., प्रति 25 किलो शरीर भार पर इसके अलावा सैस्टोफीन, आदि भी दे सकते हैं।

### ऐस्केरिस (Ascaris) –

भारतवर्ष में यह प्रमुख रूप से पाया जाता है। इस परजीवी का प्रकोप गर्मियों में 3 महीने तक के बछड़ों में अधिक पाया जाता है। भैंस के बछड़े गाय के बछड़ों की तुलना में अधिक सुग्राही होते हैं।

### जीवनचक्र की मुख्य अवस्थाएँ एवं संक्रमण –

गोलकृमि पशुओं की आँत में रहते हैं। इनके अण्डे मल के साथ शरीर के बाहर आते हैं। ये अण्डे यथोचित समय में संक्रामक अवस्था में पहुंच जाते हैं तथा इनके अन्दर लार्वा की द्वितीय अवस्था बन जाती है। पशु द्वारा खा लेने पर ये छोटी आँत में निर्मोकोत्सर्जन (Moulting) करते हैं। यहाँ से ये शरीर के विभिन्न अंगों के ऊत्तकों में (जैसे–यकृत, फुफ्फुस, वृक्क) में पहुंच जाते हैं।इस समय तक इनमें कोई विकास नहीं होता। जिसे प्रसवपूर्व संक्रमण (Prenatal Infection) कहते हैं।

### रोगजनकता –

यह मुख्य रूप से तीन महीने की उम्र तक के बछड़ों का परजीवी है। भारी संक्रमण से बछड़ों में अतिसार हो जाता है और शरीर कृशकाय हो जाता है जिसके कारण उन्हें खड़े रहने में भी परेशानी होती है। उसकी श्वांस से सड़े मक्खन जैसी गंध आती है। बछड़ों में न्यूमोनिया के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। गोलकृमियों की वयस्क अवस्था आँत्रशोध पैदा करती है। भारी संख्या में यह आँत में अवरोध पैदा करते हैं।

### लक्षण –

पशुओं में खाने के प्रति अरूचि हो जाती है, शरीर के भार में कमी आ जाती है तथा अतिसार हो जाता है। शरीर में रक्त की कमी हो जाती है तथा छोटी व बड़ी आँत में आंत्रशोध हो जाता है। भेड़ों में पैरों के चारों ओर की त्वचा गल जाती है जिसे पद गलन (Foot rot) कहते हैं। जिससे इन स्थानों पर जीवाणु प्रवेश कर जाते हैं।

**उपचार –**

कृमि नाशक औषधियों का प्रयोग करें जैसे कैरीसाइड, 55–100 मिली ग्राम/किलो शरीर भार के अनुसार इसके अतिरिक्त डेवर्म, पेनाकर, आदि भी दे सकते हैं।

## (1) किलनी प्रकोप (Tick infestation)

किलनी बाह्य परजीवी होती है जो पशु के शरीर पर पाई जाती है। यह दो प्रकार की होती है कठोर किलनी व कोमल किलनी। कठोर किलनियों के शरीर पर कवच पाया जाता है जिसका कोमल किलनियों के शरीर पर अभाव होता है।

**रोगजनकता तथा पशुओं पर कुप्रभाव :**

किलनियाँ संपूर्ण विश्व में पालतू पशुओं पर पाई जाती हैं। संभवतः ही कोई पशु होगा जो इनके कुप्रभाव से बचा होगा। यह अपने परपोशी को अनेक प्रकार से हानि पहुँचाती हैं जिनमें बड़ी मात्रा में रक्त चूसना, दंश द्वारा बेचैनी, अगघात तथा अनेक प्रकार के प्रोटोजोआ, जीवणु, रिकेटसिया तथा विषाणु रोगों को संचारित करना शामिल है।

बड़ी संख्या में पशु का रक्त चूसने से और उनमें बैचेनी पैदा करने से उनमें रक्त की कमी होती है। छोटी आयु के पशुओं का समुचित विकास नहीं होता तथा कार्यशील पशु की क्षमता कम हो जाती है या दूधारू पशुओं में दूध उत्पादन गिर जाता है। कभी–कभी किलनियों के अत्यधिक संक्रमण से छोटी आयु के पशुओं की मृत्यु हो जाती है। परपोशी का रक्त चूसने से त्वचा में सूजन आ जाती है और वहाँ वर्ण बन जाते हैं जिनमें जीवाणु तथा ब्लो–मक्खियाँ आक्रमण करके अनेक रोग उत्पन्न करती हैं।

किलनियों द्वारा संचरित होने वाले प्रमुख रोगों में स्पाटिड ज्वर, क्यू ज्वर (Q-fever) तथा ह्रदय गल रोग, प्रोटोजोआ जनित रोग जैसे बबेसिओसिस, थिलेरिओसिस व एनाप्लाज्मोसिस मुख्य हैं।

**किलनी नियंत्रण –**

किलनियों का नियंत्रण उनके जीवनकाल में बाधा उत्पन्न करके किया जाता है। नियंत्रण हेतु निम्न उपाय किये जाते हैं :–

**1. कीटनाशी औषधि का प्रयोग कर :**

पशु शरीर पर किलनियों को नष्ट करने का यह सबसे अच्छा उपाय है। इसमें विभिन्न किलनी नाशी (Acaricide) औषधियों की उपयुक्त प्रतिशत सांद्रता पशु स्नान, फुहार, धोवन, धूलि तथा धूमकायन (Fogging) के रूप में प्रयोग की जाती है।

विभिन्न कीटनाशी का विवरण आगे तालिका में दिया गया है।

**तालिका 18.3.1**

**किलनी नियंत्रण के कीटनाशी**

कीटनाशी की प्रतिशत सांद्रता

| क्र.सं. कीटनाशी का नाम | प्रति 5–7 दिन पर उपचार हेतु | प्रति 2–5 दिन पर उपचार हेतु | एक बार में उपचार हेतु |
|---|---|---|---|
| 1. आर्सेनिक सल्फाइड | 0.16 | 0.175–0.20 | – |
| 2. ब्यूटॉक्स (डेल्टामेथ्रिन) | 0.2–0.25 | 0.2–0.3 | 0.3 |
| 3. निकोटीन | 0.1 | 0.15 | – |
| 4. सायथियान | 0.05 | 0.1 | – |
| 5. मैलाथियान | 0.5–1.0 | – | – |

2. जिन स्थानों पर किलनियों का प्रकोप अधिक हो वहाँ के आस–पास की वनस्पति, घास आदि को जला देना चाहिए
3. चारागाहों में पशुओं को घूर्णन चराई (Rotational grazing) करानी चाहिए।
4. पशुशाला में विभिन्न कीटनाशी दवाओं का छिड़काव समय–समय पर सावधानी के साथ करते रहना चाहिए।
5. देसी मुर्गिया पालें – ये मुर्गियां इन्हें खाकर सफाया कर देती है।

## (2). जूँ प्रकोप (Lice-infestation or Lousiness)

जूँ पशुओं के शरीर पर पाए जाते हैं तथा उनका रक्त व लसिका द्रव्य चूसकर हानि पहुँचाते हैं। पालतु पशुओं में जूँ की निम्न जातियाँ पायी जाती हैं :–

***1. हिमेटोपाइनस यूरीस्टर्नस :–*** इसे साधारणतः 'शार्ट नोज्ड केटिल लाउस' कहते हैं। यह जाति गौवंश पर पाई जाने वाली जुँओं में सबसे बड़ी जूं है तथा पशुओं की गर्दन, सिर व पूँछ पर मुख्यतः पाई जाती है। इसके अण्डे खाल व बालों पर चिपके रहते हैं। शीतकाल के अन्तिम माह फरवरी व मार्च में इनका प्रकोप सबसे अधिक होता है। यह जाति पशु का रक्त चूसती है तथा पशु में रक्तहीनता पैदा करती है।

***2. हिमेटोपाइनस ब्रूफेलाई :–*** भारतवर्ष में भैंसों पर पाई जाती है।

***3. लीनोग्नेथस ओवीलस :–*** यह जाति भेड़ों पर पाई

जाती है। इसे साधारणतः भेड़ की शरीर जूं या नीली जूं या फेस लाउस कहते हैं। इनका शरीर नीले रंग का होता है।

***4. लीनोग्नेथस पीडेलिस :—*** यह भी भेड़ की जूं है जो टांगों व पैरों पर पाई जाती है। इसलिए इसे 'पाद जूं' कहते हैं।

***5. लीनोग्नेथस स्टेनोप्सिस :—*** भारतवर्ष में बकरियों के शरीर पर पाई जाती है।

***6. माइक्रोथोरेसिअस कमेली :—*** यह ऊँट पर पाई जाती है।

### पशु पर कुप्रभाव :

जूं पशु का रक्त चूसती है तथा पशु में उत्तेजना पैदा करती है। निरन्तर उत्तेजना से पशु अपने शरीर को काटता है, खरोंचता है, व्याकुल रहता है तथा आराम नहीं कर पाता। जिससे वह भोजन नहीं कर पाता। जूं काटने के स्थान पर जो रक्त बाहर आकर जम जाता है इस पर मक्खियाँ आकर्षित होती हैं जिससे 'स्ट्राईक' रोग उत्पन्न होता है। पशु कमजोर हो जाता है तथा रक्त की कमी हो जाती है और उसका उत्पादन घट जाता है।

### उपचार —

जूं नष्ट करने के लिए विभिन्न कीटनाशक दवायें निमज्जन (dips) छिड़काव (spray) नहलान (wash), बुकनी (dust) के रूप में प्रयोग की जाती है। गोपशुओं में 0.5 से 1.0 प्रतिशत मैलाथियान बुकनी के रूप में या 0.2 प्रतिशत ब्यूटॉक्स निमज्जन या छिड़काव के रूप में प्रयोग की जाती है। एक भाग फीनोथइजीन, दो भाग सोडियम फ्लोरोसिलीकेट तथा चार भाग आटे को मिलाकर बुकनी के रूप में 10 से 14 दिन के अन्तर में पशु के शरीर पर दो बार लगाने से नष्ट हो जाती है। सेविन (0.1 से 0.2 प्रतिशत) के प्रयोग से जूं पूरी तरह समाप्त हो जाती है।

भेड़ों में 0.2 प्रतिशत ब्यूटॉक्स या 0.1 प्रतिशत निकोटिन के निमज्जन के प्रयोग से जूं समाप्त हो जाती है।

### रोकथाम —

पशुओं को जूं से ग्रस्त होने से बचाने में सबसे अधिक महत्व गौशाला का अच्छा प्रबन्ध, सफाई, पशुओं का अच्छा स्वास्थ्य व अच्छा आहार है। जूं परपोशी से अलग जीवित नहीं रह सकते अतः पशुओं को ऐसे स्थान या बाड़े से कम से कम 2 से 3 सप्ताह तक दूर रखना चाहिए जहाँ जूं से ग्रस्त पशु हों। ज्यादातर जूं शीतकाल में पाई जाती है। अतः उस समय पशु की सफाई रखी जानी चाहिए।

## महत्वपूर्ण बिन्दु

1. स्वस्थ दशा से विचलित होने की अवस्था को बीमारी या रोग कहते हैं।
2. रोगी पशु की नाड़ी गति, श्वांस गति तथा शारीरिक तापमान में परिवर्तन हो जाता है।
3. पशु का शारीरिक तापक्रम ज्ञात करते समय थर्मामीटर के पारे वाला बल्ब मलाशय से श्लेष्मा झिल्ली के संपर्क में होना चाहिए।
4. गाय भैंसों की नाड़ी गति कॉक्सीजियल धमनी से घोड़े की फेसियल धमनी से तथा भेड़, बकरी की नाड़ी गति फेमोरल धमनी से ज्ञात करते हैं।
5. श्वासगति, नाड़ी गति ज्ञात करते समय पशु सामान्य अवस्था में हो वह उत्तेजित/भयभीत न हो।
6. पशुओं में होने वाली बीमारियों को वर्गीकृत करने के 5 आधार हैं।
    1) रोग के कारक
    2) पीड़ित अंग
    3) प्रकोप एवं अवधि
    4) रोग विभाजन तथा
    5) रोग आरम्भ होने के आधार पर
7. पेचिस छोटी उम्र के पशुओं और मुर्गियों में होने वाला रोग है।
8. आफरा रोग में पशु के पेट में गैस बनती है।
9. कब्ज में पशु का गोबर सख्त हो जाता है।
10. खुजली रोग के कीटाणु 1/8'' से 1/2'' की दूरी पर त्वचा में छेद बनाकर घुस जाते हैं।
11. गोसीपोल — बिनौले या बिनौले की खल में पाया जाने वाला जहरीला पदार्थ है।
12. फीताकृमि एवं एस्केरिस आन्तरिक परजीवी तथा जूँ एवं किलनी बाह्य परजीवी है।
13. आन्तरिक परजीवियों के ईलाज के लिए कृमिनाशी औषधियाँ दी जाती हैं।

## अभ्यास प्रश्न

### बहुचयनात्मक प्रश्न—

1. पशु की नाड़ी गति ज्ञात करने के लिए नाड़ी की धड़कने गिनने के लिए समय निर्धारित है।

(अ) 1 मिनट (ब) 2 मिनट
(स) 3 मिनट (द) 4 मिनट

2. गाय का शारीरिक तापक्रम है :
(अ) 100° F (ब) 101.5° F
(स) 103.5° F (द) 107° F

3. घावों के उपचार में काम में लिया जाता है।
(अ) एन्टीसेप्टिक (ब) एन्टीपायरेटिक
(स) एन्थेलमेन्टिक्स (द) एन्टीडायूरैटिक

4. पेचिस रोग का कारक है।
(अ) वैसीलस
(ब) किलनी
(स) *कॉक्सीडियम जरनाई*
(द) *सारकोप्टिस स्केविआई*

**अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–**

5. रोगी पशु किसे कहते हैं ?
6. अगर गाय को मलाशय में जख्म हो तो उसका शारीरिक तापक्रम कैसे ज्ञात करोगे ?
7. फीताकृमि एवं ऐस्केरिस परजीवी का नियन्त्रण लिखिए।
8. महामारी किसे कहते है?
9. मोच का इलाज बताइए।

**लघूत्तरात्मक प्रश्न :**

10. पशु के अस्वस्थ होने पर उत्पादन पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
11. गाय की श्वसन गति कैसे ज्ञात करोगे विस्तृत रूप में बताइए।
12. संसर्ग एवं संक्रामक रोगों में अन्तर बताइए।
13. घाव कितने प्रकार के होते हैं?
14. भोजन विषाक्तता का वर्णन कीजिए।

**निबन्धात्मक प्रश्न :**

15. जूँ एवं किलनी का पशुओं में होने वाले प्रकोप एवं नियन्त्रण का वर्णन कीजिए।
16. निम्न बीमारियों का कारण, लक्षण एवं उपचार लिखिए।
1) आफरा, 2) खुजली, 3) अतिसार, 4) कब्ज

**उत्तरमाला :**

1. (अ) 2. (ब) 3. (अ) 4. (स)

# अध्याय–19
# पशुओं के लिए सामान्य औषधियाँ एवं उपयोग
# (General medicines for animals and their use)

पशुओं का पूरा ध्यान रखते हुये भी वे कभी–2 अस्वस्थ हो ही जाते हैं। साथ ही वे एक दूसरे को चोट पहुँचा कर घायल कर देते हैं। पशुओं के गम्भीर बीमारी से ग्रस्त हो जाने पर तो उन्हें चिकित्सक के पास ले जाना आवश्यक हो जाता है परन्तु कभी–2 पशुओं की व्याधि ज्यादा बड़ी नहीं होती है। ऐसी स्थिति में यदि पशुपालक को व्याधियों तथा औषधियों की थोड़ी सी जानकारी हो तो वह अपने पशुओं को फार्म पर ही स्वयं ही इलाज कर सकता है। ऐसा करके वह समय, श्रम एवं धन की बचत कर सकता है। अतः इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुये पशु चिकित्सा विज्ञान में काम आने वाले कुछ महत्त्वपूर्ण पारिभाषिक शब्दों तथा सामान्य औषधियों के रुप, गुण तथा उपयोग का विवरण यहाँ दिया जा रहा है।

### पशु चिकित्सा विज्ञान में प्रयोग किये जाने वाले कुछ पारिभाषिक शब्द

1. **प्रति जैविकी–(Antibiotics)** ऐसे रसायन जो फफूँदी (Moulds) अथवा जीवाणुओं (Bacteria) के द्वारा प्राप्त होते हैं तथा जो अन्य सूक्ष्म जीवों की वृद्धि को रोकते हैं और उन्हें नष्ट कर देते हैं, उन्हें प्रतिजैविकी कहते हैं जैसे– पैनिसिलीन, स्ट्रेप्टोमाइसीन, क्लोरोमाइसैटीन आदि।
2. **जीवाणु–रोधक या जीवाणु प्रतिरोधी (Antiseptic)–** वे औषधियाँ जो जीवाणुओं की वृद्धि को तो रोक देती हैं परन्तु उन्हें नष्ट नहीं करती हैं, जैसे– बोरिक एसिड, डिटॉल, आयोडीन, लाल दवा आदि।
3. **रोगाणुनाशक या जीवाणुनाशक–(Disinfectant)** ऐसी औषधियाँ रोगाणुओं को उनके बीजाणुओं सहित नष्ट कर देती हैं, रोगाणुनाशक या जीवाणुनाशक कहलाती हैं, जैसे– फिनायल, लायसोल, चूना, कार्बोलिक एसिड (फिनोल) आदि।
4. **विरेचक या रेचक–(Purgatives)** वे औषधियाँ अथवा पदार्थ जिन्हें खिलाये जाने पर दस्त आने लगते हैं, विरेचक या रेचक कहलाते हैं। इनको निम्नलिखित तीन वर्गों में बाँटा जा सकता हैं–
   - (अ) हल्के रेचक–(Laxatives) ये वे रेचक हैं जिनको खाने से सामान्य दस्त आने लगते हैं। उदाहरण– ईसबगोल की भूसी, शीरा, हरा चारा, गन्धक आदि।
   - (ब) मृदु रेचक–(Simple Purgatives) ये वे विरेचक होते हैं जो बिना ऐंठन के खुलकर दस्त ला देते हैं। उदाहरण– मैग्नीशियम सल्फेट, अरण्डी का तेल, अलसी का तेल, सोडियम सल्फेट आदि।
   - (स) तीव्र रेचक–(Drastic Purgatives) इनके खिलाने पर ऐंठन युक्त दस्त बार–2 आते हैं। उदाहरण– क्रोटन का तेल, बेरियम क्लोराइड का इन्ट्रावीनस इन्जैक्शन आदि।
5. **उत्तेजक–(Stimulant)** ये वे औषधियाँ अथवा पदार्थ हैं जो शरीर में उत्तेजना का अनुभव कराते हैं, जैसे– एल्कोहल, कपूर, कैफीन आदि।
6. **स्तम्भक–(Astringent)** ये वे पदार्थ हैं जो रक्त वाहिनियों श्लेष्मिक झिल्ली व तन्तुओं में संकुचन पैदा करके बहने वाले रक्त या द्रव को बन्द कर देते हैं। उदाहरण– टिंचर आयोडीन व फिटकरी बाह्य स्तम्भक तथा खड़िया, कत्था, अफीम आदि पतले दस्त को रोकने के लिए आन्तरिक स्तम्भक के रुप में प्रयोग किये जाते हैं।
7. **मर्दन तेल–(Massaging Oil)** वे तेल जिनका प्रयोग मालिश करने के लिए किया जाता है जैसे सरसों का तेल, तारपीन का तेल, तिल का तेल आदि।
8. **ज्वर रोधी–(Antipyretics)** वे औषधियाँ जो ज्वर (बुखार) में ताप कम करने के लिए दी जाती हैं, जैसे– एस्प्रिन, कुनैन, सैलीसिलिक अम्ल आदि।
9. **कफोत्सक–(Expectorants)** कफोत्सारक वे पदार्थ कहलाते हैं जो फुफ्फुस नाल के उदासर्जन (Secretions) को बढ़ाते, पतला करते हैं तथा उसे बाहर निकालते हैं जैसे– अमोनिया, उड़नशील तेल आदि।
10. **कफरोधी–(Anti Expectorant)** वे औषधियाँ जो फुफ्फुस नाल के उदासर्जन को कम करती हैं जैसे– अफीम, बैलाडोना आदि।
11. **विषघ्न–(Antidotes)** वे औषधियाँ जो विष के प्रभाव को कम करने के लिए दी जाती हैं। उदाहरण– साइनाइड विष के लिए लौह लवण आदि।
12. **निश्चेतक–(Anaesthetics)** ये शरीर को अचेतन कर देती हैं इन्हें संवेदनहारी भी कहते हैं। उदाहरण– क्लोरोफार्म, ईथर, नाइट्रस आक्साइड आदि।

13. **एन्टी जाइमोटिक्स–(Anti-zymotics)** ये पदार्थ किण्वन क्रिया (Farmentation) को रोकते हैं। ये पेट दर्द या आफरा में गैसों का बनना रोकने के लिए दी जाती हैं। उदाहरण– बोरिक एसिड, फार्मलीन आदि।

14. **गैस हर या वातसारी–(Carminatives)** ये आमाशय व आँतों में गैस का बनना कम करने व उसे बाहर निकालने का कार्य करती हैं। जैसे हींग, सौंफ, जीरा, मेथी, ईथर आदि।

15. **पीड़ाहारी–(Analgesics)** ये पदार्थ स्नायुओं (Nerves) की उद्दीप्यता (Irritability) कम करके दर्द को कम करती हैं इन्हें शूल शामक (Anodynes) भी कहते हैं, जैसे अमोनिया, कपूर आदि की लिनीमैंट, एस्प्रिन, भांग आदि।

16. **शामक–(Sedative)** यह एक सामान्य पद हैं। इसमें शूल शामक और निद्रावह दोनों औषधियाँ शामिल हैं। जो स्नायु संस्थान की अति उत्तेजना को शांत करती हैं।

17. **संवेदन मंदक या निद्रावह–(Narcotics)** इनसे गहरी नींद आती है इसके साथ–2 संवेद्यता(Sensibility) रक्त परिसंचरण व श्वास क्रिया में भारी उदासीनता आ जाती है। उदाहरण– क्लोरोफार्म, ईथर, भांग, क्लोरल हाइड्रेट आदि।

18. **परजीविघ्न–(Parasiticides)** वे औषधियाँ जो त्वचा के परजीवियों (Parasites) को नष्ट कर देती है। इन्हें Antiparasitics भी कहा जाता हैं। उदाहरण– कॉपर सल्फेट, फिनाइल, मिथाइल पैराथियान आदि।

19. **गन्धहारक या दुर्गन्धनाशी–(Deodorants)** वे पदार्थ जो अरुचिकर गन्ध को दूर कर देते हैं या ढक लेते हैं। उदाहरण– फिनाइल, ब्लीचिंग पाउडर, आदि।

20. **कृमिहर–(Anthelmintics)** वे औषधियाँ या पदार्थ जो शरीर में उपस्थित, परजीवियों से मुक्ति दिला देती हैं उन्हें कृमिहर कहते हैं। जैसे– कॉपर सल्फेट, निकोटिन सल्फेट, फैरस सल्फेट, फिनोविस, तारपीन का तेल आदि।

    इनमें से वे औषधियाँ जो आन्तरिक परजीवियों को नष्ट करती हैं कृमिनाशक कहलाती हैं। तथा जो औषधियाँ आन्तरिक परजीवियों या कृमियों को मारती नहीं हैं परन्तु शरीर से बाहर निकाल देती हैं, उन्हें कृमिहारक कहते हैं।

21. **वमनकारी–(Emetics)** वे औषधियाँ या पदार्थ जिनके खा लेने से वमन या उल्टियाँ होने लगती हैं। उदाहरण– नमक, नीला थोथा, फिटकरी, जिंक सल्फेट आदि।

22. **दाहक–(Caustics)** वे औषधियाँ या पदार्थ जो ऊतकों को जलाकर नष्ट कर देती हैं जैसे– कॉपर सल्फेट, लाल दवा, कॉस्टिक एल्कली, फिनोल, जिंक सल्फेट, जिंक क्लोराइड आदि।

## निम्नलिखित सामान्य औषधियों के उपयोग मात्रा एवं देने की विधियाँ

### (अ) रोगाणुनाशक औषधियाँ –

### 1. फिनाइल–(Phenyl)

पहचान– यह एक कत्थई रंग का विशेष गंधयुक्त तरल पदार्थ हेता हैं। इसे पानी में घोलने पर यह सफेद रंग का हो जाता हैं।

उपयोग– इसका उपयोग रोगाणुनाशक, गन्धहारक एवं पैरासिटीसाइड के रुप में किया जाता हैं।

**प्रयोग विधि–**

1. पशुशाला के फर्श, दीवारों, नालियों तथा अन्य गन्दे स्थानों को रोगाणुओं से मुक्त करने के लिए इसके 1 प्रतिशत घोल से धोना चाहिए।
2. इसके 1% घोल मुँहपका खुरपका रोग में पशुओं के खुरों को धोने के लिए प्रयोग किया जाता हैं।
3. परजीवियों जैसे– जुएं, किलनियों आदि को नष्ट करने के लिए फिनाइल के 1 से 2% घोल का प्रयोग किया जाता हैं।
4. पशुओं के शरीर के घावों तथा अन्य कटे हुये भागों को धोने के लिए इसके 1% घोल का प्रयोग करना चाहिए।

### 2. कार्बोलिक एसिड–(Carbolic Acid)

पहचान– यह सफेद, कणदार, मीठे स्वाद तथा तीखी गंध वाला पदार्थ है। यह पानी, एल्कोहल, ईथर एवं ग्लिसरीन में घुलनशील हैं। इसे फिनोल (Phenol) भी कहते हैं।

**उपयोग–** इसे जीवाणुरोधक, जीवाणुनाशक दाहक तथा पैरासिटीसाइड के रुप में प्रयोग किया जाता है। इसका आंतरिक प्रभाव शामक तथा एन्टीजाइमोटिक होता है।

**प्रयोग विधि–**

1. साँप या कुत्ते द्वारा काटे गये स्थान को जलाने के लिए इसे घाव पर शुद्ध रुप में लगाना चाहिए।
2. पशुशाला में सफाई के लिए इसका 5% घोल जीवाणुनाशक के रुप में प्रयोग किया जाता है।
3. इसके 1% घोल का प्रयोग घावों को धोने में किया जाता है।
4. पशु शरीर से परजीवियों यथा जूँ, पिस्सू, किलनियों आदि को मारने तथा खुजली रोग में इसका 2% घोल लाभदायक होता है।

### 3. पोटैशियम परमैंग्नेट या लाल दवा–(Potassium Parmagnate)

पहचान– यह गहरे बैंगनी रंग का कणदार, गन्धहीन पदार्थ है जिसका स्वाद मीठा एवं कसैला होता है। यह पानी में घोलने पर उसका रंग लाल कर देता है इसीलिए इसे लाल दवा भी कहा

जाता हैं।

**उपयोग–** लाल दवा का उपयोग जीवाणुरोधक, रोगाणुनाशक, गन्धहारक, विध्न दाहक (कॉस्टिक) तथा कृमिनाशक के रुप में किया जाता है।

**प्रयोग विधि–**

1. इसके 1% घोल का प्रयोग पशु चिकित्सा में काम आने वाले उपकरणों व यंत्रों तथा हाथों को जीवाणुरहित करने में किया जाता है।
2. पिसा हुआ पोटैशियम परमैंग्नेट छालों पर दाहक के रुप में प्रयोग किया जाता हैं।
3. साँप द्वारा काटे गये स्थान के पास में इसके 2% घोल का इंजेक्शन सर्वोत्तम विषध्न (Antidote) होता है। इसके अलावा काटे गये स्थान पर रवों को भर देना भी लाभदायक रहता हैं। क्योंकि यह साँप के जहर को ऑक्सीकृत कर देता हैं।
4. इसका 1% घोल घावों को धोने के लिए प्रयोग किया जाता है।
5. आन्तरिक परजीवियों को नष्ट करने के लिए इसका हल्का घोल पशुओं को पिलाया जाता है।

### 4. लाइसोल–(Lysol)

पहचान– यह भूरे रंग का द्रव होता है जो पानी में घुलने पर उसका रंग सफेद भूरा कर देता है। इसमें एक विशेष प्रकार की गन्ध होती है।

उपयोग– इसका उपयोग जीवाणुरोधक, रोगाणुनाशक, गन्धहारक तथा विषनाशक के रुप में किया जाता है।

**प्रयोग विधि–**

1. पशुशाला के फर्श, नालियों व दीवारों को रोगाणुओं से मुक्त करने के लिए इसका 1 से 2% घोल प्रयोग करना चाहिए।
2. पशुशाला, चिकित्सा के औजारों व उपकरणों को रोगाणु रहित करने के लिए लाइसोल का 1 से 2% घोल प्रयोग करते हैं।
3. पशुओं के घावों को धोने हेतु इसका 1% घोल प्रयोग में लाते हैं।
4. गर्भाशय को धोने (गर्भाशय डूश) के लिए इसका 1 से 2% घोल काम में लेते हैं।

## (ब) विरेचक औषधियाँ–

### 1. मैगसल्फ या मैग्नीशियम सल्फेट–(Magsulf or Magnesium sulphate)

पहचान– यह ठोस कणदार, कड़वे या कसैले स्वाद वाला, सफेद तथा गन्धहीन पदार्थ है। यह पानी में घुलनशील है तथा जीभ पर रखते ही ठण्डा लगता है।

उपयोग– मैगसल्फ का उपयोग विरेचक तथा ज्वररोधी के रुप में करते हैं।

**प्रयोग विधि–**

1. गाय या भैंस के लिए इसकी 250 से 400 ग्राम मात्रा पेट साफ करने के लिए दी जाती है।
2. अधिक दस्त लाने के उद्देश्य से इसको समान मात्रा में नमक के साथ मिलाकर पशुओं को खिलाना चाहिए।
3. पशुओं (गाय व भैंस) का ज्वर कम करने हेतु इसकी 50 से 125 ग्राम मात्रा खिलानी चाहिए।
4. मोच या सूजन आने पर इसको पानी में घोलकर गाढ़ा घोल बनाकर लगाने से पशु को आराम मिलता है।

### 2. अरण्डी का तेल–(Castor oil)

पहचान– यह अरण्डी के बीजों से प्राप्त किया जाता है। यह रंगहीन या हल्के पीले रंग का, हल्की गंधयुक्त, गाढ़ा तरल पदार्थ है जो चखने पर प्रारम्भ में स्वादहीन परन्तु बाद में अरुचिकर लगने लगता है। यह एल्कोहल में घुलनशील है।

उपयोग– यह मृदुरेचक तथा प्रोटेक्टिव के रुप में प्रयोग किया जाता है।

**प्रयोग विधि–**

1. यह पेट साफ करने के लिए बड़े पशुओं को 600 से 1200 मि.ली. तथा छोटे पशुओं को 50 से 125 मि.ली. दिया जाता हैं।
2. बच्चे को खीस न मिलने की स्थिति में पेट साफ करने के उद्देश्य से 10 मि.ली. मात्रा दिन में 2 या 3 बार पिलानी चाहिए।
3. पशु की आँख में कोई बाह्य वस्तु गिर जाने अथवा घाव होने पर इस तेल की कुछ बूंदे प्रोटेक्टिव के रुप में डालने से लाभ मिलता है।

## (स) उत्तेजक

### 1. एल्कोहल–(Alcohol)

पहचान– यह एक उद्योग उत्पाद है जो रंगहीन, पारदर्शक, विशेष गंधयुक्त पतला तरल पदार्थ है। यह खुला रखने पर वाष्पीकृत हो जाता है। यह शीघ्र आग पकड़ लेता है।

उपयोग– एल्कोहल उत्तेजना उत्पन्न करने वाला तरल पदार्थ है। इसका आन्तरिक प्रभाव उत्तेजक तथा बाह्य प्रभाव रोगाणुनाशक होता है।

**प्रयोग विधि–**

1. पशुओं को थकान दूर करने व सर्दी से बचाव के लिए प्रौढ़ पशु को 500 मि.ली. मात्रा देनी चाहिए।
2. पशुओं को निमोनिया व इन्फ्लूएन्जा आदि रोगों में आन्तरिक उत्तेजक प्रभाव उत्पन्न करने के लिए एल्कोहल पिलाया

जाता है।

3. इसका प्रयोग क्लोरोफार्म एवं टिंचर आयोडीन बनाने में भी किया जाता है।
4. मादा पशुओं को प्रसूति पीड़ा कम करने के उद्देश्य से भी इसे पिलाया जाता है।

### 2. कपूर–(Comphor)

पहचान– प्राकृतिक रुप से कपूर इसके पौधे की लकड़ी से आसवन विधि द्वारा प्राप्त किया जाता है। परन्तु इसे संश्लेषण विधि द्वारा भी बनाया जाता है। यह रंगहीन, पारदर्शक, विशेष गन्धयुक्त, ज्वलनशील, हल्का ठोस पदार्थ है जो वायु मुें खुला रखने पर वाष्पीकृत हो जाता है। कपूर स्वाद में कड़वा है परन्तु बाद में ठण्डा लगता है। यह एल्कोहल, ईथर व क्लोरोफार्म में शीघ्र घुल जाता है।

उपयोग– इसे उत्तेजक, जीवाणुरोधक, ज्वररोधी, कीटनाशी तथा गैसहर के रुप में उपयोग किया जाता है।

#### प्रयोग विधि–

1. कपूर तथा जैतून के तेल अथवा ईथर को 1:4 के अनुपात में मिलाकर पशुओं को सर्दी, जुकाम तथा खाँसी आदि से बचाने के लिए निम्नानुसार प्रयोग करना चाहिए–

   इंजेक्शन द्वारा– गाय व भैंस– 1.5 से 2.5 ग्राम

   मुँह द्वारा– गाय व भैंस– 10 से 15 ग्राम

   बकरी व भेड़– 1.5 से 3 ग्राम
2. कपूर को तुलसी के पत्तों के साथ पीसकर घावों पर लगाने से उनके कीड़े मर जाते हैं।
3. 100 ग्राम कपूर को 400 ग्राम मूँगफली के तेल में मिलाकर तैयार किया गये लिनीमैन्ट का लेप पशुओं की मोच, चोट दर्द आदि में लगाया जाता है।
4. छालों तथा घावों पर कपूर का निम्नलिखित जीवाणुरोधक पाउडर लगाने से बहुत लाभ होता है–

   कपूर 3.5 ग्राम, फिटकरी 7 ग्राम, जिंक ऑक्साइड 7 ग्राम, कार्बोलिक अम्ल 3.5 ग्राम तथा बोरिक अम्ल 2.25 ग्राम।
5. निमोनिया में 2 ग्रेन कपूर व 2 ग्रेन कस्तूरी को शहद में मिलाकर देने से पशु को आराम मिलता है।

## (द) कृमिनाशक–

### 1. नीला थोथा–(Copper Sulphate)

पहचान– यह नीले रंग का कणदार, कसैले स्वाद वाला ठोस पदार्थ है। यह अधिक समय तक रखने पर हरे रंग का हो जाता है। यह उबलते पानी में घुलनशील है।

उपयोग– इसको कृमिनाशक, जीवाणुरोधक, वमनकारी तथा परजीविघ्न के रुप में उपयोग किया जाता है।

#### प्रयोग विधि–

1. इसके 1% घोल का प्रयोग आन्तरिक परजीवियों को नष्ट करने के लिए गाय–भैंस में 250–300 मि.ली. तथा भेड़–बकरी में 50–70 मि.ली. मात्रा में करना चाहिए।
2. इसके 1% घोल का प्रयोग मुँहपका रोग में पशुओं के खुरों को फुटबाथ या धोने के लिए किया जाता है।
3. दूषित चारागाहों में नीले थोथे के 2% घोल का छिड़काव करने से हानिकारक कीड़े नष्ट हो जाते हैं।

### 2. फिनोविस–(Phenovis)

पहचान– इसका दूसरा नाम फिनोथाइजीन भी है। यह बारीक चिकना चूर्ण है जिसका नींबू जैसा पीला रंग होता है। यह स्वादहीन, पानी में अघुलनशील तथा हवा में खुला रखने पर ऑक्सीकृत होने वाला पदार्थ है।

उपयोग– इसका उपयोग कृमिनाशी के रुप में किया जाता है।

#### प्रयोग विधि–

1. इसको पशुओं के आमाशय एवं आँत में उपस्थित कृमियों को नष्ट करने के लिए प्रयोग किया जाता हैं।
2. गाय–भैंस में 30 से 45 ग्राम तथा भेड़ बकरी में 15–30 ग्राम औषधि पानी में घोलकर नाल द्वारा दो समान भागों में बाँटकर दो बार देने से कृमि नष्ट हो जाते हैं।

## (य) स्तम्भक–

### 1. टिंचर आयोडीन–(Tincture Iodine)

पहचान– इसका मुख्य अवयव आयोडीन है जो बड़े–2 कणों वाला, गहरा नीलापन लिए चमकदार काला रंग, कणदार, विशेष गन्ध युक्त, ठोस है जो हवा में खुला रखने पर उड़ जाता है। यह एल्कोहल में घुलनशील होता है। इससे टिंचर आयोडीन निम्न प्रकार से बनाते हैं–

| | |
|---|---|
| 1. पोटैशियम आयोडाइड– | 5 ग्राम |
| 2. आयोडीन– | 5 ग्राम |
| 3. स्प्रिट– | 1000 मि.ली. |
| 4. शराब– | 1000 मि.ली. |
| 5. पानी– | 10 मि.ली. |

उपयोग– इसका उपयोग जीवाणुरोधक, जीवाणुनाशक, स्तम्भक व परजीविघ्न के रुप में किया जाता है।

#### प्रयोग विधि–

1. टिंचर आयोडीन का प्रयोग पशु की त्वचा को जीवाणु रहित करने में किया जाता है।

इसका प्रयोग घावों की सड़न रोकने में भी किया जाता है। इसे साधारण सफाई के लिए रोगाणुनाशक के रुप में तथा

मक्खियों को भगाने के लिए भी प्रयोग करते हैं।

### 2. फिटकरी–(Alum)

पहचान– यह रंगहीन अथवा हल्का गुलाबी रंग का, बड़े कणदार ठोस पदार्थ है। इसका स्वाद मीठापन लिए कसैला होता है तथा यह पानी में घुलनशील है।

उपयोग– यह स्तम्भक एवं जीवाणुरोधक, के रुप में उपयोग में लाई जाती है।

#### प्रयोग विधि–

1. पशुओं के घावों से बहते रक्त को रोकने के लिए इसके चूर्ण या घोल का प्रयोग किया जाता है।
2. इसका 2 से 5% घोल पशु की आँख व गर्भाशय धोने के काम आता है।
3. खुरपका–मुँहपका रोग में इसका 1 से 2% घोल पशु के मुँह में छालों में लाभदायक होता है।
4. आन्तरिक रक्त प्रवाह रोकने के लिए पशु को फिटकरी भी खिलाई जा सकती है।

## (र) मर्दन तेल–

### 1. तारपीन का तेल–(Turpentine oil)

पहचान– यह रंगहीन, पतला एवं स्वच्छ द्रव है जो चीड़ के वृक्ष से प्राप्त किया जाता है। यह विशेष गन्धयुक्त तथा स्वाद में तीखा व कड़वा होता है। एल्कोहल, ईथर, क्लोरोफार्म व ऐसीटिक अम्ल में यह घुलनशील है।

उपयोग– इसका उपयोग जीवाणुरोधक, परजीवीनाशक, एन्टीजाइमोटिक तथा गैसहर आदि रुपों में किया जाता है।

#### प्रयोग विधि–

1. इसका प्रयोग निमोनिया तथा प्लूरसी आदि रोगों में पशु की छाती परमालिश करने के लिए किया जाता है।
2. सूजन या दर्द में सरसों के तेल में मिलाकर मालिश करने से पशु को आराम मिलता है।
3. आफरे में इसकी 30–60 मि.ली. मात्रा अन्य तेलों के साथ मिलाकर पशु को पिलाने से लाभ होता है।

## महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. फफूँदी या जीवाणुओं से प्राप्त रसायन जो अन्य सूक्ष्म जीवों की वृद्धि रोकते हैं, तथा उन्हें नष्ट कर देते हैं, प्रतिजैविकी (Antibiotics) कहलाते हैं। उदाहरण– पैनिसिलीन, स्ट्रेप्टोमाइसीन आदि।
2. वे पदार्थ जो जीवाणुओं की वृद्धि को तो रोक देते हैं परन्तु जीवाणुओं को नष्ट नहीं करते हैं, जीवाणु रोधक या जीवाणु प्रतिरोधी (Antiseptics) कहलाते हैं। जैसे– लाल दवा, बोरिक एसिड आदि।
3. जो औषधियाँ रोगाणुओं अथवा जीवाणुओं को उनके बीजाणुओं सहित नष्ट कर देती हैं, रोगाणुनाशक या जीवाणुनाशक (Disinfectant) कहते हैं, जैसे– फिनायल, लायसोल, फिनोल आदि।
4. विरेचक उन पदार्थों को कहते हैं जिनके खाने से पशु को दस्त आने लगते हैं। इन्हें हल्के रेचक, मृदु रेचक व तीव्र रेचक तीन वर्गों में बाँटा गया है।
5. ऐल्कोहल, कपूर आदि वे पदार्थ हैं जिनके प्रयोग से शरीर में उत्तेजना का अनुभव होता है।
6. टिंक्चर आयोडीन व फिटकरी स्तम्भक पदार्थ हैं। स्तम्भक पदार्थ वे होते हैं जो रक्त वाहिनियों, श्लेष्मा झिल्ली व तन्तुओं में संकुचन उत्पन्न कर बहते हुये रक्त या द्रव को रोक देते हैं।
7. ज्वर में तापक्रम को कम करने वाली औषधि को ज्वर रोधी (Antipyretic) कहते हैं, जैसे– एस्प्रिन, कुनैन आदि।
8. फुफ्फुस नाल के उदासर्जन (Secretion) को बढ़ाने वाली औषधि को कफोत्सारक (Expectorant) तथा इसे कम करने वाली औषधि को कफरोधी (Anti Expectorant) कहते हैं।
9. विष के प्रभाव को कम करने वाली औषधि को विषघ्न (Antidote) कहते हैं। जैसे– लाल दवा।
10. क्लोरोफार्म, ईथर जैसे पदार्थ शरीर को अचेत कर देते हैं। इन्हें निश्चेतक या संवेदनहारी (Anaesthetics) कहते हैं।
11. सड़ाव–क्रिया रोकन वाले पदार्थ एन्टीजाइमोटिक्स (Antizymotics) कहलाते हैं। उदाहरण– बोरिक एसिड, कार्बोलिक एसिड आदि।
12. गैसहर या वातसारी (Carminatives) पदार्थ आमाशय व आँतों में गैसों का बनना कम करने व उन्हें बाहर निकालने का कार्य करते हैं, जैसे– ईथर, हींग, सौंफ आदि।
13. पीड़ाहारी या शूल शामक (Analgesics) उन पदार्थों को कहा जाता है। जो स्नायुओं (Nerves) की उद्दीप्यता (Irritability) को कम करके दर्द को कम करने का कार्य करते हैं। उदाहरण– एस्प्रिन, भांग आदि।
14. संवेदनमंदक या निद्रावह (Narcotics) से गहरी नींद आने के साथ–2 संवेद्यता, रक्त परिसंचरण व श्वास क्रिया में भारी उदासीनता आ जाती है। उदाहरण– क्लोरोफार्म, ईथर, भांग आदि।

15. शामक (Sedative) के अन्तर्गत शूलशामक व निद्रावह दोनों प्रकार की औषधियाँ शामिल होती हैं जो स्नायु संस्थान की अति उत्तेज्यता को शांत करती हैं।
16. त्वचा के परजीवियों को नष्ट करने वाली औषधियाँ परजीविघ्न (Anti-parasitics या Parasiticides) कहलाती हैं जैसे– फिनायल, नीला थोथा आदि।
17. दुर्गन्ध को ढकने या दूर करने वाले पदार्थो को गन्धहारक या दुर्गन्धनाशी कहते हैं। उदाहरण– फिनाइल, ब्लीचिंग पाउडर आदि।
18. शरीर में उपस्थित कृमियों को जो औषधियाँ नष्ट कर देती हैं उन्हें कृमिनाशी (Vermifuge) तथा जो कृमियों को शरीर से केवल बाहर निकाल देती हैं उन्हें कृमिहारक कहते हैं।
19. नमक, नीला थोथा, फिटकरी आदि ऐसे पदार्थ वमनकारी (Emetics)कहलाते हैं जिनके खाने से वमन या उल्टी होने लगती है।

## अभ्यास प्रश्न

### बहुचयनात्मक प्रश्न–

1. निम्न पदार्थों में से रोगाणुनाशक हैं–
   (अ) सरसों का तेल (ब) फिनोविस
   (स) फिनाइल (द) उपर्युक्त सभी
2. पशुओं के घावों को धोने के काम में प्रयोग किया जाता है–
   (अ) लाल दवा (ब) नौसादर
   (स) अरण्डी का तेल (द) मैगसल्फ
3. उत्तेजक के रुप में काम लेते हैं–
   (अ) फिनोल (ब) फिनाइल
   (स) एल्कोहल (द) लाइसोल
4. खुरपका–मुँहपका रोग में खुर धोने हेतु फुट बाथ में काम आता है–
   (अ) फिनोविस (ब) आयोडीन
   (स) तारपीन का तेल (द) नीला थोथा

### अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

5. ज्वर में ताप कम करने वाली औषधियों को क्या कहते हैं?
6. जहर के असर को कम करने वाली औषधियाँ किस नाम से जानी जाती हैं?
7. उन औषधियों को क्या कहते हैं? जो कृमियों को बिना मारे ही शरीर से बाहर निकाल देती हैं?
8. बाह्य परजीवियों को नष्ट करने हेतु फिनाइल का कितने प्रतिशत घोल का प्रयोग किया जाता है?
9. पशुओं के 'पाद स्नान' (Foot bath) हेतु नीला थोथा का कितने प्रतिशत घोल को काम में लिया जाता है?
10. किन्हीं तीन प्रति जैविकी (Antibiotics) औषधियों के नाम लिखो।

### लघूत्तरात्मक प्रश्न–

11. फिनाइल के दो उपयोग लिखो।
12. विरेचक किसे कहते हैं? ये कितने प्रकार के होते है? लिखिए।
13. उत्तेजक पदार्थों को परिभाषित कीजिए।
14. जीवाणुरोधक (Antiseptics) तथा जीवाणुनाशक (Antibiotics) में अन्तर लिखो।
15. कफोत्सारक (Expectorant) व कफरोधी (Anti-Expectorant) में अन्तर लिखिए।
16. कृमिनाशक (Vermicides) व कृमिहारक (Vermifuge) में अन्तर लिखिए।
17. प्रमुख दुर्गन्धहारक (Deodorants) पदार्थों के नाम लिखिए।

### निबन्धात्मक प्रश्न–

18. किन्हीं दो रोगाणुनाशक पदार्थों का वर्णन कीजिए।
19. स्तम्भक क्या हैं? टिंचर आयोडीन बनाने की विधि, उसके उपयोग एवं प्रयोग विधि का वर्णन कीजिए।
20. कपूर की पहचान, उपयोग तथा प्रयोग विधि का वर्णन कीजिए।
21. मर्दन तेल किसे कहते हैं? तारपीन के तेल की पहचान, उपयोग तथा प्रयोग करने की विधि का वर्णन करो।
22. फिनोल (Carbolic-Acid) का विस्तृत वर्णन कीजिए।
23. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखो–
    (अ) लाल दवा (ब) अरण्डी का तेल
    (स) फिनोविस (द) लाइसोल
    (य) एल्कोहल (र) फिटकरी
    (ल) फिनाइल

### उत्तरमाला–

1. (स) 2. (अ) 3. (स) 4. (द)

# अध्याय–20
# मुर्गीपालन (Poultry Farming)

## 20.1 मुर्गीपालन की स्थिति एवं महत्व

(Present status and importance of Poultry Farming) – प्रायः मुर्गीपालन (Poultry Farming) का आशय उन कुक्कुट (Fowl) के पालने से लिया जाता हैं, जिन्हें अण्डा उत्पादन या मांस प्राप्ति के उद्देश्य से एक स्थान पर रखा जाता हैं। जबकि मुर्गीपालन में कुक्कुट (Fowl) के अलावा अण्डे देने वाले अन्य पक्षी जैसे बत्तख, बड़ी मुर्गी (टर्की), बटेर आदि भी सम्मिलित हैं। वर्तमान में पालतू मुर्गी को जंगली मुर्गी (*Gallus gallus*) से सम्बन्धित किया गया है।

**वर्तमान स्थिति:–** हमारे देश में मुर्गीपालन व्यवसाय पांच हजार वर्षों से भी अधिक पुराना है। प्राचीन काल में पूर्वी भारत में पाई जाने वाली असील नस्ल को लोग लड़ाने के लिये पालते थे। बाद में लोग अपने घरों में ही 5–7 मुर्गियों को अण्डा उत्पादन के उद्देश्य से भी पालने लगे। वर्तमान पालतू मुर्गी को जंगली मुर्गी (*Gallus gallus*) से संबंधित किया गया है। आजकल हमारे देश में विदेशी नस्ल व्हाइट लैग हॉर्न को अधिक पाला जा रहा हैं। सर्वप्रथम अमेरिका से 30000 चूजे इस नस्ल के मंगवाकर उन्हें 3 से 8 सप्ताह की उम्र में विभिन्न राज्यों को वितरित किया गया। मुर्गीपालन विकास हेतु केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकारें ऋण एवं अनुदान उपलब्ध करवा रही हैं तथा साथ ही उन्नत नस्लों की मुर्गियों के अण्डे एवं चूजों के विकास पर भी ध्यान दे रही हैं। इस हेतु 1979 में उ.प्र. में इज्जतनगर में केन्द्रीय पक्षी अनुसंधान संस्थान की स्थापना की गई। केन्द्रीय मुर्गी प्रजनन फार्म मुम्बई, भुवनेश्वर एवं हसरघाटा में अण्डा उत्पादन हेतु नई संकर नस्लें विकसित की गई हैं। इसके अतिरिक्त कृषि विश्वविद्यालयों द्वारा निरन्तर शोध कार्य किया जा रहा है।

यद्यपि पिछले दशक में हमारे देश ने इस व्यवसाय में काफी प्रगति की है। इस वर्ष 2014–15 में अण्डा उत्पादन 78.5 अरब हो गया है। पाउल्ट्री न्यूज 27 मई, 2014 के अनुसार वर्ष 2013 में कुक्कुट मांस 3.5 मिलियन टन था तथा मांस की उपलब्धता 2.8 कि.ग्रा. प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष रही, जबकि इस अवधि में अण्डा उत्पादन 70 अरब हो गया एवं अण्डों की खपत 57 अण्डे प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष हो गई। परन्तु अन्य देशों की तुलना में हम अभी भी बहुत पीछे हैं।

कृषि एवं संसाधित खाद्य उत्पाद निर्यात विकास प्राधिकरण (एपिडा) के अनुसार वर्ष 2013–14 में कुक्कुट उत्पादों का निर्यात 565 करोड़ रूपये था।

भारत में मुर्गीपालन के क्षेत्र में आन्ध्र प्रदेश का प्रथम स्थान हैं। इसके पश्चात् तमिलनाडु, पं. बंगाल, बिहार, महाराष्ट्र तथा कर्नाटक का स्थान हैं। राजस्थान इस व्यवसाय में बहुत पीछे है परन्तु अजमेर जिला मुर्गीपालन क्षेत्र में अग्रणी है। अजमेर के आस पास के क्षेत्र में बड़ी संख्या में बड़े–2 निजी कुक्कुट फार्म स्थापित हैं। यहाँ से अण्डे प्रदेश के अन्य शहरों तथा देश के दूसरे शहरों व महानगरों में भी भेजे जाते हैं। पशुपालन निदेशालय राजस्थान, जयपुर के प्रशासनिक प्रतिवेदन के अनुसार राजस्थान में 2012 की पशुगणना में मुर्गियों की संख्या लगभग 80.24 लाख तथा अण्डों का उत्पादन लगभग 1320 मिलियन है। प्रदेश की शुष्क जलवायु तथा सिंचाई सुविधाओं की कमी को ध्यान में रखते हुये इस व्यवसाय को प्रोत्साहन दिया जाना नितान्त आवश्यक है। इसीलिए राज्य सरकार द्वारा राजकीय कुक्कुट विकास केन्द्र एवं मुर्गीपालन सहकारी समितियाँ प्रदेश के प्रमुख जिलों में स्थापित की गई हैं। ये संस्थाऐं सन्तुलित आहार तथा अण्डों के विपणन में मुर्गीपालकों का सहयोग कर रही हैं। प्रदेश में कोटा, अजमेर व उदयपुर में मैरेक्स व पुलोरम रोग की नियंत्रण इकाईयाँ इनकी जाँच व नियंत्रण का कार्य कर रही हैं।

**मुर्गीपालन का महत्त्व:–** हमारे देश की अधिकांश जनसंख्या आज भी अशिक्षा तथा गरीबी आदि कई कारणों से कुपोषण का शिकार है। स्वस्थ रहने के लिये व्यक्ति को भोजन में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, विटामिन्स एवं खनिज लवणों की पर्याप्त मात्रा की आवश्यकता होती है। इन अवयवों से परिपूर्ण आहार को ही सन्तुलित आहार की संज्ञा दी जाती है। इन अवयवों में से किसी भी अवयव की कमी होने पर व्यक्ति में कई प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। मुर्गीपालन व्यवसाय को बढ़ावा देकर तथा व्यक्तियों को जागरुक बनाकर इस कुपोषण की समस्या को

सुगमता से दूर किया जा सकता है, क्योंकि अण्डे तथा माँस में ये तत्व प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं, जैसा कि अग्र तालिकाओं से स्पष्ट हैं–

### सारिणी–20.1 अण्डे में पाये जाने वाले अवयव (प्रतिशत में)

| क्र.सं. | अवयव | सम्पूर्ण अण्डा | श्वेतक | जर्दी | कवच |
|---|---|---|---|---|---|
| | | 100 | 58 | 31 | 11 |
| 1. | जल | 66.5 | 88.0 | 48.4 | – |
| 2. | प्रोटीन | 11.8 | 11.0 | 17.5 | – |
| 3. | वसा | 11.0 | 0.2 | 32.5 | – |
| 4. | खनिज लवण | 10.7 | 0.8 | 2.0 | 96.6 |

अण्डे में फॉस्फोरस, कैल्शियम, लोहा आदि खनिज तत्व तथा विटामिन ए, डी, तथा बी (कॉम्पलैक्स समूह) प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं।

### सारणी 20.2 मुर्गी मांस (चिकन) में पाये जाने वाले अवयव (% में)

| क्र.सं. | अवयव का नाम | प्रतिशत मात्रा |
|---|---|---|
| 1. | जल | 65–80 |
| 2. | प्रोटीन | 16–22 |
| 3. | वसा | 1.5–13 |
| 4. | खनिज पदार्थ | 0.65–01 |
| 5. | कार्बोहाइड्रेट | 0.50–01.5 |

एक मुर्गी के अण्डे का औसत भार 58 ग्राम होता है जिसमें 34 ग्राम श्वेतक तथा 18 ग्राम जर्दी होती है।

अण्डों के बारे में लोगों में कुछ मिथ्या धारणायें पाई जाती हैं जैसे कि अण्डा हृदय रोग को बढ़ावा देता है तथा शरीर में अधिक गर्मी पैदा करता हैं, इसलिए इसे गर्मियों में नहीं खाना चाहिये। जबकि इन दोनों ही बातों का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। वैज्ञानिको ने निष्कर्ष निकाला है कि अण्डे में उपस्थित (पाये जाने वाले) कॉलेस्ट्रॉल की अपेक्षा शर्करा हृदय रोग का एक मुख्य कारण है तथा एक अण्डे से मात्र 80 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त होती है जो एक रोटी से मिलने वाली ऊर्जा से थोड़ी ही अधिक है।

आजकल कुक्कुट शालाओं में मुर्गियों को बिना मुर्गे (नर) के ही रखा जाता है। अतः इनसे प्राप्त अण्डे जीव रहित होते हैं। इनसे चूजे उत्पन्न नहीं होते हैं, इसीलिए इन अण्डों को अनिषेचित अण्डे (Infertile Eggs) भी कहा जाता है। यदि कुक्कुट फार्म पर अण्डों से चूजे प्राप्त करने हों तो प्रति दस मुर्गियों पर एक नर अर्थात् 10:1 के अनुपात में मुर्गे रखने चाहिये तथा मुर्गे रखने के 10 दिन बाद ही चूजे प्राप्त करने हेतु अण्डों को लेना चाहिए।

माँसाहारी व्यक्तियों के लिए भी अन्य माँस की तुलना में मुर्गियों का माँस अधिक उपयोगी माना जाता है, क्योंकि इसमें चर्बी (वसा) की तुलना में प्रोटीन की मात्रा अधिक होती है। आजकल मुर्गी के मांस को सफेद माँस (White meat) तथा अन्य माँस को लाल माँस (Red meat) कहा जाता हैं।

कुछ वर्षों पूर्व तक मुर्गीपालन व्यवसाय को बहुत ही जोखिम भरा माना जाता था। इसका प्रमुख कारण यह था कि मुर्गियों में बीमारियाँ अधिक फैलती थीं जिससे बड़ी संख्या में मुर्गियों के मर जाने से बहुत अधिक आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता था, परन्तु आजकल विभिन्न बीमारियों से बचाव के लिये समय–2 पर टीकाकरण कराकर इस व्यवसाय को सुरक्षित व्यवसाय बनाया जा सकता है।

**मुर्गीपालन के लाभ :–** हमारे देश की परिस्थितियों, आवश्यकताओं एवं वातावरण आदि को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक हैं कि मुर्गीपालन व्यवसाय को अधिकाधिक लोगों द्वारा अपनाया जाये। इस व्यवसाय के प्रमुख लाभ निम्नलिखित हैं–

1. देश में मनुष्यों के आहार में प्रोटीन की कमी आमतौर पर देखी जाती है जबकि आहार विशेषज्ञों के अनुसार एक स्वस्थ वयस्क व्यक्ति के लिये प्रतिदिन 60 ग्राम प्रोटीन की आवश्यकता होती है, जिसमें से एक तिहाई अर्थात् 20 ग्राम पशु जनित प्रोटीन होनी चाहिये। इसकी पूर्ति अण्डे या माँस द्वारा करके कुपोषण दूर किया जा सकता है।
2. इस व्यवसाय को अपेक्षाकृत कम पूँजी द्वारा प्रारम्भ किया जा सकता है।
3. व्यवसाय प्रारम्भ करने के लगभग 2 माह (8 सप्ताह) बाद ब्रायलर मुर्गियों को बेचकर तथा पाँच माह बाद अण्डों को बेचकर आय प्राप्त होने लगती हैं।
4. व्यवसाय प्रारम्भ करने हेतु थोड़ी सी तकनीकी जानकारी की आवश्यकता हैं। इस व्यवसाय में अपेक्षाकृत कम स्थान एवं कम श्रम की आवश्यकता होती है।
5. परिवार के सभी सदस्यों के खाली समय का सदुपयोग हो जाता है।
6. मुर्गियों की बीट से उत्तम किस्म की खाद बनती है।
7. घर या अन्य उद्योग आदि का उत्सर्जित पदार्थ जो उनके लिये बेकार होता है, को मुर्गी आहार के रुप में प्रयोग किया जा सकता है।
8. कुक्कुट फार्म पर नर (मुर्गे) न रखने के कारण उन पर होने वाला व्यय न करने से अधिक लाभ प्राप्त होता है।

9. अउर्वर अण्डों को उर्वर अण्डों की अपेक्षा अधिक समय तक संग्रह किया जा सकता है।
10. अधिकाँश फसलों की खेती से जहाँ कई माह बाद आय प्राप्त होती है तथा वह भी एक बार ही जब फसल तैयार होती है वहीं मुर्गीपालन से सब्जियों की खेती के समान आय नियमित रुप से तथा कम अन्तराल पर निरन्तर प्राप्त होती रहती है।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वे व्यक्ति जो पूर्ण रुप से कृषि या मजदूरी पर निर्भर हैं, तथा जिनकी आर्थिक स्थिति कमजोर है वे लोग इस व्यवसाय को अपनाकर न केवल अपनी स्वयं की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति सुदृढ़ बना सकते हैं, बल्कि इस देश से कुपोषण जैसी समस्या को दूर करने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं।

## 20.2 मुर्गियों का वर्गीकरण एवं प्रमुख नस्लें (Classification of Poultry Breeds and important breeds) –

इस अध्याय में मुर्गियों का वर्गीकरण एवं नस्लों का अध्ययन करेंगे। नस्ल का अर्थ मुर्गियों के उस समूह से है जिसके सभी सदस्यों के पूर्वज एक ही वंश के हों और वे सभी आकार एवं रूप में एक समान हों, एवं उनसे पैदा होने वाली सन्तान भी बिलकुल माता–पिता के ही समान हो। मुर्गियों की अनेक जातियाँ हैं, जिनके गुण तथा शारीरिक लक्षणों में भी भिन्नता होती है। यही कारण है कि उनका पालन–पोषण किसी एक विशेष उद्देश्य के लिये होता है, जैसे कुछ जातियों का अधिक अण्डे देने का गुण होता है, जबकि कुछ अधिक एवं स्वादिष्ट मांस के लिये उपयोगी होती हैं। भारत में मुर्गियों की जातियों को अग्रलिखित 2 वर्गों में विभाजित किया जाता है–

1. उत्पत्ति स्थान के आधार पर।
2. उपयोगिता के आधार पर।

### 1. उत्पत्ति स्थान के अनुसार मुर्गियों का वर्गीकरण– (Classification of fowls on the basis of origin place)

(i) देशी या भारतीय नस्लें (Indigenous breeds)- असील, चीतागोंग, घाघस, कड़कनाथ आदि

(ii) एशियाई वर्ग (Asiatic breeds)- बृह्मा, कोचीन तथा लैंगशन आदि

(iii) इंगलिश वर्ग (English breeds) -ससेक्स, आस्ट्रेलार्प, आपिंगटन, कोर्निश तथा रेड कैप आदि।

(iv) अमेरिकन वर्ग (American breeds)- वायण्डाट, रोड आइलैण्ड रेड, न्यूहैम्पशायर तथा प्लाईमाऊथ रॉक आदि।

(v) भूमध्यसागरीय वर्ग (Mediterranean breeds)- लैग हॉर्न, ब्ल्यू एनडल जियन, एनकोवा तथा मिनोरका आदि।

(vi) पोलिश वर्ग- (Polish breeds) पोलिश

### 2. उपयोगिता के आधार पर मुर्गियों का वर्गीकरण (Classification of fowls on the basis of utility)

(i) अण्डा देने वाली जातियाँ(Egg producing breeds)- मिनोरका, व्हाइट लैगहॉर्न तथा एनकोना आदि।

(ii) माँस देने वाली जातियाँ (Meat producing breeds)- बृहमा, ससैक्स, लैंगशन तथा असील आदि

(iii) द्वि–उद्देश्यीय जातियाँ (Dual purpose breeds)

ऐसी मुर्गियों को जिनसे अण्डा तथा माँस दोनों प्राप्त किये जा सकते हैं, द्वि–उद्देश्यीय जातियाँ कहते हैं। ये निम्नलिखित हैं – न्यूहैम्पशायर, डोरकिंग, आस्ट्रेलार्प, रोड आइलैण्ड रेड तथा प्लाईमाऊथ रॉक आदि

## प्रमुख नस्लें (Important breeds)

### 1. रोड आइलैण्ड रेड (Rhode Island Red)

**मूल स्थान** :– इस नस्ल का मूल स्थान अमेरिका का रोड आइलैण्ड (Rhode Island) हैं। यह नस्ल मलायगेम, लेगहार्न तथा एशियाटिक मूल की नस्ल के संकरण से विकसित की गई हैं।

**चित्र 20.2.1 रोड आइलैण्ड रेड मुर्गी**

**विशेषताएँ** : इस मुर्गी का शरीर लम्बा, आयताकार (Rectangular) तथा चौड़ा होता हैं। इसकी पीठ समतल, सीना आगे की ओर उभरा हुआ होता हैं। जो अच्छी मांस उत्पादन नस्ल के गुण हैं। इसके पंखों (Plumage) का रंग गहरा या भूरा लाल होता हैं। जो पूरे शरीर पर होता है। उड्डयन परों के प्राइमरी तथा सेकण्डरी सिकिल परों, पूँछ के मुख्य परों का रंग काला होता हैं। गहरे रंग के स्थान पर आजकल चॉकलेट रंग के पक्षी अति सामान्य हैं। इसमें सिंगल कलगी (Single comb) तथा रोज कलगी (Rose comb) वाली किस्में (Variety) पायी जाती हैं। मुर्गे (Cock) का सामान्य वजन 3.8 किलोग्राम मुर्गी (Hen) का 3.0 किलोग्राम होता हैं। तथा अण्डे का रंग भूरा (Brown) या गहरा भूरा ( Dark brown) होता हैं।

उपयोगिता :– इसकी अण्डा उत्पादन क्षमता अधिक होती हैं। तथा मांस भी उत्तम किस्म का प्राप्त होता हैं। ये पक्षी विपरीत परिस्थितियों में भी भलीभांति पनपते हैं।

## 2. व्हाइट लैगहॉर्न (White Leghorn)

मूल स्थानः– इस नस्ल का मूल स्थान इटली हैं। सन् 1835 में यह नस्ल अमेरिका पहुँची और फिर इंग्लैण्ड। भारत में 1920 के लगभग इस नस्ल का आगमन हुआ।

विशेषताएँ : व्हाइट लैगहॉर्न (White Leghorn) मेडीटिरेनियन वर्ग (Class) की नस्लों में सबसे अच्छी नस्ल हैं। लैगहोर्न नस्ल की 12 किस्में (Varieties) हैं। जिनमें से व्हाइट लैगहोर्न भी एक किस्म हैं। यह आकर्षक नस्ल की मुर्गी है। इस नस्ल के पक्षी छोटे आकार के क्रियाशील (Active) साफ सुथरे (Neat & Clean) होते हैं। इसका सिर छोटा जिस पर कलगी (Comb) गलचर्म (Wattle) सुव्यवस्थित रहते हैं। टांगे पंख रहित तथा पैर छोटे होते हैं। इसका रंग सफेद तथा चोंच व टांगें पीली होती हैं। इसका शरीर ठोस होता हैं। पूँछ सदैव नीचे की तरफ झुकी रहती हैं। इसकी पीठ लम्बी, छाती चौड़ी होती हैं।

चित्र 20.2.2 व्हाइट लैगहॉर्न मुर्गी

उपयोगिता :– सफेद लैगहोर्न अण्डा देने वाली एक अच्छी किस्म हैं। यह नस्ल एक वर्ष में लगभग 240 अण्डे देती हैं। इस नस्ल के कई प्रभेद (Strains) विकसित कर ली गई हैं। जिनका अण्डा उत्पादन 300 से भी अधिक है। लेकिन यह नस्ल मांस के लिये उपयोगी नहीं हैं। ये मुर्गियाँ पाँच–छः माह की उम्र पर अण्डा देना प्रारम्भ कर देती हैं।

## 3. रेड कोर्निस (Red Cornish)

मूल स्थान :– यह नस्ल असील व मलाया तथा इंगलिश लड़ाकू नस्लों के संकरण से इंग्लैण्ड में विकसित की गई हैं।

विशेषताएँ : इस नस्ल की मुर्गियों के कंधे दूर–दूर होते हैं। तथा सीना चौड़ा एवं भरा हुआ होता हैं। इनकी कलगी मटर की किस्म की होती हैं। इसकी त्वचा का रंग पीला होता हैं।

चित्र 20.2.3 रेड कोर्निस मुर्गी

उपयोगिता :– अण्डों की बजाय मांस ज्यादा प्राप्त होता हैं। तथा मांस स्वादिष्ट होने के कारण सभी जगह यह नस्ल मांस के लिये पाली जा रही हैं। भारत में देशी नस्लों से इसका संकरण कराया जा रहा हैं।

## 4. प्लाईमाउथ रॉक (Plymouth Rock)

मूल स्थान :– इस नस्ल का मूल स्थान अमेरिका हैं।

विशेषतायें : ये मुर्गियाँ आकार में बड़ी होती हैं। इनका शरीर अधिक चौड़ा और कम लम्बा होता हैं। इसकी चमड़ी तथा टांगे पीली होती हैं। इसकी कलगी बड़ी (Single comb) होती हैं। शरीर के रंग विन्यास के आधार पर इसकी सात किस्में हैं। इसकी धारीदार तथा सफेद किस्में अधिक प्रचलित हैं। मादा मुर्गियों के टखनों (Shank) पर प्रायः काले धब्बे होते हैं।

चित्र 20.2.4 प्लाईमाउथ रॉक मुर्गी

उपयोगिता :– इस नस्ल से प्राप्त उत्तम कोटि का माँस व्यापारिक दृष्टि से उपयोगी हैं। इस नस्ल की अण्डा उत्पादन क्षमता सामान्य होती हैं। मुर्गे का शरीर भार लगभग 4.3 किलोग्राम तथा मुर्गी का 3.4 किलोग्राम होता हैं।

## 20.3 अण्डे की संरचना (Structure of egg)

**संरचना :–** मुर्गी के अण्डे का पोषक महत्त्व जानने के लिए यह अति आवश्यक है कि अण्डे की आन्तरिक संरचना के बारे में जाना जाये। अण्डे की संरचना का विस्तृत वर्णन नीचे दिया गया है :–

1. **कवच (Shell)–** यह अण्डे का बाह्य कवच होता है, जिसे आमतौर पर छिलका भी कहा जाता है। इसका रंग मुर्गी की नस्ल के अनुसार सफेद या भूरा होता है। यह पतला, छिद्र युक्त **(Porous)** तथा शीघ्र टूटने वाला होता है। इस पर 600 से 800 गोल छिद्र होते हैं। जिनसे नमी तथा गैसों का आदान प्रदान होता रहता है। कवच में भारात्मक दृष्टि से लगभग 94 प्रतिशत कैल्सियम कार्बोनेट होता है। इसका प्रमुख कार्य अण्डे के आन्तरिक भागों की सुरक्षा करना हैं।

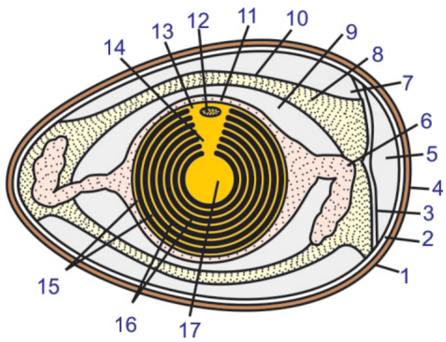


**चित्र 20.3.1 अंडे की आंतरिक संरचना**

1. कवच या बाह्य आवरण (Cuticle layer or shell)
2. बाह्य कवच झिल्ली (Outer shell membrane))
3. अन्तः कवच झिल्ली (Inner shell membrane)
4. रन्ध्र (Pores)
5. वायु कोश (Air space or air shell)
6. चैलजा (Chalaza)
7. पतली सफेदी की बाह्य तल (Outer layer of thin albumen)
8. गाढ़ी सफेदी की अन्तः तल (Middle layer of dense albumen)
9. पतली सफेदी की अन्तः तल (Inner layer of thin albumen)
10. चैलाजी स्तर (Chalaziferous)
11. पीतकी झिल्ली (Vitelline membrane)
12. जनन चतिका (Blastoderm or germinal disc)
13. केन्द्रक पैन्डर (Nucleus pander)
14. लैटेब्रा ग्रीवा (Neck of latebra)
15. गहरा या पीला अण्डपीत (Dark or yellow yolk)
16. हल्का या सफेद अण्डपीत (Light or white yolk)
17. लैटेब्रा (Latebra)

2. **कवच झिल्ली (Shell membrane)–** कवच के अन्दर की ओर दो पतली झिल्लियाँ होती हैं, जिन्हें कवच झिल्लियाँ कहा जाता है। इनमें से एक झिल्ली कवच के साथ मजबूती से चिपकी रहती है, जिसे सरलता से कवच से अलग नहीं किया जा सकता है। इस झिल्ली को बाह्य कवच झिल्ली कहते हैं। दूसरी भीतरी कवच झिल्ली बाह्य झिल्ली के अन्दर की ओर होती है, जो अण्डे की सफेदी **(Egg white)** से लगी रहती है। अण्डे के चौड़े सिरे पर वायु स्थान **(Air space)** होने के कारण दोनों कवच झिल्लियों के मध्य अधिक जगह होती है। ये झिल्लियाँ कवच को मजबूती प्रदान करने एवं भ्रूण को कैल्सियम उपलब्ध कराने का कार्य करती हैं।

3. **अण्डे की सफेदी या श्वेतक या एलब्यूमिन (Egg white or Albumen)–** इसे निम्नलिखित तीन भागों में विभाजित किया जा सकता हैं।

**(अ) बाह्य पतली सफेदी या श्वेतक (Outer thin white or Albumen)**

**(ब) आन्तरिक पतली सफेदी या श्वेतक (Inner thin white or Albumen)**

**(स) गाढ़ी सफेदी या श्वेतक (Middle thick white or Albumen)**

अण्डे के दोनों सिरों के अलावा बाह्य पतला श्वेतक, भीतरी कवच झिल्ली के साथ लगा होता हैं। जबकि गाढ़ा श्वेतक दोनों पतले श्वेतकों के मध्य में स्थित होता है। अण्डे का श्वेतक या एलब्यूमिन जर्दी एवं भ्रूण को बाहरी आघातों से बचाने तथा भ्रूण को पोषण देने का कार्य करता है। अण्डे को अधिक दिनों तक रखने अथवा अधिक तापमान पर रखने पर यह श्वेतक पानी के समान पतला हो जाता है।

4. **श्वेतक रज्जू या चैलेजा –(Chalaza)** यह वास्तव में गाढ़े श्वेतक का ही एक भाग होता है, जो सफेद रज्जुओं **(Cords)** के रुप में एक दूसरे के विपरीत दिशाओं में ऐंठी हुई सी प्रतीत होती हैं। ये रज्जुएँ जर्दी से अण्डे के सिरे तक फैली होती हैं। इसका कार्य अण्डे की जर्दी को मध्य में स्थिर रखना होता है।

5. **अण्डे की जर्दी–(Egg Yolk)** यह अण्डे के मध्य में स्थित हल्के पीले रंग का पीतक झिल्ली **(Vitelline membrane)** से घिरा हुआ गोलाकार तथा कुछ–2 चपटा भाग होता है। यह विभिन्न परतों के जमाव से बना होता है,

जिन्हें संकेन्द्रीय परतें भी कहतें है। जर्दी के ऊपर एक बिन्दु जैसी रचना अण्डाणु **(Blastoderm)** होती है, जिसे अउर्वर या अनिषेचित अण्डों में जर्मस्पॉट **(Germ spot)** तथा उर्वर अण्डों में जर्मडिस्क **(Germ disc)** कहते है। उर्वर या निषेचित अण्डों को सेयने पर ही भ्रूण बनता है। जर्दी का भीतरी भाग सफेद रंग का होता है। जर्दी विकसित हो रहे भ्रूण के लिये पोषण का कार्य करती है। इसमें पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन एवं वसा होती है तथा अल्प मात्रा में कार्बोहाइड्रेट, अकार्बनिक लवण एवं विटामिन्स भी होते हैं।

## 20.4 मुर्गियों का आहार एवं आवास प्रबन्धन (Poultry feeds and housing management)

– मुर्गीपालन व्यवसाय का एक उद्देश्य मनुष्यों के लिए प्रोटीनयुक्त आहार उपलब्ध कराना है। मुर्गी के अण्डे एवं माँस से प्रचुर मात्रा में प्रोटीन तो प्राप्त होती ही है इसके साथ ही इनके उत्पादन में कम पूँजी एवं श्रम की आवश्यकता पड़ती है।

मुर्गीपालन व्यवसाय में लगभग 60–70% व्यय आहार पर ही होता हैं। अतः आहार पर अधिक ध्यान देना आवश्यक है। मुर्गी आहार में जल, कार्बोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन, खनिज पदार्थ, विटामिन्स तथा प्रति जैविक पदार्थ (Antibiotics) शामिल होने चाहिए। मुर्गी के आहार में औसतन कार्बोहाइड्रेट आहार 70–80% वसा आहार 2–5% प्रोटीन आहार 10–20% खनिज आहार 0.8–1.0% तथा विटामिन्स भी उचित मात्रा में होने चाहिए।

**आहार की मात्रा–** मुर्गियों के आहार की मात्रा उनको पालने के उद्देश्य, नस्ल तथा आयु आदि कई बातों पर निर्भर करती है। सामान्यतः 100 वृद्धिरत पक्षियों को 9 वें सप्ताह में 40 कि.ग्रा, 10 वें सप्ताह में 43 किग्रा. आहार देना चाहिए। इसके बाद 11 वें सप्ताह तक प्रति सप्ताह एक किग्रा. आहार की मात्रा बढ़ा देनी चाहिए। अधिक लाभ प्राप्त करने के लिए अण्डा देने वाली मुर्गियों के लिए प्रति मुर्गी 100–120 ग्राम दाना प्रतिदिन देना चाहिए। इस प्रकार अण्डे देने वाली 100 मुर्गियों के लिए 21–24 सप्ताह में 10 किग्रा., 25–28 सप्ताह में 11 किग्रा., 29–40 सप्ताह में 13 किग्रा., 41–60 सप्ताह में 14 किग्रा. तथा 61–75 सप्ताह में 15 किग्रा. आहार प्रतिदिन देना चाहिए।

**आहार निर्धारण के सिद्धान्त–** मुर्गियों की आवश्यकताओं तथा अवस्थाओं के अनुसार आजकल बाजार में निम्नलिखित प्रकार के आहार उपलब्ध हैं–

1. प्रारम्भिक आहार (Starter ration)
2. वृद्धि आहार (Grower's ration)
3. अण्डा उत्पादन आहार (Layer's ration)
4. प्रजनक आहार (Breeder's ration)
5. ब्रॉयलर प्रारम्भिक आहार (Broiler's starter ration)
6. ब्रॉयलर फिनिशर आहार (Broiler's finisher ration)

सामान्यतः एक दिन से 8 सप्ताह तक की आयु के चूजों के लिए प्रारम्भिक आहार 8 से 20 सप्ताह के पक्षियों के लिए ग्रोअर्स राशन तथा 20 सप्ताह से अधिक आयु की मुर्गियाँ जो अण्डा उत्पादन के लिए पाली जाती हैं, के लिए लेयर्स राशन दिया जाता है। इसी प्रकार प्रजनन कार्य हेतु पाले गये पक्षियों को ब्रीडर्स राशन, तथा माँस उत्पादन के उद्देश्य से पाले गये पक्षियों को प्रारम्भिक अवस्था में ब्रॉयलर प्रारम्भिक आहार तथा बाद में ब्रायलर फिनिशर आहार दिया जाता है।

**सन्तुलित आहर तैयार करना–** आहार में भार के आधार पर निम्नलिखित प्रकार से विभिन्न प्रकार के पक्षियों के लिए सन्तुलित आहार तैयार किये जा सकते हैं–

### सारिणी–20.4.1 स्टार्टर आहार (Starter ration)

| क्र.सं. | खाद्य पदार्थ का नाम | आहार–1 | आहार–2 |
|---|---|---|---|
| 1. | चावल पालिस | 25% | 20% |
| 2. | मूँगफली की खली | 20% | 20% |
| 3. | पीली मक्का | 20% | 15% |
| 4. | गेहूँ का चापड़ | 15% | 15% |
| 5. | ज्वार 10% | 20% | |
| 6. | मछली का चूरा | 6.5% | 6.5% |
| 7. | लाइम स्टोन (मार्बल ग्रीट) | 1% | 1% |
| 8. | हड्डी का चूर्ण | 1% | 1% |
| 9. | प्रिमिक्स | 1% | 1% |
| 10. | नमक | 0.5% | 0.5% |
| | **योग** | **100%** | **100%** |

### सारिणी–20.4.2 ग्रोअर्स आहार (Grower's Ration)

| क्र.सं. | खाद्य पदार्थ का नाम | आहार–1 | आहार–2 |
|---|---|---|---|
| 1. | चावल पालिस | 22% | 20% |
| 2. | मूँगफली की खली | 20.5% | 12.5% |
| 3. | ज्वार | 20% | 20% |
| 4. | पीली मक्का | 10% | 10% |
| 5. | गेहूँ का चापड़ | 10% | 20% |
| 6. | मछली का चूर्ण | 7% | 7% |
| 7. | लाइम स्टोन | 3.5% | 3.5% |
| 8. | हड्डी का चूरा | 1% | 1% |
| 9. | प्रिमिक्स | 1% | 1% |
| 10. | शीरा या लपटी | 4.5% | 4.5% |
| 11. | नमक | 0.5% | 0.5% |
| | **योग** | **100%** | **100%** |

**सारिणी–20.4.3 लेअर्स आहार (Layer's ration)**

| क्र.सं. | खाद्य पदार्थ का नाम | आहार–1 | आहार–2 |
|---|---|---|---|
| 1. | चावल पालिस | 22% | 24% |
| 2. | मूँगफली की खली | 10% | 10% |
| 3. | पीली मक्का | 12% | 20% |
| 4. | ज्वार | 25% | 13% |
| 5. | गेहूँ का चापड़ | 15% | 15% |
| 6. | मछली का चूर्ण | 4% | 5% |
| 7. | लाइम स्टोन | 3% | 3% |
| 8. | हड्डी का चूर्ण | 2% | 1% |
| 9. | प्रिमिक्स | 1% | 1% |
| 10. | शीरा या लपटी | 5% | 7% |
| 11. | नमक | 1% | 1% |
| | **योग** | **100%** | **100%** |

**ब्रॉयलर्स राशन–** सामान्यतः ब्रॉयलर को लगभग 6 से 8 सप्ताह की आयु में बेच दिया जाता है क्योंकि 6 सप्ताह की आयु में एक ब्रॉयलर का वजन लगभग 1.5 किग्रा. हो जाता है। इसके पश्चात् इन्हें पालना आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद नहीं रहता है। अतः इस अवधि में दिया जाने वाला राशन ही ब्रॉयलर राशन कहलाता है। आजकल बाजार में तैयार दाना मिलता है। इसमें मक्का व गेहूँ का चापड़ आदि खाद्य पदार्थ निर्धारित मात्रा में मिलाकर पक्षियों को खिलाया जा सकता है। ब्रायलर्स को स्टार्टर तथा फिनिशर दो प्रकार का आहार निम्नानुसार देना चाहिए।

ब्रॉयलर्स हेतु उपरोक्त मिश्रण में बाईफ्यूरान चूर्ण 50 ग्राम, नेफ्टीन 50 ई. सी. 100 ग्राम, रीवोमिक्स 25 ग्राम तथा औरोफेक 125 ग्राम मिलाना लाभप्रद रहता हैं। ब्रॉयलर को पाँच सप्ताह की आयु तक स्टार्टर राशन तथा इसके पश्चात् बेचने तक फिनिशर राशन देना चाहिए।

**आहार व्यवस्था–** मुर्गियों के लिए आहार का प्रबन्ध करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है–

1. आहार में स्थानीय स्तर पर उपलब्ध होने वाले दानों को शामिल करना चाहिए।
2. आहार सन्तुलित होना चाहिए। जिससे कि पक्षियों की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। इससे उनकी वृद्धि एवं विकास तीव्र गति से होता हैं।
3. आहार में सस्ते दानों को शामिल करना लाभप्रद होता है।
4. आहार में शामिल सामग्री को पीस कर खिलाना चाहिए।
5. मुर्गियों की संख्या के अनुसार आहार की निर्धारित मात्रा ही तौलकर पक्षियों को खिलानी चाहिए।
6. खाद्य सामग्री को मिक्सर से मिला लेना चाहिए जिससे कि अल्प मात्रा वाली सामग्री यथा विटामिन्स, एन्टीबायोटिक्स आदि भली–भाँति समान रुप से मिल जाए।
7. पक्षियों की संख्या अधिक होने पर मैश (दलिया) थोड़ा सा गीला करके देना चाहिए।
8. आहार तैयार करने व संग्रह करने के कमरे में समय–2 पर कीटाणुनाशक दवा सावधानीपूर्वक छिड़कनी चाहिए।
9. अधिक समय तक के लिए आहार तैयार करके नहीं रखना चाहिए।
10. आहार कक्ष जंगली जानवरों, पक्षियों, चूहों या कीड़ों आदि से सुरक्षित होना चाहिए।
11. आहार के कमरे में सीलन नहीं होनी चाहिए।
12. बनाया हुआ आहार सदैव बन्द पात्रों में ही रखना चाहिए।
13. खाद्य सामग्री की उपयोगिता, मूल्य तथा गुणवत्ता आदि की

**सारिणी–20.4.4 ब्रॉयलर्स आहार (Broiler's ration)**

| क्र.सं. | खाद्य पदार्थ का नाम | ब्रायलर स्टार्टर | | ब्रायलर फिनिशर | |
|---|---|---|---|---|---|
| | | आहार–1 | आहार–2 | आहार–1 | आहार–2 |
| 1. | मक्का पीली | 42% | 35% | 25% | 35% |
| 2. | जौ | 6.5% | – | 5% | 8% |
| 3. | ज्वार | 12% | 9% | 13% | 17.5% |
| 4. | चावल पालिस | – | 7.5% | 20.5% | – |
| 5. | मूँगफली की खली | 30% | 28% | 24% | 23% |
| 6. | गेहूँ का चापड़ | – | 5% | 5% | 3% |
| 7. | मछली का चूर्ण | 7% | 8% | 5% | 5% |
| 8. | शीरा या लपटी | – | 5% | – | 6% |
| 9. | हड्डी का चूर्ण | 1% | 1% | 1% | 1% |
| 10. | प्रिमिक्स | 1% | 1% | 1% | 1% |
| 11. | नमक | 0.5% | 0.5% | 0.5% | 0.5% |
| | **योग** | **100%** | **100%** | **100%** | **100%** |

जाँच समय–2 पर करते रहना चाहिए।

**आवास प्रबंधन–** मुर्गीपालन व्यवसाय से अधिकतम लाभ प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि पक्षियों की वृद्धि तेजी से हो, उनका स्वास्थ्य अच्छा हो, मृत्युदर न्यूनतम हो, उनको सुरक्षा का उचित प्रबन्ध हो तभी उत्पादन अधिक होगा। उपर्युक्त सारी बातें एक अच्छे आरामदायक आवास द्वारा ही पक्षियों को उपलब्ध कराई जा सकती हैं।

**आवास का चयन–** मुर्गीपालन हेतु आवास का चयन करते समय निम्नलिखित बातों को दृष्टिगत रखना चाहिए–

**1. स्थान का चयन–**

(अ) स्थान आबादी से बहुत अधिक दूर नहीं होना चाहिए।

(ब) स्थान आस–पास के स्थान से थोड़ा ऊँचा होना चाहिए।

(स) उस स्थान पर सूर्य के प्रकाश व वायु संचार में कोई बाधा न हो।

(द) उस स्थान पर पानी व बिजली की पूर्ण सुविधा हो।

(य) आवागमन के पर्याप्त साधन हों।

(र) स्थान पक्षियों के शत्रुओं तथा कीड़े–मकोड़ों से पूर्णतः सुरक्षित होना चाहिए।

(ल) भूमि अधिक महँगी न हो।

**2. आवास के गुण–**

(अ) आवास इस प्रकार से बना हो कि वह पक्षियों को पूर्ण सुरक्षा प्रदान कर सके।

(ब) आवास में पक्षियों के लिए प्रकाश एवं वायु के आवागमन का समुचित प्रबन्ध होना चाहिए।

(स) आवास बिल्कुल सूखा रहना चाहिए अर्थात् उसमें छत या दीवारों से जल का रिसाव, फर्श से जल का बहना या पानी के पात्रों से जल का रिसना आदि किसी भी कारण से सीलन नहीं हो।

(द) आवास सदैव स्वच्छ रहना चाहिए।

(य) मुर्गियों की नस्ल तथा संख्या के अनुसार उनको पर्याप्त स्थान उपलब्ध हो।

(र) मुर्गीशाला मनुष्यों के आवासों अर्थात् आवासीय क्षेत्र के समीप नहीं होनी चाहिए अन्यथा दुर्गन्ध घरों में रहती है। आवासीय क्षेत्र से अधिक दूर होने पर आने–जाने में समय, श्रम, धन अधिक लगता है।

## कुक्कुट आवास की प्रणालियाँ (Housing System of Poultry)–

कुक्कुट आवास बनाते समय यह बात ध्यान में रखी जाती है कि मुर्गीपालन किस प्रणाली से किया जाना है। इसकी निम्नलिखित चार मुख्य प्रणालियाँ हैं–

1. घर के पीछे मुर्गीपालन (Back yard system)
2. विस्तृत प्रणाली या मुर्गी को बिना नियंत्रण खुले चारण में रखना (Extensive System)
3. अर्द्ध–सघन प्रणाली (Semi-intensive system)
4. सघन प्रणाली (Intensive system)

इन विधियों का संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार से है–

**1. घर के पीछे मुर्गीपालन (Back yard system)–** हमारे देश में गरीब व्यक्ति आमतौर पर अपने परिवार के व्यक्तियों के अण्डों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए 5–7 मुर्गियाँ घर के पीछे पाल लेते हैं। घर में बची खाद्य सामग्री इन मुर्गियों को खिला दी जाती हैं तथा इनके लिए आस–पास उपलब्ध सामग्री का प्रयोग करके सस्ते घर बना दिये जाते हैं।

**2. विस्तृत प्रणाली (Extensive System)–** इसे भू–प्रधान रीति भी कहा जाता हैं। इस प्रणाली से मुर्गीपालन करने में खुला चारण क्षेत्र होता है जहाँ पक्षी बिना नियंत्रण घास के मैदानों में घूमते रहते हैं। मुर्गीपालक सड़कों तथा खतरे वाले स्थानों पर तार की जाली लगा कर उसे सुरक्षित बना देते हैं। इसी क्षेत्र में एक रैन बसेरा (मुर्गीघर) जमीन से थोड़ा ऊपर उठा हुआ, बाँस या लकड़ियों के फर्श वाला बना दिया जाता है। इसमें केवल रात्रि विश्राम के लिए ही पक्षी बैठता है अतः प्रति पक्षी एक वर्ग फुट स्थान ही दिया जाता है। इस प्रणाली से एक हेक्टेयर में 125 पक्षी, लेकिन अनुकूल मौसम में 250 तक पक्षी पाले जा सकते हैं।

मुर्गीपालक को दाना, पानी रैन बसेरे के पास ही रख देने चाहिए अण्डे देने हेतु अलग से घोंसले बना देने चाहिए, जिन्हें रात्रि को सुरक्षा के उद्देश्य से बन्द करने की व्यवस्था होनी चाहिए।

**3. अर्द्ध–सघन प्रणाली (Semi Intensive System)–** इस प्रणाली में मुर्गियों को निम्नलिखित दो प्रकार से पाला जाता हैं।

**(अ) पोल्ट्री घेरा प्रणाली (Poultry run system)–** इस प्रणाली में एक मुर्गीघर के साथ मुर्गियों के विचरण के लिए थोड़ा खुला क्षेत्र भी होता है। दिन में पक्षी खुले क्षेत्र में घूमते हैं तथा रात के समय मुर्गीघर में चले जाते हैं। दाने तथा पानी के पात्र खुले स्थान तथा मुर्गीघर में भी रखे जा सकते हैं। खुले क्षेत्र को तार या लोहे की चद्दरों (पत्तरों) या लकडी की खपच्चियों आदि से निर्मित जालियों से घेर कर सुरक्षित बना दिया जाता है। इनका फर्श पक्का या जालीदार होता है। इस पद्धति में 50 पक्षियों तक प्रति पक्षी 270 वर्ग फुट स्थान परन्तु अधिक पक्षी होने पर 160 वर्ग फुट स्थान दिया जाता है।

**(ब) उठाऊ–मकान प्रणाली (Folding system)–** इस पद्धति में भी मुर्गीघर तथा विचरण स्थान एक साथ ही होते हैं परन्तु इसमें यह सम्पूर्ण भाग एक ढाँचे द्वारा ढक दिया जाता है।

इस विधि में प्रति पक्षी 5 वर्ग फुट स्थान की आवश्यकता पड़ती है। एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान पर मकान को ले जाने की सुविधा के लिए इसका आकार सामान्यतः 20 x 5 फुट रखते हैं जिसमें 18–20 मुर्गियों को पाला जा सकता है। मकान के पास में ही दाने व पानी के पात्र तथा अण्डा देने हेतु बिछावन युक्त घोंसलों की व्यवस्था करना आवश्यक है।

**(4) सघन प्रणाली (Intensive system)–** मुर्गीपालन की सघन पद्धति में निम्नलिखित प्रमुख प्रणालियाँ हैं–

(अ) गहरी–बिछाली प्रणाली **(Deep litter system)**
(ब) बिछावन अहाता प्रणाली **(Straw yard system)**
(स) तार फर्श वाला घर प्रणाली **(Wire floored system)**
(द) पिंजरा क्रम प्रणाली या बैटरी प्रणाली **(Battery system)**

इनमें से मुख्यतः गहरी विछावन प्रणाली तथा पिंजरा क्रम या बैटरी प्रणाली ही मुख्यतः अपनाई जाती हैं।

**(अ) गहरी–बिछाली प्रणाली–** इस प्रणाली में कुक्कुट आवास की बाहरी दीवारों की ऊँचाई 4 फुट रखते हैं। दीवार का ऊपरी शेष भाग जालीदार बनाते हैं। इसकी छत टिन या ऐसबेस्टस आदि की बनाते हैं। इस घर के अन्दर पक्षियों के आराम के लिए सामुदायिक या कई मंजिल **(Tier)** वाला दड़बा तथा पर्याप्त संख्या में अण्डे देने वाले घोंसलों का होना आवश्यक है।

सर्वप्रथम आवास में 6 इंच मोटी बिछाली की तह बिछा देते हैं। इसके गीला होने पर इसके ऊपर और बिछाली की तह लगा देते हैं यह क्रम बिछाली की मोटाई 12 इंच होने तक चलता रहता है। बिछाली के लिए धान की भूसी, गेहूँ, जौं या जई का भूसा, लकड़ी का बुरादा, बारीक कटी हुई सूखी घास, गन्ने की खोई, बारीक कटी हुई कुट्टी आदि सूखे पदार्थों का प्रयोग किया जा सकता है।

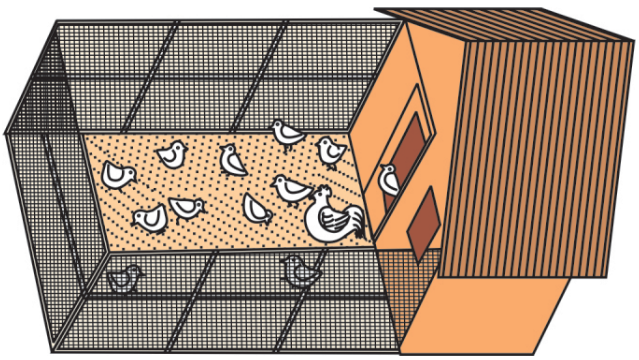

**चित्र सं. 20.4.1 साधारण गहरी बिछाली घर**

इस प्रणाली से मुर्गीपालन के लिए कुक्कुट आवास का आकार मुर्गियों की संख्या के अनुसार इस प्रकार रखना चाहिए– 100 मुर्गियों के लिए लम्बाई 20 फुट, चौड़ाई 15 फुट व ऊँचाई 10 फुट, 200 मुर्गियों के लिए 30 फुट x 20 फुट x 10 फुट, 500 मुर्गियों के लिए 60 फुट x 25 फुट x 10 फुट तथा 1000 मुर्गियों के लिए 100 फुट x 30 फुट x 10 फुट आकार का मुर्गीघर बनाना चाहिए।

**(ब) बिछावन अहाता प्रणाली–** यह प्रणाली गहरी बिछाली तथा पोल्ट्री घेरा प्रणाली दोनों के मेल से विकसित की गई है। इसमें भी रैन बसेरे के साथ लगा एक अहाता होता है जिसमें बिछाली बिछी होती है। सुरक्षा की दृष्टि से अहाते के ऊपरी भाग पर जाली लगा दी जाती है। इसका फर्श पक्का व ढलानदार होता है जिससे वर्षा का पानी अहाते में न ठहर सके।

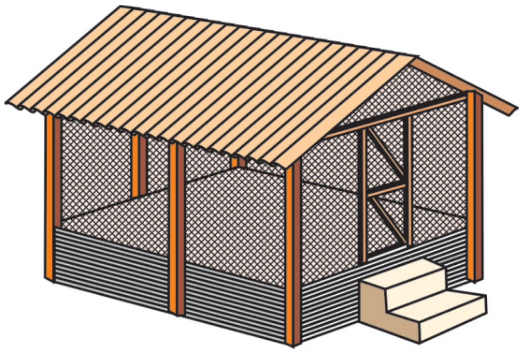

**चित्र सं. 20.4.2 बिछावन अहाता**

इस विधि में मुर्गीघर (रैन बसेरे) में 50 मुर्गियों तक प्रति पक्षी 3 वर्ग फुट तथा 50 से अधिक मुर्गियाँ होने पर स्थान 2 वर्ग फुट प्रति पक्षी होना चाहिए। जबकि इससे जुड़े अहाते (बाड़े) का आकार निम्न प्रकार होना चाहिए–

50 मुर्गियों के लिए प्रति पक्षी 8 वर्ग फुट, 100 पक्षियों के लिए 6 वर्ग फुट तथा 100 से अधिक पक्षी होने पर 4 वर्ग फुट प्रति पक्षी स्थान उपलब्ध होना चाहिए।

इसमें दाने व पानी के पात्र तथा अण्डे देने के घोंसले अहाते के अन्दर रखे होने चाहिए।

**(स) तार फर्श वाला घर प्रणाली–** मुर्गीपालन की यह पद्धति गहरी बिछाली तथा पिजंरा क्रम प्रणाली का मिलाजुला रुप होती है। इसमें घर का फर्श कच्चा अथवा पक्का हो सकता है। इस प्रणाली में फर्श से लगभग 3 फुट ऊपर तार की जाली का फर्श बनाया जाता है। जाली का आकार 12′ x 6′ या 15′ x 6′ हो सकता है। जाली टुकड़ों में ही पड़ी होनी चाहिए जिससे जाली को उठाकर उसके नीचे फर्श की सफाई सुगमता से की जा सके।

इस प्रणाली में 100 पक्षियों तक प्रति पक्षी 2 वर्ग फुट तथा अधिक पक्षी होने पर यह स्थान घटाकर प्रति पक्षी एक वर्ग

फुट ही रखा जाता है। आवास में दाने व पानी के पात्र तथा अण्डे देने के घोंसलों की व्यवस्था की जाती है।

**(द) पिंजरा क्रम प्रणाली या बैटरी प्रणाली–** इस पद्धति में पक्षियों को पालने के लिए जालीदार पिंजरे **(Cages)** तैयार करवाये जाते हैं। इनमें एक अथवा 3 से 5 पक्षियों के रहने की व्यवस्था की जाती है। एक पक्षी वाले पिंजरे का आकार 25 x 45 से.मी. होता है।

पिंजरे का फर्श आगे की ओर ढालू होकर ऊपर की ओर मुड़ा हुआ होता है जिसमें अण्डा स्वयं ही वहाँ आकर रुक जाता है। इस पद्धति में पिंजरों को कतारों या क्रम में रखने के कारण ही इसे पिंजरा क्रम प्रणाली कहा जाता है। पिंजरों को इस प्रकार एक दूसरे के ऊपर रखा जाता हैं कि दो कतारो के मध्य आने–जाने का पर्याप्त स्थान हो तथा एक पक्षी की बीट दूसरे पक्षी के ऊपर न पड़े। इन पिंजरों में बीट को बाहर निकालने की दो प्रकार से व्यवस्था की जाती है। पक्षियों की संख्या कम होने पर पिंजरे के नीचे बीट् ट्रे रख देते हैं। जबकि अधिक संख्या में पक्षी होने पर बीट एकत्रित करने के लिए स्वचालित यंत्र का प्रयोग करते हैं। इसमें प्रत्येक पिंजरे का सम्बन्ध एक चौड़े बेल्ट से कर दिया जाता है। कभी–2 आहार व अण्डा एकत्रित करने के लिए भी इसी प्रकार की स्वचालित व्यवस्था की जाती है।

**चित्र सं. 20.4.3 एकल पिंजरों को रखने की सीढ़ीनुमा प्रणाली**

इस प्रणाली में प्रत्येक पिंजरे के बाहर की ओर दाने एवं पानी के पात्रों की व्यवस्था की जाती है।

## कुक्कुट–आवास में काम आने वाले उपकरण

मुर्गीपालन व्यवसाय में कुक्कुट–आवास में काम में आने वाले उपकरण सस्ते, आसानी से उपलब्ध होने वाले, टिकाऊ तथा प्रयोग करने में सुगम होने चाहिए।

एक कुक्कुट आवास में निम्नलिखित प्रमुख पात्रों एवं उपकरणों की आवश्यकता पड़ती है–

**1. दाने के बर्तन–** इन्हें खाद्य पदार्थ के बर्तन या फीडर्स भी कहा जाता है। इन बर्तनों में आहार को, बर्बाद होने तथा गन्दा होने से बचाने के गुण होने चाहिए। इनकी सफाई सरलतापूर्वक हो सके।

दाने के बर्तनों का आकार एवं प्रकार पक्षियों के कद एवं आयु के अनुसार होना चाहिए। प्रारम्भ में चूजों को 3–4 दिन तक गत्ते के बने हुए, ढक्कननुमा, कम गहरे बर्तनों में दाना दिया जाता है। बाद में बड़े बर्तनों का प्रयोग करना चाहिए। ध्यान रखना चाहिए कि बर्तनों के ऊपर पक्षियों को बैठने से रोकने के लिए तार की जाली आदि लगी होनी चाहिए।

100 पक्षियों के लिए दाने के पात्रों (नाँद के आकार के) का आकार उनकी उम्र के अनुसार निम्न होना चाहिए–

1 से 4 सप्ताह तक– लम्बाई 3 फुट, चौड़ाई 4 इंच तथा ऊँचाई 2 इंच।

4 से 8 सप्ताह तक– लम्बाई 6 फुट, चौड़ाई 4 इंच तथा ऊँचाई 2 इंच।

8 से 12 सप्ताह तक– लम्बाई 8 फुट, चौड़ाई 6 इंच तथा ऊँचाई 4 इंच।

12 से 20 सप्ताह तक– लम्बाई 11 फुट, चौड़ाई 6 इंच तथा ऊँचाई 5 इंच।

पक्षियों के आहार के लिए 8 इंच से 16 इंच व्यास वाले खोखले बेलनाकार बर्तन भी प्रयोग किये जाते हैं। इनकी ऊँचाई 2 फुट होती है। इन बर्तनों को छत से लटका देते हैं। एक बर्तन 75 बड़े चूजों तथा 25 व्यस्क मुर्गियों के लिए एक सप्ताह के आहार के लिए पर्याप्त रहता है।

उत्तम किस्म के दाने के पात्रों के दो मुख्य भाग होते हैं एक भाग नाँद (Trough) तथा दूसरा भाग हॉपर (Hopper) कहलाता है। हॉपर में दाना भर देते हैं जब मुर्गियाँ नाँद में आहार खाती हैं तो हॉपर में से दाना अपने आप ही धीरे–2 नाँद (Trough) में आता रहता है।

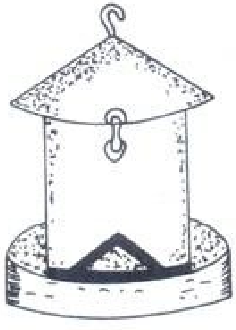

**चित्र सं. 20.4.4 लटकाने वाला आहार का बेलनाकार पात्र**


चित्र सं. 20.4.5 मुर्गियों के लिए आहार पात्र

**2. पानी के बर्तन–** मुर्गियों के लिए पानी का पात्र ऐसा होना चाहिए जिससे पक्षी आसानी से जब चाहें पानी पी सकें तथा पानी स्वच्छ रहें और फर्श पर न फैले।

पानी के पात्र के लिए मिट्टी का बर्तन या बोतल का प्रयोग किया जाता है। इसके लिए एक मिट्टी का बर्तन जिसकी गर्दन में छिद्र कर दिया जाता हैं तथा उसे पानी से भरकर एक दूसरे पानी से भरे गहरे कुण्डे (पात्र) में उल्टा करके रख देते हैं। इस प्रकार मटके से पानी धीरे–2 कुण्ड में आता रहता है। बोतल वाले पानी के पात्र में एक बोतल में पानी भरकर किसी स्टैण्ड की सहायता से उसे पानी से भरे बर्तन में उल्टा करके रख देते हैं। बोतल से धीरे–2 पानी बर्तन में आता रहता हैं।

चित्र सं० 20.4.6 मुर्गियों के लिए जल पात्र

**3. अण्डे का घोंसला या बक्सा–** प्रत्येक मुर्गीघर में मुर्गियों के अण्डे देने के लिए घोंसले या बक्से रखे जाते हैं। इनकी संख्या प्रति 5–6 मुर्गियों पर एक हो। घोंसले ऐसे हों जो आसानी से साफ किये जा सकें, मुर्गी आसानी से प्रवेश कर सके, वायु आवागमन की पर्याप्त सुविधा हो। घोंसलों का फर्श ढालू हो जिससे अण्डा लुढ़ककर सामने आ जाए। अधिकतर ये बक्से एक घन फुट आकार के होने चाहिए। इन घोंसलों में सूखे बिछावन की एक पर्त अवश्य बिछा देनी चाहिए। 50 मुर्गियों के लिए 5 फुट लम्बा, 2 फुट चौड़ा तथा 2 फुट ऊँचा सामुदायिक घोंसला भी बनवाया जा सकता हैं।

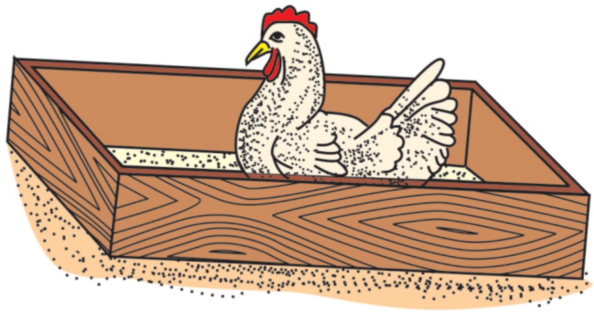

चित्र 20.4..7 अण्डे देने के लिए बक्सा

**4. ग्रिट (Grit) के बर्तन–** कुक्कुटशाला में मुर्गियों की पाचन शक्ति ठीक बनाये रखने के लिए संगमरमर के छोटे–2 टुकड़े रखना जरुरी है। इस कार्य के लिए धातु या लकड़ी से बने पात्रों का प्रयोग किया जा सकता है। वयस्क पक्षियों को ग्रिट **(Grit)** की अधिक आवश्यकता होती है।

**5. हरे चारे का पात्र–** सामान्यतः 4 सप्ताह के पश्चात् पक्षियों को विटामिन ''ए'' तथा रेशे की पूर्ति के लिए हरा चारा उपलब्ध कराना चाहिए। इसके लिए प्रति 100 पक्षी 3 किग्रा. हरा चारा, जिसमें रिजका, बरसीम, पालक आदि हो, काटकर व धोकर अलग से पात्रों में कुक्कुट आवासों में रख देना चाहिए।

उपर्युक्त उपकरणों के अतिरिक्त एक मुर्गीफार्म पर अण्डे रखने की ट्रे या पेटियाँ, केण्डलिंग लैम्प, तुला, चूजों के बक्से, बर्तनों को स्वच्छ व जीवाणु रहित करने की मशीनों आदि की भी आवश्यकता होती है।

## 20.5 मुर्गियों के प्रमुख रोग (कारण, लक्षण एवं उपचार)

**Important diseases of poultry (cause, symptom and remedy) –** मुर्गियों की बीमारियों से प्रायः झुण्ड में बहुत हानि होती हैं इन बीमारियों से मुर्गी फार्मों पर उनकी मृत्युदर बढ़ जाती हैं एवं पक्षियों कें अप्रत्यक्ष रुप से जीवन शक्ति कमजोर हो जाती हैं। जिसमें मुर्गी पालन से समुचित लाभ प्राप्त नहीं हो पाता हैं। मुर्गियों में अनेक प्रकार की व्याधियाँ पायी जाती हैं। अतः इनकी रोकथाम तथा उपचार फार्म पर करना अनिवार्य हो जाता हैं।

व्याधियों की रोकथाम के लिये निम्न सावधानियाँ रखनी चाहिए।

1. चूजे केवल ऐसे झुण्ड (Flock) से ही प्राप्त करने चाहिए जो बीमारियोंसे पूर्णतया मुक्त हो।
2. चूजों को वयस्क मुर्गियों से दूर रखें।
3. दड़बों में चूजों या मुर्गियों की भीड़ न हो।
4. दड़बों की नियमित सफाई हो तथा आसपास भी सफाई होनी चाहिए।
5. रोग से मरे पक्षियों को गहरे गड्ढें में गाढ़ देना चाहिए या जला देना चाहिए।
6. मक्खी, मच्छर, कॉकरोच, जूँ, चिचड़ी, तथा अन्य परजीवियों का नियंत्रण करना चाहिए।
7. एक दिन के चूजों को क्लोरो माइसिटीन 1 मिलीग्राम प्रति चूजों की दर से प्रतिदिन पानी में घोलकर 4 दिन तक देनी चाहिए ताकि *ई० कोलोई* तथा टाइफाइड ग्रुप के जीवाणुओं द्वारा होने वाली हानि से बचा जा सके।
8. वैक्सीन लगाने का कार्य सांय में ही करें जिसमें चूजों को पूरी रात आराम मिल सके और जो तनाव वैक्सीन लगाने से उत्पन्न हुआ था वह भी समाप्त हो सके।
9. अपने चूजों के स्वास्थ्य को प्रतिदिन देखें तथा अस्वस्थ चूजों को तुरन्त बाड़े में से निकाल दें एवं डाक्टर की सलाह लेवें।
10. मुर्गीघर में घुसने से पूर्व जूतों के तलवों को चूने पर रखकर या फिनाइल में भिगोकर जीवाणु रहित कर लें।

## रानीखेत बीमारी (Ranikhet Disease)

इसे न्यू कैसल (New Castle Disease) रोग भी कहते हैं। यह मुर्गियों की एक घातक बीमारी है। जिसमें पक्षियों का मुख्यतः श्वसन एवं तंत्रिका तंत्र प्रभावित होता है। यह रोग सभी आयु की मुर्गियों में होता है। लेकिन इसमें सबसे अधिक कम उम्र के चूजे प्रभावित होते हैं। इसका प्रभाव टर्की, कौआ, कबूतर, बतख, हंस कोयल तथा तीतर पर भी होता है। मुर्गी पालकों को खासतौर से वर्षा ऋतु में इस रोग से काफी अधिक हानि उठानी पड़ती है।

**रोग का कारक (Etiology) :–** यह एक प्रकार के वायरस पैरामिक्सोवायरस टाइप–1 (Paramyxovirus type-1) द्वारा फैलता है। यह वायरस निर्जलीकरण से और पराबैंगनी किरणों (धूप) में तेजी से नष्ट हो जाता है।

**लक्षण (Symptoms) :–**

1. पक्षियों में दम फूलना, खाँसना या छींकना रोग की प्रारम्भिक अवस्था को प्रदर्शित करता है। इस समय उनका खाना भी कम हो जाता है।
2. नाक से श्वास लेने में परेशानी आती है। तथा हाँफते हुऐ मुँह को खोल कर श्वास लेनी पड़ती है। श्वास लेते समय कभी कभी सीटी की सी आवाज आती है।
3. कफ तथा लार का निकलना और नाक से पानी जैसे तरल पदार्थ का बहना।
4. ये सुस्त तथा आँखें बन्द करके रखते हैं।
5. चूजों को बुखार हो जाता हैं। प्यास बहुत लगती है। और पीले हरे रंग के पानी जैसे बदबूदार दस्त लग जाते हैं।
6. पैर एवं पंखों में लकवा जैसे लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।
7. गर्दन को उलटकर पीठ के ऊपर रखना या शरीर के अन्य भागों की ओर छिपाना तथा घर के कोने में छिप जाना।
8. रोग के बढ़ने पर चूजे मरने लगते हैं। रोग की भयंकर अवस्था में चूजों में इस बीमारी के कुछ ही लक्षण दिखाई देते हैं। और वे अचानक मरने लगते हैं। परन्तु प्रौढ़ पक्षी कुछ देरी से मरते हैं।

**उपचार (Treatment):–** वर्तमान में किसी भी मूल्य का कोई कारगर इलाज नहीं है। उचित आवास और सामान्य देखभाल अच्छी तरह से करना ही बचाव है।

**रोकथाम (Prevention and Control) :–** इसकी रोकथाम निम्न प्रकार की जा सकती है –

1. बीमार पक्षियों का कत्लेआम करना।
2. पक्षियों को 10–15 के समूह में छाँट कर अलग करना और प्रत्येक समूह को अलग परिचारिकाओं में रखना।
3. पाल्ट्री फार्म के साफ सफाई के अवशेषों से सभी संक्रामक सामग्री को हटाना।
4. पाल्ट्री फार्म यातायात के साधनों से दूर होना चाहिए।
5. पाल्ट्री फार्म पर मुर्गियों की देखभाल हेतु अलग से नौकर रखना चाहिए।

इसके नियंत्रण के लिए स्वच्छता और टीकाकरण के माध्यम से दूर कर सकते हैं। टीकाकरण कार्यक्रम तालिका नं. 20.5.1 में दिया गया है।

**तालिका 20.5.1 मुर्गियों में टीका लगाने की अनुसूची**

| चूजों की आयु | रोग | टीका | संरक्षण की अवधि | प्रति रक्षा | प्रयोग विधि | मात्रा |
|---|---|---|---|---|---|---|
| प्रथम दिन या एक सप्ताह तक | गले का संक्रमण* | अण्डा रुपान्तरित आई.बी. (egg adapted I.B.) वैक्सीन | प्रशीतक ताप पर 6 माह तक | ठीक पता नहीं | नाक के अन्दर (Intranasal) | एक–एक बूंद दोनों नाक में |
| प्रथम दिन | रानी खेत ** (New castle) | वैक्सीन स्ट्रेन एफ या लसोटा | प्रशीतक में तीन माह तथा कमरे के तापक्रम पर 10 दिनों तक | 15 सप्ताह | नाक के अन्दर | एक–एक बूंद दोनों नाक में |
| एक सप्ताह तक | मैरेक रोग (MD) | कोशिका युक्त टर्की या बतख के जुलपित्ती रोग के वायरस का आयातित टीका | फ्रीज ड्राइंग टीका है जिसे प्रशीतक में 2 माह तक सुरक्षित रख सकते | ठीक पता नहीं | अन्तः पेशीय | 0.2 मिली या निर्माण –कर्ता के निर्देशानुसार |
| 2–3 सप्ताह | मुर्गी का चेचक (Fowl pox) | चेचक वाले कबूतर के वैक्सीन में ग्लिसरीन मिलाकर | प्रशीतक में दो माह तक | 6–8 सप्ताह तक | पिच्छ स्तरक | पुरेरी या रुई का फाहा देना |
| 6–8 सप्ताह | मुर्गी का चेचक*** | चूजों के भ्रूण का रूपान्तरित चेचक चेचक का वाइरल टीका | प्रशीतक में दो माह तक | जीवन पर्यन्त | पक्ष पेटा | पुरेरी के बाद दो चीरा |
| 8–12 सप्ताह | रानी खेत**** | वैक्सीन मुक्तेश्वर (स्ट्रेन–$R_2B$) पर 10 दिन तक | प्रशीतक में तीन माह तथा कमरे के ताप | जीवन पर्यन्त | अन्तः पेशीय | 0.5 मिली /पक्षी |
| 12 सप्ताह | चिचड़ी रोग | स्पीरोकिडोसिस | फ्रीज ड्राईंग वैक्सीन जिसे प्रशीतक में एक वर्ष तथा कमरे के ताप पर 15 दिन तक रखा जा सकता है। | 1.5 वर्ष तक | अन्तः पेशीय | 1.5 मिली / पक्षी |
| 12 सप्ताह तथा इससे अधिक | मुर्गी का हैजा | मुर्गियों के कालरा माँस रस का ब्राथ वैक्सीन। | 2 से $5^o$ से. वाले प्रशीतक में 6 माह तक | 3 माह तक | अन्तः पेशीय | 0.5 मिली /पक्षी |

नोट – * तथा ** टीकों में 4–5 दिन का अन्तर तथा *** और **** टीकों में 10 से अधिक का अन्तर रखते हैं।

## मुर्गियों की चेचक (Fowl Pox)

चेचक रोग सामान्यतः सभी आयु की मुर्गियों में प्रायः गर्मियों में होता है। लेकिन अक्सर कम उम्र (8 से 12 सप्ताह) के पक्षियों में यह रोग होता है। इससे पक्षी कमजोर हो जाते है और काफी पक्षी मर जाते हैं। जिन पक्षियों में यह रोग एक बार हो जाता है। उनमें अक्सर दुबारा यह चेचक रोग नहीं होता है। एक बार प्रारम्भ हो जाने पर यह रोग तेजी से फैलता है। खासतौर से यह बीमारी मुर्गी एवं टर्की में होती है। लेकिन कबूतर, बत्तख तीतर तथा बटेरों में भी चेचक रोग होता है।

**कारक (Etiology) :–** यह वायरस द्वारा फैलने वाला रोग है। मुर्गियों में यह बोरेलिओटा एबियम (*Borreliota avium*) टर्की में बोरेलिओटा मेलिग्रेडिस (*B. meleagridis*) तथा कबूतर में बोरेलिओटा कोलुम्बी (*B.columbae*) स्ट्रेन से फैलता है।

**लक्षण (Symptons) :–** मुर्गियों में चेचक तीन प्रकार की होती हैं।

1. सूखी चेचक जिसे त्वचीय (cutaneous) चेचक भी कहते हैं इसमें कलंगी, गलचर्म तथा चेहरे पर सूखी पपड़ी की तरह प्रकोप दिखाई देता है।
2. आर्द्र चेचक (Wet pox) इसे डिप्थीरिया टाइप की चेचक कहते हैं। मुख तथा ग्रासनली की म्यूकस झिल्ली Mucus membrance) इसमें प्रभावित होती है।
3. तीसरी प्रकार की चेचक में कोराइजा (Coryza like) बीमारी के से लक्षण दिखाई देते हैं। इसमें नासिका में संक्रमण होता है।

   उपरोक्त तीनों प्रकारों के सामूहिक लक्षण निम्न प्रकार दिखाई देते हैं।

1. पक्षी की कलंगी, चेहरे, चोंच, टाँग, पलक तथा त्वचा पर छोटे–छोटे फफोले पड़ जाते हैं। जो शुरु में हल्के भूरे रंग के तथा बाद में गहरे भूरे रंग के होकर सूखने लगते हैं। तीन चार सप्ताह बाद सूखी त्वचा (खुरंट) शरीर से गिरने लगती है।
2. मुर्गियों में तेज बुखार हो जाता है।
3. श्वास नली में सूजन तथा इससे लसदार पदार्थ का स्राव होता है।
4. सिर में सूजन होती है। जिससे पक्षी मर जाते हैं।
5. अति तीव्रता की स्थिति में आँख, मुँह तथा गले में हल्के पीले रंग की झिल्ली पड़ जाती हैं। जिसके नीचे छोटी–छोटी दानेनुमा रचना दिखायी देती हैं।

**उपचार (Treatment) :-** इस बीमारी का कोई संतोषजनक उपचार नहीं है। लेकिन निम्न प्रकार उपचार देने पर पक्षियों को कुछ फायदा होता है।

1. रोग की साधारण अवस्था में उस पर पड़ी पपड़ियों को खुरच कर हटा देने से पशु को तनाव से कुछ मुक्ति मिलती है। लेकिन तीव्र रोग होने पर पपड़ियों को खुरचना हानिकारक सिद्ध हो सकता है।
2. घाव पर सिल्वर नाइट्रेट तथा पिकरिक अम्ल का घोल लगाना चाहिए।
3. शरीर पर कार्बोलेटिक वैसलीन 10% लगाना चाहिए। लेकिन आँख एवं मुँह पर प्रभाव होने पर उपरोक्त उपचार प्रायः नहीं करते। ऐसे स्थानों पर ग्लिसरीन का प्रयोग करते हैं।

**रोकथाम (Prevention and control) :–** चेचक रोग एक बार शुरु हो जाता है तो फिर उसकी रोकथाम नहीं कर सकते हैं। रोकथाम का एक मात्र उपाय रोग रोधी चेचक के टीके लगाना है। चेचक को रोकने के दो किस्म के टीके लगाते हैं।

1. पिजियन पॉक्स वैक्सीन– इसके लगाने से चूजों की सुरक्षा होती हैं। और इसका असर केवल तीन महीने तक ही रह पाता है।
2. फाउल पॉक्स वैक्सीनः– इसके लगाने से पक्षियों को इस रोग से आजीवन सुरक्षा रहती है।

फाउल पाक्स वैक्सीन का टीकाकरण गर्मी प्रारम्भ होने से पहले ही कर देते है। इस वैक्सीन में ग्लिसरीन या नमक का पानी टीका लगाने से ठीक पहले ही मिलाना चाहिये। चूजों के देने में कई बार सुई चुभो कर दवा को शरीर में प्रवेश कराते है। बची रह गई वैक्सीन को जला दे तथा खाली शीशी को सुरक्षित स्थान पर फेंक दे। एक दड़बे की सभी मुर्गियों को एक साथ टीके लगाये। क्योंकि टीका लगी मुर्गियों से उसी दड़बे की बिना टीका लगी मुर्गियों में यह रोग फैल सकता है।

जब चेचक का खतरा हो तो एक माह से कम उम्र के चूजों में एवं अण्डा देने वाली मुर्गियों में पिजियन पॉक्स वैक्सीन का टीका लगाना चाहिये। बाकी पक्षियों में फाउल पॉक्स वैक्सीन का टीका लगाते है। गर्मियों में पैदा हुये बच्चे कमजोर होते है। इसलिये उनमें पहले पिजियन पॉक्स वैक्सीन तथा बाद में फाउल पॉक्स वैक्सीन का टीका लगाना चाहिये। यह टीकाकरण 6 से 8 सप्ताह की आयु के चूजों में करना सबसे अच्छा रहता है।

## खूनी पेचिस (Coccidiosis)

खूनी दस्त या खूनी पेचिस अक्सर छोटी उम्र (3 से 12 माह) के चुजो में होने वाला रोग है। जब दड़बे में अचानक अधिकांश चूजे मर जाये तो इस अचानक मृत्यु का कारण खूनी पेचिस होती है।

**कारक (Etiology)–** खूनीपेचिस (काक्सीडिया रोग) एक कोशीय प्रोटोजोआन समूह से फैलता है।

ये प्रोटोजोआन समूह सैकड़ो प्रकार की होती है। जिनमें से 9 ऐमेरियागण (Genus-*Eimeria*) की पक्षियों के स्वास्थ को प्रभावित करती है। इन 9 में से भी तीन *इ० टेनिल्ला* (*Eimeria tenella*) *इ० नेकाट्रिक्स* (*Eimeria necatrix*) तथा *इ० एसरबुलीना* (*Eimeria acervulina*) सबसे अधिक हानिकारक है।

**लक्षण (Symptoms) :–**

1. खूनी पतले दस्त चूजों को लग जाते है तथा कभी कभी भूरे पीले रंग का पदार्थ भी गुदा मार्ग से बाहर निकलता है।
2. पक्षी खाना पीना बन्द कर देते हैं।
3. खून की कमी से पैर एवं शरीर पीले पड़ जाते हैं।
4. पक्ष नीचे की तरफ लुढक जाते हैं।
5. रोगी पक्षी सुस्त होकर चक्कर काटने लगते हैं तथा बैठने पर पलकें झपकने लगती हैं। तथा पक्षियों की मृत्यु हो जाती है।
6. बड़ी आंत का ऊपरी भाग बढ़ जाता है तथा उसमे पीले भूरे रंग का पदार्थ या रक्त भरा होता है। इन्ही पदार्थो के इकट्ठा होते रहने से ऑत की कोशिकाएँ फट जाती है।

**उपचार (Treatment) :–**

1. सल्फामेजाथीन तथा सल्फाक्यूनोजाइलीन की 0.05 प्रतिशत तथा 0.1 प्रतिशत मात्रा पीने के पानी के साथ देनी चाहिये।
2. इस बीमारी में कुछ काक्सीडियोस्टेट जैसे काड्रीनाल, बाइफूरान, डायोडीन, सल्फेट, इम्बाजिन, एस्प्राल आदि दवाईयाँ भी चूजों की निर्धारित मात्रा में देते है।

**रोकथाम (Prevention and Contorl) :–**

1. मुर्गीधर की नियमित सफाई करते रहे।
2. समय–समय पर मुर्गीशाला को कीटाणुरहित करते रहना चाहिए।
3. चूजो को सन्तुलित आहार देकर रोग का आक्रमण सहन करने की शक्ति बढ़ाये।
4. थोडी मात्रा में कोक्सीडियोस्टेट देना भी लाभप्रद रहता है।

## महत्त्वपूर्ण बिन्दू

1. मुर्गीपालन में मुर्गियों के साथ–2 बत्तख, बड़ी मुर्गी (टर्की), तथा बटेर आदि अण्डे देने वाले पक्षी भी सम्मिलित हैं।
2. हमारे देश में मुर्गीपालन व्यवसाय में आन्ध्रप्रदेश का पहला स्थान है।
3. राजस्थान में अजमेर मुर्गीपालन व्यवसाय में अग्रणी जिला है।
4. वे अण्डे अउर्वर कहलाते हैं, जिन्हें मुर्गियाँ बिना मुर्गों के देती हैं तथा जिनसे चूजे उत्पन्न नहीं हो सकते हैं।
5. रोड आईलैण्ड रेड, मुर्गी की द्विप्रयोजनी नस्ल है।
6. मुर्गी की प्लाइमाउथ रॉक नस्ल का माँस व्यापारिक दृष्टि से उच्च कोटि का होता है।
7. कवच के भार का लगभग 94% कैल्शियम कार्बोनेट से बना होता है।
8. अण्डे के चौड़े सिरे पर वायु स्थान होता है।
9. कुक्कुट आवास तथा उसमें काम में आने वाले उपकरण इस प्रकार के हों जिससे उनकी सफाई आसानी से की जा सके।
10. रानीखेत बीमारी पैरामिक्सोवायरस टाइप–1 द्वारा होती है।
11. रानीखेत बीमारी का मुख्य लक्षण हॉफते हुए पक्षी द्वारा मुँह खोल कर श्वॉस लेना तथा पैर एवं पखों मे लकवा होना है।
12. रानीखेत बीमारी की रोकथाम के लिए प्रथम दिन $F_1$ Strain तथा आठ सप्ताह की आयु पर $R_2B$ Strain वैक्सीन का टीका लगाते हैं।
13. मुर्गियों का चेचक रोग अक्सर कम उम्र (आठ से बारह सप्ताह) के पक्षियों में होता है।
14. एक माह से कम उम्र के चूजों एवं अण्डे देने वाली मुर्गियों में चचेक की रोकथाम के लिए पिजियन पॉक्स वैक्सीन का टीका लगाते है।
15. खूनी पेचिस (Coccidiosis) अक्सर छोटी उम्र के चूजो में होने वाला रोग है।

## अभ्यास प्रश्न

**बहुचयनात्मक प्रश्न–**

1. प्राचीन काल में लड़ाई के लिए मुर्गी की कौन सी नस्ल पाली जाती थी ?
   (अ) व्हाइट लैगहॅार्न (ब) रोड आयलैंड रैड
   (स) असील (द) कड़कनाथ
2. केन्द्रीय पक्षी अनुसंधान संस्थान कहाँ पर स्थित है ?
   (अ) दिल्ली (ब) लखनऊ
   (स) मुजफ्फरनगर (द) इज्जतनगर
3. वर्तमान में हमारे देश में प्रति व्यक्ति अण्डों की उपलब्धता है–
   (अ) 57 अण्डे (ब) 36 अण्डे
   (स) 45 अण्डे (द) 30 अण्डे

4. अण्डा उत्पादन के लिये मुर्गी की सबसे अच्छी नस्ल हैं।
   (अ) रोड आइलैण्ड रेड (ब) असील
   (स) रेड कोर्निस (द) व्हाइट लैगहॉर्न
5. व्हाइट लैगहॉर्न नस्ल की मुर्गी का मूल स्थान बताईये।
   (अ) अमेरिका (ब) इटली
   (स) इंगलैण्ड (द) जर्मनी
6. अण्डे की जर्दी को मध्य में स्थिर रखने का कार्य करता है–
   (अ) कवच झिल्लियाँ (ब) श्वेतक या एल्ब्यूमिन
   (स) श्वेतक रज्जु या चैलेजा (द) कवच
7. मुर्गियों हेतु आवास की विस्तृत प्रणाली में रैन बसेरे में प्रति पक्षी स्थान दिया जाता हैं–
   (अ) 1 वर्ग फुट (ब) 1½ वर्ग फुट
   (स) 2 वर्ग फुट (द) ½ वर्ग फुट
8. रानीखेत बीमारी का दूसरा नाम है –
   (अ) न्यूकैसल रोग (ब) मेरेक रोग
   (स) फाउलकोराइजा (द) फाउल कोलेरा

**अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–**

9. हमारे देश में किस नस्ल के चूजे सर्वप्रथम अमेरिका से मंगवाये गये?
10. राजस्थान का मुर्गीपालन में अग्रणी जिला कौनसा है ?
11. अण्डे में कौन–2 से अवयव पाये जाते हैं ? उनके नाम लिखिए।
12. कुक्कुट फार्म पर निषेचित अण्डे प्राप्त करने के लिए मुर्गियों व मुर्गों का अनुपात लिखो।
13. सफेद मॉस किसे कहते हैं?
14. प्राचीन समय में मुर्गीपालन व्यवसाय जोखिम भरा क्यों माना जाता था?
15. अण्डे में पाये जाने वाले प्रमुख खनिज तत्वों के नाम लिखो।
16. अमेरिकन वर्ग की मुर्गी की चार नस्लों के नाम लिखिये।
17. मुर्गी के आहार में कौन–2 से भोजन के अवयव होने चाहिए?
18. ब्रॉयलर को लगभग कितनी आयु में बेच देना चाहिए?
19. अर्द्ध–सघन आवास प्रणाली में 50 से अधिक पक्षी होने पर प्रति पक्षी कितना स्थान दिया जाना चाहिए?
20. पिंजरा क्रम प्रणाली में एक पक्षी के लिए पिंजरे का आकार लिखिए।
21. पक्षियों को ग्रिट खिलाने का क्या उद्देश्य है ?
22. रानीखेत बीमारी का कोई एक मुख्य लक्षण लिखिए।
23. मुर्गीयों के चेचक रोग का कारक लिखिए।

**लघूत्तरात्मक प्रश्न–**

24. अण्डे में पाये जाने वाले अवयवों को सारिणी रुप में प्रदर्शित कीजिए।
25. मुर्गी मॉस (चिकन) में कौन–2 से अवयव कितनी मात्रा में पाये जाते हैं? सारिणी बनाइये।
26. व्हाइट लैगहॉर्न नस्ल की मुर्गी की शारीरिक विशेषताऐं लिखिऐ।
27. प्लाइमाउथ रॉक नस्ल की मुर्गी की उपयोगिता लिखिऐ।
28. अण्डे के पीतक या जर्दी में भ्रूण के पोषण के लिए कौन–कौन से पदार्थ उपलब्ध होते हैं?
29. मुर्गीपालन के उद्देश्य संक्षेप मे लिखो।
30. मुर्गियों के सन्तुलित आहार में कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, खनिज व विटामिन्स सम्बन्धी आहारों की कितनी–2 मात्रा शामिल की जानी चाहिए?
31. विस्तृत प्रणाली (Extensive System) का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
32. मुर्गियों को कौन–2 से हरे चारे खिलाने चाहिए? और क्यों?
33. कुक्कुट–आवास की अर्द्ध–सघन पद्धति का वर्णन करो।
34. रानीखेत बीमारी का उपचार बताइए।
35. मुर्गीयों में चेचक रोग अक्सर किस ऋतु एवं उम्र में होता है।

**निबन्धात्मक प्रश्न–**

36. हमारे देश में मुर्गीपालन की वर्तमान स्थिति एवं महत्त्व का विस्तार से वर्णन कीजिए।
37. रोड आइलैण्ड रेड नस्ल की मुर्गी का मूल स्थान, वितरण, विशेषताऐं एवं उपयोगिता लिखिए।
38. रेड कोर्निस नस्ल की मुर्गी का विस्तृत वर्णन कीजिए।
39. अण्डे देने वाली मुर्गियों के लिए सन्तुलित आहार तैयार कीजिए?
40. ग्रोअर्स आहार क्या हैं? एक सन्तुलित ग्रोअर्स आहार (Grower's ration) क्या है? एक सन्तुलित ग्रोअर आहार कैसे तैयार किया जा सकता है? सारिणी रुप में प्रदर्शित कीजिए।
41. मुर्गियों के लिए आहार का प्रबन्ध करते समय किन–2 बातों का ध्यान रखना चाहिए?
42. कुक्कुट–आवास में काम आने वाले प्रमुख उपकरणों का वर्णन कीजिए।
43. मुर्गियों के खूनी पेचिस बीमारी का कारण, लक्षण, उपचार तथा रोकथाम का वर्णन कीजिए।

**उत्तरमाला–**

1. (स) 2. (द) 3. (अ) 4. (द) 5. (ब) 6. (स) 7. (अ) 8. (अ)

## परिशिष्ट – 1

| | | |
|---|---|---|
| आइसोबार (Isobar) | – | मानचित्र पर समान वायुमण्डलीय दाब वाले क्षेत्रों को जोड़ने वाली आभासी रेखाएँ। |
| आइसोनेफ (Isoneph) | – | मानचित्र पर समान बादल आच्छादन को जोड़ने वाली आभासी रेखाएँ। |
| आइसोबाथ (Isobath) | – | मानचित्र पर समान जल स्रोत या जल स्तर से सतह पर समान ऊँचाई वाले क्षेत्रों को जोड़ने वाली आभासी रेखाएँ। |
| आइसोहाईट (Isohyte) | – | मानचित्र पर समान वर्षा वाले क्षेत्रों को जोड़ने वाली आभासी रेखाएँ। |
| आइसोटेक (Isotech) | – | मानचित्र पर समान वायु गति वाले क्षेत्रों को जोड़ने वाली आभासी रेखाएँ। |
| आइसोधर्म (Isodherm) | – | मानचित्र पर समान तापमान वाले क्षेत्रों को जोड़ने वाली आभासी रेखाएँ। |
| आइसोफोन (Isophene) | – | मानचित्र पर समान पौधों और पशुओं में निश्चित वृद्धि अवस्था प्रकट होने की समान तिथि वाले क्षेत्रों को जोड़ने वाली आभासी रेखाएँ। |

## परिशिष्ट – 2

### कृषि मौसम विज्ञान वेधशाला में प्रयुक्त होने वाले उपकरण

| उपकरण | | मौसम तत्व |
|---|---|---|
| अधिकतम तापमापी (Maximum Thermometer) | – | दिन का अधिकतम तापमान(°C) |
| न्यूनतम तापमापी (Minimum Thermometer) | – | दिन का अधिकतम तापमान (°C) |
| शुष्क बल्ब तापमापी (Dry bulb Thermometer) | – | वायु का तापमान (°C) |
| आर्द्र बल्ब तापमापी (Wet bulb Thermometer) | – | संतृप्त वायु का तापमान (°C) |
| तापलेखी (Thermograph) | – | वायु तापमान का सतत अंकन (°C) |
| मृदा तापमापी (Soil Thermometer) | – | मृदा तापमान (°C) |
| एनेराइड बेरोमीटर (Aneroid Berometer) | – | वायुमण्डलीय दाब (mm/bar/percal) |
| दाबलेखी (Barograph) | – | वायुमण्डलीय दाब का सतत अंकन (bar) |
| सामान्य वर्षामापी (Ordinary rainguage) | – | वर्षा की मात्रा (मिमी) |
| स्वतः अभिलेखी वर्षामापी (Self recording rainguage) | – | वर्षा की मात्रा का सतत अंकन / वर्षा तीव्रता |
| साइक्रोमीटर (Psychrometer) | – | आपेक्षिक आर्द्रता (%) |
| हाइग्रोमीटर (Hygrometer) | – | वायुमण्डलीय आर्द्रता (%) |
| असमान साइक्रोमीटर (Assman's Psychrometer) | – | फसल क्षेत्र में आपेक्षित आर्द्रता (%) |
| बाल आर्द्रतामापी (Hair hygrometer) | – | कक्ष में आपेक्षित आर्द्रता (%) |
| आर्द्रतालेखी (Hygrograph) | – | आर्द्रता का सतत संकन (°C) |
| वायुदिक सूचक यंत्र (Wind vane) | – | वायु की दिशा |
| वायु वेगमापी (Anemometer) | – | वायु वेग (किमी / घण्टा) |
| वाष्पनमापी (Evaporimeter) | – | वाष्पन की दर (मिमी / दिन) |
| हेलियोग्राफ (Heliograph) | – | सूर्य के चमकने की अवधि (घण्टे) |
| पायरेनोमीटर (Pyrenometer) | – | आवक सौर विकिरण की कुल मात्रा |
| पिरहेलियोमीटर (Pyrheliometer) | – | प्रत्यक्ष सौर विकिरण |
| क्वान्टम सेन्सर (Quantum Sensor) | – | प्रकाश संश्लेषण के प्रति सक्रिय विकिरण |
| शैडिंग पायरेनोमीटर (Shadding pyranometer) | – | विसरित सौर विकिरण |
| नेट रेडियेटर (Net radiater) | – | शुद्ध सौर विकिरण |
| पायरेजियोमीटर (Pyregiometer) | – | दीर्घ तरंग विकिरण (μ) |
| इन्फ्रारेड तापमापी (Infrared Thermometer) | – | पादप सतह का तापमान (°C) |

# खण्ड—ब

## प्रायोगिक

# प्रायोगिक
# (Practical)
## इकाई – 1

## प्रयोग – 1 मौसम विज्ञान के यंत्रों का प्रारम्भिक ज्ञान एवं प्रयोग

### विधि :–

**(i) वर्षामापी यंत्र (Rain gauge) :–** वर्षा को वर्षामापी यंत्र की सहायता से मिमी. में मापते है। वर्षा मापने की सबसे सामान्य एवं प्रचालित विधि वर्षा मापी यंत्र के उपयोग से है। वर्षा मापी यंत्र दो प्रकार के होते है –

(1) साधारण वर्षा मापी यंत्र – इसको सिमोन्स का साधारण वर्षा मापी यंत्र (Symon's ordinary rain gauge) भी कहते है इसके द्वारा किसी भी दिन हुई वर्षा की कुल मात्रा ज्ञात की जा सकती है।

(2) स्वअंकित वर्षा मापी यंत्र – इस यंत्र द्वारा वर्षा की कुल मात्रा के साथ–साथ किसी भी समय हुई वर्षा की मात्रा तथा वर्षा की तीव्रता भी ज्ञात की जा सकती है।

अधिकांशतः मौसम वेधशालाओं में सिमोन्स का साधारण वर्षा मापी यंत्र प्रयोग में लिया जाता है। इसके चित्रानुसार निम्न भाग होते है –

संग्राहक (Collector) या कीप (funnel), बेलनाकार हिस्सा, गृहीता बोतल (Receiver bottle), आधार (Base) एवं नपना गिलास (Measuring Cylinder)। इसे कृषि प्रक्षेत्र या मौसम वेधशाला में इस तरह से स्थापित करते है कि आधार भाग सतह से 30 सेमी ऊंचाई पर हो।

### विधि–

1. वर्षा समाप्त होने के बाद वर्षामापी यंत्र से संग्राहक/कीप को हटा कर अलग कर लेते है तथा गृहीता बोतल को बाहर निकाल लेते है।
2. गृहीता बोतल में एकत्र वर्षा जल को सावधानी से नपना गिलास में भर लेते है।
3. नपना गिलास से वर्षा की मात्रा (मिमी. में) ज्ञात कर लेते है।

### प्रेक्षण :–

(अ) वर्षा होने की दिनांक – ______________________________

(ब) नपना गिलास में एकत्र जल की मात्रा – ____________ मिमी./मिली.

(स) वर्षा मापी यंत्र के कीप की त्रिज्या – ____________ सेमी.

वर्तमान में आ रहे वर्षा मापी यंत्र के आने वाले नपना गिलास को यंत्र के कीप की त्रिज्या के हिसाब से ही बनाया जाता है। अतः गृहीता बोतल से वर्षा जल नपना गिलास में लेकर प्रत्यक्ष तौर पर वर्षा की मात्रा (मिमी.) ज्ञात की जाती है। यदि वर्षामापी यंत्र के साथ का नपना गिलास टूट गया हो या बदल गया हो तो प्रयोगशाला में काम में आने वाले नपना गिलास की सहायता से निम्न गणना द्वारा वर्षा की मात्रा ज्ञात की जा सकती है।

### गणना :–

इस हेतु निम्न सूत्र प्रयोग करते है।

$$\text{दैनिक वर्षा मात्रा (सेमी. में)} = \frac{\text{गृहीता बोतल में एकत्र वर्षा जल की मात्रा (मिली.)}}{\text{कीप का क्षेत्रफल (वर्ग सेमी.)}}$$

कीप का क्षेत्रफल $= \pi r^2 = \frac{22}{7}$ X (कीप की त्रिज्या)$^2$

**उदाहरण :–** 10 अगस्त 2015 को वर्षामापी यंत्र के जल गृहीता पात्र में एकत्र जल को मापने पर उसकी मात्रा 20.7 मिली. पाई गई। यदि वर्षामापी कीप का व्यास 12.6 सेमी. हो तो वर्षा की मात्रा मिमी. में ज्ञात कीजिए।

दैनिक वर्षा मात्रा (सेमी. में) $=$ $\frac{\text{गृहीता बोतल में एकत्र वर्षा जल की मात्रा (मि.ली.)}}{\text{कीप का क्षेत्रफल (वर्ग सेमी.)}}$

यहाँ –

(i) मापक सिलिण्डर में एकत्र वर्षा जल = 20.7 मिली.

(ii) कीप का व्यास = 12.6 सेमी.

(iii) वर्षा की मात्रा (=?)

अतः वर्षा की मात्रा $= \frac{20.7}{\pi r^2}$ (सेमी.) (क्योंकि त्रिज्या) (r) = व्यास / 2

$$= \frac{20.7}{\frac{22}{7} \times \left(\frac{12.6}{2}\right)^2} \text{ सेमी.}$$

$$= \frac{20.7 \times 7}{22 \times (6.3)^2} \text{ सेमी.}$$

$$= \frac{20.7 \times 7}{22 \times 6.3 \times 6.3} \text{ सेमी.} = \frac{144.9}{873.18} \text{ सेमी.} = 0.16 \text{ सेमी.} = 1.6 \text{ मिमी.}$$

**परिणाम –** दिनांक 10 अगस्त 2015 को 1.6 मिमी. वर्षा हुई।

**सावधानियां–**

1. वर्षामापी यंत्र के आसपास पर्याप्त दूरी तक कोई वृक्ष, दीवार, मकान आदि नहीं होना चाहिए।
2. यंत्र को भूमि से कम से कम 30 सेमी. ऊंचाई पर स्थापित करना चाहिए, अन्यथा वर्षा जल की बूंदे उछल कर वर्षामापी पात्र में गिर सकती है, इससे पाठ्यांक में अशुद्धि आ सकती है।
3. ओला वृष्टि होने पर इन्हे पिघालने के लिए ज्ञात मात्रा में गर्म जल को मिला देते है, कुल आयतन में से ज्ञात आयतन के गर्म जल (मिलीलीटर) को घटा कर वास्तविक वर्षा जल की मात्रा ज्ञात कर लेनी चाहिए।
4. नपने गिलास से पाठ्यांक वर्षा जल से बने "U" यू की निचली सतह से ही लिया जाना चाहिए।

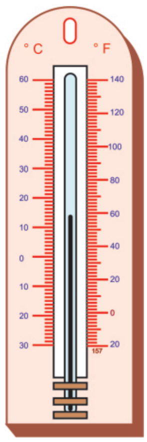


## (ii) सरल तापमापी (Simple Thermometer) :–

**उद्देश्य –** सरल तापमापी द्वारा तापक्रम ज्ञात करना।

**उपकरण –** सरल तापमापी।

सिद्धान्त – "द्रव्य का तापमान बढ़ने पर उसके आयतन में वृद्धि होती है।"

**बनावट एवं प्रयोग विधि –**

चित्रानुसार सरल तापमापी लेते है। इसमें अंकित प्लेट पर सेल्सियस व फॉरेनहाइट में तापक्रम अंकित रहता है इनके मध्य में थर्मामीटर लगा रहता है। थर्मामीटर में पारे की सतह को देखकर तापक्रम नोट कर लेते है। तापक्रम बढ़ने पर पारा फैल कर ऊपर की ओर उठता है, इसी तरह तापक्रम घटने पर पारे की सतह नीचे आ जाती है।

**प्रेक्षण सारणी –**

| क्र.सं. | दिनांक | समय | तापक्रम | |
|---|---|---|---|---|
| | | | °C | °F |
| | | | | |

**सावधानियाँ :–**

1. पाठ्यांक लेते समय उपकरण को आँख के सम्मुख रखा जाना चाहिए।

## (iii) उच्चतम व न्यूनतम तापमापी (Maximum & Minimum Thermometer)

**उद्देश्य –** उच्चतम व न्यूनतम तापमापी (Maximum & Minimum Thermometer) द्वारा दिन का अधिकतम व न्यूनतम तापमान, तापान्तर एवं औसत तापमान ज्ञात करना।

आवश्यक उपकरण – उच्चतम व न्यूनतम तापमापी, काला कार्बन कागज।

सिद्धान्त – द्रव्य का तापमान बढ़ने पर उसके आयतन में वृद्धि होती है तापमान घटने पर आयतन में कमी आ जाती है।

**सूत्र –**

(i) $\text{औसत तापमान} = \frac{\text{उच्चतम तापमान} + \text{न्यूनतम तापमान}}{2}$

(ii) तापान्तर = उच्चतम तापमान – न्यूनतम तापमान

**प्रयोग विधि –**

1. जैसे कि उच्चतम न्यूनतम तापमापी स्टीवेन्सन स्क्रीन में रखे होते है अत : स्टीवेन्सन स्क्रीन (Stevenson Screen) का दरवाजा खोलकर क्रमशः अधिकतम तापमापी से 0.1° C की शुद्धता तक पाठ्यांक लेते है और उसकी यथार्थता (Correctness) को जाँचते है।
2. तापमापी से पाठ्यांक लेते समय सावधानी से पारे के स्तम्भ को उसकी चमक के आधार पर देखते है।
3. यदि तापमापी का पैमाना स्पष्ट दिखाई नहीं दे रहा है तो उसके पीछे काला कार्बन कागज रखकर या तापमापी के पैमाने पर काला पदार्थ रगड़कर पोंछ देते है जिससे यह पैमाने के पाठ्यांकों में अच्छी तरह से भर जाता है और पाठ्यांक ज्ञात करने में आसानी होती है।
4. न्यूनतम तापमापी से पाठ्यांक लेते समय तापमापी की केशिका में उपस्थित नीले रंग के सूचक (Index) को देखते है। तापमापी के बल्ब के विपरीत दिशा की तरफ स्थित सूचक के भाग की स्थिति के आधार पर न्यूनतम तापमान 0.1° C की शुद्धता तक ज्ञात करते है।

**सावधानियाँ :–**

1. सौर विकिरण से बचाने के लिए इनको स्टीवेन्सन स्क्रीन में रखना चाहिए।
2. अधिकतम तापमापी का पाठ्यांक स्क्रीन में उपस्थित शुष्क बल्ब तापमापी के पाठ्यांक के बराबर या अधिक होना चाहिए अन्यथा तापमापी में खराबी हो सकती है।
3. अधिकतम तापमापी से प्रातः काल का पाठ्यांक लेने के बाद दिन में एक बार अगले पाठ्यांक के लिए व्यवस्थित (Set) करते है। इसके लिए स्क्रीन से तापमापी को उतार कर दायें हाथ में सावधानी पूर्वक पकड़ कर ऊपर नीचे $180^\circ$ के कोण पर घुमाते हुए हल्के झटके (Jerks) देते है और शुष्क बल्ब तापमापी से $\pm 0.3\,^\circ C$ तक पाठ्यांक को व्यवस्थित करके पुनः स्क्रीन पर यथास्थान लगा देते है।
4. न्यूनतम तापमापी का पाठ्यांक स्क्रीन में उपस्थित शुष्क बल्ब तापमापी के पाठ्यांक के बराबर या कम होना चाहिए अन्यथा तापमापी में खराबी हो सकती है।
5. न्यूनतम तापमापी से दोपहर का पाठ्यांक लेने के बाद दिन में एक बार व्यवस्थित करते है। इसके लिए तापमापी को आवश्यकतानुसार दाई या बाई तरफ से उतार कर सावधानीपूर्वक हल्का सा झुका कर (tilt) शुष्क बल्ब तापमापी से $\pm 0.6\,^\circ C$ तक पाठ्यांक को व्यवस्थित करके पुनः स्क्रीन पर यथास्थान लगा देते है।
6. पाठ्यांक लेते समय प्रेक्षक (Observer) की आंखे पाठ्यांक के समानान्तर होनी चाहिए।

**(iv) हाइग्रोमीटर (आर्द्रता मापी) :–** सामान्यतया कक्ष में आपेक्षिक आर्द्रता मापने के लिए हेयर हाइग्रोमीटर (Hair hygrometer) का प्रयोग किया जाता है। इस यंत्र में मानव का बाल संवेदनशील तत्व के रूप में प्रयुक्त होता है जो आर्द्रता ग्रहण करके फैलता है और शुष्क होने पर सिकुड़ता है। इस फैलाव और सिकुड़न की सहायता से संकेतक एक अंशाकित पैमाने पर दोलन करता है जिसकी सहायता से आपेक्षिक आर्द्रता प्रत्यक्ष तौर पर ज्ञात की जा सकती है।

अप्रत्यक्ष तौर पर स्टीवेन्सन स्क्रीन में उपस्थित शुष्क बल्ब तापमापी और आर्द्र बल्ब तापमापी के पाठ्यांक से रेग्नाल्ट सारणी की सहायता से आपेक्षिक आर्द्रता एवं ओसांक ज्ञात किया जाता है।

**(v) वायुदिक्सूचक यंत्र :–** इसकी सहायता से वायु की दिशा ज्ञात की जाती है।

उपकरण :– वायुदिकसूचक यंत्र, कुतुबनुमा।

सिद्धान्त :– वायु का नाम जिस दिशा की तरफ वायु बहती है (windward side) के आधार पर रखा जाता है। यंत्र का तीर सदैव पवनाभिमुख (windward side) रहता है तथा यंत्र का हल्का एवं चपटा हिस्सा वायु के जाने की दिशा (leeward side) की तरफ रहता है।

इस यंत्र को ऐसे स्थान पर एक लकड़ी या लोहे के खम्भे पर स्थापित करते है जहां आस – पास पेड़ पौधें, मकान एवं किसी प्रकार के अवरोध नहीं हो। स्थापना के समय ध्यान रखते है कि यंत्र की ऊंचाई पृथ्वी की सतह से 10 फीट (3.05 मी.) हो। कुतुबनुमा की सहायता से यंत्र की उत्तर दिशा वास्तविक उत्तर की दिशा की तरफ इंगित करती हुई निर्धारित करते है।

**विधि :–**

1. कुछ समय के लिए वायुदिक्सूचक यंत्र को ध्यान से देखते है और पवन आने की दिशा को पहचानते है।

2. यंत्र का तीर जिस दिशा की तरफ इंगित करता है उसको 16 बिन्दु दिशासूचक चित्र की सहायता से ज्ञात करते है।

**प्रेक्षण :—**

| क्र.सं. | दिनांक | पाठ्यांक का समय | वायु की दिशा |
|---|---|---|---|
| 1. | 17.12.2015 | पूर्वान्ह 7 बजे | (E) पूरब (पूर्वी) |
| 2. | 17.12.2015 | अपरान्ह 2 बजे | (W) पश्चिमी (पछुआ) |

**परिणाम :—**

उपर्युक्त प्रेक्षण से दिनांक 17.12.2015 को प्रातः 7 बजे पूर्वी व दोपहर 2 बजे पश्चिमी पवने प्रवाहित हुई।

**सावधानियाँ :—**

1. वायुदिक्सूचक का तीर पृथ्वी के समानान्तर होना चाहिए।
2. कुतुबनुमा द्वारा चारों छड़ों पर अंकित (E, W, N, S) को सही दिशा में व्यवस्थित कर लेते है।
3. तीर सुगमता पूर्वक घूमना चाहिए।
4. यंत्र के आसपास कोई वायु अवरोध (वृक्ष, इमारत) आदि नहीं होना चाहिए।

**इकाई :—** वायु दिशा प्रदर्शित करने की दो विधियाँ है :—

**दिशाएं :—** उत्तर(N), उत्तर उत्तर पूर्व (NNE), उत्तर पूर्व (NE), पूर्व उत्तर पूर्व (ENE), पूर्व (E), पूर्व दक्षिण पूर्व (ESE), दक्षिण पूर्व (SE), दक्षिण दक्षिण पूर्व (SSE), दक्षिण (S), दक्षिण दक्षिण पश्चिम (SSW), दक्षिण पश्चिम (SW), पश्चिम दक्षिण पश्चिम (WSW), पश्चिम (W), पश्चिम उत्तर पश्चिम (WNW), उत्तर पश्चिम (NW), उत्तर उत्तर पश्चिम (NNW)

**डिग्री :—** (उत्तर दिशा की तरफ से घड़ी के अनुसार) 360/0, 22.5, 45, 67.5, 90, 112.5, 135, 157.5, 180, 202.5, 225, 247.5, 270, 292.5, 315, 337.5

वायु दिशा पठन के समय स्थिर वायु जब यंत्र में कोई हलचल नहीं हो रही हो के लिए शांत (C) तथा अत्यधिक विचलन के समय (Variable, 999) अंकित करते है।

# प्रयोग – 2 दिये गये मृदा नमूने से मृदा नमी ज्ञात करना।

मृदा में नमी निम्नलिखित विधियों द्वारा ज्ञात की जा सकती हैं–

1. **देखकर व छूकर** – मृदा को देखकर व हाथ से छूकर नमी का पता लगाने की विधि सबसे पुरानी और सबसे अधिक प्रचलित है। मृदा की विभिन्न गहराइयों से ऑगर (Soil Auger) की सहायता या फावड़े से खोदकर मिट्टी के नमूने लेते हैं। इसके बाद निम्न तालिका से तुलना करके नमी का अन्दाजा लगाया जा सकता है।
2. **मिट्टी को सुखाकर भार लेकर नमी की मात्रा ज्ञात करना (भारात्मक विधि)** – इस विधि में 6 से 8 सेमी. व्यास वाली 3–4 सेमी. गहरी एल्युमिनियम की डिब्बियाँ (Moisture boxes) काम में लेते हैं। इन डिब्बियों में मृदा का नमूना ले लेते हैं जो कि 100 ग्राम से कम न हो। मिट्टी भरते ही ढक्कन बन्द कर दिया जाता है ताकि नमी उड़े नहीं। इसका भौतिक तुला की सहायता से वजन ले लेते हैं। इसके बाद इसे भट्टी (ओवन) में $105^0$ से. पर 48 घंटे के लिए या स्थिर वजन होने तक सुखाने के लिए रख देते हैं। भट्टी से निकाल कर सूखी मृदा का वजन ले लेते हैं। इसके बाद निम्न सूत्र की सहायता से नमी की मात्रा प्रतिशत में ज्ञात कर लेते हैं।

$$\text{मृदा नमी प्रतिशत} = \frac{\text{गीली मृदा का भार} - \text{शुष्क मृदा का भार} \times 100}{\text{शुष्क मृदा का भार}}$$

**तालिका स्पर्श द्वारा मृदा में नमी की मात्रा ज्ञात करने का चार्ट**

| पानी की मात्रा | पानी की मात्रा (प्रतिशत) | मृदा की बनावट स्पर्श | | |
|---|---|---|---|---|
| | | मोटे कणों वाली | मध्यम कणों वाली | बारीक कणों वाली |
| सुखी हुई | – | सूखी दानेदार, ढीली उँगलियों में से गिरने वाली। | सूखी, कभी–कभी ढेले बनते हैं परन्तु टूटने पर चूर्ण। | सख्त, दरार वाली। |
| कम | 50 या कम | सूखी दिखती है दबाव पर गेंद नहीं बनती है। | दबाव से आपस में जुड़ने वाली धारियाँ बनने वाली। | कुछ मुलायम दबाव से गेंद बनने वाली। |
| उचित | 50 से 75 | दबाव पर गेंद नहीं बनती। | प्लास्टिक–सी गेंद वाली बनती है। | गेंद बनने, अँगूठे व उँगलियों से पट्टी सी बनने वाली। |
| सबसे अच्छी | 75 से जल रखने की क्षमता तक | आपस में थोड़ी चिपकनेवाली। दबाव से कमजोर गेंद बनेगी। | गेंद बनने वाली चिकनी मिट्टी के अनुसार चिपकने वाली | आसानी से उँगलियों में पट्टी–सी बनने वाली। |
| उचित | भूमि के जल रखने की क्षमता | निचोड़ने पर पानी मिट्टी पर न आना | मोटे कणों वाली मृदा की तरह हाथ पर गेंद रखने से किनारे पर पानी। | मोटे कणों वाली मृदा की तरह। |
| बहुत ज्यादा गीली | जल रखने की क्षमता से ऊपर | मिट्टी को हाथ में रखने पर पानी का दिखाई देना। | दबाने से पानी निकल आता है। | दलदली तथा सतह पर पानी का आना। |

**आंकिक** – एक मृदा के ताजा नमूने का भार 200 ग्राम तथा इसे भट्टी में सुखाने के बाद वजन 170 ग्राम है तो मृदा में प्रतिशत नमी की मात्रा ज्ञात कीजिए।

**हल**– नमी प्रतिशत (भट्टी शुष्क भार के आधार पर)

$$\frac{200-170}{170} \times 100 = 17.6\%$$

**3. आयतनात्मक विधि से मृदा नमी ज्ञात करना** – इस विधि में शुष्क भार के आधार पर निकाली गयी नमी की मात्रा को मृदा स्थूलता घनत्व (Bulk density) से गुणा करके नियमानुसार नमी ज्ञात कर सकते हैं –

आयतनात्मक नमी की मात्रा = शुष्क भार के आधार पर नमी की मात्रा x स्थूलता घनत्व (ग्राम/से.मी.$^3$)

**उदाहरण** – पिछले उदाहरण में नमी की मात्रा 17.6 प्रतिशत है। यदि मृदा स्थूलता घनत्व 1.4 ग्राम/से. मी.$^3$ हो तो आयतन के आधार पर नमी की मात्रा निकालिये।

**हल**– सूत्र के अनुसार

नमी की मात्रा x स्थूलता घनत्व = $17.6 \times 1.4 = 24.64\%$

3. **अन्य विधियाँ** – इन विधियों के अलावा कुछ ऐसे उपकरण काम में लाये जाते हैं जिनसे अप्रत्यक्ष रुप से लेकिन शीघ्र मृदा नमी की मात्रा ज्ञात की जा सकती है। लेकिन ये महँगे हैं और बड़े क्षेत्रों में काम में नहीं लाये जा सकते अर्थात् इनका उपयोग परीक्षणों तक ही सीमित है। ये निम्न हैं –

1. टैन्शीयोमीटर
2. न्यूट्रान मॉइश्चरमीटर द्वारा आर्द्रता नापना
3. जिप्सम ब्लॉक विधि
4. इन्फ्रारेड तापमापी विधि

**आंकिक** – एक गीली मृदा के नमूने का डिब्बी सहित भार 210 ग्राम तथा शुष्क मृदा का भार डिब्बी सहित 180 ग्राम है। खाली डिब्बी का भार 40 ग्राम है। मृदा नमी प्रतिशत ज्ञात कीजिए।

नम मृदा नमूने का भार = नम मृदा डिब्बी सहित भार – खाली डिब्बी का भार

= 210–40 = 170 ग्राम

शुष्क मृदा नमूने का भार = शुष्क मृदा डिब्बी सहित भार – खाली डिब्बी का भार

= 180–40 = 140 ग्राम

$$\text{नमी } \% = \frac{\text{गीली मृदा का भार} - \text{शुष्क मृदा का भार} \times 100}{\text{शुष्क मृदा का भार}}$$

$$= \frac{170-140 \times 100}{140}$$

$$= \frac{30 \times 100}{140} = 21.4\%$$

## प्रयोग– 3 मृदा नमूने एकत्र करना।

**आवश्यक उपकरण –** खुरपी, फावड़ा, स्केल, बाल्टी, टीन या मोटे कागज का टैग, कपड़े अथवा पॉलीथीन की थैली, बेलन, छलनी।

**प्रयोग विधि –**

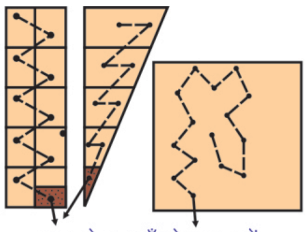


चित्र (अ) आयताकार, त्रिभुजाकार, वर्गाकार खेत से नमूना लेने का तरीका

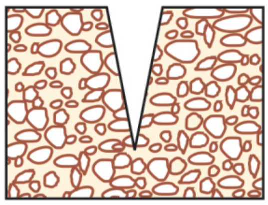

चित्र (ब) मिट्टी का नमूना लेते समय अंग्रेजी के ''V'' आकार का गड्ढा चित्रानुसार बनावें

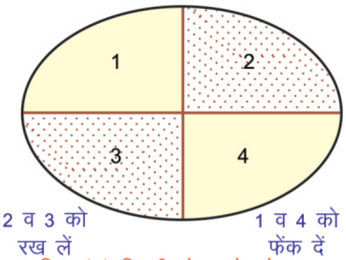


चित्र (स) मिट्टी के नमूने को इस प्रकार मिलाकर कम करें

1. मृदा के नमूने लेने का उचित समय फसल बोने से पूर्व का होता है। यदि इस समय समयाभाव के कारण नमूने लेना सम्भव न हो तो पिछली फसल की कटाई के पहले कूँडों अर्थात् पंक्तियों के बीच की जगह से मृदा नमूने लेने चाहिये।
2. सर्वप्रथम जिस खेत की मृदा के नमूने लेने है, उसे मृदा की समानता के अनुसार कई हिस्सों में विभाजित कर लें। खेत में 15 – 20 स्थानों को यादृच्छिक(Random) चयन से हल की गहराई (0–15 अथवा 0–20 सेमी. स्केल से नापकर) तक नमूना लेने के लिए छाँट लें।
3. अब हल की गहराई तक अँग्रेजी अक्षर "V" के आकार का गड्ढा खुरपी की सहायता से खोदें और गड्ढें से निकाली गई मृदा को अलग निकाल दे।
4. फिर खुरपी द्वारा "V" के ऊपरी छोरों से हल की गहराई तक लम्ब डालें। इस प्रकार गड्ढे की आकृति "M" जैसी हो जायेगी और इसकी मृदा खाली करने पर यह चौकोर गड्ढा बन जायेगा। इस पूरे गड्ढे की खाली की गई मृदा को बाल्टी में एकत्रित कर लें। इस ढंग से लिया गया यह नमूना ''प्राथमिक नमूना'' कहलाता है। ठीक इसी प्रकार अन्य स्थानों से भी मृदा के नमूने लेकर बाल्टी में एकत्रित करते रहें। तत्पश्चात् एकत्रित नमूनों को परस्पर भली प्रकार से मिला दें। जब इन प्राथमिक नमूनों को परस्पर भली प्रकार से मिला दिया जाता है, तो ये **प्रतिनिधि** अथवा **संकुल नमूने** कहलाते है।
5. अब सभी (15–20) मृदा नमूनों को परस्पर ठीक प्रकार से मिलानें के बाद स्वच्छ स्थान पर ढेर बना लें।
6. इस ढेर के आर – पार समान चार भाग बना ले। इन चारों भागों में से मृदा के एक भाग अर्थात् एक – चौथाई को रख लीजिए तथा शेष तीन – चौथाई भाग को फेंक दीजिए। पूर्वानुसार पूनः एक चौथाई मृदा का ढेर बनाकर उस समय तक विभाजित करते रहिये जब तक कि अन्त में लगभग 500 – 700 ग्राम मृदा बची रहे। इस प्रकार मृदा का लिया गया यह नमूना ही उस पूरे खेत की मृदा का सही – सही प्रतिनिधित्व करता है।
7. अब चरण – 6 से प्राप्त मृदा नमूने को छाया में सुखायें। भूल से भी नमूने को धूप में कदापि न सुखायें। अन्यथा धूप में सुखाने से नमूने मे उपस्थित पोषक तत्वों में अवांछनीय परिवर्तन हो जाते है।

8. नमूने को छायां में भली प्रकार से सुखाने के पश्चात् उसके ढेलों को बेलन से तोड़कर महीन कर लें। पौधों की जड़ों, खरपतवारों के अवशेषों, कंकड–पत्थर आदि को निकाल कर बाहर फेंक दें व नमूने की छलनी से छान लें।
9. तत्पश्चात् 400 – 500 ग्राम मृदा नमूने को एक साफ कपड़े अथवा पॉलीथीन की थैली में भर लें।
10. अब टीन या मोटे कागज के दो टैगों पर नमूना लेने की तिथि, नमूने की क्रम संख्या व गहराई, खेत संख्या तथा कृषक का नाम व पता लिखकर एक थैली के अन्दर रख दे एवं दूसरा थैली के ऊपर चिपका दे या थैली के ऊपर ही इन सभी बातों को स्याही से लिख दें।

इस प्रकार एकत्रित मृदा नमूने को अपने समीपवर्ती कृषि विज्ञान केन्द्र अथवा कृषि विभाग में स्थित किसी भी मृदा परीक्षण प्रयोगशाला में विश्लेषण हेतु प्रेषित कर सकते है।

**सावधानियाँ –**

1. नमूना लेने से पूर्व नमूना लेने वाले स्थान की घास–पात इत्यादि को खुरपी, फावड़े आदि से भली प्रकार साफ कर लेना चाहिए।
2. प्रत्येक खेत की मृदा का पृथक – पृथक नमूना लेना चाहिए। प्रतिनिधि नमूने के लिए सामान्यतः लगभग 2 हेक्टेयर समतल क्षेत्रफल के खेत को एक इकाई मानना चाहिए।
3. छोटे कृषकों के प्रत्येक खेत चाहे वह कितना ही कम क्यों न हो, पृथक–पृथक संकुल अथवा प्रतिनिधि नमूना लेना चाहिए।
4. यदि एक ही खेत के पृथक–पृथक हिस्सों से अलग–अलग तरह की खड़ी फसलें दृष्टिगोचर हों, उन हिस्सों की मृदा में अन्तर लगता हो, उन भागों में ढाल हो, मृदा रंग व गठन में अन्तर दिखाई देता हो, फसल प्रबन्ध व फसल चक्र में भिन्नता हो अथवा अलग –अलग प्रकार के खाद एवं उर्वरक प्रयोग में लाये गये हो, तो उस खेत के उन सभी भागों को समानता के आधार पर अलग – अलग मृदा वालें भागों में बाँटकर नमूने अलग – अलग लेने चाहिए।
5. यदि खेत जिससे नमूना लेना है, उसमें देशी हल का प्रयोग होता आया है, तो मृदा की ऊपरी सतह से 15 सेमी. की गहराई तक और यदि उसमें ट्रेक्टर आदि से गहरी जुताई की गई है, तो मृदा का नमूना 0 – 20 सेमी. की गहराई तक लेना चाहिए।
6. जहाँ फसलें पंक्तियों में उगाई गई हो, वहाँ पंक्तियों के बीच की मृदा से नमूने लेने चाहिए।
7. कूँड़ में डाली गई खाद एवं उर्वरक के अवशेष कदापि भी मृदा नमूने में सम्मिलित नहीं होने चाहिए। ऐसा खेत जिसमें फिलहाल ही खाद अथवा उर्वरक डाला गया है, उसमें से मृदा नमूने नहीं लेने चाहिए।
8. मृदा के नमूनों को उर्वरकों के खाली बोरों पर अथवा उर्वरकों के बोरों के पास कभी भी नहीं सुखाना चाहिए।
9. खाद के गड्ढों, ढालू स्थानों एवं वृक्षों के नीचे से कभी भी नमूना एकत्रित नहीं करना चाहिए।
10. खेत के उस भाग से नमूना कदापि नहीं लेना चाहिए जहां पर कि उर्वरक के बोरों को खोलकर उर्वरक का खेत में प्रयोग किया हो। कारण कि उर्वरक का कुछ न कुछ भाग खेत में गिर ही जाता है।

# प्रयोग 4

**उद्देश्य :–** आर.डी. बोतल से मृदा रंध्रावकाश (Porosity) की गणना करना

मृदा आयतन के भीतर ठोस पदार्थो से रहित रिक्त स्थान होता है, उसे मृदा रन्ध्र कहते है तथा मृदा के कुल आयतन का वह प्रतिशत भाग जो रिक्त होता है उसे मृदा सरंध्रता या रंध्रावकाश (Soil Porosity) कहते है। यह वायु एवं जल से भरे होते है। मृदा, कणों एवं रंध्रावकाश से मिलकर बनी होती है। इसकी गणना मृदा के स्थूलता घनत्व (Bulk density) एवं कण घनत्व (Particle density) की सहायता से की जा सकती है।

## स्थूलता घनत्व (Bulk density) ज्ञात करना :–

सिद्धान्त :– शुष्क मृदा के एक इकाई आयतन के भार को स्थूलता घनत्व कहते है। इसकी इकाई ग्राम प्रति घन सेमी. (g/cm) या मेगा ग्राम प्रति घन मीटर ($Mg/m^3$) होती है।

$$\text{स्थूल घनत्व (BD)} = \frac{\text{मृदा के कणों का द्रव्यमान}}{\text{मृदा का कुल आयतन}}$$

**आवश्यक उपकरण :–** ढक्कन रहित 50 मिली. क्षमता की आर.डी. बोतल (रिलेटिव डेंसिटी बोतल), रसायनिक तुला, ब्यूरेट,

**प्रयोग विधि :–**

1. 50 मिली. क्षमता की खाली आर.डी. बोतल (बिना ढक्कन) का वजन कर ले।
2. दिए गये मृदा नमूने की मृदा से इसे भरे और किनारे से मृदा हटाकर सपाट कर ले।
3. खेत की प्राकृतिक अवस्था में भराई प्राप्त करने के लिए बोतल को 2 –3 सेमी. की ऊंचाई से उठाकर लगभग 20 बार थपथपाएं (Tapping)।
4. इस थपथपाहट से खाली हुए स्थान को बोतल के किनारे तक पुनः भरे और इसका पुनः मृदा सहित वजन करें। इस प्रकार भरी हुई मृदा का आयतन बोतल के आयतन के बराबर होता है।
5. आर.डी. की बोतल को खाली करके एक ब्यूरेट की सहायता से पानी भरें और आवश्यक पानी की मात्रा अपने प्रेक्षण में लिखे।

**प्रेक्षण :–**

1. खाली आर.डी. बोतल का वजन : ..................... ($W_1$) ग्राम
2. मृदा सहित आर.डी. बोतल का वजन : .................. ($W_2$) ग्राम
3. आर.डी. बोतल को भरने के लिए प्रयुक्त पानी का आयतन ..................... (V) मिली. (मृदा का आयतन)

**गणना :–**

$$\text{स्थूल घनत्व (BD)} = \frac{W_2-W_1}{V} \quad \text{ग्राम/मिली या मेगा ग्राम/मी}^3$$

## कण घनत्व (Particle density) ज्ञात करना :–

**सिद्धान्त :–** जब ज्ञात द्रव्यमान की शुष्क मृदा में एक निश्चित आयतन का पानी मिलाया जाता है और हवा निष्कासित होती है, अपने समान आयतन के बराबर आयतन के पानी को विस्थापित करती है। मृदा कणों के आयतन की गणना विस्थापित हुए पानी के द्रव्यमान से करते है। शुष्क मृदा के द्रव्यमान एवं मृदा कणों के आयतन के अनुपात को मृदा का कण घनत्व कहते है।

**आवश्यक उपकरण :–** पिक्नोमीटर (100 मिली. आर.डी. बोतल), पिपेट (20 मिली.), वाश बोतल, आसुत जल, विद्युत तुला, हॉट प्लेट, फिल्टर पेपर, बीकर।

**प्रयोग विधि :–**

1. 10 ग्राम शुष्क मृदा ले और 150 मिली. बीकर में स्थानान्तरित करें। कुछ पानी डालें और कुछ समय के लिए धीरे–धीरे गर्म करें।
2. बीकर की सामग्री को ठण्डा करके वाश बोतल के पानी की धार की सहायता से 100 मिली. पिक्नोमीटर में स्थानान्तरित करें।
3. पिक्नोमीटर को आसुत जल से भरे और ढक्कन लगायें। फिल्टर पेपर की सहायता से पिक्नोमीटर की बाहरी सतह पर उपस्थित नमी पोंछे। अब मृदा एवं जल सहित पिक्नोमीटर का वजन ज्ञात करें।
4. पिक्नोमीटर को खाली करें, साफ करके पिपेट या वाश बोतल की सहायता से इसमें आसुत जल भरें।
5. फिल्टर पेपर की सहायता से पिक्नोमीटर की बाहरी सतह की नमी पोंछे। पानी सहित पिक्नोमीटर का वजन ज्ञात करें।

**प्रेक्षण :–**

1. मृदा का वजन : 10 ग्राम
2. मृदा एवं जल सहित पिक्नोमीटर का वजन ......................$W_1$ ग्राम
3. जल सहित पिक्नोमीटर का वजन : ......................... $W_2$ ग्राम

**गणना :–**

$$\text{कण घनत्व} = \frac{\text{मृदा का द्रव्यमान (ग्राम)}}{\text{मृदा कणों का आयतन (सेमी}^3\text{)}}$$

मृदा कणों (Soil Solids) का आयतन (मृदा द्वारा विस्थापित किए गये जल का द्रव्यमान)= $(W_2+10)-W_1$

$$\text{अतः कण घनत्व} = \frac{\text{मृदा का द्रव्यमान (10 ग्राम)}}{(W_2+10)-W_1} \quad \text{ग्राम / सेमी}^3 \text{ या मेगा ग्राम / मी}^3$$

**मृदा रंध्रावकाश की गणना :–**

$$\% \text{ कणावकाश (Soild space)} = \frac{\text{स्थूलता घनत्व (BD)}}{\text{कण घनत्व (PD)}} \times 100$$

चूंकि % कणावकाश + % रंध्रावकाश = 100

अतः % रंध्रावकाश = 100 – % कणावकाश

$$= 100 - \frac{BD}{PD} \times 100$$

$$= \left(1 - \frac{BD}{PD}\right) X100$$

**सावधानियाँ :–**

1. कण घनत्व ज्ञात करते समय पानी से संतृप्त करने पर मृदा नमूने से हवा निर्वासित होनी चाहिए, अन्यथा मृदा कणों का आयतन अधिक (over estimate) हो जायेगा।
2. पिक्नोमीटर का वजन करते समय इसकी बाहरी सतह को अच्छी तरह से साफ और शुष्क करें।

## प्रयोग 5

**उद्देश्य :–** दिए गये मृदा नमूने के द्वारा कणों का आकार (छलनी विधि) द्वारा ज्ञात करना।

**सिद्धांत :–**

$$\text{छिद्रों का व्यास (मिमी)} = \frac{16}{\text{मेश संख्या}}$$

अथवा

$$\text{छलनी के छिद्रो का आकार (मिमी)} = \frac{16}{\text{मेश प्रति 25.4 मिमी (अर्थात मेश प्रति इंच)}}$$

**आवश्यक उपकरण :–** रोटेरी सीव शेकर (Rotary Sieve Shaker), विभिन्न मेश की छलनियों का सेट, एकल पलड़े वाली तुला (Single pan balance), छोटी तश्तरी

**प्रयोग विधि :–**

1. सर्वप्रथम मृदा की प्रकृति के अनुसार विभिन्न मेश की 3–4 छलनियाँ ले और इन्हे परस्पर ऊपर से नीचे की ओर मेश संख्या के बढ़ते क्रम में व्यवस्थित कर लें।
2. तत्पश्चात् मृदा नमूने को एक तश्तरी में लेकर तुला पर वजन कर लें।
3. अब इस नमूने को सबसे ऊपर वाली छलनी पर सावधानी से बिना उड़े हुए पलट दें।
4. प्रथम छलनी के ऊपर ढक्कन बंद कर दे तथा सभी छलनियों के सेट को अच्छी तरह से कसकर बंद कर दें।
5. सेट को दोनो हाथों से मजबूती से पकड़कर एक निश्चित समय (लगभग 5 मिनट) तक गोल – गोल घुमाएं।
6. इसके पश्चात् लगभग 15 मिनट तक सेट को शांत रख दे। ऐसा करने से उड़ते हुए मृदा कण अलग – अलग मेश की छलनियों के रंध्रों के अनुसार बैठ जाएँगे।
7. अब प्रत्येक मेश की छलनी के मृदा कणों को तश्तरी में सावधानी से पलट कर अलग–अलग तोल ले। सभी वजन अपने प्रेक्षण में दर्ज कर लें।

**सावधानियाँ :–**

1. सबसे ऊपर वाली छलनी में मृदा नमूने को पलटते समय ध्यान रखे मृदा उड़े नहीं।
2. मृदा को छलनियों में हिलाने से पूर्व छलनियों के सेट के ढक्कन व रिसीवर कसकर बंद करने चाहिए।
3. छलनियों के सेट को हिलाते समय उनके पेंदे पृथ्वी की सतह के समानान्तर रहने चाहिए।
4. सेट को एक निश्चित समय तक हिलाने के बाद लगभग 15 मिनट के लिए शांत छोड़ दें जिससे उड़ते हुए मृदा कण आकार के अनुसार अपनी – अपनी छलनी में स्थिर हो जायेंगे।

**उदाहरण :–** किसी प्रक्षेत्र से लिए गये मृदा नमूने से कणाकार ज्ञात करने के लिए गृहीता (Receiver) के ऊपर 200, 100, 40 व 4 मेश वाली चार छलनियों का सेट क्रमशः व्यवस्थित किया गया। नमूने से 200 ग्राम मृदा लेकर उसे 16 मेश वाली छलनी में डालकर ढक्कन बंद कर दिया गया। अब इस सेट को दोनो हाथों से 5 मिनट तक पृथ्वी सतह से समानान्तर गोल – गोल हिलाया गया। मृदा कणों के छलनियों में व्यवस्थित होने के पश्चात् विभिन्न अंशों को तश्तरी में पलट कर वजन लिया गया जो कि क्रमशः 60 ग्राम, 40 ग्राम, 65 ग्राम व 35 ग्राम प्राप्त हुए। मृदा में उपस्थित विभिन्न कणों के आकार एवं उनकी प्रतिशत मात्रा ज्ञात कीजिए।

**हल :–** उपर्युक्त उदाहरण में दिए गये प्रेक्षणों के आधार पर हल निम्न प्रकार से है :–

| क्र.सं. | छलनी की मेश संख्या | मृदा कणों का आकार | मृदा कणों का भार (ग्राम) | मृदा कणों की प्रतिशतता |
|---|---|---|---|---|
| 1. | 4 | 16 / 4 =4 | 60 | 30.00 |
| 2. | 40 | 16 / 40 =0.4 | 40 | 20.00 |
| 3. | 100 | 16 / 100 =0.16 | 65 | 32.50 |
| 4. | 200 | 16 / 200 =0.08 | 35 | 17.50 |

दिए गये मृदा नमूने के कणों का व्यास 4मिमी, 0.4 मिमी, 0.16 मिमी और 0.08 मिमी है जिनकी मात्रा क्रमशः 30.00, 20,00, 32.50 एवं 17.50 प्रतिशत है।

# प्रयोग – 6 खाद एवं उर्वरकों की पहचान एवं प्रयोग विधि

विधि – उर्वरकों की पहचान उनको देखकर, छूकर, रंग व गुणों के आधार पर की जा सकती है। कुछ प्रमुख उर्वरकों के नाम उनके तत्वों सहित निम्न सारणी में दिये जा रहे हैं –

| क्र.सं. उर्वरक का नाम | प्रतिशत पोषक तत्व | | |
|---|---|---|---|
| | नाइट्रोजन | फॉस्फोरस | पोटाश |
| नाइट्रोजनयुक्त | | | |
| 1. अमोनियम सल्फेट | 20.6 | – | – |
| 2. अमोनियम क्लोराइड | 26 | – | – |
| 3. अमोनियम सल्फेट नाइट्रेट | 26 | – | – |
| 4. कैल्सियम अमोनियम नाइट्रेट | 25 | – | – |
| 5. अमोनियम नाइट्रेट | 33 –34 | – | – |
| 6. यूरिया | 46 | – | – |
| फॉस्फोरसयुक्त | | | |
| 1. सुपर फॉस्फेट एकल | – | 16 | – |
| 2. सुपर फॉस्फेट त्रिगुण | – | 48 | – |
| 3. डाइ अमोनियम फॉस्फेट | 18 | 46 | – |
| 4. डाइकैल्सियम फॉस्फेट | – | 34–39 | – |
| 5. रॉक फॉस्फेट | – | 20 से 40 | – |
| पोटाशयुक्त | | | |
| 1. पोटैशियम क्लोराइड | – | – | 60 |
| 2. पोटैशियम सल्फेट | – | – | 50 |

## मुख्य उर्वरकों की पहचान करना –

यूरिया – यह दोनदार उर्वरक है। इसके दाने मोती की तरह गोल और सफेद होते हैं। इसे खुला छोड़ने पर वातावरण से नमी सोख लेता है।

किसान खाद (कैल्सियम अमोनियम नाइट्रेट, CAN) – यह भी आर्दताग्राही उर्वरक है जो वातवरण से नमी सोख लेता है। इसके दाने रंग और आकार में ग्वार के दानों से मिलते–जुलते हैं।

सुपर फॉस्फेट एकल – यह दानेदार और पाउडर दोनों रुपों में होता हैं। इसका रंग भूरा होता है, दाने बिल्कुल गोल लेकिन छोटे–बड़े होते हैं। पाउडर रुप में यह राख की तरह लगता है।

डाइअमोनियम फॉस्फेट – इसके दाने कंकर की तरह अनियमित आकार के होते है।

म्यूरेट ऑफ पोटाश – यह दो रुपों में उपलब्ध हैं। एक रुप में इसके दाने नमक की तरह होते हैं। दूसरे में इसके दाने नमक मिर्च मिश्रण की तरह होते हैं।

उर्वरक प्रयोग विधि के लिए अध्याय–4 देखे।

## जैविक खादों की पहचान एवं प्रयोग विधि

जैविक खाद वो खाद है जो प्राकृतिक अथवा कृत्रिम जैव अंशों से प्राप्त होती है जिसमें पेड़–पौधों, पशु–पक्षियों का मल–मूत्र व अन्य अवशेष सम्मिलित है । इनमें पौधों के लिए आवश्यक सभी

पोषक तत्व कम या अधिक मात्रा में पाये जाते है। पोषक तत्वों की मात्रा के आधार पर इन्हें दो भागों में बांटा गया है। प्रथम है भारी कार्बनिक या जैविक खाद जिनमें पोषक तत्वों की मात्रा बहुत ही कम होती है तथा ज्यादा मात्रा में प्रयोग में लाये जाते है जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट, हरी खाद, मानव विष्ठा की खाद (नाइट सोइल), चिड़ियों की बींठ, गन्दें नालों का पानी तथा अपवंशक (सेवेज एवं स्लज), मैली की खाद (प्रेस मड), शीरा(मोलासेज), तालाब की मिट्‌टी(टैंकेज), जल कुम्भी की खाद, मतस्य चूर्ण इत्यादि सम्मिलित किए जाते है। दूसरा है हल्की जैविक खाद जिनमें पोषक तत्वों की मात्रा ज्यादा होती है तथा कम मात्रा (भार के संदर्भ) में प्रयोग में लिए जाते है जैसे खलियां, हड्‌डी का चूरा, सूखा रक्त तथा मछली की खाद प्रमुख है। सामान्यतः तीन प्रमुख जैविक खादें जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट व हरी खाद के अतिरिक्त अन्य जैविक खादों का प्रयोग विस्तृत नहीं है लेकिन जैविक कृषि के प्रति बढ़ते रूझान से इनका व्यापारिक महत्व बढ़ रहा है।

जैविक खादों की पहचान मुख्यतया उनके संघटक पदार्थों के आधार पर होती है। खाद तैयार होते समय विद्यटन (decomposition/composting) की प्रकिया में इतनी गर्मी उत्पन्न होती है कि, संघटक पदार्थों के साथ – साथ हानिकारक कीटाणु, खरपतवारों के बीज इत्यादि सभी नष्ट हो जाते है। संघटक पदार्थ जैसे गोबर, मल–मूत्र आदि की दुर्गन्ध के स्थान पर बिल्कुल निरापद दानेदार गंध रहित उत्तम खाद तैयार होती है। जो हल्के या गहरे भूरे रंग की होती है।

तालिका : विभिन्न खादों में पोषक तत्वों की प्रतिशत मात्रा

| खाद का नाम | नत्रजन % | फॉस्फोरस % | पोटाश % |
|---|---|---|---|
| (अ) कार्बनिक खादें | | | |
| 1. गोबर की खाद | 0.4–0.5 | 0.25 | 0.5 |
| 2. कम्पोस्ट | 0.5–0.6 | 1.5 | 2.3 |
| 3. बायो गैस से तैयार कम्पोस्ट | 1.2–2.0 | 1.1–2.0 | 0.8–1.0 |
| 4. मानव विष्ठा | 1.5 | 1.1 | 0.5 |
| 5. मानव मूत्र | 0.6 | 0.1 | 0.5 |
| 6. पक्षियों की बीट | 1.1–1.6 | 1.0–1.2 | 6.1–8.5 |
| 7. मुर्गी की बीट | 3.8 | 1.5 | 1.7 |
| 8. हड्‌डी चूर्ण | 3.5–4.5 | 1.8–2.5 | – |
| 9. गन्दे नाले के अवपंक (Sludge) | 6.0 | 4.0 | – |
| 10. शीरा | 3.0 | 3.5 | – |
| 11. गन्ने के रस का सूखा मैल | 1.1–1.5 | 4.5 | 2.7 |
| 12. तालाब की मिट्‌टी | 1.0 | – | – |
| (ब) खलियाँ | | | |
| 1. अरण्डी की खली | 4.37 | 1.85 | 1.39 |
| 2. महुआ की खली | 2.51 | 0.80 | 1.85 |
| 3. नीम की खली | 5.22 | 1.08 | 1.48 |
| 4. मूँगफली की खली | 7.29 | 1.53 | 1.33 |
| 5. अलसी की खली | 5.56 | 1.44 | 1.28 |
| 6. सरसों की खल | 5.27 | 1.84 | 1.16 |
| 7. बिनौले की खली (बिना छिले) | 3.99 | 1.82 | 1.62 |
| 8. बिनौले की खली (छिले हुए) | 6.41 | 2.89 | 2.17 |

हरी खाद (green manure) के लिए उगाई गई फसल को हरी अवस्था में ही खेत में मिलाते है। अतः जब फसल कुछ अपरिपक्व अवस्था में हो और फसल में फूल निकलने प्रारम्भ हो गये हो। इस समय पौधों की वानस्पतिक वृद्धि अधिक होती है तथा पौधों की शाखाएँ तथा पत्तियाँ मुलायम होती है। पौधों में कार्बन–नत्रजन का अनुपात (C:N ratio) भी कम होता है। सनई फसल लगभग 50 दिन बाद, ढैंचा की फसल 40 दिन बाद तथा बरसीम की फसल 2–3 कटाई लेने के बाद खेत में पलट सकते है।

केचुआ खाद बनने के पश्चात् चाय पत्ती के समान गहरे भूरे रंग की दाने एवं दुर्गन्ध रहित हो जाती है। पूर्ण रूप से तैयार खाद में संघटक पदार्थ दिखाई नहीं देते है।

**खादों की प्रयोग विधि :–**

जैसा कि विदित है कार्बनिक खादों में पोषक तत्व और अन्य तत्व जटिल कार्बनिक यौगिकों के रूप में विद्यमान रहते हे। मृदा में उपयोग के बाद मृदा में उपस्थित एवं कार्बनिक खादों के विद्यटन से निर्मित जैविक अम्ल तथा सूक्ष्म जीवों की सक्रियता के फलस्वरूप ये जटिल यौगिक सरल यौगिक में परिवर्तित हो जाते है। इन सरल यौगिकों या तत्वों से ही पोषक तत्व पौधों को प्राप्त हो पाते है। अत सामान्यतया कार्बनिक खादों को फसल बुआई के 3–4 सप्ताह पूर्व खेत में प्रयोग करना चाहिए।

खेत में प्रयोग के लिए भण्डारण के स्थान से उठाकर खेत में एक सामन फैलाकर मिट्टी पलटने वाले हल या कल्टीवेटर से मिट्टी में अच्छी प्रकार से मिला दे जिससे इनका विघटन अच्छी तरह से होकर पूरे खेत में समान रूप से पोषक तत्वों की उपलब्धता पौधों को हो सके। खेत में इन खादों को फैलाकर तुरन्त मिट्टी में मिलायें अन्यथा खाद में उपस्थित पोषक तत्व एवं अन्य कार्बनिक पदार्थों का नुकसान हो सकता है।

सिंचित फसलों के लिए 5–10 टन प्रति हेक्टेयर और गन्ना, मक्का, अदरक, हल्दी, सब्जियाँ व फलदार वृक्षों के लिए 7.5 से 15 टन प्रति हेक्टेयर की दर से कार्बनिक खाद का प्रयोग करना चाहिए। फलदार वृक्षों में आयु के आधार प्रति वृक्ष 10–25 किग्रा अच्छी तरह सड़ी हुई कार्बनिक खाद का प्रयोग करना चाहिए।

हरी खाद की फसल को खेत में दबाने के 30–40 दिन बाद फसल की बुआई करनी चाहिए ताकि फसल बुआई तक हरी खाद की फसल अच्छी तरह से सड़ सके और उसके पोषक तत्व बोई गई फसल के पौधों को प्राप्त हो सके।

**केचुआ खाद की प्रयोग विधि निम्न प्रकार से है :–**

**फलदार वृक्ष :–** परिपक्व बड़े पेड़ के चारों ओर प्रति पेड़ 5 किलोग्राम वर्मीकम्पोस्ट मिट्टी में सीधे डाले एवं इसके बाद इतना ही ताजा गोबर एवं जैविक पदार्थ डाल कर नमी बनाये रखें। समय समय पर गोबर एवं वानस्पतिक अवशेष डालते रहे।

**सब्जी वाली फसलें :–** प्रति हेक्टेयर साढ़े सात टन वर्मीकास्ट खेत में डाल कर रोपाई/बीज की बुआई करें।

**मौसमी फसलें :–** दो फसली क्षेत्र में पलेवा देकर अथवा भूमि में नमी उपलब्ध हाने की अवस्था में प्रति हेक्टेयर 5 टन वर्मीकम्पोस्ट एवं गोबर व वानस्पतिक अवशेष की बराबर मात्रा मिलाकर खेत में संध्या समय एक सार बिखेर देवें एवं प्रातः हल चला देवें।

# इकाई – 2

## प्रयोग – 7

**उद्देश्य :–** बागवानी यंत्रों की पहचान।

आवश्यक सामग्री – विभिन्न बागवानी यंत्र ।

**विधि –** विभिन्न बागवानी यंत्रों को देखकर तथा उनके उपयोग के आधार पर पहचान की जा सकती है :–

**(अ) जुताई, खुदाई तथा निराई–गुड़ाई के यंत्र**

1. देशी हल तथा मिट्टी पलटने वाला हल – बाग की भूमि की हल्की व गहरी जुताई के काम आते हैं।
2. गार्डन कल्टीवेटर – इससे हल्की जुताई की जाती है, जिससे मिट्टी भुरभुरी हो जाती है।
3. रिज मेकर – मेड़ बनाने के काम आता है।
4. पाटा या सुहागा – जुताई की गई भूमि के ढेले तोड़ने व भूमि को हल्का समतल करने के काम आता है।
5. फावड़ा – इससे मृदा की खुदाई करने, गड्ढे खोदने, मेड़ बनाने इत्यादि कार्य किये जाते है।
6. गैंती – कठोर भूमि की परत तोड़ने व खुदाई के काम आता है।
7. कुदाली – यह कठोर भूमि की खुदाई के काम आता है।
8. खुरपी – इससे बगीचे तथा पौधशाला में हल्की निराई–गुड़ाई का कार्य किया जाता है।
9. गार्डन रैक – पौध क्यारियों में बीजों को मिलाने, पपड़ी तोड़ने तथा मृदा को भुरभुरा करने के काम आता है।
10. हैण्ड फोर्क – यह हल्की निराई–गुड़ाई के काम आता है।
11. होइंग फोर्क – यह हल्की गुड़ाई के काम आता है।
12. ट्रोवल – पौधघर से पौधों के स्थानान्तरण के काम आता है।
13. वीडिंग फोर्क – इससे छोटे पौधों के आसपास निराई की जाती है।
14. बेलचा – खुदाई की गई मिट्टी को हटाने के काम आता है।

**(ब) कटाई–छँटाई के यंत्र**

1. कृन्तन आरी (Pruning saw) – इससे पतली तथा मध्यम मोटाई की शाखाओं की कटाई–छँटाई की जाती है।
2. हेज शियर (Hedge shear) – इससे बाड़ (Hedge) की कटाई–छँटाई की जाती है।
3. सिकेटियर (Secateur) – यह कलम काटने तथा पतली शाखाओं की कटाई–छँटाई के काम आता है।
4. ट्री–प्रूनर (Tree pruner) – ऊँची शाखाओं जिन तक सीधा हाथ नही पहुँचता है, उनकी कटाई–छँटाई के काम आता है।
5. कुल्हाड़ी – कठोर तथा मध्यम कठोर शाखाओं के काटने के काम आता है।
6. कृन्तन चाकू (Pruning knife) – इससे अवांछित पतली शाखाओं की कटाई–छँटाई का कार्य किया जाता है।

7. रोपण चाकू (Grafting knife) – वानस्पतिक प्रवर्धन द्वारा पौधों में पैबन्ध करने (Grafting) के काम आता है।

8. कलिकायन चाकू बडर सहित (Budding knife with budder) – यह शाखा से कली उतारने तथा उसे मूलवृन्त पर प्रतिरोपित करने के काम आता है।

9. कलिकायन व भेंटकलम चाकू (Budding & grafting knife) – इससे ग्राफ्टिंग तथा बडिंग दोनो कार्य किये जा सकते है।

10. हँसिया व दराँती – यह घास आदि की कटाई के काम आती है हँसिया धारदार तथा दराँती दाँतेदार होती है।

11. बिल हुक (Bill hook) – यह मध्यम मोटाई की शाखाओं को काटने के काम आता है। यह साधारण तथा दुधारी दो प्रकार का होता है।

12. ग्रास शियर (Grass shear or edging shear) – इससे हरियाली या लॉन की कटाई–छँटाई की जाती है।

### (स) दवाई छिड़कने / बुरकने के यंत्र

1. नैपसेक स्प्रेयर – इससे कीटनाशी तथा कवकनाशी रसायनों का पानी में घोल बनाकर छिड़काव किया जाता है।

2. हैण्ड स्प्रेयर – यह पौधशाला जैसे छोटे क्षेत्र में या छोटे पौधों पर कीटनाशी / कवकनाशी रसायन के घोल छिड़कने के काम आता है।

3. रोटरी डस्टर – इससे कीटनाशी पाउडर का बुरकाव किया जाता है।

### (द) अन्य उपयोगी यंत्र

1. झारा – यह नर्सरी क्षेत्र या छोटे पौधों में पानी देने के काम आता है।

2. फुहारा (Sprinkler) – इसका प्रयोग नर्सरी, फूलों की क्यारी तथा हरियाली के क्षेत्र में पानी देने के लिये किया जाता है। इससे सिंचाई करने पर पानी की बचत होती है।

3. लॉन मोअर – यह लॉन की घास काटने के काम आता है। इससे घास की कटाई एक समान होती है।

4. डिबलर – पंक्तियों में निश्चित दूरी पर बीजों की बुआई करने के काम आता है।

5. ग्रास रेक – बाग की जुताई की गई भूमि से या अन्य काटे गये घास–फूस को एकत्रीकरण करने के काम आती है।

# प्रयोग – 8

**उद्देश्य :–** सब्जियों के बीज एवं पौधों की पहचान।

| क्र.सं. | नाम | वानस्पतिक नाम | फूल का रंग | बीज का रंग | बीज का आकार |
|---|---|---|---|---|---|
| 1. | प्याज | *एलियम सीपा* | सफेद | काला | त्रिकोणीय |
| 2. | देशी पालक | *बीटा वल्गैरिस किस्म बेन्गालेन्सिस* | हरा हल्का | हल्का काला मटमैला | गोल कटीला |
| 3. | विलायती पालक | *स्पनेसिया ओलेरेसिया* | हरा हल्का | मटमैला | |
| 4. | शलजम | *ब्रैसिका रापा* | | भूरा | गोल |
| 5. | गाँठगोभी | *ब्रैसिका कालोरापा* | पीला | भूरा | गोल |
| 6. | फूलगोभी | *ब्रैसिका ओलेरेसिया किस्म बोट्राइटिस* | पीला | भूरा | गोल |
| 7. | पत्तागोभी | *ब्रेसिका ओलेरेसिया किस्म कैपीटाटा* | पीला | भूरा | कालापन लिए गोल |
| 8. | मूली | *रेफेनस सेटाइवस* | सफेद | भूरा | गोल |
| 9. | खरबूजा | *कुकुमिस मेलो* | पीले | काला भूरा | चपटा पियर के आकार का |
| 10. | खीरा | *कुकुमिस सेटाइवस* | क्रीम | | आयताकार आगे से तीखा चोंचदार |
| 11. | तरबूज | *सिट्रूलस लेनेटस* | पीला | भूरा काला | |
| 12. | टिंडा | *सिट्रूलस वलगैरिस किस्म फिस्टुलोसस* | | पीला मटमैला | काला गोल एक तरफ से तीखा |
| 13. | काशीफल | *कुकुरबिटा मोसचाटा* | नारंगी पीला | भूरा | अण्डाकार |
| 14. | लौकी | *लेजिनेरिया सिसरेरिया* | सफेद | हल्का सफेद | आयताकार |
| 15. | घिया तुरई | *लूफा सिलिंड्रिका* | सफेद क्रीम | | आयताकार |
| 16. | काली तुरई | *लूफा एक्यूटैंगुला* | पीला | काला | अण्डाकार |
| 17. | करेला | *मोमोर्डिका चेरनशिया* | पीला | भूरा सफेद | आयताकार |
| 18. | ग्वार | *सायमोपसिस टेट्रा गोनोलोबा* | सफेद नीला | सफेद भूरे लाल | किडनी के आकार |
| 19. | सेम | *डालीकस लबलब* | सफेद | सफेद, भूरे लाल | किडनी के आकार |
| 20. | मटर | *पाइसम सेटाइवम* | सफेद क्रीम | हल्का हरा | गोल |
| 21. | कसूरी मेथी | *ट्राइगोनेला कोर्निकुलारटा* | नारंगी पीला | पीलापन | आयताकार, छोटे |
| 22. | मेथी | *ट्राइगोनेला फोइनम ग्रेइकम* | सफेद | पीलापन | आयताकार, छोटे |
| 23. | भिण्डी | *एबलमोसकस एस्कुलेन्टस* | पीले | हल्का हरा | गोल |
| 24. | मिर्च | *कैपसीकम ऐनम* | सफेद क्रीम, | पीला | गोल |
| 25. | मिर्च | *कैपसीकम फ्रूटेसेन्स* | सफेद | क्रीम, पीला | गोल |
| 26. | टमाटर | *लाइकोपर्सिकान एस्कुलेन्टम* | पीले | हल्का भूरा सेलेटी | गोल, उस पर हल्के बाल भी होते है। |
| 27. | बैंगन | *सोलेनम मेलोन्जेना* | नीला बैंगनी | हल्का भूरा | गोलनुमा |
| 28. | आलू | *सोलेनम ट्यूबरोसम* | काला हल्का | नीला | गोल, अण्डाकार |
| 29. | गाजर | *डाकस केरोटा* | सफेद व पीला | सेलेटी | आयताकार, खुरदरे |

# प्रयोग – 9

**उद्देश्य :–** पौधशाला हेतु क्यारियाँ तैयार करना।

सामग्री (उपकरण) : फावड़ा, फीता, खुरपी, सड़ी हुई गोबर की खाद फार्मलीन इत्यादि ।

**विधि :–** सबसे पहले चुनी गई भूमि की अच्छी तरह जुताई करके कंकड़–पत्थर व घास–फूस अलग कर देना चाहिये और भूमि को समतल कर लेना चाहिये। इसके बाद आवश्यकतानुसार निश्चित आकार की क्यारियाँ बनाकर क्यारियों के चारों ओर सिंचाई व जल निकास की नालियाँ बना लेनी चाहिये। क्यारियों को रोग व कीट रहित करने के लिये फार्मलीन के 1–2 प्रतिशत घोल से अवश्य उपचारित करना चाहिये। क्यारी में कतारों के बीच की दूरी 5 से 7 सेन्टीमीटर होनी चाहिये। पौधशाला में जल निकास की अच्छी व्यवस्था होनी चाहिये, साथ ही क्यारियाँ ऐसी जगह हो जहां सूर्य का पर्याप्त प्रकाश आता हो। क्यारियों की पुनः जुताई या खुदाई करते समय 5 किलोग्राम गोबर की सड़ी हुई खाद प्रति वर्गमीटर के हिसाब से मिलानी चाहिए। प्रायः क्यारी की चौड़ाई 1.2 मीटर एवं लम्बाई 7.5 मीटर रखते है।

पौधशाला में चार तरह की क्यारियाँ बनायी जा सकती है :–

1. समतल क्यारी (Flat bed)
2. उठी हुई क्यारी (Raised bed)
3. गर्म क्यारी (Hot bed)
4. गहरी क्यारी (Sunken bed)

**1. समतल क्यारी –** इस तरह की क्यारियाँ रबी मौसम के लिए बनाई जाती है, इन क्यारियों को समतल या जमीन के बराबर ऊँचाई की बनाते है। इस तरह की क्यारियों में पानी कुछ रुकने की संभावना रहती है।

**2. उठी हुई क्यारी –** इस तरह की क्यारियाँ खरीफ मौसम के लिए बनाई जाती है, जिसमें क्यारियाँ जमीन से 15 से 20 सेन्टीमीटर उठी हुई बनाते है, जिससे बरसात के पानी का निकास अच्छी तरह से हो जाए तथा जड़ गलन का रोग न हो सके।

**3. गर्म क्यारी –** क्यारियों में ताजा गोबर काम में लेते है, साथ ही भूसा इत्यादि भी मिलाया जाता है। इस खाद को लगभग डेढ़ मीटर गहरे, सवा से डेढ़ मीटर चौड़े और आवश्यकतानुसार लम्बाई के गड्ढे में भरना चाहिए, यदि खाद सूखी हो तो थोड़ा पानी छिड़क दे, जिससे सड़न शुरू हो जाए। सड़न जल्दी करने के लिए खाद को उलटा–पलटा जाना चाहिए।

इसके बाद इसके ऊपर 8 से 10 सेन्टीमीटर मोटी परत भूसे की बिछानी चाहिए, जिससे गर्मी प्राप्त हो जाए। फिर उसके ऊपर 10 से 15 सेन्टीमीटर मिट्टी की तह बिछाते है। उन पर अगेती गर्मी के फसलों के बीज बोये जाते है, जिनको कुछ ज्यादा तापमान की जरूरत होती है, जिससे उनका अंकुरण जल्दी हो सके।

**4. गहरी क्यारियाँ –** इस प्रकार क्यारियाँ जमीन से एक से डेढ़ फीट गहरी खुदी हुई होती है। नीचे से यह समतल होती है, इस प्रकार की क्यारियों में पौधे तेज ठण्डी हवाओं से सुरक्षित रहते है व सर्दी व पाले से भी बच जाते है।

# प्रयोग – 10

**उद्देश्यः–** अलंकृत वृक्षों एवं पौधों की पहचान।

**परिचयः–** उद्यान में विभिन्न उद्देश्यों हेतु पौधों की असाधारण प्रजातियाँ उगाई जाती है। जो कि विभिन्न वंश प्रजातियों से संबन्धित होती है तथा छोटे फर्न से लेकर बड़े वृक्षों तक विस्तारित होते है। विद्यार्थियों को विभिन्न अलंकृत पौधो के बारे में बताना अलंकृत बागवानी के अध्ययन का पहला उद्देश्य है।

विद्यार्थियों को प्रचलित नामों, अग्रेंजी नामों, वैज्ञानिक नामों और विभिन्न अलंकृत पौधों के कुल के बारे में उचित जानकारी होनी आवश्यक है। इसके अलावा उनको मुख्य अलंकृत पौधों और महत्वपूर्ण व्यावसायिक प्रजातियों के बारे में पहचान करवाना आवश्यक है। पादप प्रजातियों की पहचान सामान्य रूप से पौधों की संरचना, उनकी वृद्धि स्वभाव पत्तियाँ (शिराएँ, आकार, प्रकार, रंग) फूल (आकार, प्रकार, रंग, विन्यास) पुष्पक्रम, फल एंव बीज (रंग, आकार, प्रकार) के आधार पर की जाती है।

पादपों की पहचान उनके आकृति सबंधी लक्षणों के आधार पर करना एक सरल एंव सुगम तरीका है, परन्तु आरम्भिक अवस्था में यह एक कठिन कार्य है, परन्तु इस कठिन कार्य का वे अपनी पौधो के प्रति रूचि विकसित करके और निकटता बढ़ाकर शीघ्र समाधान कर सकते है।

विद्यार्थियों को साधारण पौधो से शुरूआत करना अच्छा रहता है। वे खाली समय में उद्यान का समय–समय पर भ्रमण करना पहचान को आसान बनाता है, परन्तु आरम्भ में यह भ्रमण किसी कक्षा प्राध्यापक/विशेषज्ञ के साथ करना चाहिए, जो कि विभिन्न प्रजातियों के मध्य प्रमुख अन्तर को बता सके।

**आवश्यक सामग्रीः–** पेन्सिल, नोटबुक, कैंची, कागज, कागज की थेली, लेबल।

**विधिः–** पहचान में पहला चरण उद्यान का रेखांकन तैयार करना। रेखांकन अनुसार पौधों की तुलना करना उनको अच्छी तरह से लेवल करना। कुछ पौधों की प्रजातियाँ या कुल की कुछ प्रजातियों का चुनाव करना और उनके आकारिकी लक्षणों तथा उनके मध्य अन्तर का अध्ययन करना। नोटबुक में विशेष लक्षणों को अंकित करना। कुछ पत्तियों एंव फूलों को लेवल के साथ संग्रह करना और सोख्ता कागज के मध्य दबाकर रखना, जब तक कि वे सूख ना जाए। मोटे कागज पर इन सूखे हुए प्रादर्श को चिपकाना और उनको अच्छी तरह से लेवल करना पौधों की ज्यादा संख्या में पहचान के लिए नियमित अभ्यास की आवश्यकता होती है।

तालिका 10.1 अलंकृत पौधों की पहचान (झाड़ी, वृक्ष एवं एक वर्षीय फूल वाले पौधे)

| क्र.सं. | प्रचलित नाम | अँग्रेजी नाम | वानस्पतिक नाम | कुल |
|---|---|---|---|---|
| (अ) | झाड़ी | | | |
| 1 | फूल झाड़ी | | | |
| (I) | | | | |
| (II) | | | | |
| (III) | | | | |
| 2 | पर्णपाती झाड़ी | | | |
| (I) | | | | |
| (II) | | | | |
| (III) | | | | |
| 3 | बाड़ झाड़ी | | | |
| (I) | | | | |
| (II) | | | | |
| (III) | | | | |
| (ब) | वृक्ष | | | |
| 4 | फूल देने वाले वृक्ष | | | |
| (I) | | | | |
| (II) | | | | |
| (III) | | | | |
| 5 | छायादार मार्ग हेतु | | | |
| (I) | | | | |
| (II) | | | | |
| (III) | | | | |
| (स) | एक वर्षीय फूल वाले पौधे | | | |
| (I) | | | | |
| (II) | | | | |
| (III) | | | | |

# प्रयोग–11

**उद्देश्यः–** गमला भरना, पौधे लगाना एवं गमला बदलना।

**आवश्यक सामग्री :–** गमला, गमले के टुकड़े, विभिन्न मृदा मिश्रण, खुरपी, झारा, प्रतिरोपण खुरपी

**गमला भरनाः–** आवश्यक आकार एंव अच्छे पके हुऐ गमलों का चयन करें। पौधे की उम्र एंव उद्देश्य के आधार पर गमलों का आकार का निर्धारण किया जाता है गमलों को अन्दर एंव बाहर दोनो तरफ स्वच्छ पानी से धुलाई करें। गमलों के परिमाण के अनुसार ही उनकी तली में छिद्र बने होते है। गमलों के टुकड़ें को इस छिद्र के ऊपर इस प्रकार रखिए कि वे ढक जाए। गमले के टुकड़ों के ऊपर 5–6 से.मी. तक ईंट के बारीक टुकड़ें या अधसड़ी पत्ती की खाद रखी जाती है। अब ऊपर शेष भाग में मृदा मिश्रण भर दी जाती हैं।

**पौधे लगाना :–** विभिन्न प्रकार के पौधों के लिए विभिन्न प्रकार के मृदा मिश्रणों की आवश्यकता होती है (सारणी–11.1)। कम उम्र के कोमल पौधों के लिए मृदा अधिक बारीक होनी चाहिए। वांछनीय गहराई पर पौधे को गमले में रखिए, उसमें मृदा डालिए बेंच पर रखकर गमले की तली को थपथपाए तथा अंगुलियों से मृदा मिश्रण को धीरे–धीरे दबाईए। पौधे लगाने के बाद पानी देने के लिए गमले के ऊपरी भाग में पर्याप्त स्थान खाली छोड़ना चाहिए।

**गमला बदलनाः–** निम्नलिखित परिस्थितियों में पौधे को एक गमले से निकालकर पुनः दूसरे गमले में लगाना आवश्यक हो जाता है।

1. जब पौधा अपने वर्तमान पात्र (गमले) में अधिक बड़ा हो जाता है और गमला अधिक भरा हुआ दिखाई देने लगता है।
2. जब गमले में डाले गए उर्वरक एवं मृदा मिश्रण के पोषक तत्वों की मात्रा बिल्कुल समाप्त हो जाती है।
3. जब पौधे जैसे ऐल्पिनिया, ट्रेडेस्केन्सिया इत्यादि की जड़ों को काटने–छाँटने की आवश्यकता हो।

पौधे को पुराने गमले से बाहर निकालते समय उसे नीचे गिरने से बचाने हेतु मृदा को उँगलियों से थामकर गमले को उल्टा किया जाता है और बेंच या ईंट के किनारे पर रखकर उसके घेरे को थपथपाया जाता है। इस प्रकार सम्पूर्ण मृत्तिका पिण्डी जिसमें अन्तर्ग्रथित (Interwoven) जड़े होती है एक खण्ड के रूप में बाहर आ जाती है। ऊँचे और बहुत अधिक फैले हुऐ पौधों को भूमि से 7–8 से.मी. की ऊँचाई पर से काट दिया जाता है। इसके बाद पर्ण समूह रहित पौधों को तब तक बहुत कम जल की आवश्यकता होती है जब तक उसमे नई वृद्धि न हो जाए।

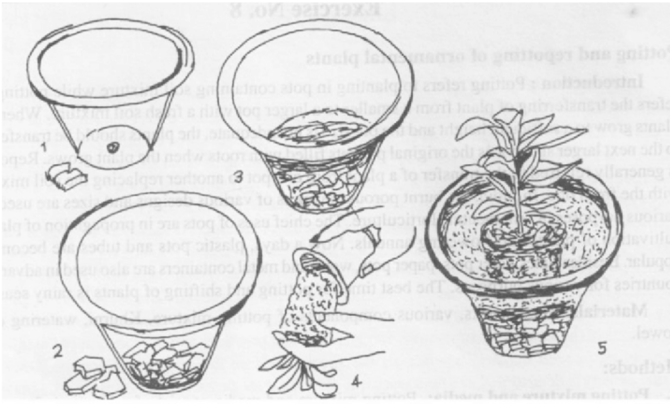


चित्र

11.1 गमले की तली में छिद्र एवं उसे ढकने हेतु गमले के टुकड़े।

11.2 गमले की सतह में गमले के टुकड़े बिछाना।

11.3 रेशेदार पदार्थ से ढकना।

11.4 पौधे को गमले से मिट्‌टी एवं जड़ सहित बाहर निकालना।

11.5 पौधे को पुनः स्थापित करना।

## सारणी–11.1 विभिन्न गमला मिश्रण

| पौधे | गोबर की खाद | पत्ती की खाद | बालू | लाल मिट्‌टी | हड्डी का चूरा | ईंट का चूरा | चूना | कोयला |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| एंथूरियम एंव फिलोडेन्ड्रान | 2 | 4 | 2 | – | 1 | 1 | – | 1 |
| विगोनिया एंव कलेडियम | 4 | 4 | 2 | – | 1 | – | – | 1/2 |
| केक्टाई एंव सकुलेन्ट | 2 | 2 | 2 | – | 1/4 | 2 | – | – |
| कंद एंव प्रकंद | 2 | 1 | 2 | 1 | 1 | – | – | – |
| गुलाब | 5 | – | 2 | 3 | 2 | – | – | – |
| फर्न एंव ताड़ | 2 | 4 | 1 | – | 1/2 | – | – | – |
| सभी पौधे हेतु | 3 | 2 | 2 | 1 | 1/2 | – | – | – |

# इकाई – 3
# प्रयोग –12

**उद्देश्यः–** गाय, भैंस, भेड़, बकरी, ऊँट एंव मुर्गी के अंगों का अध्ययन।

अध्ययन की उपयोगिता :

1. पशुओं के चुनाव हेतु।
2. विभिन्न पशु जाति के पहचान हेतु।
3. पशु जाति में विभिन्न नस्लों की पहचान हेतु।
4. अंग विशेष के उपचार हेतु।

**आवश्यक सामग्रीः–**

अड़गड़ा (Trevis) , रस्सी, पशु गाय, भैंस, भेड, बकरी, ऊँट व मुर्गी।

**विधिः–**

1. पशु को नियंत्रित करें, आवश्यक हो अड़गड़ा भी काम में लेवें।
2. पशु का चारों ओर से निरीक्षण करें।
3. दुग्ध शिराएँ एंव दुग्ध कूप को नीचे बैठकर देखें।
4. अयन एंव थन को हाथ लगाकर देखें।
5. अन्त में पशु का चित्र बनावें तथा उसके विभिन्न अंगों को दर्शायें।
6. मुर्गी के बाहय अंग की जानकारी हेतु उसके दोनो पैरों को बांधकर नियन्त्रित करें और अपने अध्यापक की सहायता से अंगों की जानकारी करें।

### (अ) गाय के बाहय भाग
### (External Anatomy of cow)

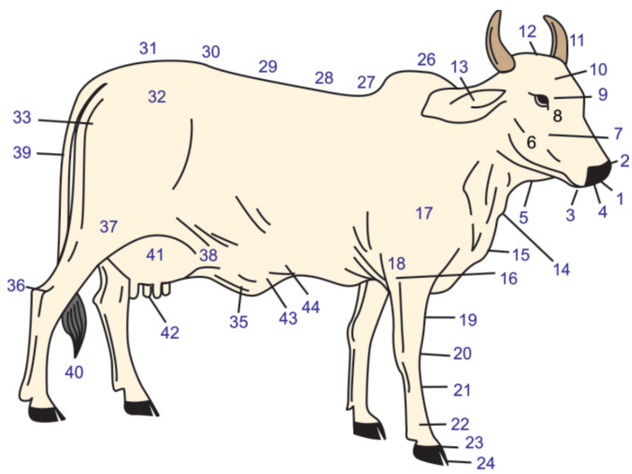


चित्र–12.1 गाय के बाहय अंग

1 नाक छिद्र (Nostril) 2 थूथन (Muzzle) 3 ऊपरी होठ (Muffle)
4 मुँह (Mouth) 5 ठुड्डी (Chin) 6 जबड़ा (Jaw)
7 नाक का पुल (Bridge of Nose) 8 आँख (Eye) 9 चेहरा (Face)
10 ललाट (Forehead) 11 सींग (Horn) 12 चाँद (Poll)
13 कान (Ear) 14 गर्दन (Neck) 15 गल कम्बल (Dewlap)
16 अधरवक्ष (Brisket) 17 कंधा (Shoulder) 18 कुहनी (Elbow)
19 भुजा (Arm) 20 घुटना (Knee) 21 पिण्डली (Shank)
22 गुम्ची (Pastern) 23 खुर (Hoof) 24 खुर दीर्ण (Cleft of Hoof)
25 विजन खुरी (Dew claw) 26 कूबड़ (Hump) 27 स्कन्ध प्रदेश (Wither)
28 पीठ (Back) 29 कमर (Loin) 30 नितम्बअस्थि या कुल्हा (HipBone)
31 पुच्छमल (Croup) 32 पुट्ठे (Rump) 33 जँघनास्थि (Pin bone)
34 पेट (Stomach) 35 नाभि पट्टा (Navel Flap) 36 टखना (Hock)
37 जाँघ (Thigh) 38 कोख (Flank) 39 पूँछ (Tail)
40 पूँछ का गुच्छा (Switch of Tail) 41 अयन (Udder) 42 थन (Teats)
43 दुग्ध शिराएँ (Milk Veins) 44 दुग्ध कूप (Milk Well )

**नोटः–** नर पशु में अयन एंव नाभि पट्टा के स्थान पर निम्न भाग पाये जाते है।

1. वृषण / अण्डकोश (Testis)
2. वृषणकोश (Scrotum)
3. लिंग (Penis)
4. मुतान (Sheath)

अल्प विकसित थन (Rudimentary teats)

## (ब) भैस के बाह्य भाग

## (External Anatomy of Buffalo)

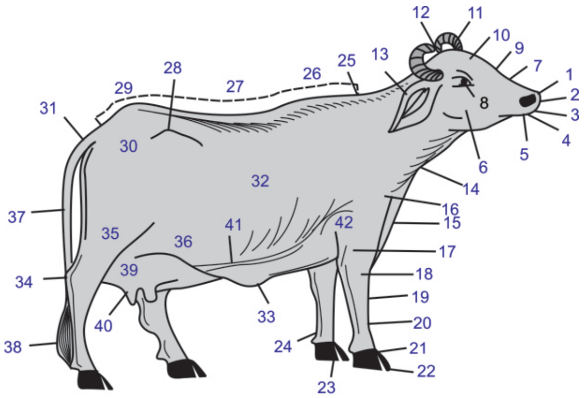


चित्र–12.2 भैस के बाह्य अंग

| | | |
|---|---|---|
| 1 नाक छिद्र (Nostril) | 2 थूथन (Muzzle) | 3 ऊपरी होठ (Muffle) |
| 4 मुँह (Mouth) | 5 ठुड्डी (Chin) | 6 जबड़ा (Jaw) |
| 7 नाक का पुल (Bridge of Nose) | 8 आँख (Eye) | 9 चेहरा (Face) |
| 10 ललाट (Forehead) | 11 सींग (Horn) | 12 चाँद (Poll) |
| 13 कान (Ear) | 14 गर्दन (Neck) | 15 अधरवक्ष (Brisket) |
| 16 कंधा (Shoulder) | 17 कुहनी (Elbow) | 18 भुजा (Arm) |
| 19 घुटना (Knee) | 20 पिण्डली (Shank) | 21 गुम्ची (Pastern) |
| 22 खुर (Hoof) | 23 खुर दीर्ण (Cleft of Hoof) | 24 विजन खुरी (Dew claw) |
| 25 स्कन्ध प्रदेश (Wither) | 26 पीठ (Back) | 27 कमर (Loin) |
| 28 नितम्बअस्थि या कुल्हा (Hip Bone) | 29 पुच्छमल (Croup) | 30 पुट्ठे (Rump) |
| 31 जँघनास्थि (Pin bone) | 32 पेट (Stomach) | 33 नाभि पट्टा (Navel Flap) |
| 34 टखना (Hock) | 35 जाँघ (Thigh) | 36 कोख (Flank) |
| 37 पूँछ (Tail) | 38 पूँछ का गुच्छा (Switch of Tail) | 39 अयन (Udder) |
| 40 थन (Teats) | 41 दुग्ध शिराएँ (Milk Veins) | 42 दुग्ध कूप (Milk Well) |

## (स) भेड़ के बाह्य भाग
## (External Anatomy of Sheep)

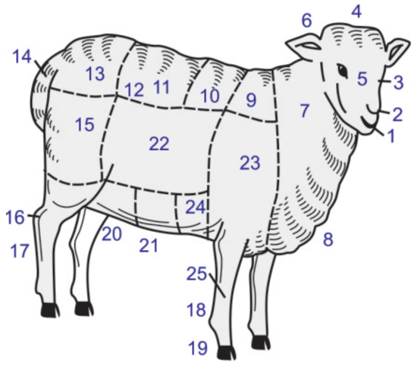


चित्र–12.3 भेड़ के बाह्य अंग

| | | |
|---|---|---|
| 1 मुख (Mouth) | 2 नाक (Nostril) | 3 चेहरा (Face) |
| 4 ललाट (Forehead) | 5 आँख (Eye) | 6 कान (Ear) |
| 7 गर्दन (Neck) | 8 सीना (Chest) | 9 कंधे का ऊपरी भाग (Wither ) |
| 10 पीठ (Back) | 11 कमर (Loin) | 12 कूल्हा (Hipbone) |
| 13 पुट्ठा (Rump) | 14 पुच्छ मूल (Tail) | 15 जाँघ (Thigh) |

| | | |
|---|---|---|
| 16 पिछला घुटना (Hock) | 17 पिछली टाँग (Hind Leg) | 18 विजन खुरी (Dewclaw) |
| 19 खुर (Hoof) | 20 पिछली कोख (Flank) | 21 पेट (Stomach) |
| 22 पसलियाँ (Ribs) | 23 कंधा (Shoulder) | 24 अगली कोख (Fore flank) |
| 25 अगला पैर (Fore Leg) | | |

## (द) बकरी के बाह्य भाग
## (External Anotomy of Goat)

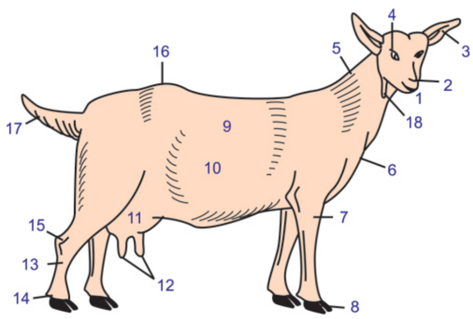


चित्र–12.4 बकरी के बाह्य अंग

| | | |
|---|---|---|
| 1 मुख (Mouth) | 2 नाक (Nose) | 3 कान (Ear) |
| 4 आँख (Eye) | 5 गर्दन (Neck) | 6 सीना (Chest) |
| 7 आगे के पैर (Fore Leg) | 8 खुर (Hoof) | 9 पसलियाँ (Ribs) |
| 10 पेट (Stomach) | 11 अयन (Udder) | 12 थन (Teats) |
| 13 पीछे के पैर (Hind Leg) | 14 गुम्ची (Pastern) | 15 टखना (Hock) |
| 16 नितम्ब अस्थि (Hip Bone) | 17 पूँछ (Tail) | 18 गलचर्म (Tassel) |

## (य) ऊँट के बाह्य भाग
## (External Anotomy of Camel)

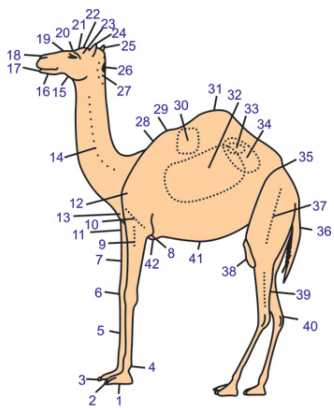


चित्र–12.5 ऊँट के बाह्य अंग

| | |
|---|---|
| 1 पैर (Foot) | 2 पादांगुलि–नख (Toe Nail) |
| 3 अँगुलमध्य विभाजन (Cleft Between toes) | 4 पैर का पिछला हिस्सा (Fetlock) |
| 5 नली (Shin) | 6 घुटना (Knee) |
| 7 अग्रभुजा (Forearm) | 8 कुहनी गद्दी (Elbow pad) |
| 9 ऊपरी भुजा का भाग (Part of upper Arm) | 10 अग्रभुजा की मांसपेशी (Forearm Muscle) |
| 11 सीना (Chest) | 12 कंधा (Shoulder) |
| 13 गर्दन और शरीर का जोड़ (Junction of neck and body) | 14 गर्दन (Neck) |
| 15 जबड़े का निचला भाग (Lower part of jaw) | 16 जबड़ा (Jaw) |
| 17 होंठ (Lips) | 18 नाकछिद्र (Nostrils) |
| 19 नाक का पुल (Bridge of Nose) | 20 आँख की भौंह (Eyebrow) |
| 21 भौंह (Brow) | 22 अग्रमस्तक (Forehead) |
| 23 आँख के पीछे का गड्ढा (Hollow behind eye) | 24 कान (Ear) |
| 25 पच्छ मस्तक बिन्दु (Point of Back Head) | 26 मद–ग्रंथि (Poll gland) |
| 27 गर्दन का पिछला भाग (Back of upper nack) | 28 कुहनी का अग्र भाग (Front of withers) |
| 29 कुहनी (Withers) | 30 अग्रपेड का स्थान (Place of forward pad) |
| 31 कूबड़ (Hump) | 32 पसलियाँ (Ribs) |
| 33 छोटी पसलियाँ (Short ribs) | 34 छोटी पसलियों का क्षेत्र (Area Around Short ribs) |
| 35 नितम्ब अस्थि या कुल्हा (Hip bone) | 36 पूँछ (Tail) |
| 37 कोख (Flank) | 38 पिछले पैर की गद्दी (Back foot pad) |
| 39 पिछले पैर की गद्दी और टखने के बीच की लम्बाई Length between stifle and hock) | |
| 40 टखना (Hock) | 41 पेट (Stomach) |
| 42 दस्ता (Boss) | |

## (र) मुर्गी के बाह्य भाग

## (External parts of Fowl)

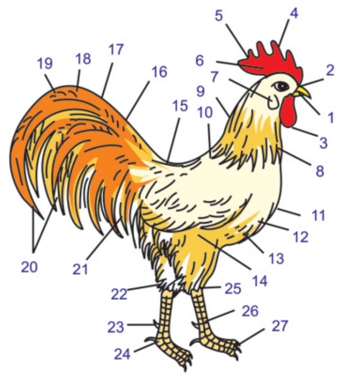


चित्र–12.6 मुर्गी के बाह्य अंग

| | |
|---|---|
| 1 चोंच (Beak) | 2 नासाद्वार (Nostril) |
| 3 गलचर्म (Wattles) | 4 आँख (Eye) |
| 5 कलंगी (Comb) | 6 कान (Ear) |
| 7 कर्णपति (Ear Lobes) | 8 गर्दन (Neck) |
| 9 गर्दन के पंख (Neck Hackles) | 10 पीठ (Back) |
| 11 वक्ष (Breast) | 12 पंख आवरण (Wing Covers) |
| 13 उरोस्थि (Brist bone) | 14 पंख के उड्डयन पिच्छ (Flight Feathers of Wing) |
| 15 कल्याण पिच्छ (Shaddle) | 16 पुच्छ आवरण (Tail Covers) |
| 17 पुच्छ (Tail) | 18 पुच्छ के उड्डयन पिच्छ (Flight feather of tail ) |
| 19 हँसिया (Sickle) | 20 हँसिया पिच्छ (Sickle Feather) |
| 21 कल्याण पंख (SaddleBackles) | 22 उदर (Abdomen) |
| 23 जाँघ (Thigh) | 24 पिछला घुटना (Hock) |
| 25 खार (Spur) | 26 पिंडली अस्थि (Shank) |
| 27 पादांगुलियाँ (Toes ) | |

**मादा एंव नर पक्षी में अन्तरः—**

1. मादा पक्षी छोटे आकार के होते है।
2. मुर्गी की कलंगी छोटी होती है।
3. मादा में हँसिया पिच्छ छोटे आकार के होते है।
4. मादा की गर्दन पतली होती है।
5. मुर्गी के पंख मुलायम होते है।
6. मादा में योनि पाई जाती है, जबकि नर में लिंग होता है।

## अभ्यास प्रश्न

1. भारतीय गाय एवं विदेशी गाय को किस भाग द्वारा पहचाना जाता है?
2. गाय एवं भैंस के बाह्य भागो में क्या भिन्नताएँ होती है?
3. पशु की अगली टांग के विभिन्न भाग बताइए।
4. त्रिकोणात्मक आकार कैसे देखेंगे?
5. मादा एवं नर पशु में अन्तर बताइए।
6. पशुओं में प्रमुख कौन–कौन से अंग होते है?
7. नर एवं मादा पक्षी में क्या अन्तर होता है?

# प्रयोग – 13

**उद्देश्यः–** पशुओं की आयु ज्ञात करना (दाँत एवं सींगों द्वारा)।

**अध्ययन की उपयोगिता :**

**आवश्यक सामग्रीः–** विभिन्न उम्र के पशु, रस्सी, अड़गड़ा (Trevis) आदि।

**पशुओं की आयु निम्न विधियों द्वारा ज्ञात की जाती है।**

1. सींग के छल्ले गिनकरः– इस विधि में गाय, बैल, भैंस आदि की उम्र उनके सींगों पर बने छल्लों की संख्या गिनकर ज्ञात की जाती है। पशु के सींग 2 वर्ष तक की आयु में चिकने रहते है, तथा तीसरे वर्ष की आयु पूर्ण हाने पर सींग पर पहला छल्ला दिखाई देता है। उसके पश्चात् प्रतिवर्ष एक छल्ला बनता है।

**सूत्र–** पशु की आयु वर्षो में = 2+ सींग पर बने छल्लों की संख्या

**उदाहरणः–** एक गाय जिसके सींगों पर 3 छल्ले हैं। उसकी उम्र की गणना कीजिए।

पशु की आयु वर्षो में = 2+सींग पर बने छल्लो की संख्या

2+3 = 5 वर्ष

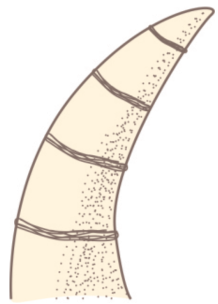

चित्र 13.1 सींग द्वारा पशु की आयु ज्ञात करना

2. पशु के दाँतों की संख्या के आधार पर–पशु को अड़गड़े में खड़ा कर, उसका मुँह खोलते है। पशु के जबड़े का अवलोकन करने पर, निचले जबड़े में जन्म के समय बीच के दो दाँत दिखाई दे सकते है। एक महीने की उम्र पूरी होते–होते सामने के आठो काटने वाले अस्थाई दाँत (Temporary Incisor)निकल आते है। जन्म से एक महीने के अन्दर ही सभी बारह अस्थायी अग्रचर्वण (Premolar)भी निकल आते है।
3. इस प्रकार के एक महीने की उम्र में बछड़ें के आठ अस्थाई कृन्तक दाँत (Incisor) तथा बारह अस्थाई दाढ़ (Pre Molar) कुल 20 दाँत दिखाई देते हैं। आयु वृद्धि के साथ–साथ चर्वण दाँत नही निकलते है। ये चर्वण दाँत स्थाई होते है। चर्वण दाँत कभी भी अस्थाई नही होते है। 6 माह की आयु में पहला चर्वण जोड़ा 1.25 वर्ष से 1.5 वर्ष में दूसरा चर्वण जोड़ा तथा 2 वर्ष में तीसरा चर्वण जोड़ा निकलता है तब तक सभी अस्थाई कर्तन दाँत गिर जाते है तथा स्थाई दाँत निकलना चालू हो जाते है। जिसे निम्नांकित सारणी से समझाया जा सकता है।

पशु की उम्र बढ़ने के साथ–साथ दाँत घिसने लगते हैं, जिससे ये एक दूसरे से दूर होने लगते हैं तथा ये उपर से चौड़े हो जाते हैं। दाँतों की चमक भी फीकी पड़ने लगती है।

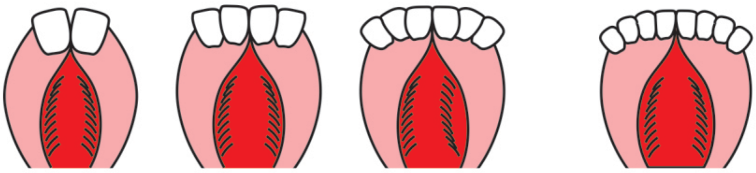

जन्म के समय    दूसरे सप्ताह में    तीसरे सप्ताह में    चौथे सप्ताह में

**अस्थाई दाँत**

दो वर्ष    तीन वर्ष    चार वर्ष    पांच वर्ष

**स्थाई दाँत**

| निकलने का समय | काटने वाले दाँत | अग्र चर्वण एवं चर्वण दाँत (Pre Molar & Molar) |
|---|---|---|
| जन्म से लेकर 1 माह तक | 8 अस्थाई दाँत | 12 अस्थाई अग्र चर्वण |
| 6 माह | | पहला स्थाई चर्वण जोड़ा |
| 1.5 वर्ष | | दूसरा स्थाई चर्वण जोड़ा |
| 2 से 2.5 वर्ष में | प्रथम अस्थाई जोड़ा | तीसरा स्थाई चर्वण जोड़ा |
| 2.25 से 2.5 वर्ष | | अग्र चर्वण का पहला व द्वितीय स्थाई जोड़ा |
| 2.5 से 3 वर्ष | द्वितीय स्थाई जोड़ा | |
| 3 से 3.5 वर्ष | तृतीय स्थाई जोड़ा | अग्र चर्वण का तीसरा स्थाई जोड़ा |
| 3 से 4.5 वर्ष | चतुर्थ स्थाई जोड़ा | |

## दाँतों से सम्बन्धित जानकारीः–

1. कृंतक दाँत (Incisor) :– गाय, भैंस, बैल, बकरी, भेड़ आदि पशुओं में नीचे के जबड़े में जिनकी संख्या 8 होती है।
2. डेन्टल पेड (Dental Pad) :– जुगाली करने वाले पशुओं में ऊपरी जबड़े में काटने वाले दाँत न होकर एक मजबूत सख्त पेड होती है।
3. कील दंत (Canine Teeth) :– मासांहारी पशुओं में जैसे सुअर, बिल्ली, कुत्ता एंव सभी जंगली जानवरों में कृंतक दाँत के बाद प्रत्येक जबड़ें में 1 जोड़ी नुकीले दाँत होते है।

पशु के मुख में दोनों (दायीं एवं बायीं) ओर के जबड़ों में ऊपर तथा नीचे चौड़ी सतह वाले छः–छः दाढ़ के दाँत होते हैं। इनमें से पहले तीन दाढ़ों को अग्रचर्वण (Premolar) तथा अगले तीन दाढ़ों को चर्वण (Molar) कहते हैं।

# प्रयोग – 14

**उद्देश्यः–** शेफर सूत्र द्वारा पशु का भार ज्ञात करना।

**अध्ययन की उपयोगिता :**

1. सन्तुलित आहार की गणना हेतु ।
2. पशु के विकास एंव वृद्धि की जानकारी हेतु।
3. शरीर भार अनुसार औषधि की मात्रा निर्धारण हेतु।
4. मांस के लिए बाजार में बेचने हेतु।

**आवश्यक सामग्रीः–** अड़गड़ा (Trevis), फीता (इंचटेप)

**पशु का भार ज्ञात करने की विधि :–**

1. **शेफर्स सूत्र द्वारा –** इसमें फीते द्वारा पशु की लम्बाई ज्ञात करने के लिए स्कंध बिन्दु (Point of Shouldger) से अपलास्थि बिन्दु (Point of Pinbone) की लम्बाई इंच टेप द्वारा लेते है तथा हृत घेरे को नापने के लिए अगले पैरों के पीछे की तरफ फीता लपेट कर सीने का हृत घेरा (Heart Girth) नाप लिया जाता है जैसा कि चित्र में दिखाया गया है। इस नाप को सूत्र में रख कर पशु का शरीर भार आसानी से ज्ञात किया जा सकता है।

पशु का शरीर भार (पोंड में)=लम्बाई इंचों में X (हृत घेरा इंच में)$^2$ / 300

**उदाहरणः–** एक गाय जिसकी लम्बाई 50 इंच तथा हृत घेरा 70 इंच है उसका शरीर भार ज्ञात कीजिए।

गाय का भार(पोंड में) $= \frac{50X(70)^2}{300}$

$= \frac{50X4900}{300} = 816.66$ पोंड

= 370.36 किग्रा. (1पोंड = 454 ग्राम या 1 किग्रा = 2.205 पोंड)

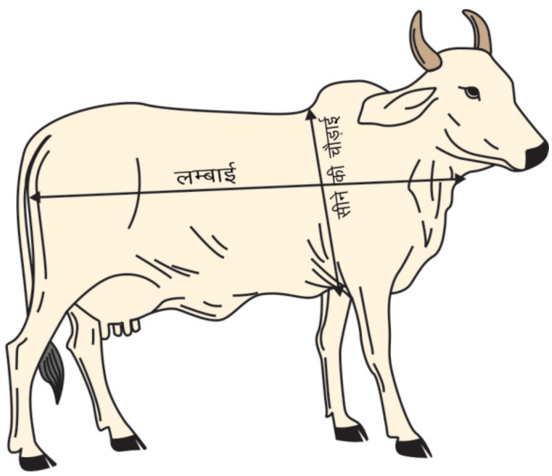


चित्र–14.1 पशु की लम्बाई एवं सीने का घेरा नापना

5. **चारे द्वारा दिये जाने वाले शुष्क पदार्थ का हरे एवं सूखे चारे के रूप में विभाजन :–**

चारे द्वारा दिये जाने वाले शुष्क पदार्थ का $\frac{1}{3}$ भाग हरे चारे के द्वारा तथा $\frac{2}{3}$ भाग सूखे चारे के द्वारा देते है।

6. **हरे चारे की मात्रा की गणना :–**

हरे चारे की मात्रा (किग्रा.) =

$$\frac{100}{\text{हरे चारे में शुष्क पदार्थ का प्रतिशत}} \times \text{हरे चारे द्वारा दिये जाने वाले शुष्क पदार्थ की मात्रा (किग्रा.)}$$

7. **सूखे चारे की मात्रा की गणना :–**

सूखे चारे की मात्रा (किग्रा.) =

$$\frac{100}{\text{सूखे चारे में शुष्क पदार्थ का प्रतिशत}} \times \text{सूखे चारे द्वारा दिये जाने वाले शुष्क पदार्थ की मात्रा (किग्रा.)}$$

8. **दाना मिश्रण (रातव) की कुल मात्रा का विभाजन :–**

कुल दाना मिश्रण का :–

(अ) 40 प्रतिशत खलियों द्वारा देते है–मूँगफली, तिल, सरसों इत्यादि की खलियाँ

(ब) 40 प्रतिशत दानों (Grains) द्वारा देते है – जौ, गेहूँ,, मक्का इत्यादि के दाने

(स) 20 प्रतिशत उपजातों द्वारा देते है – चोकर, चने का छिलका, राइस पोलिस इत्यादि

9. **अन्य**

(अ) खनिज मिश्रण 30 से 50 ग्राम

(ब) सादा नमक 30 ग्राम

(स) स्वच्छ पानी आवश्कतानुसार

**आंकिक प्रश्न–1**

एक गाय जिसका शरीर भार 400 किग्रा. है। 10 किग्रा. दूध प्रतिदिन दे रही है। यह गाय 7 माह की ग्याभिन भी है। इसके लिये एक दिन के चारे दाने की गणना कीजिये। जिसके लिये उपलब्ध चारे दाने निम्न प्रकार है ।

हरी बरसीम, गेहूँ का भूसा, मूँगफली की खल, जौ का दलिया, गेहूँ की भूसी (चोकर)

**गणना :–**

1. **कुल शुष्क पदार्थ की मात्रा :**

100 किग्रा. शरीर भार पर गाय के लिये देते है = 2.5 किग्रा. शुष्क पदार्थ

# प्रयोग–15

**उद्देश्य :–** दुधारू पशुओं (गाय, भैंस) के लिये दैनिक आहार का निर्धारण करना।

**अध्ययन की उपयोगिता :–**

1. पशुओं को उनकी आवश्यकतानुसार आहार उपलब्ध कराने में जैसे जीवन निर्वाह एंव उत्पादन हेतु।
2. उपयुक्त मात्रा में चारा एवं दाना देने के लिये।
3. हरे और सूखे चारे को उचित अनुपात में देने हेतु।
4. आहार के सन्तुलित निर्धारण में।
5. ऋतु के अनुसार सन्तुलित आहार के व्यवस्थापन में

**विधि (गणना) :–**

1. **कुल शुष्क पदार्थ की गणना :–** गाय के लिये 100 किलोग्राम शरीर भार पर 2.5 किलोग्राम शुष्क पदार्थ देते है। जबकि भैंस के लिये 100 किलोग्राम शरीर भार पर 3 किलोग्राम शुष्क पदार्थ देते है।
2. **दानामिश्रण (रातव) की मात्रा :–**

   (अ) गाय एवं भैंस को जीवन निर्वाह हेतु 1 किग्रा. रातव देते है।

   (ब) पांचवे माह के गर्भ से ब्याने तक 1 किग्रा. रातव भ्रूण (बच्चे) के विकास के लिये दिया जाता है।

   (स) दूध उत्पादन हेतु रातव :–

   (i) गाय के लिये 3 किग्रा. दूध उत्पादन पर 1 किग्रा. रातव देते है।

   (ii) भैंस के लिये 2.5 किग्रा. दूध उत्पादन पर 1 किग्रा. रातव देते है।

   दाना मिश्रण की कुल मात्रा = (अ) + (ब) + (स) किग्रा. में
3. **दाना मिश्रण (रातव) द्वारा दिये गये शुष्क पदार्थ की मात्रा :–**

   $$\text{दाना मिश्रण में शुष्क पदार्थ (किग्रा.)} = \frac{90}{100} \times \text{दाना मिश्रण की मात्रा (किग्रा.)}$$
4. **चारे द्वारा दिये जाने वाले शुष्क पदार्थ की मात्रा :–**

   = कुल शुष्क पदार्थ की मात्रा (किग्रा.) – दाना मिश्रण द्वारा दिये गये शुष्क पदार्थ की मात्रा (किग्रा.)

$\therefore$ 1 किग्रा. शरीर भार पर गाय के लिए देगें $= \frac{2.5}{100}$ किग्रा. शुष्क पदार्थ

$\because$ 400 किग्रा. शरीर भार पर गाय के लिये देगें $= \frac{2.5}{100} \times 400 =$ 10 किग्रा. शुष्क पदार्थ

2. **दाना मिश्रण (रातव) की मात्रा**

(अ) जीवन निर्वाह हेतु = 1 किग्रा.

(ब) गर्भ के विकास हेतु = 1 किग्रा.

(स) 10 किग्रा. दूध उत्पादन हेतु

3 किग्रा. दूध उत्पादन पर गाय के लिये रातव देते है = 1 किग्रा.

$\therefore$ 1 किग्रा. दूध उत्पादन पर गाय के लिये रातव देगें $= \frac{1}{3}$ किग्रा.

$\because$ 10 किग्रा. दूध उत्पादन पर गाय के लिये रातव देगें $= \frac{1}{3} \times 10$ किग्रा.

= 3.33 किग्रा.

दाने मिश्रण की कुल मात्रा = 1 + 1 + 3.33 = 5.33 किग्रा.

3. **दाना मिश्रण द्वारा दिये गये शुष्क पदार्थ की मात्रा –**

100 किग्रा. दाना मिश्रण में शुष्क पदार्थ होता है = 90 किग्रा.

$\therefore$ 1 किग्रा. दाना मिश्रण में शुष्क पदार्थ होगा $= \frac{90}{100}$ किग्रा.

$\because$ 5.33 किग्रा. दाना मिश्रण में शुष्क पदार्थ होगा $= \frac{90}{100} \times 5.33$ किग्रा.

4.797 = 4.8 किग्रा.

4. **चारे द्वारा दिये जाने वाले शुष्क पदार्थ की मात्रा =**

= कुल शुष्क पदार्थ की मात्रा (किग्रा.)–दाना मिश्रण द्वारा दिये गये शुष्क पदार्थ की मात्रा (किग्रा.)

= 10–4.80

= 5.2 किग्रा.

5. **चारे द्वारा दिये जाने वाले शुष्क पदार्थ का हरे एवं सूखे चारे के रूप में विभाजनः**

चारे में शुष्क पदार्थ $<$ $\frac{1}{3}$ भाग हरे चारे के द्वारा; $\frac{2}{3}$ भाग सूखे चारे के द्वारा

5.2 किग्रा. $<$ 3.47 किoग्राo शुष्क पदार्थ सूखे चारे द्वारा; 1.73 किoग्राo शुष्क पदार्थ हरे चारे द्वारा

**6. हरे चारे (बरसीम) की मात्रा :–**

20 किग्रा. शुष्क पदार्थ मिलता हैं = 100 किग्रा. बरसीम में

∵ 1 किग्रा. शुष्क पदार्थ मिलेगा = $\frac{2.5}{100}$ किग्रा. बरसीम में ,

∴ 1.73 किग्रा. शुष्क पदार्थ मिलेगा = $\frac{100}{20} \times 1.73$

= 8.65 किग्रा. बरसीम में यानि 8.65 किग्रा. बरसीम चाहिये।

**7. सूखे चारे (गेहूँ का भूसा) की मात्रा :–**

90 किग्रा. शुष्क पदार्थ मिलता है = 100 किग्रा. गेहूँ के भूसे से

∵ 1 किग्रा. शुष्क पदार्थ मिलेगा = $\frac{100}{90}$ किग्रा. गेहूँ के भूसे से

∴ 3.47 किग्रा. शुष्क पदार्थ मिलेगा = $\frac{100}{90} \times 3.47$

= 3.855 किग्रा. गेहूँ के भूसा में अर्थात
3.855 किग्रा. गेहूँ का भूसा चाहिये।

**8. दाना मिश्रण की मात्रा का विभाजन :–**

कुल दाना मिश्रण 5.33 किग्रा. की मात्रा का :–

(अ) 40 प्रतिशत खल (मूँगफली की खल) द्वारा = $5.33 \times \frac{40}{100}$

= 2.132 किग्रा. मूँगफली की खल

(ब) 40 प्रतिशत दानों (जौ का दलिया) द्वारा = $5.33 \times \frac{40}{100}$

= 2.132 किग्रा. जौ का दलिया

(स) 20 प्रतिशत उपजातों (चोकर) द्वारा = $5.33 \times \frac{20}{100}$ = 1.066 किग्रा. चोकर

**9. अन्य :–**
(अ) खनिज मिश्रण 30 से 50 ग्राम
(ब) सादा नमक 30 ग्राम
(स) स्वच्छ पानी आवश्यकतानुसार

## आंकिक प्रश्न–2

एक भैंस जिसका शरीर भार (Body Weight) 500 किग्रा. है। 10 किग्रा. दूध प्रतिदिन दे रही है। यह भैंस 4 माह की ग्याभिन भी है। इसके लिये एक दिन के चारे दाने की गणना कीजिए। जबकि निम्न चारे दाने उपलब्ध है। रिजका हरा, गेहूँ का भूसा, अलसी की खल, जौ का दलिया एंव चावल की पोलिस (चापड़)

**गणना :–**

**1. कुल शुष्क पदार्थ की मात्रा**

100 किग्रा. शरीर भार पर भैंस के लिये देते हैं = 3 किग्रा. शुष्क पदार्थ

$\because$ 1 किग्रा. शरीर भार पर भैंस के लिये देंगे = $\frac{3}{100}$ किग्रा. शुष्क पदार्थ

$\therefore$ 500 किग्रा. शरीर भार पर भैंस के लिये देंगे = $\frac{3}{100} \times 500$ किग्रा. शुष्क पदार्थ

= 15 किग्रा. शुष्क पदार्थ

**2. दाना मिश्रण (रातव) की मात्रा**

(अ) जीवन निर्वाह हेतु = 1 किग्रा.

(ब) 10 किग्रा. दूध उत्पादन हेतु :–

2.5 किग्रा. दूध उत्पादन पर भैंस के लिये देते हैं = 1 किग्रा. दाना मिश्रण

$\because$ 1 किग्रा.दूध उत्पादन पर भैंस के लिये देंगे = $\frac{1}{2.5}$ किग्रा. दाना मिश्रण

$\therefore$ 10 किग्रा. दूध उत्पादन पर भैंस के लिये देंगे = $\frac{1}{2.5} \times 10 = 4$ किग्रा. दाना मिश्रण

दाना मिश्रण की कुल मात्रा = 1 + 4 = 5 किग्रा.

**3. दाना मिश्रण द्वारा दिये गये शुष्क पदार्थ की मात्रा :–**

100 किग्रा. दाना मिश्रण में शुष्क पदार्थ होता है = 90 किग्रा.

$\because$ 1 किग्रा. दाना मिश्रण में शुष्क पदार्थ होगा = $\frac{90}{100}$ किग्रा.

$\therefore$ 5 किग्रा. दाना मिश्रण में शुष्क पदार्थ होगा = $\frac{90}{100} \times 5 = 4.5$ किग्रा.

4. **चारे द्वारा दिये जाने वाले शुष्क पदार्थ की मात्रा =**

कुल शुष्क पदार्थ की मात्रा (किग्रा.) – दाना मिश्रण द्वारा दिये गये शुष्क पदार्थ की मात्रा (किग्रा.)

15 किग्रा. – 4.5 किग्रा. = 10.5 किग्रा.

5. **चारे द्वारा दिये जाने वाले शुष्क पदार्थ का हरे एंव सूखे चारे के रूप में विभाजन :–**

चारे में शुष्क पदार्थ
- $\frac{1}{3}$ भाग हरे चारे द्वारा
- $\frac{2}{3}$ भाग सूखे चारे द्वारा

10.5 किग्रा.
- 3.5 किग्रा. शुष्क पदार्थ हरे चारे द्वारा
- 7.0 किग्रा. शुष्क पदार्थ सूखे चारे द्वारा

6. **हरे चारे (रिजका) की मात्रा :–**

20 किग्रा. शुष्क पदार्थ मिलता है = 100 किग्रा. रिजका में

$\because$ 1 किग्रा. शुष्क पदार्थ मिलेगा = $\frac{100}{20}$ किग्रा. रिजका में

$\therefore$ 3.5 किग्रा. शुष्क पदार्थ मिलेगा = $\frac{100}{20} \times 3.5 = 17.5$ किग्रा.

रिजका में यानि 17.5 किग्रा. रिजका चाहिये।

7. **सूखे चारे (गेहूँ के भूसे) की मात्रा :–**

90 किग्रा. शुष्क पदार्थ मिलता है = 100 किग्रा. गेहूँ के भूसे में

$\because$ 1.0 किग्रा. शुष्क पदार्थ मिलेगा = $\frac{100}{90}$ किग्रा. गेहूँ के भूसे में

$\therefore$ 7.0 किग्रा. शुष्क पदार्थ मिलेगा = $\frac{100}{90} \times 7.0 = 7.777$ किग्रा.

गेहूँ के भूसे में यानि 7.78 किग्रा. गेहूँ का भूसा चाहिये।

## 8. दाना मिश्रण की मात्रा का विभाजन :–

कुल दाना मिश्रण 5 किग्रा. की मात्रा का

(अ) 40% खल (अलसी की खल) द्वारा = $5 \times \frac{40}{100} = 2.00$ किग्रा. अलसी की खल

(ब) 40% दानों (जौ का दाना) द्वारा = $5 \times \frac{40}{100} = 2.00$ किग्रा. जौ का दाना

(स) 20% चावल का चापड़ = $5 \times \frac{20}{100} = 1.00$ किग्रा. चावल का चापड़

## 9. अन्य :–

(अ) खनिज मिश्रण – 30 से 50 ग्राम

(ब) सादा नमक – 30 ग्राम

(स) स्वच्छ पानी आवश्यकतानुसार

# प्रयोग–16

**उद्देश्यः–** पशुओं को खुरहरा (Brushing) करना एवं नहलाना।

**(A) पशुओं में खुरहरा करने की उपयोगिता**

1. पशु के शरीर की गन्दगी, धूल मिट्टी, कचरा टूटे बाल आदि हटाने के लिए।
2. पशु में रक्त संचार बढ़ाने के लिए।
3. स्वच्छ दुग्ध उत्पादन के लिए।
4. पशु के शरीर से बाह्य परजीवियों जैसे–जू, चिचड़ी, कलीली आदि को हटाने के लिए।
5. पशु को स्वस्थ रखने तथा उसकी कार्य क्षमता बढ़ाने के लिए।

**आवश्यक सामग्रीः–** खुरहरा ब्रश नरम व सख्त, रस्सी, पशु

**विधिः–** पशु को रस्सी से बाँधकर सर्वप्रथम, सख्त ब्रुश को पशु के शरीर पर घुमाते है जिससे धूल, मिट्टी के कण दूर हो जाते है।

**सावधानियाँ :–**

1. पशु को रस्सी से बांधकर अड़गड़ा (Trevis) में खड़ा करके खुरहरा करना चाहिए।
2. खुरहरा बालों के झुकाव की दिशा में ही करना चाहिए।
3. खुरहरा करने का कार्य गर्दन से प्रारम्भ करना चाहिए।
4. सख्त ब्रश का प्रयोग सावधानी से करना चाहिए अन्यथा पशु की त्वचा पर खरोच आ सकती है।
5. सिर व हड्डी वाले स्थानो पर खुरहरा नही करें।

**खुरहरे का उपयुक्त समय :–**

1. दुधारू पशुओं में दुग्ध निकालने के एक से 1.5 घंटे पूर्व खुरहरा करना चाहिए।
2. प्रातः काल का समय खुरहरा के लिए अच्छा रहता है।

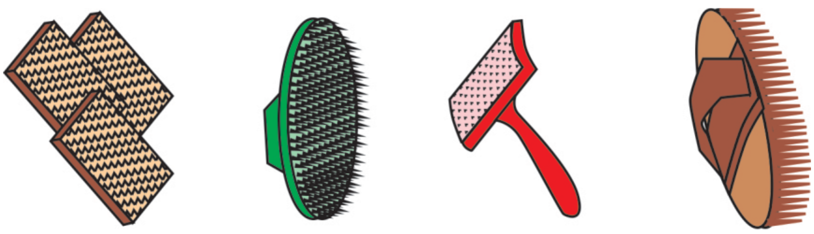

चित्र–16.1 विभिन्न प्रकार के खुरहरा ब्रश

प्रेक्षण सारणी

| क्र.सं. | पशु संख्या / नाम | नस्ल | उम्र | त्वचा का रंग | खुरहरा करने के पश्चात् पशु का निरीक्षण |
|---|---|---|---|---|---|
| 1 | | | | | |
| 2 | | | | | |
| 3 | | | | | |

## (B)

## पशुओं को नहलाने की उपयोगिता

1. पशु को स्वच्छ रखने हेतु।
2. पशु को बाह्य परजीवियों से बचाना।
3. अधिक गर्मी से राहत देने हेतु।
4. स्वच्छ दूध उत्पादन हेतु।
5. पशु मेले व प्रदर्शनी में ले जाने हेतु।
6. भेड़ व बकरी से साफ सुथरी ऊन व बाल प्राप्त करने हेतु।

### आवश्यक सामग्रीः–

1. पानी का होज, पाईप, नाइलोन ब्रश, बाल्टी, मग, साबुन आदि।
2. पशु– गाय, भैंस, बैल, भेड़ व बकरी।

### विधिः–

1. पहले पशु पर थोड़ा पानी छिड़कें तथा थोड़ी देर के लिए छोड़ दें।
2. दुबारा पानी अधिक मात्रा में छिड़कें तथा अधिक गन्दे स्थान पर नाइलोन के ब्रश से रगड़ें।
3. भैंस को छोटे बड़े गड्ढे (कच्चा या पक्का) जिसमें पानी भरा हो उतार कर नहला सकते है।
4. भेड़ के ऊन काटने के दो–तीन दिन पहले नहलाते है।
5. नहलाने में कभी–कभी साबुन का प्रयोग भी लेते है विशेषतौर पर जब पशु के शरीर का रंग सफेद होता है।

### सावधानियाँः–

1. अधिक सर्दी में पशु को नही नहलावें तथा केवल खुरहरा ही करें।
2. दूध दोहन के एक घण्टे पूर्व ही पशु को नहलावें।

### प्रेक्षण सारणी :

| क्र.सं. | पशु संख्या | रंग | पशु का दिखना | |
|---|---|---|---|---|
| | | | नहलाने के पूर्व | नहलाने के बाद |
| 1.<br>2.<br>3. | | | | |

परिशिष्टः— 1

## विभिन्न बागवानी यंत्र (Different Garden Tools)

कलिकायन व भेंटकलम चाकू (Budding & Grafting Knife)

बिल हुक (Bill Hook)

कलिकायन चाकू बडर सहित (Budding Knife With budder)

ट्रोवल (Trovel)

रोटरी डस्टर (Rotary Duster)

रोपण चाकू (Grafting Knife)

हैण्ड स्प्रेयर (**Hand Sprayer**)

नैपसेक स्प्रेयर (**Knap- Sack Sprayer**)

उद्यान रैक (**Garden Rake**)

हो–कम–रैक **(Hoe-Cum-Rake)**

गैंती **(Pick Axe)**

कृन्तन चाकू **(Pruning Knife)**

कुल्हाड़ी **(Axe)**

फावड़ा **(Spade)**

कृन्तन आरी **(Pruning Saw)**

प्रोंग्ड हो **(Pronged Hoe)**

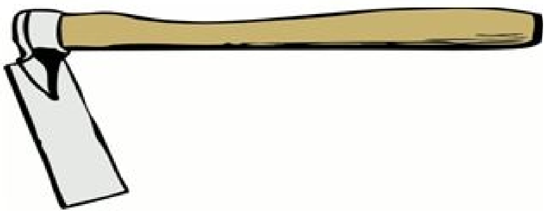

कुदाली **(Kudali)**

खुरपी **(Khurpi)**

विद्युत चालित लान मुवर **(Electric Operated Lawn Mover)**

सिकेटियर **(Secateur)**

दँराती **(Sickle)**

हेज शियर **(Hedge Shear)**

हैण्डफोर्क **(Hand Fork)**

फोर्क **(Fork)**

ग्रास शियर **(Grass Shear)**

ट्री–प्रूनर **(Tree Pruner)**

# परिशिष्ट 2

## अलंकृत वृक्षों की पहचान

| क्र. सं. | नाम | वानस्पतिक नाम | ऊँचाई | फूल का रंग | प्रसारण | विशेष विवरण |
|---|---|---|---|---|---|---|
| *1.* | सिरिस | *अलबीजिया लेबेक* | मध्यम से अधिक ऊँचाई का | पीला, क्रीम | बीज | सुंगधित फूल मार्च–मई तक आते हैं। |
| *2.* | नीम | *एजेडिरेक्टा इंडिका* | मध्यम से अधिक ऊँचाई का | क्रीम, पीला, सफेद | बीज | – |
| *3.* | एलसटोनिया (चैतियन) | *एल्सटोनिया स्कालरिस* | मध्यम | सफेद | | बीजपत्ते सुन्दर गोल क्रम में आते हैं। |
| 4. | पंगारा | *इरिथ्रिना इंडिका* | छोटा | लाल | बीज | |
| 5. | क्रिसमस ट्री | *एरोकेरिया ऐक्सेल्सा* | मध्यम | – | बीज | सुन्दर पत्तियाँ होती हैं। |
| 6. | झाड़फनूस | *किजेलिया पिन्नेटा* | मध्यम ऊँचाई का | गहरा बैंगनी | बीज | फल लौकी की तरह ठोस कप के आकार का फनूस की तरह लटकता है। |
| 7. | वरूण | *क्रेटीवा रेलिजिओसा* | मध्यम ऊँचाई | सफेद, हल्का पीला या लाल | बीज | – |
| 8. | अमलतास | *कैशिया फिस्टुला* | छोटे से मध्यम ऊँचाई | पीला | बीज | – |
| 9. | बोटल ब्रुश | *कैलिस्टोमेन लैन्सियोलेटस* | मध्यम | लाल | बीज | सजावटी, तना समरूपता वाला व विशेष स्थान पर लगने वाला पेड़ है। |
| 10. | नीला गुलमोहर | *जैकेरेन्डा माइमोसी फोलिया* | मध्यम ऊँचाई का | नीला | बीज, कलम | गर्मी में नीले फूल आकर्षित करते हैं। |
| 11. | अर्जुन | *टर्मिनेलिया अर्जुना* | अधिक ऊँचाई का | पीला सफेद | बीज | छायादार व एवेन्यू के लिए उपयुक्त है। साथ ही पेड़ का औषधीय महत्व भी है। |
| 12. | थूजा (मोरपंखी) | *थूजा आक्सीडेन्टेलिस* | मध्यम से ऊँचा | – | बीज | गूटी सुन्दर पत्तियाँ होती हैं। |

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 13. | लाल चम्पा | *प्लुमैरिया रूब्रा* | मध्यम | – | कलम | – |
| 14. | चम्पा | *प्लुमैरिया एल्बा* | मध्यम | लाल सफेद | कलम | – |
| 15. | आसुपाल अशोक | *पॉलीएल्थिया लॉंगीफोलिया* | ऊँचा | – | बीज | इसकी शाखाएँ फैली हुई होती हैं। |
| 16. | अशोक | *पॉलीएल्थिया पैन्डुला* | ऊँचा | – | बीज | इसकी शाखाएँ नीचे झुकी हुई होती हैं व एवेन्यू के लिए अनुकूल |
| 17. | करंज | *पोन्गैमिया ग्लेब्रा* | छोटा | गुलाबी, बैंगनी | बीज | पत्तियों से हरी खाद मिलती है और एवन्यू पेड़ है। |
| 18. | माखन कटोरी | *फाइकस कृषणी* | छोटा | – | बीज, कलम | इसके बारे में कहा जाता है कि पत्तियों में कृष्ण माखन रखते थे। |
| 19. | बरगद | *फाइकस बैन्गालेन्सिस* | ऊँचा | – | बीज, कलम | छायादार होता है। |
| 20. | पीपल | *फाइकस रिलीजिओसा* | ऊँचा | – | बीज, कलम | पत्तियाँ चमकदार, छायादार पेड़ है। |
| 21. | गूलर | *फाइकस ग्लोमेरेटा* | ऊँचा | – | बीज, जड़ कलम | छायादार वृक्ष |
| 22. | बोकड़ | *फाइकस हिस्पिडा* | ऊँचा | – | बीज, जड़ कलम | |
| 23. | पलाश, ढ़ाक | *ब्यूटिया फ्रान्डोसा* | मध्यम ऊँचाई का | लाल, नारंगी | बीज | फरवरी मार्च में लाल फूल से लद जाता है। |
| 24. | कचनार | *बाहुनिया वैरीगेटा* | मध्यम ऊँचाई | बैंगनी, गुलाबी | बीज | – |
| 25. | मीठा नीम | *मुराया कोइनिंगाई* | मध्यम ऊँचाई | सफेद, बैंगनी | बीज | सुंगधित पत्तियाँ होती हैं। |
| 26. | आकाश नीम | *मिलिंगटोनिया हार्टेन्सिस* | ऊँचा | सिल्वरी सफेद | बीज,तना, कलम | सकड़ा व स्लेटी पीले रंग का व शाखाएं नीचे लटकती हुई होती हैं। |

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 27. | यूकेलिप्टस (सफेदा) | *यूकेलिप्टस साइट्रीडोरा* | ऊँचा | मटमेला सफेद | बीज | इससे पत्तियों से तेल निकाला जाता है। |
| 28. | फाउन्टेन ट्री | *स्पैथोडिया कैम्पेनुलाटा* | मध्यम ऊँचाई | गहरा नारंगी | बीज, जड़ कलम | छायादार वृक्ष तथा फूल कप के आकार का होता है। |
| 29. | सीता अशोक | *सराका इंडिका* | छोटा | नारंगी, लाल | बीज | छायादार सुन्दर |
| 30. | कैशिया (कसोड़) | *कैशिया सियामिया* | मध्यम ऊँचा | पीले | बीज | – |
| 31. | सेमल | *बाम्बेक्स मालाबेरिकम* | मध्यम ऊँचा | लाल | बीज | सुन्दर पत्तियों वाला |
| 32. | पिंक कैशिया | *कैशिया जवानिका* | मध्यम | गुलाबी | बीज | – |
| 33. | सिल्वर ओक | *ग्रेवेलिया रोबोस्टा* | ऊँचा | सफेद भूरा | बीज | पत्तियाँ सुन्दर अलंकृत कटी हुई होती हैं। |
| 34. | मौलश्री | *मिमोसोप्स इंलेगी* | ऊँचा | सफेद | बीज | छायादार पेड़ होता है। |
| 35. | गुलमोहर | *डिलोनिक्स रीजिया* | अधिक ऊँचाई का | लाल, नारंगी | बीज | छायादार सदाबहार |

# परिशिष्ट 3

(अ) लताए :–

| क्र. सं. | नाम | वानस्पतिक नाम | प्रसारण की विधि | फूल का रंग | फूल आने का समय | विशेष विवरण |
|---|---|---|---|---|---|---|
| 1. | आइपोमिया (रेल्वे क्रीपर) | *आइपोमिया पामेटा* | दाब, कलम | बैंगनी | पूरे वर्ष भर, | शीघ्रता से बढ़ने वाली बरसात में ज्यादा |
| 2. | एन्टीगोनॉन (सैन्डविच आइलैंड लता) | *एन्टीगोनॉन लेप्टोपस* | बीज, दाब | सफेद, गुलाबी व लाल | सितम्बर से नवम्बर | शीघ्रता से बढ़ने व मडंप, वाली ऑर्च के लिए अनुकूल |
| 3. | एस्पैरागस (शतावर) | *एस्पैरागस रेसीमोसस* | कलम | भूरा | – | छाया में लगाने के लिए अनुकूल |
| 4. | क्लोरोडेन्ड्रान (अग्निलता) | *क्लोरोडेन्ड्रान स्पेलेन्डिस* | बीज, कलम, भूस्तारी (सक्र्स) | गहरे लाल रंग, सफेद | दिसम्बर से मार्च | छाया के लिए अति उत्तम |
| 5. | क्विसक्वैलिस (रंगूनलता) | *क्विसक्वैलिस इंडिका* | कलम व रूट सर्कस | सफेद, गुलाबी व बैंगनी लाल | – | सुगन्ध वाली बेल दीवार, व मंडप पर लगाते हैं। झुमकाबेल पर शुरू में सफेद फूल आते हैं फिर गुलाबी व लाल में बदल जाते हैं। |
| 6. | क्लाइटोरिया (गोकरण) | *क्लाइटोरिया टर्नेशिया* | बीज | नीला, सफेद व बैंगनी | – | आकर्षण फूल |
| 7. | जैसमिनम (चमेली) | *जैसमिनम ग्रांडीफ्लोरम* | कलम, दाब | सफेद | जून से नवम्बर | सुंगधित लता, जनवरी फरवरी में कटाई (Pruning) की जरूरत होती है। |
| 8. | पैसीफ्लोरा (कौरव पाण्डव) | *पैसीफ्लोरा रेसीमोसा* | बीज व कलम | बैंगनी | – | फूल का आकार घड़ी की तरह होता है। |
| 9. | मनीप्लांट | *पोथाज स्कैन्डेन्स* | कलम | – | – | फूल नही आते, परन्तु सुन्हरी पीली |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| | | | | | पत्तियाँ आकर्षित करती हैं और कहते है जिस घर में फलती है, वहाँ पर सम्पन्नता आती है। |
| 10. बोगनविलिया | *बोगनविलिया स्पी.* | कलम | सफेद, गुलाबी, नारंगी, पीला, बैंगनी | वर्षभर | इसे बाड़, स्टैन्डर्ड, बोनसाई, झाड़ी, गमलों में लगा सकते हैं। |
| 11. पोटैटो क्रीपर | *सोलेनम जैस्मीनोइड्स* | कलम,दाब,बीज | नीला | – | पत्तियों की सुन्दरता ही लता का गुण है। यह दीवार के विपरीत दिशा में अनुकूल होती है। |
| 12. पीली चमेली | *जैस्मिनम ह्यूमाइल* | कलम | पीला | मार्च | दीवार के विपरीत व ट्रेलिज पर अनुकूल होती है। |
| 13. गोल्डन शावर | *बिगनोनिया वेनस्टा* | जमीनी दाब | गहरे नारंगी | फरवरी मार्च | इसकी बेल मकान, दीवार,मंडप, ट्रेलिज व दीवार के विपरीत लगाते हैं। |
| 14. वरनोनिया | *वरनोनिया इलेगींफोलिया* | कलम | मटमैले सफेद | – | पोर्च, बालकॉनी, दीवार खम्बों पर अनुकूल होती है। |
| 15. टिकोमा | *टिकोमा कैम्पिसिस* | कलम दाब | केसरिया | – | ग्रीष्म एवं वर्षा ऋतु |

**(ब) झाड़ियाँ :–**

| क्र. सं. | नाम | वानस्पतिक नाम | ऊँचाई (मी.) | प्रसारण | विशेष विवरण |
|---|---|---|---|---|---|
| 1. | अगेव (राम बांस) | *अगेव अमेरिकाना* | 1.5–3.0 | सकर्स | कम पानी वाले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त |
| 2. | ओपन्शिया | *ओपन्शिया स्पी.* | 1.5–3.0 | बीज | कम पानी वाले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त |
| 3. | जंगल जलेबी | *इन्गाडलसिस स्पी.* | 3–9.0 | बीज | कम पानी वाले क्षेत्रों के लिए उपयुक्त |
| 4. | इक्जोरा (रूकमणी) | *इक्जोरा स्पी.* | 1.0–2.0 | कलम व बीज | – |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| 5. | क्लोरोडेन्ड्रान *इनर्मी* | *क्लोरोडेन्ड्रान* | 0.75–2.0 | कलम | बाढ़ व उद्यान अलंकरण बनाने हेतु उपयुक्त |
| 6. | एरिथ्रीना | *एरिथ्रीना ब्लेकाई* | 0.60–1.5 | बीज | – |
| 7. | एकेलिफा | *एकेलिफा विल्केसियाना* | 2.0–3.0 | बीज, कलम | – |
| 8. | एजेलिया | *एजोलिया स्पी.* | – | बीज, कलम व दाब | – |
| 9. | जस्टीसिया | *जस्टीसिया जेन्ड्रयूस* | 0.9–1.2 | कलम | – |
| 10. | जैट्रोफा (भद्रदन्ती) | *जैट्रोफा हेस्टाटा* | 1.5–2.5 | कलम, बीज, दाब | शुष्क क्षेत्रों के लिए उत्तम |
| 11. | मोगरा | *जैसमिनम सेमबेक* | 0.60–1.0 | दाब, कलम | खुशबूदार फूलों के लिए |
| 12. | टिकोमा | *टकोमा स्टेन्स* | 2–3.0 | बीज | फूलदार झाड़ी |
| 13. | चांदनी | *टेवरनी मोन्टाना डाइबैराइगेटा* | 2–2.5 | कलम, एयरलेयरिंग | सुन्दर फूलों के लिए |
| 14. | डुरैन्टा | *डुरैन्टा रिपेन्स* | 1.0–2.0 | कलम व बीज | – |
| 15. | पीला कनेर | *थीवेटिया पेरूवियाना* | 3–3.5 | बीज, कलम | शुष्क क्षेत्रों के लिए |
| 16. | हरसिंगार | *निक्टैन्थस आर्टेबॉट्रिस्टस* | 2.0–8.0 | बीज व कलम | खुशबूदार फूलों के लिए |
| 17. | लाल कनेर | *नीरियम ओडोरम* | 2–2.5 | कलम | शुष्क क्षेत्रों के लिए |
| 18. | गुलतुर्रा | *पोइनशियाना पल्चरीमा* | 1.5–2.5 | बीज | चमकदार फूलों के लिए |
| 19. | बोगनविलिया | *बोगनविलिया स्पी.* | 1.5–2.0 | कलम | पौधे के तने पर कांटे होते है। |
| 20. | मधुकामिनी | *मुराया पैनीकुलैटा* | 2–2.5 | कलम व दाब | खुशबूदार फूल |
| 21. | मेहन्दी | *लासोनिया एल्बा* | 1.5–3.0 | बीज व कलम | खुशबूदार फूल व पत्तियां |
| 22. | लैन्टाना (गुलमेंहन्दी) | *लैन्टाना कामरा* | 1.5–3.0 | कलम व दाब | रंगीन फूलों के लिए |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| 23. | सिस्बेनिया | *सिस्बेनिया इजिप्टिओका* | 3.0–6.0 | बीज | – |
| 24. | दिन का राजा | *सेस्ट्रम डायअर्नम* | 2.0–3.0 | कलम | खुशबूदार फूल |
| 25. | रात की रानी | *सेस्ट्रम नॉकटर्नम* | 2.0–2.5 | कलम | खुशबूदार फूल |
| 26. | हेमेलिया | *हेमेलिया पेटन्स* | 2.5–3.0 | कलम | रंगीन व आकर्षक फूलों के लिए |
| 27. | चाईना रोज (गुडहल) | *हिबिस्कस रोजासाइनेन्सिस* | 1.5–2.5 | कलम, दाब | आकर्षक फूल |
| 28. | मधुमालती | *हिप्टेज बेंगालेन्सिस* | – | बीज व कलम | – |

# परिशिष्ट–4

## मौसमी फूलों की पहचान

### (अ) – शीतकालीन मौसमी फूल

| क्र. सं. | नाम | ऊँचाई (से.मी.) | पौधे से पौधे की दूरी (से.मी.) | फूल का रंग | विशेष विवरण |
|---|---|---|---|---|---|
| 1. | अजरेटम | 30–60 | 25–30 | सफेद, नीला, गुलाबी | कट फ्लावर |
| 2. | एन्टीराइनम या डोग फ्लावर | 15–75 | 25–40 | सफेद, पीला, गुलाबी, लाल व उनका मिश्रण | कट फ्लावर |
| 3. | डेजी | 15–20 | 15–30 | सफेद, गुलाबी, लाल व उनका मिश्रण | कट फ्लावर |
| 4. | एस्टर | 20–80 | 20–25 | सफेद, गुलाबी, बैंगनी लाल व उनके मिश्रण | कटे फूल उत्तम |
| 5. | कार्नफ्लावर | 60–90 | 20–25 | सफेद, गुलाबी, नीला बैंगनी | कटे फूल उत्तम |
| 6. | स्वीट सुलतान | 45–60 | 30 | सफेद, गुलाबी, पीला, बैंगनी व उनके विभिन्न रंग | कटे फूल उत्तम |
| 7. | क्राइसेन्थिमम (गुलदाउदी) एकवर्षीय | 50–100 | 50–100 | सफेद, पीला, नारंगी, लाल, बैंगनी व उनके मिश्रित रंग | गमले,क्यारियों व कट फ्लावरर्स के लिए |
| 8. | क्लार्किया | 30–60 | 25–30 | सफेद, नारंगी तथा इनके विभिन्न रंग | अच्छे कटे फूल |
| 9. | लार्कस्पर | 50–100 | 20 | सफेद, लाल, नीला, नारंगी | कट फ्लावर्स आदि |
| 10. | डायन्थस या स्वीट विलियम | 20–30 | 30 | सफेद, गुलाबी, लाल व उनके मिश्रण | कट फ्लावर्स |
| 11. | कारनेशन | 40–80 | 30–45 | सभी रंग | सुंगधित उच्च कोटि के कटे फूल |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| 12. | एसकोल्जिया या कैलीफोर्निया पॉपी | 30—40 | 20 | पीला, नारंगी, लाल | क्यारियों के लिए अति उत्तम |
| 13. | जिप्सोफिला | 25—30 | 30 | सफेद, लाल, बैंगनी | कटे फूलों के लिए |
| 14. | हैलीक्राइजम | 75—100 | 40—45 | सफेद, पीला, लाल, नीला | कटे फूलों व सुखाने के लिए उत्तम |
| 15. | केन्डीटफ्ट | 25—40 | 20—25 | सफेद बैंगनी | किनारी (एजिंग) के लिए उत्तम |
| 16. | स्वीट पी | 25—250 | 15—75 | काले के अलावा संभी रंग | सुंगधित कटे फूल |
| 17. | लाइनेरिया | 30—40 | 15—20 | सफेद, लाल, पीला, नीला, नारंगी | क्यारी व गमलों के लिए उत्तम |
| 18. | लाइनम | 50—60 | 20—25 | आसमानी व लाल | क्यारियों के लिए अच्छा |
| 19. | लुपिन | 75—100 | 30—40 | सफेद, नीला, लाल, पीला | कटे फूलों के लिए अच्छा |
| 20. | स्टोक | 50—60 | 30—40 | सफेद, पीला, गुलाबी, लाल | किनारी, क्यारी व रॉकरी के लिए उत्तम |
| 21. | सपोनेरिया | 60—100 | 50—60 | सफेद, पीला, गुलाबी | कटे फूलों के लिए उत्तम |
| 22. | मीजम ब्रेन्थिमम | 15—25 | 15—20 | सफेद, पीला, गुलाबी, लाल | किनारी, क्यारी व रॉकरी के लिए उत्तम |
| 23. | निकोशियाना | 70—100 | 30—40 | सफेद, लाल, गुलाबी | क्यारी के लिए उत्तम |
| 24. | पेपेवर पॉपी | 75—100 | 25—30 | सफेद, लाल | क्यारियों के लिए उत्तम |
| 25. | नाइजेला | 50—60 | 30—40 | नीला, सफेद, बैंगनी | क्यारियों के लिए उत्तम |
| 26. | फ्लोक्स | 40—45 | 25—30 | काले के अतिरिक्त सभी रंग | क्यारियों के लिए अति उत्तम |
| 27. | मिगनोनेट | 40—45 | 25—30 | सफेद, क्रीम, लाल, बैंगनी | किनारी व रॉकरी के लिए |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| 28. | सिनेरेरिया | 40–60 | 40–50 | काले व हरे के अतिरिक्त सभी रंग | क्यारी, गमलों व टोकरियों में अति उत्तम, छायावाले स्थानों के लिए उपयुक्त |
| 29. | नास्ट्रेशियम | 100–250 | 40–50 | पीला, नारंगी, लाल तथा अन्य रंग | क्यारियों के अलावा, टोकरियों व गमलों में भी लगाया जाता है। |
| 30. | वरबिना | 30 | 20–25 | सफेद, गुलाबी, नीला, बैंगनी, लाल, पीला | रॉकरी, किनारी व टोकरियों के लिए अच्छा |
| 31. | पैन्जी | 20–25 | 15–25 | नीला, लाल, गुलाबी, बैंगनी, सफेद, पीला रंग एक ही फूल पर | गमलों एवं क्यारियों के लिए अच्छा |
| (ब) – शीतकालीन मौसमी फूल जो अन्य मौसम में भी उगाये जाते है | | | | | |
| क्र. सं. | नाम | ऊँचाई (से.मी.) | पौधे से पौधे की दूरी (से.मी.) | फूल का रंग | विशेष विवरण |
| 32. | हॉलीहाक | 125–200 | 50–60 | सफेद, गुलाबी, पीला, बैंगनी, लाल | बड़ी क्यारी, छोटी बाड़ के लिए उपयुक्त |
| 33. | कैलेन्डुला | 30–60 | 25–30 | पीला, नारंगी, लाल | कटे फूल अच्छे लगते है |
| 34. | कॉसमास | 60–150 | 30–45 | सफेद, गुलाबी, लाल, नीला व पीला | फूल साल भर आ सकते है |
| 35. | सालविया | 25–100 | 15–65 | सफेद, पीला, नीला, लाल बैंगनी तथा इनके विभिन्न रंग | क्यारियों के लिए श्रेष्ठ |
| 36. | मेरीगोल्ड (गेंदा) | 20–90 | 15–45 | पीला, नारंगी, लाल | कटे फूल व माला के लिए उत्तम |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| 37. | गेलार्डिया | 25–40 | 30–45 | पीला, लाल, नारंगी, सफेद, बैंगनी | माला, क्यारी, कटे फूल और हर मौसम के लिए उत्तम |
| 38. | टिथोनिया | 100–150 | 30–45 | लाल, नारंगी | तेज बढ़ने वाला |
| (स) –ग्रीष्मकालीन मौसमी फूल | | | | | |
| क्र. सं. | नाम | ऊँचाई (से.मी.) | पौधे से पौधे की दूरी (से.मी.) | फूल का रंग | विशेष विवरण |
| 39. | कोचिया | 60–125 | 50–60 | हरी घनी सुन्दर पत्तियां | गमलों के लिए अति उत्तम |
| 40. | पोरचुलाका | 15–25 | 15–25 | सफेद, पीला, नारंगी, गुलाबी, लाल व इनके अनेक रंग | किनारी व रॉकरी के लिए उत्तम |
| (द) – गर्मी व बरसात दोनो मौसम के लिए फूल | | | | | |
| क्र. सं. | नाम | ऊँचाई (से.मी.) | पौधे से पौधे की दूरी (से.मी.) | फूल का रंग | विशेष विवरण |
| 41. | अमरन्थस | 40–100 | 30–40 | फूल छोटे–छोटे व पत्तियाँ चित्तीदार बहुरंगी | छोटे फूलों से लदा गुच्छा भी लम्बा व आकर्षक होता है। |
| 42. | काक्सकोम्ब | 25–100 | 15–30 | लाल, गुलाबी, पीला, नीला | मुर्गे की तरह फूल शीर्ष पर आते है। |
| 43. | सनफ्लावर | 50–225 | 60–90 | पीला, लाल, बदामी | बड़े फूल, जो सूर्य की किरणों की तरफ मुड़ जाते हैं। |
| 44. | बालसम | 15–75 | 25–30 | सफेद, लाल, गुलाबी, पीला | शीर्ष व तने पर लगते है। |
| 45. | टोरेनिया | 25–30 | 20–25 | नीला, पीला, गुलाबी | किनारी के लिए अति उत्तम |
| 46. | गम्फ्रीना | 30–60 | 30–45 | गुलाबी, सफेद, बैंगनी | कटे फूल, अच्छे व सुखा कर भी काम लेते है। |
| 47. | जीनिया | 15–125 | 20–30 | सफेद, पीला, नारंगी, लाल | क्यारियों व कटे फूलों के लिए उत्तम |

# परिशिष्ट –5

## कृषि मौसमविज्ञान वैधशाला में प्रयुक्त होने वाले उपकरण

| उपकरण | | मौसम तत्व |
|---|---|---|
| अधिकतम तापमापी (Maximum Thermometer) | – | दिन का अधिकतम तापमान (°C) |
| न्यूनतम तापमापी (Minimum Thermometer) | – | दिन का न्यूनतम तापमान (°C) |
| शुष्क बल्ब तापमापी (Dry bulb Thermometer) | – | वायु का तापमान (°C) |
| आर्द्र बल्ब तापमापी (Wet bulb Thermometer) | – | संतृप्त वायु का तापमान (°C) |
| तापलेखी (Thermograph) | – | वायु तापमान का सतत अंकन (°C) |
| मृदा तापमापी (Soil Thermometer) | – | मृदा तापमान (°C) |
| एनेरोइड बेरोमीटर (Aneroid Berometer) | – | वायुमण्डलीय दाब (mm/bar/ pascal) |
| दाबलेखी (Barograph) | – | वायुमण्डलीय दाब का सतत अंकन (bar) |
| सामान्य वर्षामापी (Ordinary raingauge) | – | वर्षा की मात्रा (मिमी) |
| स्वतः अभिलेखी वर्षामापी | – | वर्षा की मात्रा का सतत अंकन/वर्षा तीव्रता मिमी (Self recording raingauge) |
| सायक्रोमीटर (Psychrometer) | – | आपेक्षिक आर्द्रता (%) |
| हाइग्रोमीटर (Hygrometer) | – | वायुमण्डलीय आर्द्रता (%) |
| अस्समान सायक्रोमीटर (Assman's Psychrometer) | – | फसल क्षेत्र में आपेक्षिक आर्द्रता (%) |
| बाल आर्द्रतामापी (Hair hygrometer) | – | कक्ष में आपेक्षिक आर्द्रता (%) |
| आर्द्रतालेखी (Hygrograph) | – | आर्दता का सतत संकन (%) |
| वायुदिक सूचक यंत्र (Wind vane) | – | वायु की दिशा |
| वायु वेगमापी (Anemometer) | – | वायु वेग (किमी/घण्टा) |
| वाष्पनमापी (Evaporimeter) | – | वाष्पन की दर (मिमी/दिन) |
| हेलियोग्राफ (Heliograph) | – | सूर्य के चमकने की अवधि (घण्टे) |
| पायरेनोमीटर (Pyrenometer) | – | आवक सौर विकिरण की कुल मात्रा |
| पिरहेलियोमीटर (Pyrheliometer) | – | प्रत्यक्ष सौर विकिरण |
| क्वान्टम सेन्सर (Quantom Sensor) | – | प्रकाश संश्लेष्ण के प्रति सक्रिय (PAR)विकिरण |
| शैडिंग पायरेनोमीटर (Shadding pyranometer) | – | विसरित (Difussed) सौर विकिरण |
| नेट रेडियेटर (Net radiator) | – | शुद्ध सौर विकिरण |
| पायरेजियोमीटर (Pyregiometer) | – | दीर्घ तरंग विकिरण |
| इन्फ्रारेड तापमापी (Infrared Thermometer) | – | पादप सतह का तापमान (°C) |

## परिशिष्ट –6

| | | |
|---|---|---|
| आइसोबार (Isobar) | – | मानचित्र पर समान वायुमण्डलीय दाब वाले क्षेत्रों को जोड़ने वाली आभासी रेखाएँ |
| आइसोनेफ (Isoneph) | – | मानचित्र पर समान बादल आच्छादन को जोड़ने वाली आभासी रेखाएँ |
| आइसोबाथ (Isobath) | – | मानचित्र पर जल स्रोत या जल स्तर से सतह पर समान ऊंचाई वाले क्षेत्रों को जोड़ने वाली आभासी रेखाएँ |
| आइसोहाईट (Isohyte) | – | मानचित्र पर समान वर्षा की मात्रा वाले क्षेत्रों को जोड़ने वाली आभासी रेखाएँ |
| आइसोटेक (Isotech) | – | मानचित्र पर समान वायु गति वाले क्षेत्रों को जोड़ने वाली आभासी रेखाएँ |
| आइसोथर्म (Isotherm) | – | मानचित्र पर समान तापमान वाले क्षेत्रों को जोड़ने वाली आभासी रेखाएँ |
| आइसोफेन (Isophene) | – | मानचित्र पर पौधों और पशुओं में निश्चित वृद्धि अवस्था प्रकट होने की समान तिथी वाले क्षेत्रों को जोड़ने वाली आभासी रेखाएँ |